अवधी कृष्ण काव्य और उसके कवि

[आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]



डॉ. मुरारिलाल शर्मा 'सुरस', एम ए, साहित्यरत्न, पी-एच. डी.

हिन्दी विभाग

डी. ए. वी. कॉलेज, जालंधर [पंजाब]

रंजन प्रकाशन

बांके विलास, सिटी स्टेशन रोड आगरा

प्रकाशक

रंजन प्रकाशन
बाँके विलास,
सिटी स्टेशन रोड, आगरा–३ [उत्तर प्रदेश]

संस्करण

प्रथम, जुलाई १९६७

मूल्य

पन्द्रह रुपये मात्र

मुद्रक

जगदीशप्रसाद अग्रवाल, एम. ए.
दी एजुकेशनल प्रेस, सिटी स्टेशन रोड, आगरा–३

मुख्य वितरक—

एण्ड सस आगरा

आमुख

कृष्ण की लीलाभूमि मे जन्म लेने और वैष्णव परिवार मे पालित होने के कारण 'कृष्ण काव्य' के प्रति मेरी स्वाभाविक अभिरुचि थी। १९५४ ई० मे एम ए करने के बाद जब अनुसधान कार्य करने का सकल्प किया तब हिन्दी साहित्य के सर्वथा उपेक्षित अग 'अवधी में कृष्ण काव्य की परम्परा' विषय की ओर गुरुवर डा० सत्येन्द्र जी ने संकेत किया और साथ ही अवधी साहित्य के एक श्रेष्ठ (किन्तु अख्यातनाम) कवि लक्षदास के काव्य ग्रंथो का अनुशीलन करने की ओर मुझे प्रेरित किया। तदनन्तर प्रस्तावित योजना के अनुसार उन्होंने मुझे लक्षदास के जन्म-स्थान गुनीर ग्राम (फतेहपुर) जाकर कवि से सम्बन्धित अन्य वृत्त प्राप्त करने का आदेश दिया। मैने वहाँ जाकर प्राप्तव्य समस्त सामग्री का सकलन किया और वहाँ से प्राप्त सूचनाओ के अनुसार अन्य स्थानो—सचवारा (इलाहाबाद), गोरखपुर तथा वृन्दावन आदि—से भी लक्षदास जी से सम्बन्धित अन्य विवरण एकत्र किये।

लक्षदास जी की रचनाओ की हस्तलिखित प्रतियो को प्राप्त करने का कार्य सबसे पहले कैप्टन शूरवीरसिंहजी (तत्कालीन) जिला नियोजन अधिकारी, फतेहपुर ने किया और कवि के सम्बन्ध में प्राप्त हुए कतिपय विवरण को उन्होंने पत्रदूत तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित करके हिन्दी के विद्वानों को इससे अवगत कराया। मैंने इस प्रकार की विकीर्ण समस्त सामग्री को एकत्र करके आधेय विषय की रूपरेखा बनाई और विश्वविद्यालय मे स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करदी। तदनन्तर इस प्रकार के विशृंखल और अस्पष्ट योजना सूत्रो को ही आधार बनाकर मैने खेत मे से 'सिला' बीनने का कार्यारम्भ किया। इसके लिये मुझे अवधी क्षेत्र की कई बार यात्राएँ करनी पडी जिनमे अनेक कठिनाइयाँ आई। कभी-कभी समस्याओ ने ऐसी विषम परिस्थितियाँ पैदा करदी कि मै निराश हो गया, बीमार भी हुआ, फिर भी मैने हिम्मत न हारी। फतेहपुर की यात्राओ मे ठा० फौजदारसिंह, ए डी ओ. (प्रातीय रक्षक दल) ने कई बार मेरे साथ देहात मे घूम-घूम कर सामग्री सकलन मे बहुत सहायता की। पं० देवीरत्न अवस्थी 'करील' ने भी मेरा पर्याप्त मार्ग दर्शन किया, एतदर्थ मैं उनका बहुत आभारी हूँ।

अवधी कृष्णकाव्य की परंपरा के रूपात्मक विकास के अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तुत प्रबध बड़े महत्त्व का है। इसके प्रथम अध्याय का पूर्वार्द्ध तो पीठिका रूप मे है जिसके लिखने मे विद्वानो के जिन ग्रथों से सहायता ली गई है उनका यथास्थान उल्लेख किया गया है। उत्तरार्द्ध मे अवधी कृष्णकाव्य की परंपरा से सम्बन्धित समस्त कार्य सकलित सामग्री के आधार पर मैने तैयार किया है। यह नितात मौलिक प्रयत्न है। प्रस्तुत प्रबन्ध के उत्तरोत्तर विकास मे यह संकेत किया गया है कि व्रजभाषा कृष्णकाव्य में सर्वाधिक मिठास और रस-प्रवणता होने पर भी सामाजिक मर्यादा और विधि-निषेधों का ध्यान न रखने की बात खटकती है किन्तु अवधी कृष्णकाव्य के प्रणेता कवियो ने इस ओर बहुत ध्यान दिया है। सामाजिक शिष्टता और मर्यादा का न हो इस ओर ये कवि सदैव रहे हैं इसी भावना से प्रेरित

होकर अवधी कृष्ण काव्य में प्राय स्वकीया प्रेम की ही व्यजना की गई है। गार्हस्थ्य जीवन की पवित्रता को बनाये रखने और सामाजिक मर्यादा का उल्लघन न होने देने में इन कवियो ने अद्वितीय सफलता प्राप्त की है।

इस प्रबन्ध के आलोच्य कवियो की रचनाएँ अमुद्रित होने से जनसाधारण को अलभ्य है और कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों, साहित्यिक सस्थाओ, उनके सग्रहालयो एवं पुरातत्व विभाग आदि में सुरक्षित है। इन कवियो के वर्ण्य-विषय का सम्यक् विवेचन करने तथा अपने कथन की पुष्टि के लिए हमे इस प्रबन्ध के बीच तथा पादटिप्पणियो मे आवश्यकता से अधिक और लम्बे उद्धरण देने पड़े है जिनका उद्देश्य प्रबध के आकार को बढाना कदापि न समझना चाहिए। पादटिप्पणियो मे कहीं-कही उद्धरणो की पुनरावृत्ति करने मे हमारा उद्देश्य यही रहा है कि आलोच्य विषय विधिवत् स्पष्ट हो और एतद्विपयक कोई भ्रांति न हो। उद्धरणों के सम्बन्ध मे दूसरा निवेदन यह है कि प्राप्त प्रतियों मे रचना का जो रूप प्रतिलिपिकारो ने दिया है उसे उसी प्रकार के अपरिष्कृत रूप मे प्रस्तुत किया गया है और उसमे किसी भी प्रकार से सशोधन या परिवर्तन नही किया गया। इसी कारण उसमे गति-यति भग आदि दोष कहीं-कही स्पष्ट रूप से प्रकट है। जब तक इन रचनाओ की कुछ और प्रतियाँ प्राप्त नही होती और उनका सुसम्पादित मुद्रित संस्करण नही निकल जाता तब तक हमें इतने से ही सतोष करना पड़ेगा।

कवि लालचदास और लक्षदास की रचनाओ की हस्तलिखित पोथियो को प्राप्त कराके उनकी प्रतिलिपि कर लेने की सुविधा के लिये हम कैप्टन शूरवीर सिंह जी के बहुत आभारी हैं। शासकीय कार्यो मे व्यस्त रहते हुए भी अध्यवसाय और खोजी प्रवृत्ति उनकी विशेषता है। पं० देवीदत्त शुक्ल (भूतपूर्व सम्पादक 'सरस्वती') तथा गुरुवर डा० सत्येन्द्र के आशीर्वाद एवं दिशा निर्देश के अनुसार कार्य करने पर ही लक्षदास जी के जीवन सम्बन्धी अन्य सूत्रो का विवरण ज्ञात हो सका। ऐतिहासिक तथ्यो की प्रामाणिकता एव एतद्विपयक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझने में डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव एव डा० सत्यनरायन दुबे से पर्याप्त सहायता मिली है। वेदाताचार्य प० व्रजवल्लभ शरण, प० किशोरदास तथा डा० नारायण दत्त शर्मा ने निम्बार्क सम्प्रदाय के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री एवं सहायता देकर मेरा मार्ग प्रशस्त किया। डा० रामसुरेश त्रिपाठी, प्रो० रमानाथ त्रिपाठी, डा० शिवगोपाल मिश्र, बा० जय-नरायन कपूर, वकील (उन्नाव), श्री उदयशंकर शास्त्री प्रभृति विद्वानो ने हस्तलिखित पोथियो को दिखाकर या बताकर मेरा श्रम सार्थक करने मे सहायता दी है। प्रो० रमाकान्त चतुर्वेदी एव प्रो० जगन्नाथ तिवारी के आशीर्वाद से मै अपना सकल्प पूरा कर सका। अत. मैं इन सभी का हृदय से आभारी हूँ। पूज्य गुरुवर डा० भगवत्स्वरूप जी मिश्र ने अपनी अस्वस्थता के दिनों में भी मेरा निर्देशन किया और कठिनाइयो के कारण मेरे हतोत्साहित होने पर भी बार-बार 'आशा ज्योति' दिखाकर मुझे संभाले रखा है। उनके लिये 'धन्यवाद' जैसे शाब्दिक लोकाचार को व्यक्त करते हुए भी मुझे सकोच होता है, उनके लिये तो मेरे हृदय में अपार श्रद्धा एव आदर है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी, सम्मेलन पुस्तकालय एव संग्रहालय, प्रयाग सग्रहालय (पुरातत्व विभाग) आदि के अध्यक्षों ने मुझे पुस्तके एव पोथियाँ दिखाने की सुविधाएँ प्रदान कीं। चिरजीव पुस्तकालय आगरा मौरावाँ पुस्तकालय उन्नाव नेशनल लाइब्रेरी कल

काम दादू सस्कृत जयपुर आगरा

तथा नागरी

प्रचारिणी सभा आगरा, पुस्तकालय के अधिकारियो ने दुर्लभ ग्रथो को दिखाने की कृपा की। एतदर्थ मैं उन सबका अत्यत कृतज्ञ हूँ। भाई तोताराम जी 'पकज' एवं रमेश चन्द्र पाठक 'पद्मेश' प्रभृति अन्य भाइयो ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से मेरे मानसिक सतुलन को साधने मे बड़ी सहायता दी। उनकी इस कृपा को मै कैसे भुला सकता हूँ। 'सम्मेलन पत्रिका', 'उत्तर-भारती', 'साहित्य सदेश', 'सप्तसिधु' तथा 'श्रीसर्वेश्वर' के सम्पादको का भी मै अनुगृहीत हूँ क्योंकि उन्होने मेरे प्रबन्ध से सम्बन्धित लेखो को अपने पत्रो में स्थान दिया।

अन्त मे मै अपने विभागीय अधिकारी (स्व०) पं० पचमलाल जी चतुर्वेदी, जिला विद्यालय निरीक्षक को स्मरण करता हूँ जिनके आशीर्वाद एव आदेश से मैं अपने इस संकल्प को प्रारम्भ करने के लिये प्रवृत्त हुआ। श्री देवीदीन त्रिवेदी, शिक्षा उपनिदेशक तथा प्रिंसिपल श्री रामकुमार गुप्त का भी मै अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होने मेरा सकल्प पूरा करने के लिये स्वीकृति एव सहायता प्रदान की।

प्रस्तुत प्रबंध जिस तत्परता और श्रेष्ठता से मुद्रित किया गया है उसके लिए श्री जगदीशप्रसाद अग्रवाल, एम. ए. को भी 'डलिया भर कर' धन्यवाद देना चाहता था परन्तु उन्होने उसे स्वीकार करने से मना कर दिया है क्योकि ब्राह्मण का 'आशीर्वाद' ही उन्हे प्रिय है, धन्यवाद नही।

—मुरारिलाल शर्मा 'सुरस'

विषय-सूची

अध्याय १

काव्य का विकास तथा लक्षदास से पूर्व अवधी कृष्ण काव्य की परम्परा

संस्कृत में कृष्ण और राधा की कथा का ऐतिहासिक वृत्त। प्राकृत और अपभ्रंश मे कृष्णकाव्य—स्वयंभूदेव, पुष्पदंत, आचार्य हेमचन्द्र सूरि, मेरुतुंग, प्राकृत पैंगलम्। प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य की परंपराओ का सिंहावलोकन—साहित्यिक परंपराएं, छंद परंपरा, रस। ब्रजभाषा कृष्णकाव्य की पीठिका—जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति, नामदेव, नरसी मेहता; संत कवियो की रचनाएँ। आरम्भिक ब्रजभाषा मे कृष्णकाव्य की प्रवृत्तियां—साहित्यिक परंपराएँ। लक्षदास जी के समय तक ब्रजभाषा मे कृष्ण-काव्य की धारा। अवधी कृष्णकाव्य की पीठिका; अवधी कृष्णकाव्य पर ब्रजभाषा कृष्णकाव्य की धारा का प्रभाव, राम काव्य की धारा का कृष्ण-काव्य पर प्रभाव। अवधी कृष्णकाव्य का इतिहास—माधवी, लालचदास, आसानंद, भीम कवि, बलवीर, गोविंद दास। कृष्णकाव्य का सिंहावलोकन।

अध्याय २

दास जी का जीवन परिचय

अध्ययन की सामग्री—बहिर्साक्ष्य-भक्तमाल, मूलगोसाई चरित, भगतबिहार, गो० लक्षदास जी के सम्बन्ध में प्रचलित जनश्रुतियां। जनश्रुतियो मे प्रामाणिक तत्व। अंतर्साक्ष्य—समय, जन्मस्थान एवं निवास, पिता, जाति, नाम, जीवन वृत्तांत, वृद्धावस्था एवं अंतिम समय, स्वभाव, सम्प्रदाय, गुरु एवं ज्ञान शिष्य परम्परा।

भक्तवत्सलता, राधाकृष्ण की शोभा, प्रेम की अनन्यता, कवि की भक्ति भावना, नीति, मत महिमा, नाम महिमा, मर्यादा की रक्षा, आत्म-प्रबोध, दैन्य एव आत्म-कथन।

अध्याय ६

लक्षदास की कला एवं कृतित्व

(क) वात्सल्य और उसके अन्तर्गत भाव-विस्तार, सख्य-प्रेम मे भावानुभूति का विस्तार, शृगार और उसके अन्तर्गत भाव-विस्तार, निर्वेद और उसके अन्तर्गत भाव विस्तार, अलकार योजना; रस, छद।

(ख) पूर्ववर्ती एव समसामयिक कवियो और भक्तो की तुलना मे लक्षदास की प्रतिभा—व्रज के प्रमुख सम्प्रदायो में उपासना का स्वरूप और उसका लक्षदास जी की रचनाओ पर प्रभाव, राधा का परकीया-स्वकीया स्वरूप, हिंडोलना, फाग और वसत विहार, रासलीला; मान-विरह, निष्कर्ष।

अध्याय ७

ास की भाषा एवं शैली

भाषा—शब्द रूपान्तर एवं तद्भव शब्दों के प्रयोग, विदेशी शब्द, लोकोक्तिया एव मुहावरे। व्रज और अवधी की सीमाए, लक्षदास की रचनाओ मे व्रज और अवधी के प्रयोग—परसर्ग (कारक), सर्वनाम; व्यक्तिवाचक सर्वनाम—उत्तमपुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष; प्रश्नवाचक सर्वनाम, सम्बन्धवाचक सर्वनाम, अन्य सर्वनाम। सार्वनामिक विशेषण—प्रकारवाचक या सादृश्य वाचक विशेषण, परिमाणवाचक, सख्यावाचक विशेषण। व्रज और अवधी के अनुसार क्रियापद के प्रयोग, **काव्य-शैली**—कृष्ण की बाललीला तथा माधुर्य भाव की लीलाएँ, कृष्ण कथा से सम्बद्ध रचनाएँ, अन्य रचनाएँ। निष्कर्ष। लिपि शैली।

अध्याय ८

दास का सम्प्रदाय और उनका दर्शन

व्रज मे कृष्ण भक्ति के प्रेरक प्रमुख सम्प्रदाय और उनका दर्शन—निम्बार्क सम्प्रदाय, स्वामी हरिदास का सखी सम्प्रदाय, वल्लभ सम्प्रदाय, श्रीकृष्ण चैतन्य का गौड़ीय सम्प्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय। लक्षदास के समय की दार्शनिक परम्पराए, लक्षदास की दार्शनिक मान्यताए, निम्बार्क संप्रदाय मे ब्रह्म का स्वरूप, लक्षदास की रचनाओ मे ब्रह्म, जीव, जगत, माया। लक्षदास की का स्वरूप निकुज लीला एव नित्य विहार



अध्याय १

कृष्ण काव्य का विकास तथा लक्षदास से पूर्व अवधी कृष्ण काव्य की परम्परा

धर्म प्रधान देश भारत मे शिव, राम और कृष्ण के जिन रूपो की पूजा-अर्चना का विधान आज तक जन-समाज मे प्रचलित है वह हमारे लौकिक और पारलौकिक पक्ष के चिंतन पर आधारित रूप है। शिव तो आदि देवता के रूप मे आदिकाल से पूज्य हैं ही किन्तु विष्णु के अवतारी रूप राम और कृष्ण की पूजा-उपासना का विधान सभवत समाज के नैतिक स्तर को बनाये रखने तथा भक्ति के सगुण साकार रूप की प्रतिष्ठा के लिये हुआ। उपासना की इस परम्परा के उद्भव और विकास मे समाज को समय-समय पर नई प्रेरणाएँ एव नया उन्मेष प्राप्त हुआ है। भगवान् के अवतारी रूपो मे राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाकर पूज्य हुए ही किन्तु कृष्ण का चरित तो जन-जीवन की इकाई का ऐसा अभिन्न अंग बन गया कि वैदिक काल से आज तक उसके रूप मे निरन्तर विकास हुआ है और उसकी लोकप्रियता में भी अभिवृद्धि हुई है। कृष्ण और राधा की इस भावना का बीज वेदो, ब्राह्मणो और उपनिषदो से पल्लवित, पुष्पित होता हुआ तथा समाज की तात्कालिक परिस्थितियो के अनुरूप होकर भक्तिकाल के साहित्य मे सर्वाधिक विकास एव महत्व को प्राप्त हुआ। इन पक्तियो के द्वारा अवधी कृष्ण काव्य के विकास की पीठिका मे हम उसकी प्राचीन परम्पराओ का संक्षिप्त विवेचन करेगे।

सस्कृत में कृष्ण और राधा की कथा का ऐतिहासिक वृत्त

वेदो मे द्युलोक का अधिष्ठाता देवता आदित्य, मध्य लोक का इन्द्र और भूलोक का अग्नि को बताया गया है। आदित्य ने अपने प्रकाश तथा ताप से सृष्टि को जीवन दान दिया। ताप से वृष्टि होती थी जिससे जीवनदायिनी वस्तुएँ एव फल-फूल उत्पन्न होते थे और प्राणी जीवित रहते थे। इस प्रकार इन्द्र वृष्टि वनस्पति व्रजभूमि और जीवन की खाद्य सामग्री

का देवता 'गवानापति' हो गया।[1] कालांतर में विष्णु को सूर्य का रूप माना जाने लगा और सूर्य लोक से परे गोलोक में उसका निवास मान लिया गया। वेदों में उनका साम्य कहीं-कहीं इन्द्र से भी किया गया है किन्तु वेद के विष्णु महाकाव्यों के विष्णु नहीं है, उनकी महत्ता का प्रतिपादन और संरक्षण तथा व्याप्त होने की भावना का विकास तो हमारे आचार्यों एवं कवियों ने बाद में किया। धीरे-धीरे विष्णु का महत्व बढने लगा और इन्द्र को लोग भूल से गये।[2] कालान्तर में अन्य देवताओं की कथाएँ भी विष्णु से सम्बद्ध होने लगीं और विष्णु ही 'त्रिविक्रम- विश्वम' (भुवनस्य राजा) और गवानापति हो गए। सूर्य लोक के अतिरिक्त व्रजभूमि में भी उनकी गोमंडली स्वीकार की जाने लगी, वे व्रजभूमि के 'गोपति' हो गये।

ब्राह्मण ग्रंथों में विष्णु के रूप में परिवर्तन हुआ। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु को वामन के रूप में चित्रित किया गया है[3] और ऐतरेय ब्राह्मण में उन्हे देवताओं में सर्वश्रेष्ठ देवता स्वीकार कर लिया गया।[4] तैत्तरेय आरण्यक के समय तक विष्णु की पूजा होने लगी, बाद मे ये सब भावनाएँ एक देवता वासुदेव में मिल गईं जिसकी पूजा पाणिनी के समय (५०० ई० पूर्व) मे जन-साधारण में प्रचलित थी।[5] पतंजलि के भाष्य मे विष्णु और वासुदेव कृष्ण मे कोई अन्तर नही बताया गया। इससे स्पष्ट है कि पतंजलि के समय से पूर्व (१५० ई० पूर्व) ही विष्णु और वासुदेव कृष्ण के एक होने की भावना का पर्याप्त विकास हो चुका था।[6]

वासुदेव के साथ कृष्ण के नाम का संयोग ४ स्थानों पर मिलता है—(१) ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त के स्तोता आंगिरस नाम के एक ऋषि है जो सोमपान के लिये अश्विनीकुमारों का आह्वान करते है।[7] इन्हीं आंगिरस कृष्ण ने ऋग्वेद के अष्टम मंडल की रचना की थी। (२) ऋग्वेद में कृष्ण नाम के एक असुर का भी उल्लेख है। यह कृष्णासुर अंशुमती नदी के तटवर्ती विस्तृत गूढ़प्रदेश में भी विचरण करता था। उसका इन्द्र से युद्ध हुआ था। (३) छांदोग्य उपनिषद् में देवकी पुत्र आंगिरस कृष्ण के विषय मे कहा गया है कि उनके गुरु अंगिरस ने उन्हे ऐसा ज्ञान दिया कि उन्हे फिर कभी ज्ञान की पिपासा नही हुई तथा यज्ञ की ऐसी सरल रीति बताई जिसकी दक्षिणा थी तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य।[8] (४) जातकों की गाथा के भाष्यकार का मत है कि कृष्ण एक गोत्र का नाम है जिसका पूरा नाम है कार्ष्णायन। वासुदेव उसी गोत्र के क्षत्रिय थे, अतः वासुदेव कृष्ण कहलाए।[9]

---

[1] 'अस्मा अत्र मघवन गोमति व्रजे', 'यत्र गावो भूरि शृंगा अयासः'
'स्तोत्रं गवाना पते गिवाहो वीर यस्तते।—ऋग्वेद ५।६।८९,१२।
[2] शतपथ ब्राह्मण १।६।३-१०।
[3] वही २।५।१।
[4] विष्णु परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवता।—ऐतरेय ब्राह्मण १।१।
[5] गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर—के० एम० मुंशी, पृ० १२६-१२७।
[6] इंडियन एण्टीक्वेरी ३,१६—जे० आर० ए० एस० (१९०८) पृ० १७२।
[7] ऋग्वेद ८।८५।१-९।
[8] छांदोग्य उपनिषद् ३।१७।४-६।
[9] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास १९४८)—डा० रामकुमार वर्मा पृ० ७०६

पाश्चात्य विद्वान कृष्ण की ऐतिहासिकता में संदेह करते हैं और कृष्ण को केवल कवि प्रसूत कल्पना मानते हैं किन्तु भारतीय विद्वानों ने इस बात का खण्डन किया है और कृष्ण की ऐतिहासिकता प्रतिपादित करने के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।[1] छांदोग्य उपनिषद् में देवकी पुत्र कृष्ण के सम्बन्ध में जो विवरण मिलता है[2] वह महाभारत में वर्णित आंगिरस कृष्ण के वृत्त से मिलता जुलता है।[3] इसीलिये विद्वानों ने दोनों के एक होने का अनुमान किया है। वैदिक आंगिरस कृष्ण उपनिषद् के देवकी पुत्र आंगिरस कृष्ण ही हैं। परम ज्ञानी होने के साथ ही वे अहिंसावादी भी हैं। यह अनुमान भी निराधार नहीं है कि आंगिरस कृष्ण ही कदाचित् कृष्णासुर हैं। अहिंसावादी होने के कारण इन्द्र के साथ उनका वैर हुआ तथा इन्द्र ने उनकी सेना तथा सन्तानादि का संहार किया। कृष्ण ने इसीलिये अश्विनीकुमारों की स्तुति की। दूसरे, ये वैदिक कृष्ण ही संभवतः जातकों के वासुदेव कण्ह हैं। दोनों के दुखी होने के समान कारण में जो पौत्र और पुत्र का अंतर है वह मौखिक परम्परा में चलती हुई कथा में आ जाना सहज है। महाभारत के कृष्ण चरित में राजनीतिकता और पराक्रम के साथ ज्ञान एवं विद्वता जिन दो प्रकार के गुणों का वर्णन है उनमें पहला घटजातक के वासुदेव कण्ह और दूसरा उपनिषद् के देवकी पुत्र कृष्ण से साम्य रखता है।[4]

रामायण में विष्णु का कोई विशेष महत्व नहीं बताया गया, अन्य देवताओं की भाँति वे भी पुत्रेष्टि यज्ञ में अपना भाग लेते हैं किन्तु आगे चलकर रामायण में अनेक प्रक्षिप्तांश आ गये[5] जिनके आधार पर विष्णु को प्रधानता दी गई और वे सर्वश्रेष्ठ देवता घोषित किये जाने लगे और उनके आयुध भी उनके हाथ में आ गये।[6]

महाभारत में सामान्यतः कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है किन्तु कीथ के विचार में वे देवत्व की भावना से समन्वित हैं।[7] भगवद्गीता में इन्हें एकान्त ब्रह्म के रूप में स्वीकार करके ब्रह्म का साकार रूप मान लिया गया है।[8] गीता में साधना को तीन भागों

---

[1] कृष्ण चरित्र (हिन्दी संस्करण) —बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, नवां परिच्छेद।
[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (१९४८), पृ० ७१०।
[3] छांदोग्य उपनिषद् ३।१७।४-६।
[4] महाभारत सभापर्व ४१।१९।२२-२४।
[5] हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ७, अंक १, पृ० ६ डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा का लेख —'वासुदेव कृष्ण'।
[6] इंडियन एंटीक्विटी—लासन, भाग १, पृ० ४८८।
शंख चक्र गदापाणि पीत वस्त्र जगत्पति।—१।१४।२।
[7] जर्नल आव द रायल एशियेटिक सोसाइटी (१९१५), पृ० ५४८।
[8] यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥—श्रीमद्भगवद्गीता ९।६.
ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥—वही, ९।१५.
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायण॥—वही, ९।३४
कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सत् ... यत्॥—वही ११ ३७

में विभाजित किया गया है—ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग। भक्ति मार्ग के विकास ने कृष्ण के रूप का और भी अधिक स्पष्टीकरण किया और परमात्मोपासना का पूर्वकल्पित रूप अब एक प्रकार की भावना भक्ति में परिणत हो गया।[१] डॉ० भण्डारकर का विचार है कि गीता की रचना गौतम बुद्ध के बाद हुई।[२]

गीता में वासुदेव की गिनती वृष्णियों में हुई है। महाभारत में वृष्ण-वंश को यादव या सात्वत भी कहा गया है। सात्वत वंश के वासुदेव नाम के एक महान व्यक्ति ने ईश्वर की एकात्मकता का प्रचार किया किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनके अनुयायी सात्वतों ने उन्हीं की पूजा भगवान् वासुदेव के रूप में प्रारम्भ कर दी। बाद में महाभारत में भी वासुदेव और कृष्ण की एकता को प्रतिपादित करने का यत्न किया गया। पाञ्चरात्र धर्म महाभारत के नारायणीय खण्ड से गीता की भक्ति के पश्चात् विकसित हुआ।[३] नारायणीय में अवतार की भावना का अत्यधिक विस्तार है। इसमें अन्य अवतारों के साथ कंस-वध के निमित्त वासुदेव का अवतार तो निर्दिष्ट किया गया है किन्तु गोकुल में असुर-वध का या गोपाल कृष्ण के व्यक्तित्व का कोई उल्लेख नहीं है। गोपाल कृष्ण के व्यक्तित्व का निर्माण हरिवंश पुराण, वायु पुराण और भागवत पुराण में हुआ है। गोपाल कृष्ण की कथाएँ इन पुराणों की रचना के पूर्व अवश्य प्रचलित रही होंगी तभी तो वे बाद में लिपिबद्ध हुईं।[४]

महाभारत और पुराणों में कृष्ण-वासुदेव नाम के सम्बन्ध में कई उल्लेख मिलते हैं जिनके आधार पर यह निर्णय करना कठिन-सा है कि कृष्ण ही वासुदेव थे। महाभारत में स्पष्ट रूप से कृष्ण और वासुदेव की भिन्नता के कथन न होने पर भी इस बात का यत्न बराबर दृष्टिगोचर होता है कि कृष्ण ही वासुदेव हैं। शान्ति पर्व में नारायणीय धर्म की उपासना का विधान बताते समय वासुदेव को ही उपास्यदेव और नारायण की आदि मूर्ति, अज, अविनाशी, सनातन, और निर्गुण परमात्मा बतलाया गया है।[५] विष्णु तथा भागवत आदि पुराणों में भी महाभारत की भाँति वासुदेव की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है जिसमें अनेक स्थलों पर कृष्ण का संकेत भी नहीं है। हरिवंश में वासुदेव नाम धारण करने वाले अन्य राजाओं का पराभव उन्मूलन करके कृष्ण के एकमात्र वासुदेवत्व की प्रतिष्ठा की गई है।[६]

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥ – वही, ११।३८।
पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥—वही, ११।४३

१ भक्तिकल्ट इन एंशियेण्ट इण्डिया, डॉ० बी० के० गोस्वामी, पृ० ८०-८२।

२ वैष्णविज्म, शैविज्म, एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स, पृ० ३५।

३ रेशियल सिंथीसिया आव हिन्दू कल्चर विश्वनाथ, पृ० २००।

४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १९४८ ई०, पृ० ७०८।

५ महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ३४०, ४०-७२।

६ लोकेऽस्मिन् वासुदेवोऽहं भविष्यामिहते त्वयि।
हते मयि त्वमप्येको वासुदेवो भविष्यसि ॥ —हरिवंश, विष्णु-पर्व ४४।२२
ततः सुदर्शनं चक्रं पुनरायाद् गुरौ करे।
चक्रेणोरसि निर्भिन्नः स गतासुर्गतोत्सव-।
पपात हरिवंश विष्णु-पर्व ४४ २९

हरिवंश मे कई स्थलो पर कृष्ण के द्वितीय वासुदेव होने का भी सकेत है ।[1] जिससे यह स्पष्ट अनुमान होता है कि प्राचीन परम्परा के अनुसार वासुदेव पूज्य देवता थे किन्तु परवर्ती काल मे कृष्ण का वासुदेव से सम्बन्ध स्थापित कर दिया गया । पुराणकाल मे इसी बात की बार-बार आवृत्ति की गई जिसके कारण यह विचार बद्धमूल हो गया कि कृष्ण ही वासुदेव है । धीरे-धीरे प्राचीन काल के पूज्य वासुदेव के अस्तित्व को लोग भूलने लगे और कृष्ण को ही वासुदेव के रूप मे अगीकार कर लिया गया ।

वैदिक कर्मकाण्ड युग मे हिसा का विरोध करके अहिसा का प्रचार करने के उद्देश्य से तथा आत्मचितन के द्वारा भक्ति-मार्ग मे श्रद्धा एव उपासना का विकसित रूप देने के लिए सात्वत धर्म का श्रीगणेश हुआ था । बौद्ध एव जैन मत निरीश्वरवादी थे किन्तु सुधारवादी सम्प्रदाय होने से इनका प्रचार बढ गया । पाचरात्र धर्म ने भी इन सुधारो को एक नवीन सुगठित रूप देकर (ईसा से ५०० वर्ष पूर्व) अपनाया ।[2] इस प्रकार सात्वत धर्म अन्य कई विशिष्ट धार्मिक विचारो के साथ समन्वित होकर वैष्णव धर्म बन गया ।[3]

वस्तुत गोपाल कृष्ण की भावना का विकास हरिवंश पुराण मे हुआ है । ३८०८ वे श्लोक मे कृष्ण ने अपने आपको 'पशुपालक' बताकर अपना वैभव गोधन को स्वीकार किया है । ३५३२ वे श्लोक मे श्रीकृष्ण की गोवर्द्धन पूजा और उनके व्रज और वृन्दावन निवास का पता चलता है । इस प्रकार श्रीकृष्ण की गोवर्द्धन पूजा और व्रज निवास मे एक ऐतिहासिक सामग्री मिलती है ।[4]

वासुदेव कृष्ण के साथ विष्णु नारायण की भावना तो पतजलि के समय के पूर्व ही मिल चुकी थी,[5] किन्तु गोपाल की भावना सभवत ईसा की पहली और तीसरी शताब्दी के बीच आभीरो के देवता गोपाल कृष्ण के कारण आई । डा० भण्डारकर का कथन है कि आभीर जाति का कृष्ण शब्द, सम्भवत पश्चिम के 'क्राइस्ट' शब्द से उद्भूत हुआ है,[6] किन्तु अन्य विद्वान इस मत से सहमत नही है ।[7] आभीर एक शक्तिशाली जाति थी जिसका अधिकार

वासुदेवेति मा त ब्रूत नु गोप यदूत्तमम् ।
एकोऽह वासुदेवो हि हत्वा त गोपदारकम् ॥ —हरिवश, भविष्यपर्व ९१।१४ ।
विष्णु. कृष्णस्तथा शार्ङ्गीनित्ययुक्त सदा हरि ।
जघान तेन गोविन्द पौण्ड्रक नृपसत्तमम् ॥ —वही, १०१।२३ ।
एवमेषोऽवतीर्णो वै पृथिवी पृथिवीपते ।
विष्णुर्यदुकुलश्रेष्ठो वासुदेवेति विश्रुत. ॥
एतैश्च कारणै श्रीमान् वसुदेवकुले प्रभु. ।
जातौवृष्णिषु देवक्या यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ —हरिवश-विष्णुपर्व १२८।२३-२४

[1] हरिवंश पुराण, विष्णु पर्व, २२।६० ।
[2] एनसाइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग १२, पृ० ५७१ ।
[3] वैष्णव धर्म परशुराम चतुर्वेदी, १९५३, पृ० ४१ ।
[4] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १९४८, पृ० ७१० ।
[5] रिलीजस क्वैस्ट आव इण्डिया, पृ० ३९ ।
[6] वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स पृ० ३७ ।
[7] सूर और उनका साहित्य डा० शर्मा १९५४ पृ० १९२

समूचे राजस्थान पर हो गया था, यह समुद्रगुप्त के प्रयाग वाले स्तम्भ से भी स्पष्ट है।[१] इस जाति में ईश्वरसेन नाम का एक बड़ा भारी राजा हुआ जिसका एक शिलालेख नासिक में प्राप्त हुआ है।[२] जिनके विवरण से ज्ञात होता है कि वह गोपाल कृष्ण का उपासक था। इन्हीं आभीरों ने अपने महत्व से 'गोपाल कृष्ण' को 'वासुदेव कृष्ण' से सम्बद्ध कर दिया। इस प्रकार महाभारत में वर्णित वासुदेव कृष्ण ब्रह्म के अवतार ही नहीं रहे, वे 'गोपाल कृष्ण' में रूपान्तरित भी हो गए और गोपाल कृष्ण की लीलाएँ वासुदेव कृष्ण की लीलाएँ बन गईं। इसी का परिणाम यह हुआ कि नारद पांचरात्र की 'ज्ञानामृत सार संहिता' में कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन किया गया। डा० भण्डारकर ने 'ज्ञानामृत सार संहिता' का रचना-काल ईसा की चौथी शताब्दी के बाद ही निर्धारित किया है।[३] सम्भवतः इसी का परिणाम यह हुआ कि पुराणों में गोपाल कृष्ण की रास-लीला आदि के वर्णन का विस्तार हुआ और परवर्ती काव्य में दान-लीला तथा मान-लीला आदि के प्रसंगों को प्रश्रय दिया गया।

दक्षिण भारत में कृष्ण भक्ति और पांचरात्र धर्म ईसा की पहली शताब्दी पूर्व ही पहुँच गये थे। इसीलिए तामिल कवियों ने अपने काव्य में पांचरात्र पूजा का विधान तथा कृष्ण की बाल लीलाओं का सूक्ष्म वर्णन किया है। इन कवियों का समय भी ईसा की प्रथम शताब्दी का है।[४] इसके अतिरिक्त दक्षिण में पल्लव राजाओं के शिलालेखों से भी यह स्पष्ट है कि उस काल में भागवत धर्म पर्याप्त प्रचलित एवं सम्मानित था।[५] आठवीं शताब्दी में यह धर्म शंकर के अद्वैत के सम्पर्क में आया। अपनी भक्ति के आदर्श के कारण इसे शंकर के मायावाद से संघर्ष लेना पड़ा। नवीं शताब्दी के आलवार संतों की कविताओं से प्रभावित होकर ११वीं शती के रामानुज ने भागवत धर्म को दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुकूल प्रचारित किया। इस प्रकार आठवीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी तक दक्षिण ही धर्म-सुधार का प्रमुख केन्द्र रहा। वैष्णव और शैव सभी भक्तों ने भक्ति का प्रचार किया और आचार्यों ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके भक्ति पद्धति का रूप स्थिर किया। इस प्रकार इन आचार्यों से भक्ति की लहर समस्त भारत में फैल गई।

जब आठवीं शताब्दी में राजनीतिक और धार्मिक उथल-पुथल हो रही थी, शैव और वैष्णव आचार्यों ने मिलकर बौद्ध और जैन धर्मों का डट कर विरोध किया और उन्होंने तद्देशीय भाषा में नास्तिक धर्म (बौद्ध और जैन धर्म) के विरोध में अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। डा० ताराचन्द्र का विचार है कि हिन्दू धर्म का जो स्वरूप इस समय स्थिर हुआ, उसका बहुत कुछ श्रेय बौद्ध और जैन धर्म को ही है। इसी के परिणामस्वरूप तामिल-नाड के आडियार और आलवार संतों ने ७वीं से १२वीं शती के समय में अपने विचारों को पौराणिक आख्यानों के साथ समन्वयात्मक रूप दिया।[६]

---

[१] हिन्दी साहित्य की भूमिका : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २४।
[२] कल्याण, श्रीकृष्णांक, श्रावण १९८८ में श्रीकृष्णावतार शीर्षक लेख।
[३] वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स : डा० भण्डारकर, पृ० ४१।
[४] अर्ली हिस्ट्री आव वैष्णविज्म इन साउथ इण्डिया : कृष्णास्वामी आयंगर, पृ० ६०।
[५] आर्क्योलोजीकल सर्वे आव इण्डिया कनिंघम जिल्द १ प्लेट १७ व ३०
[६] इनफ्लुएंस आव इस्लाम आन इंडियन कल्चर पृ० ८६-८७

पाचरात्र धर्म और भागवत धर्म के विकास के साथ नारद पाचरात्र मे भक्ति को परम प्रेम-स्वरूपा बतलाया गया और शांडिल्य ने उसे ईश्वरोन्मुखी अनुराग की सज्ञा दी। (भक्ति परानुरक्तिरीश्वरे)। कालातर मे प्रेम-भक्ति का प्राधान्य हो जाने और 'गोपाल' की भावना के विकास का यह फल हुआ कि 'राधानापति' की भावना का अर्थ 'आराधना' के स्थान पर 'श्रीलक्ष्मी' लिया जाने लगा।[1] बाद मे जब विष्णु और कृष्ण की भावना का एकीकरण हुआ तो राधा को शक्ति का अवतार स्वीकार किया गया और ब्रजभूमि तथा गोमण्डली का सम्बन्ध विष्णु पूजा मे हो गया।[2]

हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के काव्य मे राधा के जिस स्वरूप का विवेचन मिलता है वह मुख्यतः भागवत के परवर्ती पौराणिक साहित्य की ही देन है क्योंकि महाभारत मे कृष्ण के जीवन चित्रण के साथ राधा का कोई उल्लेख नही है और न कृष्ण के गोप-जीवन की कथाओ का ही निर्देश है। भागवत मे कृष्ण के बाल-जीवन का विस्तृत वर्णन है और गोपियो का भी निर्देश है, किन्तु राधा का नही। कृष्ण के साथ एकान्त मे विचरण करने वाली एक गोपी का विवरण दिया गया है परन्तु उसका नाम नही दिया। ब्रह्मवैवर्त पुराण मे राधा कृष्ण के राजेश्वर्यस्वरूप का वर्णन किया गया है और राधा-कृष्ण की लीलाओ का विस्तार से वर्णन किया गया है। दक्षिण के आचार्यो —विष्णु स्वामी और निम्बार्क —ने गोपाल कृष्ण और राधा को भक्ति मे प्रधानता दी। रुक्मिणी और लक्ष्मी की अपेक्षा राधा को महत्त्व दिया गया, क्योंकि उसे 'प्रेमस्वरूप' बताया गया। आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' और 'लीलाशुक' के 'कृष्णकर्णामृत' मे भी राधा का चरित्र प्रकित किया गया।

१२वी शताब्दी मे भी राधा-कृष्ण सम्बन्धी काव्य एव नाटक पर्याप्त मात्रा मे लिखे जाने लगे थे।[3] प्रारम्भ मे 'गाहासत्तसई' मे उसकी प्रकृति नितान्त शृगारिक थी जो कि उत्तरोत्तर धार्मिक होते-होते १२वी शताब्दी तक और अधिक भक्ति भाव समन्वित हो गई।[4] तेरहवी और चौदहवी शताब्दी ई० मे बापदेव की 'हरि लीला' तथा वेदान्तदेशिक की 'यादवाभ्युदय' रचनाए मिलती है। १५वी शताब्दी ईसवी मे ब्रजविहारी (श्रीधर स्वामी), गोपलीला (रामचन्द्र भट्ट) हरिचरित काव्य (चतुर्भुज), हरि विलास काव्य (ब्रज लोलिम्बराज), गोपाल चरित (पद्मनाभ), मुरारिविजय नाटक (कृष्ण भट्ट) और कस निधन महा-काव्य (श्रीराम) लिखे गये।[5] १६वीं शती में गोडीय वैष्णव विद्वान रूपगोस्वामी ने 'पद्यावली' मे अनेक पूर्ववर्ती सस्कृत कवियो की कृष्णलीला सम्बन्धी कविताओ का सकलन किया था, जिससे स्पष्ट है कि राधा-कृष्ण सम्बन्धी काव्य उत्तरोत्तर लिखे जा रहे थे।

कृष्ण और राधा के इस विकास का यह परिणाम हुआ कि भक्ति-सम्प्रदायो के कवियो ने राधा और कृष्ण का विविध रूपो मे वर्णन किया जिसका ब्रजभाषा और अवधी के साहित्य पर भी प्रभाव पडा। अत इन सम्प्रदायो मे वर्णित राधा-कृष्ण के स्वरूप का हम सक्षेप मे वर्णन करेंगे।

---

[1] भक्ति कल्ट इन एंशिएण्ट इंडिया : डा० बी० के० गोस्वामी, पृ० ४०५-४०६।

[2] वही।

[3] राधा का क्रम विकास : डा० शशिभूषणदास गुप्त, पृ० १२३।

[4] हिन्दी साहित्य : सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ३३६।

[5] हिस्ट्री आव ब्रजबुलि लिटरेचर सुकुमार सेन पृ० ४८५

विष्णुस्वामी पञ्चाचार्य के मतानुयायी माने जाते हैं। इन्होंने कृष्ण को अपना आराध्य माना है, पर साथ ही राधा को भी भक्ति में प्रधान स्थान दिया। निम्बार्क स्वामी राधा-कृष्ण के उपासक और द्वैताद्वैत के प्रवर्त्तक कहे जाते हैं। प्रारम्भ में वे रामानुज से विशेष प्रभावित थे किन्तु बाद में उन्होंने भेदाभेद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके वैष्णव धर्म की पुष्टि की। निम्बार्क के अनुसार राधा कृष्ण की अनन्यसगिनी है जो उन्ही के साथ गोलोक में नित्य निवास करती है। वह प्रेमस्वरूपा है जो अपनी आठ प्रधान सखियों के साथ (ये आठ सखियाँ आठ रसों की प्रतीक हैं) कृष्ण की ही भाँति अवतरित होती है। इस प्रकार निम्बार्क ने माधुर्य का पुट देकर कृष्ण की भक्ति को जन-साधारण के लिये भी आकर्षक बना दिया। कालान्तर में मधुरा भक्ति के प्रकार का यह फल हुआ कि राधा कृष्ण सम्बन्धी साहित्य में नायक-नायिका भेद के लिये स्थान निकल आया। गीतगोविन्द में राधा-कृष्ण की विलास लीलाओं का वर्णन किया गया है। कुछ विद्वानों की राय में गीतगोविन्द के प्रणेता जयदेव निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी थे।[1]

१४वीं शती में रामानन्द ने रामानुजाचार्य के श्री सम्प्रदाय को बहुत ही व्यापक और लोकप्रिय रूप दिया। कर्मकाण्ड के स्थान पर भक्ति को प्रधानता दी गई और भक्ति के क्षेत्र में जाति भेद का बहिष्कार किया गया। उन्होंने अपने विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिये देववाणी के स्थान पर जनभाषा का प्रयोग किया। उन्होंने राम और सीता की मर्यादा-पूर्ण भक्ति का प्रचार करके वैष्णव धर्म को प्रश्रय दिया। इसी परम्परा में कबीर और तुलसीदास हुए।

द्वैताद्वैत के प्रवर्त्तक निम्बार्क की परम्परा से प्रभावित होकर १६वीं शताब्दी में चैतन्य ने अपनी भक्ति में राधा को प्रमुख स्थान दिया और जयदेव, चण्डीदास तथा विद्यापति के पद-गायन के साथ संकीर्तन और नृत्य को प्रधानता दी। हितहरिवंश ने राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा को प्रधानता देकर कृष्ण को भी उपास्य माना। स्वामी हरिदास ने सखी सम्प्रदाय (टट्टी सम्प्रदाय) के द्वारा राधा-कृष्ण की उपासना सखी भाव से की तथा निकुंज लीला का वर्णन किया। इन सम्प्रदायों के काव्य तथा सम्प्रदाय की मान्यताओं का पृथक् में उल्लेख किया जायगा।

विष्णुस्वामी की उच्छिन्न गद्दी पर आरूढ होकर वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। उन्होंने ब्रह्म को सत्, चित् और आनन्द के रूप में सर्वव्यापक माना। उनका विचार था कि कृष्ण के (ब्रह्म) प्रति भक्ति की अनुभूति उन्ही के अनुग्रह से होती है। वल्लभाचार्य ने इस अनुग्रह को पुष्टि के नाम से पुकारा और शुद्ध पुष्टि को ही अपने सम्प्रदाय का चरम लक्ष्य माना। सूरदास आदि अष्टछाप के कवि इसी पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे।

प्राकृत और अपभ्रंश में कृष्ण काव्य

प्राकृत साहित्य में कृष्ण काव्य की धारा का विकास उतनी तेजी से नहीं हुआ जैसा संस्कृत में था। इसका कारण यह हो सकता है कि जैन धर्म और बौद्ध धर्म ब्राह्मण धर्म के

---

1. बलदेव उपाध्याय २०१० वि० पृ० ३४६

विरोध में प्रादुर्भूत हुए थे। बौद्ध धर्म तो निरीश्वरवादी था किन्तु जैन धर्म पौराणिक साहित्य के कारण ब्राह्मण धर्म के निकट था और कुछ अंश में उससे प्रभावित भी हुआ था। तत्कालीन परिस्थितियों के कारण जैन और बौद्ध धर्म साधारण लोक समाज से सीधा सम्पर्क स्थापित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने लोक-जीवन को अपना आधार बनाया और अपने सैद्धान्तिक तथा सिद्धान्तेतर साहित्य को जनता की बोली में ही लिखा। प्राकृत में प्रबन्ध काव्यों की परम्परा में काव्यों के ढंग पर विमलदेव सूरि कृत 'पउमचरिय' (पद्मचरित) प्रबन्ध काव्य मिलता है जिसकी शैली पौराणिक सरलता का परिचय देती है। प्राकृत साहित्य की इसी परम्परा ने अपभ्रंश में स्वयम्भू की रामायण, हरिवंश पुराण तथा पुष्पदंत के महापुराण एवं अन्य जैन कवियों के धार्मिक चरित काव्यों एवं पुराण काव्यों की उद्भावना की पृष्ठभूमि तैयार की।[1] अपभ्रंश के इस जैन प्रबन्ध साहित्य में रामायण और महाभारत की कथा का वर्णन आवश्यक परिवर्तनों के साथ किया गया।

स्वयम्भूदेव—जैन कवियों में अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भूदेव (समय विक्रम की ८वीं शती) का नाम सर्वप्रथम आता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ पउमचरिय (पद्मचरित्र-जैन रामायण) में राम कथा तथा हरिवंश पुराण में महाभारत तथा कृष्ण की कथा को विषय वस्तु का आधार बनाया। इन रचनाओं में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों तथा उनकी रचनाओं का संकेत किया है।

'पउम चरिय' तथा 'हरिवंश पुराण' में कवि ने संस्कृत की काव्य परम्परा का अनुसरण किया है। स्वयम्भू की उपमाएं अधिकतर परम्पराभुक्त हैं। 'पउम चरिउ' में कवि ने राम को मानवी रूप में चित्रित किया है और उन्हें मनुष्य के चरित्र की दुर्बलताओं से युक्त बताया है। 'पउमचरिय' में कई स्थल— राम वन गमन, लक्ष्मण मूर्च्छा आदि—करुण रस से आप्लावित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ सरस शृंगारी चित्र भी दिये गये हैं। इस ग्रन्थ में स्वयम्भू रचित अंग काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।

स्वयम्भू की दूसरी कृति 'रिट्ठणेमि चरिउ' (अरिष्टनेमि चरित या हरिवंश पुराण) है।[2] इसमें महाभारत और कृष्ण से सम्बद्ध कथा है। वे इस ग्रन्थ को लिखते समय बड़े भोलेपन से कहते हैं कि क्या करूं? हरिवंश महार्णव कैसे तरूं? वे गुरु वचनों के आश्रय पर ही रचना करने का साहस करते हैं—

चिंतवइ स्वयंभू काइं करम्मि, हरिवंश महण्णउ के तरम्मि।
गुरु वयण तरंडउ लद्धु णवि-जम्महो विण जोइउ कोवि कवि॥

पुष्पदंत—कृष्णकाव्य के प्रणेताओं की परम्परा में स्वयम्भू के बाद महाकवि पुष्पदंत हुए। उन्होंने 'तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकारु' (त्रिषष्ठि महापुरुष गुणालंकार) ग्रन्थ लिखा।

---

[1] हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, २०१४ वि०, पृ० ३०६।

[2] 'रिट्ठणेमि चरिउ' की कुछ ऐसी प्रतियाँ भी उपलब्ध हुई हैं जिनमें मुनि जसकित्ति का भी कुछ हाथ है किन्तु निश्चित प्रमाणों के अभाव में उसके परिमाण का अनुमान करना कठिन है। मुनि जसकित्ति का समय ग्रन्थकर्ता के ६–७ सौ वर्ष बाद का है। इसके अतिरिक्त जसकित्ति के खुद के बनाये 'हरिवंश पुराण' का भी प्रेमी जी ने उल्लेख किया है। देखिए जैन साहित्य का इतिहास नाथूराम प्रेमी १९४२ ई० पृ० ३७९ ३८०

इसी को 'महापुराण' भी कहते है। इस ग्रंथ के दो खण्ड है—आदि पुराण और उत्तर पुराण। इस समस्त काव्य मे ६३ महापुरुषो के चरित्र का वर्णन किया गया है। ऋषभदेव के महानिर्वाण के साथ 'आदि पुराण' वाला भाग समाप्त होता है। उत्तर पुराण की प्रारम्भिक ११ सन्धियो मे राम कथा और १२ सन्धियो मे कृष्ण-कथा का विवरण दिया गया है।

कृष्ण चरित्र के वर्णन मे पुष्पदन्त जिनसेन के हरिवंश पुराण की परम्परा मे प्रभावित है। कवि ने राम-कथा की अपेक्षा कृष्ण-कथा के वर्णन मे उन्मुक्त कल्पना को प्रश्रय दिया है। इस ग्रन्थ मे वर्णित कथावस्तु मे कृष्ण भक्ति के निश्चित रूप का पता नही चलता किन्तु यह प्रतीत होता है कि कृष्ण भक्ति से सम्बन्धित घटनाएँ भागवत के आधार पर लिखी गई है। गोपियो के साथ कृष्ण का विहार (उत्तर पुराण, पृ० ६४-६५) पूतना लीला (उ० पु० ६), ऊखल बंधन, गोवर्द्धन धारण तथा कालिय दमन आदि की घटनाएँ भागवत की कथा मे पूर्ण साम्य रखती है। कवि ने कृष्ण के लिए गोपाल, मुरारि, मधुसूदन, हरि प्रभु आदि सम्बोधन प्रयुक्त किये है। रास वर्णन मे भी गोपियो की उत्सुकता, प्रेम-विह्वलता तथा उनके क्रिया-कलापो का विवरण भागवत की ही भाँति किया गया है।

धूली धूसरेण वर मुक्क सरेण तिणा मुरारिणा
कीला रस वसेन गोवालय गोवी हियय हारिणा
मदीरउ तोडिवि आवट्टिउ, अद्ध विरोलिउ दहउ पलोट्टिउ
काव कोवी गोविन्दउ लग्गी, एण महारी मंथानि भग्गी
एयहि मोल्ले देहु आलिंगणु, णतोभा मेलहु में प्रगण
काँहि वि गोविहि पडरु चेलउ, हरि तणु छाइहि जायउ कालउ ।।*

(उत्तर पुराण, पृ० ६४)

धूल धूसरित कृष्ण क्रीडा रस मे गोपियो को वशीभूत कर लेते है। कोई-कोई गोपी आधे बिलोये हुए दही को छोडकर वैसे ही भागी, किसी की मथानी टूट गई। एक कहती है तुमने हमारी मथानी तोड डाली उसका मूल्य चुकाने के लिए एक आलिंगन दो नही तो मै अपने आँगन मे न आने दूँगी। एक गोपी की पाण्डुर रंग की चोली कृष्ण की छाया मे काली हो गई।

बाललीला और रासलीला का इसी प्रकार का विवरण परवर्ती काल मे ब्रजभाषा तथा अवधी के कवियों में दिखाई दिया।

पुष्पदन्त ने अपने काव्य मे संस्कृत काव्यों की परम्परानुसार अलंकारों का सुन्दर वर्णन किया है। विचारणीय है कि पुष्पदंत का यह 'कृष्ण चरित' वर्णन जयदेव के २०० वर्ष पूर्व लिखा गया। इससे स्पष्ट है कि ११वी शताब्दी तक कृष्ण का जीवन चरित जैन कवियो के लिए भी प्रेरणा एवं अध्ययन का विषय बन गया था किन्तु दृष्टव्य है कि इन काव्यों मे कृष्ण को भगवान के रूप मे चित्रित न करके एक महापुरुष के रूप मे ही दिखाया गया। इतना ही नही- प्रद्युम्न-चरित काव्यों में तो कहीं-कही उनकी दुर्गति भी दिखायी गई है।

आचार्य हेमचन्द्र सूरि—जैन कवियो मे सर्वाधिक प्रसिद्ध साहित्यकार श्री हेमचन्द्र सूरि है (समय सं० ११४५-१२२९)। इनका बचपन का नाम चंगदेव था किन्तु पीछे हेमचन्द्र हुआ

हेमचन्द्र ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश का एक साथ प्रयोग करके अपने भाषा ज्ञान का परिचय दिया। हेमचन्द्र के संकलित दोहों में पूर्ववर्ती कवियों तथा लोकगीतों की सुन्दर रचनाएँ हैं। उन्होंने अपनी रचना के अवतरण में कृष्ण-कथा, राम-कथा, वीर रस, आदि का सम्यक् वर्णन किया है। उनके संकलित दोहों में दो दोहे ऐसे हैं जिनमें कृष्ण की चर्चा की गई है। इन्हें देखकर यह अनुमान होता है कि ये दोहे किसी पूर्ण काव्य ग्रंथ के अंग मात्र हैं। निम्नांकित दोहे में कृष्ण और राधा के प्रेम की ओर संकेत किया गया है—

'हरि नच्चाविउ पंगणहि विम्हइ पाडिउ लोउ। एम्वइ राहपओहरह जं भावइ तं होउ।'

'हरि को प्रांगण में नचाने वाले तथा लोगों को विस्मय में डालने वाले राधा के पयोधरों को जो भावे सो हो।'

इस दोहे में राधा और कृष्ण के प्रेम का संकेत तो मिलता है किन्तु भक्ति और प्रेम के सन्निवेश का स्पष्ट उल्लेख नहीं हुआ। एक दूसरे दोहे में नारायण और बलि की कथा की ओर संकेत किया गया है किन्तु भक्ति के मूल भावों का निदर्शन इसमें नहीं हुआ।

मेरुतुंग—मेरुतुंग का आविर्भाव काल सं० १३६० के लगभग है। इन्होंने 'प्रबन्ध चिंतामणि' नामक ग्रंथ में ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा राजाओं के चरित्रों का कथा रूप में संकलन किया। इस ग्रंथ की रचना सं० १३६१ वि० में हुई। 'प्रबन्ध चिंतामणि' में एक ऐसा दोहा मिलता है जिसमें राजा बलि को लक्ष्य करके एक अन्योक्ति कही गई है—

'अम्हणिओ सन्देसडो तारय कण्ह कहिज्ज।
जग दालिद्दिहि डुब्बिउ बल बंधणह मुहिज्ज॥'

'मेरा संदेश उस तारक कृष्ण से कहना। सारा संसार दारिद्र्य में डूब रहा है अब तो बलि को बन्धन-मुक्त कर दीजिये।' इस दोहे का 'तारक' शब्द कृष्ण के प्रति परमात्म बुद्धि का परिचायक है।

प्राकृत-पैंगलम्—इस ग्रन्थ के रचयिता का नाम अद्यावधि अज्ञात है। विद्वानों की राय में इस ग्रंथ का संकलन १४वीं शती के उत्तरार्ध में हुआ किन्तु डा० चाटुर्ज्या इसे १५वीं शती के अंत की रचना मानते हैं।[1] इस ग्रंथ में शौरसेनी अवहट्ठ या पूर्वी राजस्थानी, ब्रज-भाषा तथा खड़ी बोली के आदि रूप मिलते हैं। इसमें शिव, कृष्ण, राम और विष्णु की स्तुतिपरक रचनाएँ हैं जिनमें भगवान् की भक्तवत्सलता बताकर उनके महत्व का निदर्शन किया गया है। इन संकलित पदों में कृष्ण का परमात्मा के रूप में चित्रित करते हुए गोपी या राधा के साथ उनके प्रेम का वर्णन किया गया है। इस प्रकार भौतिक धरातल पर कृष्ण के लौकिक प्रेम की व्यंजना करके उनमें चिन्मय सत्ता का आरोप किया गया है। यह ग्रंथ १६वीं शती के कृष्ण-भक्ति काव्यों की भूमिका प्रस्तुत करता है।

नदी पार करते समय अपनी चंचलता के कारण कृष्ण नाव को डगमगा देते हैं। कृष्ण के मंतव्य को पहचानती हुई भयभीत गोपी कहती है—

'अरे रे वाहहि काण्ह णाव छोड़ि डगमग कुगति ण देहि।
तइ इत्थि णइहि संतार देइ जो चाहइ सो लेहि।'[2]

---

[1] ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट आव बंगाली लेंग्वेज डा० चाटुर्ज्या
[2] प्राकृत पैंगलम् १९६

उक्त पंक्तियाँ कृष्ण का नौका विहार लीला सम्बन्धी किसी कविता का अंश या मुक्तक हो सकती है। कृष्ण काव्य में प्रेमरूपा भक्ति के ऐतिहासिक तत्वों की दृष्टि से यह कविता महत्वपूर्ण है।

एक अन्य पद में कृष्ण को नारायण के रूप में स्मरण करते हुए उनकी बाल-लीलाओं का वर्णन किया गया है—

जिणि कंस विणासिअ कित्ति पआसिअ
मुट्ठि अरिट्ठ विणास करे गिरि हत्थ धरे।
जमलज्जुण भंजिय पय भर गंजिय।
कालिअ कुल संहार करे, जस भुअण भरे।
चाणूर विहंडिय, णिय कुल मंडिय
राहा मुह महु पान करे, जिमि भमर वरे।
सो तुम णरायण विप्प परायण
चित्तह चिंतिय देउ वरा, भयभीअ हरा।[1]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि राधा और कृष्ण के मधुर भाव की उपासना का इस समय तक पर्याप्त प्रचलन हो चुका था जिसकी छाया हमें चण्डीदास और विद्यापति के काव्यों में परिनिष्ठित रूप में दिखाई दी। डा० शशिभूषणदास गुप्त के मतानुसार मधुरा भक्ति की यह परम्परा मैथिल-कोकिल विद्यापति तथा बंगला कवि चण्डीदास की रचनाओं में और भी अधिक पल्लवित और विकसित हुई।[2]

हम ऊपर संकेत कर चुके हैं कि प्राकृत पैंगलम् में भगवान् के स्तुतिपरक पद्य भी संकलित हैं। इनमें कृष्ण-वंदना के दो पद्य और देखिये—

(१) परिणअ ससहर वअणं विमल कमल दल णअणं।
विहिय असुर कुल दलणं पणमह सिरि महुमहणं।[3]

पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाले, विमल कमल पत्र के समान नेत्रवाले, असुर कुल का दलन करने वाले, श्री मधुसूदन (कृष्ण) को प्रणाम करो।

(२) भुवण अणंदो तिहुअण कन्दो, भवर सवण्णो स जअइ कण्हो।[4]

समस्त भुवन के आनन्द स्वरूप, त्रिभुवन के मूल, भ्रमर के समान नील कृष्ण की जय हो।

यही नहीं एक ही पद में शिव और कृष्ण की स्तुति की गई है—

जअइ जअइ हर वलइअ बिसहर, तिलइअ सुन्दर चन्द मुनि आणन्द जन कन्द।
वसह गमन कर तिसूल डमरु धर, णअणहि डाहु अणग सिर गंग गोरि अधंग।

[1] वही, ३२४।२०७।
[2] राधा का क्रम विकास, १९५६ संस्करण, पृ० २७६-२७७।
[3] प्राकृत पैंगलम् ४२१।१०९।
[4] वही ३६५ ४९

जयइ जयइ हरि भुअ जुअ धरि गिरि, छहमह कम विणामा पियबम्मा सुन्दर हासा।
छलि छलि यहि हस असुर विलय करु, मुणि जण मानस सुहभामा उत्तम ग्रंमा।[1]

यह स्तुति इस बात की सूचक है कि शिव और कृष्ण (विष्णु) के समन्वय की भावना के प्रयत्न उस युग मे भी हुए लेकिन शैव एव वैष्णवो में विग्रह-विवाद गो० तुलसीदास के समय तक चलता रहा। यही भावना आगे चलकर विद्यापति की पदावली मे शिव और विष्णु के एकीकरण के रूप मे प्रकट हुई—

भल हर भल हरि भल तुअ कला, खन पित बसन खनहि बघछला।
खन पंचानन खन भुज चारि, खन सकर खन देव मुरारि।
खन गोकुल भए चराइअ गाय, खन भिख माँगिए डमरु बजाय।
खन गोविन्द भए लिअ महादान, खनहि भसम भरु काँख वो कान।[2]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य मे कृष्ण काव्य का विकास निम्नलिखित प्रकार से हुआ—

(१) अपभ्रंश काल के प्रारम्भिक साहित्य मे कृष्ण को महामानव के रूप मे चित्रित किया गया, भगवान् के रूप मे नहीं। प्रद्युम्न चरित काव्यो मे तो उनकी दुर्गति दिखाई गई।

(२) १४वीं शती के ग्रथ प्रबन्ध चिन्तामणि के समय तक कृष्ण मे परमात्म तत्व का रूप आ गया।

(३) १४वीं शती के उत्तरार्द्ध मे प्राकृत पैंगलम् मे राधा कृष्ण की मधुर भावना का प्रादुर्भाव दिखाई देता है। कृष्ण के लौकिक प्रेम की व्यजना करते हुए उनमे चिन्मय सत्ता का आरोप किया गया।

(४) कृष्ण, शिव, राम और विष्णु मे समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया।

प्राकृत अपभ्रंश साहित्य की परम्पराओ का सिंहावलोकन

साहित्यिक परम्पराएँ—प्राकृत भाषा का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। इसमे दो प्रकार की कृतियाँ उपलब्ध होती है— १. शुद्ध साहित्यिक, २. धार्मिक।

प्राकृत मे यद्यपि शुद्ध साहित्यिक कृतियाँ बहुत कम है फिर भी प्रबन्ध काव्यों मे विमलदेव सूरि रचित 'पउमचरिय' तथा प्रवरसेन कृत 'सेतुबन्ध' का परवर्ती साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पडा है। विषय वर्णन एव शैली की दृष्टि से ये ग्रथ अपभ्रंश साहित्य के लिए दीप स्तम्भ कहे जा सकते है। सस्कृत साहित्य के चरित-काव्यों के अनुकरण पर प्राकृत मे वाक्पतिराज का 'गउडवहो' पहला चरित काव्य लिखा गया जिसमे कवि ने अपने आश्रयदाता राजा के शौर्य की प्रशस्ति गाई है। यह परम्परा हिन्दी के प्रबन्ध काव्यो मे ज्यो की त्यो उतर आई है।

---

[1] वही ५६८।२१५।
[2] विद्यापति की पदावली श्रीराम वृक्ष बेनीपुरी पद सख्या २३२

इस काल की मुक्तक काव्य परम्परा दो रूपो मे उपलब्ध है १ उपदेशात्मक २ शुद्ध साहित्यिक। उपदेशात्मक रचनाओ मे धार्मिक एव नीति सम्बन्धी मुक्तक आते है। इनका आरम्भिक परिचय बुद्ध जी के उपदेशो—धम्मपद—के रूपो मे है, जहाँ धार्मिक और नैतिक दोनो ही प्रकार की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती है। जैन प्राकृत साहित्य मे 'समयसार' इसी प्रकार की रचना है। शुद्ध साहित्यिक कृतियो मे गाथा सप्तशती तथा वज्जालग्ग की गाथाएँ है जिनमे दो प्रकार के मुक्तक मिलते है— (१) नीति परक, (२) शृगार परक। यही परम्परा हेमचन्द्र के अपभ्रंश दोहो मे प्रकट होती हुई दिखाई देती है। लोक-साहित्य के शुद्ध तत्व की इस परम्परा का प्रभाव भर्तृहरि, अमरुक, शीलाभट्टारिका तथा विज्जिका की शृगारपरक रचनाओ मे दिखाई देता है। गोवर्द्धन की आर्यासप्तशती सस्कृत की इन गाथाओ की छाया है। यही नही प्राकृत के इन शृगारी मुक्तको के प्रभाव मे जयदेव का गीत गोविन्द भी नही बचने पाया।[1]

ध्वनि सम्प्रदाय एव रस विवेचन के लिए आलकारिक विद्वानो ने अपने उदाहरण प्राकृत काव्यो से ही चुने। इससे स्पष्ट है कि इस समय सस्कृत काव्यो मे इस प्रकार के उदाहरण अत्यल्प या नगण्य थे। हिन्दी के रीतिकालीन काव्य मे यही धारा और भी अधिक विकसित हुई।

प्राकृत के लोक कथा साहित्य ने एक ओर सस्कृत के गद्य-काव्यो—वासवदत्ता, दशकुमार चरित तथा कादम्बरी को प्रभावित किया और दूसरी ओर जैन प्राकृत तथा अपभ्रंश की धार्मिक आख्यायिकाओ—समराइच्चकहा, तरगवती, कुवलयमाला, वासुदेवहिंडी, भविसयत्त-कहा आदि—को विषयगत तथा शैलीगत प्रेरणा दी।[2] कालातर मे ये लोककथाएँ प्रबन्ध काव्यो का ही अग बन गई और प्रधान अथवा अवान्तर कथाओ के रूप मे इनका प्रयोग होने लगा। हिन्दी के लोक काव्यो मे कथात्मक रूढियो का स्रोत प्राकृत का कथा साहित्य ही है किन्तु अपभ्रंश की बौद्ध सिद्धो वाली परम्परा ने कुछ नये प्रतीको तथा नई वर्णन शैली को जन्म दिया। यही शैली हिन्दी के निर्गुण सन्तो को परम्परागत दाय के रूप मे प्राप्त हुई।

छन्द परम्परा—वैदिक तथा लौकिक सस्कृत काव्यो मे वर्णिक छन्दो को व्यवहृत किया गया है किन्तु प्राकृत काव्यो मे मात्रा या ताल छन्दो का प्रयोग भी प्रारम्भ हुआ। सस्कृत के वर्णिक छन्दो की ही भाँति प्राकृत मे अतुकात छन्द लिखे गये किन्तु तुकान्त छन्दो का श्रीगणेश अपभ्रंश काल मे हुआ। जिस प्रकार सस्कृत की छन्द परम्परा मे अनुष्टुप का प्रयोग हुआ है उसी प्रकार प्राकृत मे गाहा, गाहू, विगाथा, उद्गाथा, गाहिनी, सिंहिनी तथा स्कधक छन्दो का प्रचलन आरम्भ हुआ। प्राकृत के अधिकाश मात्रिक छन्दो का मूलस्रोत 'गाहा' छन्द है। तुकान्त छन्द परम्परा के मात्रिक छन्द गेय होते थे इसीलिए इनके प्रचलन से काव्य मे सगीतात्मकता का समावेश हो गया। अत अपभ्रंश के कवियो ने तुकान्त छन्दो को अपनाया। इसका यह अर्थ नही कि सस्कृत के अतुकान्त तथा वर्णिक छन्दो का प्रयोग समाप्त हो गया। इनका प्रयोग भी साहित्य मे होता रहा किन्तु पहले की अपेक्षा कम।

---

[1] हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, प्रथम भाग पृ० ३०८।
[2] वही पृ० ३०९

संस्कृत के महाकाव्यों के सर्ग प्राकृत में आश्वास तथा अपभ्रंश में कडवक कहे गए,[1] किन्तु, महापुराण, पउमचरिय, रिट्ठणेमिचरिउ तथा भविसयत्तकहा आदि ग्रंथों में संधि को 'सर्ग' के स्थान में प्रयुक्त किया गया। करकंडचरिउ की 'संधियों', को परिच्छेउ (परिच्छेद) नाम से पुकारा गया। प्रत्येक संधि पुनः कडवकों (तथाकथित सर्गों) में विभक्त की गई। साहित्य में कडवक के प्रयोग में कोई एक नियम नहीं रहा। पुष्पदन्त के महापुराण में कई संधियों में नौ अर्धालियों के कडवक हैं और कई में १०, ११, १२ और १३ के। कभी-कभी तो एक ही संधि के अलग-अलग कडवकों की अर्धालियों की संख्या भी भिन्न-भिन्न होती है[2]। स्वयंभू ने प्रायः आठ अर्धालियों (सोलह चरण) के बाद घत्ता का प्रयोग किया है और यही पद्धति उनके पुत्र त्रिभुवन ने भी अपनाई है। वस्तुतः घत्ता का प्रयोग एक छन्द को पढ़ने से उत्पन्न नीरसता (ऊब) से बचने के लिए परिवर्तन तथा विश्राम के हेतु होता है। कुछ विद्वान अपभ्रंश के कडवक को 'सर्ग' कहना स्वीकार नहीं करते क्योंकि अपभ्रंश के कडवक बहुत छोटे होने के कारण संस्कृत के 'सर्ग' के स्थानापन्न नहीं हैं। संधि या परिच्छेद को 'सर्ग' के समानान्तर माना जा सकता है।[3] अवधी कृष्ण काव्य के प्रारम्भिक कवियों लालचदास तथा लक्षदास— ने प्राकृत की इसी परम्परा के अनुसार अर्धालियों के बाद दोहा लिखने का कोई निश्चित क्रम नहीं रखा, जिसका विवरण यथास्थान आगे दिया गया है।

बौद्ध सिद्ध कवियों ने दोहा, सोरठा, पादाकुलक, अडिल्ल, द्विपदी उल्लाला तथा रोला आदि का प्रयोग किया है। अपभ्रंश की यह परम्परा हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों में चौपाई का कडवक बनाकर उसके साथ दोहे का घत्ता देने के साथ प्रचलित हुई। जायसी ने प्रत्येक कडवक में सात अर्धालियाँ रखी हैं, तुलसी ने आठ। अपभ्रंश में दोहा मुक्तक काव्य का छन्द रहा किन्तु हिन्दी में उसका प्रयोग प्रबन्ध और मुक्तक के संयोग के साथ किया गया।

बौद्ध साहित्य की दूसरी देन पद है। गीति काव्य की इस परम्परा ने संस्कृत साहित्य को प्रभावित किया। जयदेव ने गीतगोविन्द तथा उसके परवर्ती कवियों-विद्यापति, चण्डीदास तथा ब्रजभाषा के अन्य कवियों—पर इसका प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है। दूसरी ओर नाथ सिद्धों के प्रभाव से यह पद शैली गोरखबानी कबीरदास तथा अन्य सन्तों की रचनाओं में मिलती है। गोरखबानी के पदों में राग का नामोल्लेख नहीं है किन्तु ये पद गेय हैं इसमें कोई सन्देह नहीं। गुरु ग्रंथसाहब में संकलित सन्त कवियों की रचनाओं में तो पदों के राग निश्चित हैं।

रस—यद्यपि सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य शान्त रस में है फिर भी इसमें एक ओर जीवन के वीरतापूर्ण चित्र मिलते हैं और दूसरी ओर लोकजीवन की सरस शृंगारयुक्त झाँकी। ऐसा प्रतीत होता है कि अपभ्रंश का यह साहित्य लोक-जीवन तथा लोक-साहित्य को स्पर्श करता हुआ चला है। नायिका विजेतापति के आगमन पर तो प्रसन्न होती है किन्तु

---

[1] सर्गा कडवकाभिधा।

[2] पुष्पदंत के हरिवंश की ८३ वीं संधि के १५ वें कडवक में १० अर्धालियों (२० चरण) के बाद घत्ता और उसी संधि के १६ वें कडवक में १२ अर्धालियों (२४ चरण) के बाद घत्ता दिया गया है।

[3] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास प्रथम भाग पृ० ०

यदि वह युद्ध मे मारा जाय तो भी उसका दर्प घटता नही है क्योकि वह कायरों की भाँति अपने प्राण बचाकर तो नही आया, उसने वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए वही पर अपने प्राण दे दिए। इस रमणी को अपनी सखियो के सामने लज्जित तो नही होना पड़ेगा—

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि म्हारा कंतु ।
लज्जेज्जं तु वयंसिहु जइ भग्गा घर एंतु ।।

दूसरी ओर 'प्रबन्ध चिन्तामणि' का दोहा उस काल के काव्यो की अन्तर्दृष्टि का परिचायक है—

एउ जम्मु नग्गुह गिउं भडसिरि खग्गु ण भग्गु ।
तिक्खां तुरिय ण माणियां गोरी गली ण लग्गु ।।

यह जन्म व्यर्थ ही गया। न सुभटो के सिर पर खड्ग टूटा, न तेज घोड़े सजाये और न गोरी (सुन्दरी) का आलिंगन ही किया।

इसी प्रकार १२वी शती के उत्तरार्ध मे अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) रचित ग्रंथ सदेश-रासक मेघदूत के ढग का एक शृङ्गारी गीति काव्य है जिसमे एक प्रोषितपतिका नायिका की भाँति टीस भरी करुण पुकार को तीन प्रक्रमो मे लिखा गया है।

वस्तुत स्वयभू, पुष्पदन्त तथा प्राकृत पैंगलम् की रचनाओ मे कृष्ण की बाल-लीलाओ, उनकी चचलता तथा राधा-कृष्ण के मधुर प्रेम का वर्णन किया गया है और संयोग शृङ्गार को प्रधानता दी गई है। इसके अतिरिक्त स्तुतिपरक रचनाओ मे राम, कृष्ण और शिव की समन्वय भावना से अभिप्रेत वदना है जो शात रस मे है।

ब्रजभाषा कृष्ण काव्य की पीठिका

ब्रजभाषा कृष्ण काव्य की परम्पराओं के अध्ययन के पूर्व उसकी पीठिका के स्तम्भ प्रमुख कवियो की काव्य परम्परा का हम सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना आवश्यक समझते है। इस परम्परा मे जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति, नामदेव और नरसी मेहता आते है। सत-कवियो की रचनाओ ने भी कृष्ण काव्य की मधुरा भक्ति के प्रसार मे महत्वपूर्ण योग दिया है।

जयदेव – वैसे तो जयदेव सस्कृत के कवि है किन्तु उन्होने पद लालित्य आनुप्रासिक चमत्कार तथा सगीत की राग-रागिनियो का सस्कृत मे जो सफल प्रयोग किया उसका पर-वर्ती कवियो पर—विशेषत हिन्दी के कवियो पर—बड़ा प्रभाव पड़ा। 'गीत-गोविन्द' मे जयदेव ने राधाकृष्ण का वर्णन १२ सर्गो मे किया है जिसके वर्ण्य-विषय से स्पष्ट है कि जयदेव विद्यापति की भाँति शृगारी कवि है, सूर की तरह भक्त कवि नही।

आलोचको का कहना है कि गीत-गोविन्द मे आध्यात्मिकता के प्रकाश मे भक्ति-भावना को ढूंढना सर्वथा अनुचित है क्योकि जयदेव मूलत शृगारी कवि है। उन्होंने राधा-कृष्ण को आराध्य न माना और साधारण स्त्री-पुरुष की कामुक-लीलाओ की भाँति उनका चित्र अकित किया है। कुछ आलोचको ने जयदेव के इस वर्णन मे रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ ढूंढने का प्रयत्न किया है लेकिन यह कदापि उचित नही माना जा सकता।[1]

[1] एहिस्टी आव सस्कृत लिटरेचर ए० बी० कीथ पृ० १६४

वसे तो गीत-गोविन्द मे राधा को परकीया रूप मे चित्रित किया गया है किन्तु डा० विजयेन्द्र स्नातक उसकी स्थिति परकीयत्व मे भिन्न मानते है। उनके विचार मे स्थूल शृगार लीला वर्णन मे कवि स्वकीया नायिका की मन स्थिति के उद्घाटन करने मे लीन प्रतीत होता है।[1] 'गीत-गोविन्द' के प्रकृति वर्णन भी स्थूलता लिये हुए है। डा० रघुवंश का कहना है कि 'गीत-गोविन्द में भाव-प्रवणता मे स्थूल-मांसलता अधिक है और सूक्ष्म भाव व्यजना से हाव तथा अनुभावो का विस्तार अधिक है। इस कारण प्रकृति सयोग और वियोग दोनो पक्षो मे उद्दीपन के अन्तर्गत अधिक प्रयुक्त हुई है। प्रकृति का वातावरण मानवीय भावो मे व्याप्त हो रहा है।'[2]

जयदेव की इस कोमलकान्त पदावली का बंगला मे सर्वाधिक प्रचार हुआ। 'गीत-गोविन्द' के अनुकरण पर बंगला मे गीतिकाव्य[3] और रामकाव्य पर्याप्त मात्रा मे लिखा गया।[4] कहते है महाप्रभु चैतन्य की भक्ति के प्रेरणा स्रोतो मे जयदेव का काव्य भी था, चैतन्य के वृन्दावन मे रहने वाले अनुयायी इन गीतो को बडी तल्लीनता से गाते थे।

इस प्रकार जयदेव ने परवर्ती कवियो के लिये राधा-कृष्ण सम्बन्धी रचना करने के लिये मार्ग खोल दिया।

श्रीगुरु ग्रथसाहिब मे जयदेव के दो पद सगृहीत है जो भाव और भाषा की दृष्टि मे अत्यन्त साधारण है। डा० रामकुमार वर्मा ने इन पदो के जयदेव कृत होने मे सदेह प्रकट किया है क्योकि ये पद तो निर्गुण ब्रह्म की शक्ति-सम्पन्नता के विषय मे है। इनमे संस्कृत की मधुर पदावली की छाया तक नही है।[5]

चण्डीदास—बंगाल के प्रसिद्ध कवि चण्डीदास १३०६ शक अर्थात् १३८४ ई० मे हुए।[6] उन्होने बंगला मे ही काव्य रचना की।

चण्डीदास ने अपनी रचना 'श्रीकृष्ण कीर्तन' मे राधा-कृष्ण के लीला सम्बन्धी पदो को प्रधानता दी। पदो मे लिखे जाने पर भी इस रचना मे प्रबन्धात्मकता है। चण्डीदास ने बंगाल के सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय की भावना के अनुरूप ही राधा को परकीया मानकर पद रचना की है। राधा के परकीयत्व भाव मे भी सामाजिक नियमो के पालन की उत्कटता की ओर सकेत किया गया है। वह कृष्ण का प्रेम पाने की लालसा रखने पर भी कलक तथा लाछन से बचना चाहती है। राधा का यह प्रेम हृदय की वह दाहक अग्नि है जिससे झुलसती हुई वह अपने आपको कृष्ण के समक्ष समर्पित कर देना चाहती है और अपने अद्भुत सयम तथा सयम अवहेला दोनो के ही भावो को व्यक्त करती है। राधा का यह प्रेम परकीयत्व भावना की वह चरम परिणति है जिसमे उसे अपने विवाहित पति की भी लेशमात्र चिन्ता नही है

---

[1] राधावल्लभ सम्प्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य, २०११ वि०, पृ० १८३।
[2] प्रकृति और काव्य, संस्कृत खण्ड, १९५१, पृ० १२९।
[3] गौडीय वैष्णव साहित्य, पृ० २१।
[4] सोलहवी शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि, प्रथम सस्करण, पृ० १४।
[5] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास १९४८ ई० पृ० ७१२।
[6] गौडीय वैष्णव साहित्य पृ० ३०

और वह कृष्ण को ही अपना पति कहती हुई पुकार उठती है—'तुम मोर पति, तुम मोर पति, मन नाहि आन भय !'

चण्डीदास ने राधा के चित्रण मे किसी दार्शनिक पद्धति का अनुसरण नहीं किया बल्कि प्रेम-प्रगल्भा राधा का प्राकृत वर्णन करके परवर्ती कवियों को दिशा-निर्देश किया।

राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति की नौका को बगाल से व्रज के प्रधान केन्द्र मथुरा-वृन्दावन तक लाने का कार्य चैतन्य महाप्रभु ने किया। मथुरा-वृन्दावन कृष्ण की लीला-भूमि होने के कारण भक्तो के प्रिय तीर्थ थे जहाँ तीर्थ यात्रा के लिये भक्तो तथा आचार्यो का आना-जाना होता था। चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुयायियो ने जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति की रचनाओ को भक्ति-भाव से पढा और गाया। चैतन्य महाप्रभु के इस अभिनव प्रयोग का परिणाम यह हुआ कि इन कवियो के द्वारा वर्णित राधा-कृष्ण के विलासी जीवन के चित्र भी भक्ति के आवरण मे ढँक कर माधुर्य भक्ति मे पर्यवसित हो गये और बाद के कवियो ने राधा को कृष्ण से सयुक्त करके उसे स्वकीया रूप मे अकित किया और लोकधर्मानुसार उसकी प्रतिष्ठा की।

विद्यापति—विद्यापति ठाकुर मिथिला के कवि होते हुए भी हिन्दी के कवि माने जाते है। विक्रम की १४वी शती के अतिम दिनों मे इनका जन्म हुआ और विक्रम की १५वी शती मे इनकी साहित्यिक रचनाएं पल्लवित हुई।[1]

विभिन्न अवसरो पर लिखे गये विद्यापति के पदो का सग्रह 'पदावली' है जिसके पदो को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) **भक्ति सम्बन्धी**—शिवजी के सम्बन्ध मे स्तुतिपरक रचनाएँ।

(२) **काल सम्बन्धी**—तत्कालीन परिस्थितियो से सम्बन्धित रचनाएँ।

(३) **शृङ्गार सम्बन्धी**—राधा-कृष्ण के सयोग और विप्रलम्भ से सम्बन्धित पद।

विद्यापति की 'पदावली' का मुख्य विषय राधा-कृष्ण की प्रेमलीला है। जयदेव की शृगार भावना विद्यापति मे ज्यो की त्यो उतर आई है। अष्टछाप के कवियो की भाँति विद्यापति भक्त कवि नही है, वे नितान्त शृगारी कवि है। विद्यापति ने राधा को परकीया मानकर रचना की है। राधा का नख-शिख, सद्य स्नाता, अभिसार तथा वय सधि आदि के वर्णनो मे आलम्बन विभाव की सुन्दर अभिव्यजना की गई है। इसीलिये विद्यापति द्वारा वर्णित राधा का चित्रण भक्ति-क्षेत्र का आलम्बन नही बन सका और उसमे मासलता या शारीरिक पक्ष की प्रधानता हो गई। डा० विजयेन्द्र स्नातक विद्यापति की राधा को स्वकीया बताते है। उनके विचार से मान, अभिसार, दूती मिलन आदि प्रसगो मे राधा स्वकीया के

---

[1] विद्यापति के समय के बारे मे विद्वानो मे मतभेद है। डा० उमेश मिश्र अपने ग्रंथ 'विद्यापति ठाकुर' मे (पृ० ३६) १३६८-१४७५ ई०, शिवनदन ठाकुर—'महाकवि विद्यापति' मे १३४९-१४३६, रामचन्द्र शुक्ल. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (२००९ वि० सस्क० पृ० ७६) मे सं० १४६०, डा० रामरतन भटनागर : हिन्दी भारती (पृ० १०३) १३७५-१४५० ई० मानते है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे विक्रम की १४वी शती के उत्तरार्द्ध तथा १५वीं शती के प्रारम्भ म हुए

अधिकारों का पूरा उपयोग करती हुई दिखाई देती है।[1] कदाचित् इसीलिये विद्यापति के विप्रलम्भ के वर्णनों को वे कवित्व की दृष्टि से उच्चकोटि का नहीं मानते।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ 'सूर साहित्य' में कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा प्रस्तुत विद्यापति और चण्डीदास की राधा का तुलनात्मक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है[2] जिससे राधा के परकीयत्व भाव का स्पष्ट रूप परिलक्षित हो जाता है। वस्तुतः विद्यापति ने कृष्ण और राधा का वर्णन साधारण पुरुष और स्त्री के रूप में किया है जिनके प्रेम में सदाचार की मात्रा नहीं के बराबर है और वासना का प्रखर रूप चित्रित किया गया है। जिस प्रकार जयदेव ने अपने काव्य में संगीत का समन्वय किया वैसे ही विद्यापति ने अपने पदों को राग-रागिनियों में निबद्ध किया है। विद्यापति के ये पद जनता की भाषा में लिखे गये हैं। परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा में नहीं। यही कारण है कि विद्यापति के पद आज भी मिथिला में लोक गीतों के रूप में प्रचलित हैं।

नामदेव—महाराष्ट्र के संत कवियों ने हिन्दी के प्रति अपनी सहज ममता का प्रदर्शन किया है क्योंकि उनमें मराठी अभंग और पदों के साथ हिन्दी के दो-एक पद गाने की परम्परा रही है। यही नहीं, वहाँ के प्रतिभा के धनी कवियों ने मराठी के साथ हिन्दी पदों की रचना भी स्वयं की है। नामदेव की हिन्दी रचनाएँ अपने युग की प्रतिनिधि हैं।

नामदेव का जन्म शक ११९२ (विक्रम सं० १३२७) में हुआ था।[3] उनकी हिन्दी रचनाएँ दो प्रकार की हैं—(१) सगुणोपासना सम्बन्धी, (२) निर्गुणोपासना सम्बन्धी।

सगुणोपासना सम्बन्धी पद उस समय के हैं जब वे पण्ढरपुर के बिठोवा की मूर्ति की पूजा करते थे। निर्गुणोपासना सम्बन्धी रचनाएँ उस समय लिखी गईं जब उन्होंने ज्ञानेश्वर तथा उनकी बहिन मुक्ताबाई की प्रेरणा से बिसोवा खेचर नाम के एक नाथपंथी कनफटे से दीक्षा ली और तब वे ईश्वर का व्यापक रूप सर्वत्र देखने लगे थे। इस प्रकार नामदेव निर्गुण भक्ति के प्रथम प्रचारक हुए। वे हिन्दी में गीत शैली के प्रथम गायक हैं जिसमें राग-रागनियों का समावेश किया गया है।[4]

नामदेव ने निर्गुण पंथ में जो तत्त्व सम्मिलित किये वे सभी परवर्ती संतों को विरासत के रूप में मिले। इसका प्रभाव मुख्य रूप से कबीर में दिखलाई देता है क्योंकि सूफियों, हठयोगियों और वैष्णवों की सर्वग्राही अच्छी बातों को कबीर ने ग्रहण किया और उनका प्रचार करके संतों के लिये एक नया मार्ग खोल दिया।[5]

नामदेव की निर्गुण भक्ति का परवर्ती कवियों पर यह प्रभाव पड़ा कि निर्गुण भक्त मराठी संतों ने नंद के नंदन कंस निकंदन कृष्ण का लीलागान भी किया है, पर उसमें 'यमुना तीरे वानीर निकुंजे' गोपीजन के साथ मधुयामिनी में उनकी रास-क्रीडा का मादक कल्लोल नहीं है। राधा को परकीया मानने के कारण उन्होंने उसे महत्त्व न देकर रुक्मिणी को गौर-

---

1. राधावल्लभ सम्प्रदाय, सिद्धान्त, और साहित्य, पृ० १९७।
2. सूर साहित्य, (द्वितीय संस्करण), पृ० १०१।
3. वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स, पृ० ९२।
4. हिन्दी को मराठी संतों की देन डॉ० विनयमोहन शर्मा पृ० १३०।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य शुक्ल २००९ वि० पृ० ७७

वर्णित किया है और इसप्रकार समाज के मर्यादा धर्म की रक्षा की है।[1] हमारे आलोच्य कवि लक्षदास ने नामदेव के द्वारा निर्देशित 'मर्यादा धर्म' से प्रभावित होकर राधा और रुक्मिणी को स्वकीया रूप में अंकित किया जिसका उल्लेख आगे किया जायगा।

नरसी मेहता – १६ वीं शती से समस्त उत्तरापथ मे कृष्ण भक्ति की मदाकिनी प्रवाहित हो रही थी। सारी जनता को उसने रस-आप्लावित कर दिया था। जिस प्रकार चण्डीदास और विद्यापति की रस प्रवण कविताएँ भक्ति का माध्यम ग्रहण कर रही थी उसी प्रकार नामदेव और नरसी मेहता के पद लोगो को भक्ति मार्ग का प्रदर्शन कर रहे थे। नरसिह मेहता का आविर्भाव काल सवत् १५०७-१५३७ माना जाता है। उन्होने गुजराती मे ही काव्य-रचना की जिनका सकलन 'बृहत् काव्य दोहन' के सातवे भाग में है। ये पद विभिन्न राग-रागिनियो मे है जिनमे कृष्ण जन्म की बधाई के पद, श्रीकृष्ण विहार तथा ज्ञान वैराग्य आदि के पद है। नरसिह के पद भक्ति और शृगार के सुन्दर समन्वय हैं। इनकी भाषा मे सरलता और सरसता है। कृष्ण भक्ति काव्य के विकास मे इनका भी महत्त्व है क्योकि गुजरात पुष्टि सम्प्रदाय का एक प्रमुख स्थान रहा है। परिव्राजक सतो ने उस समय इन पदो का प्रचार समस्त उत्तरापथ मे अवश्य ही किया होगा।

सत कवियों की रचनाएँ

हम ऊपर कह चुके है कि जिस परम्परा को लेकर जयदेव, चण्डीदास, विद्यापति और नामदेव चले थे उसने आने वाले सगुणोपासक भक्त कवियो की रचनाओ के लिए मार्ग प्रशस्त किया। वस्तुत सगुणोपासक कवियो ने अपने काव्य में भक्ति भावना को विशेष प्रश्रय दिया किन्तु मूलतः सारी परम्परा—प्रेमा या सहजा भक्ति कान्ता भाव की उपासना, वर्णाश्रम धर्म का विरोध, कर्मकाण्ड की निदा, वैष्णवार्चना, शाक्त निदा, गुरु निष्ठा आदि—उन्होने निर्गुनिए कवियो मे ही प्राप्त की। आलम्बन की भिन्नता और हठयोग की दो-चार बातो को छोडकर उन्होने सभी बातो मे वैष्णव सतो की पुरानी परिपाटी का आश्रय लिया है। और तो और छन्दो की योजना तक एक है।[2] हिन्दी साहित्य मे सत कवियो को निर्गुण मत का मान कर उसे सगुण मत मे भिन्न (पृथक् रूप) कर देने की एक भ्रान्त परिपाटी चल गई है। फलत निर्गुनिए सतो की सहज अभिव्यक्ति पूर्ण कविताओ मे भी गुह्य और रहस्य की खोज करने वाले आलोचको को मुख्य मार्ग से हट जाना पडता है और वे पथभ्रमित हो जाते है। वस्तुत ये दोनो (सगुण और निर्गुण) मूलत एक ही प्रकार की साधनाएं है क्योकि सगुण सविशेष ब्रह्म के सर्व-व्यापकत्व की अनुभूति जब इन्द्रियातीत हो जाती है तब हम कुछ सकेतो (निर्गुण, निराकार और अव्यक्त जैसे प्रतीको) से अपना मंतव्य प्रकट करने लगते है। उस आनन्द रूप ब्रह्म की प्राप्ति का जो मार्ग निर्गुनिए सतो ने इगित किया वह ज्ञान मार्ग के कठोर धरातल पर अवतीर्ण हुआ किन्तु राग-रस रहित होने के कारण वह भोली जनता को अपनी ओर आकृष्ट न कर सका। इसीलिए सगुणोपासक भक्तो ने राम और कृष्ण को

---

[1] हिन्दी को मराठी सतों की देन डा० विनयमोहन शर्मा, भूमिका पृ० ध और न।

[2] ———— वर्ष ८ अक स० २००८ कृष्ण काव्य और निर्गुण लेख पृ० ११ १२।

लीलावतार मानकर तथा समाज की सामान्य परिस्थितियों में डालकर ऐसे भाव प्रवण शब्दों से चित्रित किया कि जनता रस विभोर हो उठी उसे उसका भगवान् उसी के आँगन में किलकारी मारता और बाल-लीलाएँ करता दिखाई दिया। लीला पुरुषोत्तम ब्रह्म का यह लोक-रंजक और लोक-रक्षक रूप राजनीतिक और धार्मिक वातावरण से क्षुब्ध एवं त्रस्त जनता को अधिक शांति दे सका।

सूरदास आदि सगुणोपासक भक्त कवियों ने निर्गुण और निराकार ब्रह्म की सत्ता को तो स्वीकार किया किन्तु उसकी प्राप्ति के ज्ञानमार्गी साधन को कठिन बताया। इस कठिनाई को हल करने के लिए ही उन्होंने 'सगुन लीला' के पदों की रचना की[1], जहाँ पर किंचित् वृत्तियों को रमने का अवसर मिलता है। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने भगवान् राम के सगुन लीलामय रूप का सम्बन्ध व्यवहार पक्ष में भी बना कर भगवान् को मूलतः निर्गुण ही बताया। 'जिस प्रकार अक्षर बोध कराने के लिये बालकों को वर्णमाला की सचित्र पोथियाँ दी जाती हैं वैसे ही भगवान् की चिंतन योग्य मूर्ति की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए भी सूक्ष्म तत्त्व की उपेक्षा कर देना सम्भव नहीं है। इसीलिए वे ज्ञान और भक्ति में कोई भेद नहीं मानते (ज्ञानहि भगतिहि नहिं कछु भेदा)। वस्तुतः 'निर्गुण' ब्रह्म भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर ही इस मर्त्य लोक में मानवसुलभ लीलाएँ करता है—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥[2]

अब तो यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाने लगा है कि कबीर को प्रेम तत्त्व सूफियों से प्राप्त नहीं हुआ था, वह तो (कबीर का प्रेमतत्व) भारतीय वातावरण में पोषित प्रेम की सहज अभिव्यक्ति है जिसकी अविच्छिन्न परम्परा भागवत तथा नारद भक्ति सूत्र आदि भक्ति ग्रंथों से प्राप्त हुई थी। इस सम्बन्ध में खोज करने पर जो अप्रकाशित साहित्य प्रकाश में आया है उससे यह स्पष्ट है कि हिन्दू पद्धति के पौराणिक प्रेमाख्यान काव्यों का समय सं० १००० में प्रारंभ होता है और परवर्ती साहित्य पर इसका प्रभाव भी दिखाई देता है।[3]

कबीर के आलम्बन ब्रह्म और कृष्ण भक्त सन्तों के कृष्ण या राधा-कृष्ण दोनों के प्रति प्रेम (आसक्ति) का स्वरूप एक ही है। 'कृष्ण भक्तों के नित्य वृंदावन या नित्य गोलोक के नित्य विहार में तथा कबीर के उस 'सुन्न गगन' में जहाँ सदा 'मदला' बजता रहता है, एक ही प्रकार की भावना अंतर्निहित है।[4] भगवान् की यह नित्य लीला भक्त के जीवन की परम साधना है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—'भक्तों में अपनी उपासना पद्धति के अनुसार इस लीला के रूप में भेद हो सकता है पर सबका लक्ष्य यह लीला ही है। जो निर्गुण भाव से भजन करता है वह भी भगवान् की चिन्मय सत्ता में विलीन हो जाने की इच्छा नहीं रखता बल्कि अनंत काल तक उसमें रमते रहने की कामना करता है। कबीरदास, दादूदयाल

---

[1] रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालम्ब मन चक्रत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं यातें सूर सगुन लीला पद गावै॥ —सूरसागर पद १

[2] रामचरितमानस।

[3] (क) भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, १९५५, पृ० ३०-३१।
(ख) सूरपूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य पृ० १५ तथा ३२५।

[4] ... वर्ष ६ अंक २ सं० २००८ ... और निर्गुण काव्यधारा पृ० १५

तथा निर्गुण मतवादियों की नित्यलीला और सूरदास, नन्ददास आदि सगुण मतवादियों की नित्यलीला एक ही जाति की है।[1] कबीर ने ब्रह्म की निर्गुणता के कारण जहाँ अपनी आत्मा को 'दुलहिन' मानकर 'राम की बहुरिया' बताया वहाँ कृष्ण भक्त कवियो ने निकुंज क्रीडा के अधिष्ठाता 'युगल सरकार' के दरबार की मर्यादा के अनुरूप अपने आपको विभिन्न सखिया के रूप मे उनकी 'खवासी' करने का काम स्वीकार किया। श्री हितहरिवंश को कृष्ण की वंशी तथा स्वामी हरिदास को ललिता सखी का अवतार मान लिया गया। इसीप्रकार अन्य अनेक वैष्णव सतो ने (जैसे-हरिव्यास देवजी ने अपनी सखी छाप 'हरिप्रिया', साह कुंदनलाल जी ने ललितकिशोरी, साह फुदनलाल ने ललित मोहिनी) भी अपने सखी नाम रखकर निकुंज-लीला का आनंद लिया। इतना ही नहीं, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों मे 'और भी बहुत सी बाते है जिनमे सगुण और निर्गुण मतवादी भक्त समान हैं। सभी भक्त अपनी दीनता पर जोर देते है। आत्म-समर्पण मे विश्वास रखते है और भगवान् की कृपा से ही मुक्ति मिल सकती है, इस पर सम्पूर्ण रूप से विश्वास करते है।'[2]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि वैष्णव समुदाय मे कृष्ण भक्त अपने को तथा निर्गुनियों को एक ही कुटुम्ब का मानते है।[3] इस प्रकार सत काव्य की निम्नलिखित बाते कृष्णकाव्य को दाय के रूप मे प्राप्त हुई'—

(१) सत काव्य मे पति-पत्नी रूप मे जिस माधुर्य भाव का श्रीगणेश हुआ वह आगे के कृष्ण भक्ति-काव्य मे पूरी तरह विकसित हुआ।

(२) सत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म के जिस रहस्य की ओर संकेत किया सगुणोपासक भक्तों ने उस ब्रह्म के लीलावतार (राम और कृष्ण) रूप की प्रतिष्ठा करके उसके लोक-रजक और लोक-रक्षक रूप को प्रस्तुत किया और भगवान के परात्पर रूप की ओर संकेत किया।

(३) सत काव्य मे जीवन के प्रति वैराग्य का दृष्टिकोण नही है बल्कि प्रेम और भक्ति का है। भक्तिकाव्य में यही दृष्टिकोण और भी अधिक पल्लवित और विकसित हुआ।

आरम्भिक व्रजभाषा मे कृष्ण-काव्य की प्रवृत्तियाँ

साहित्यिक परम्पराएँ—यों तो व्रजभाषा मे काव्य रचना का श्रीगणेश १००० ई० के आसपास शौरसेनी अपभ्रंश से मिलता है किन्तु यह भाषा १४ वीं शताब्दी तक अपभ्रंश बहुल संज्ञा शब्दों और प्राचीन काव्य प्रयोगो के आवरण मे ढँकी रहने के कारण परवर्ती व्रज-भाषा से भिन्न प्रतीत होती है पर भाषा वैज्ञानिक कसौटी पर वह निस्सदेह उसी का पूर्व रूप सिद्ध होती है।[4] इसीलिए कुछ विद्वानो ने पृथ्वीराज रासो को डिंगल भाषा का काव्य माना किन्तु डा० धीरेन्द्र वर्मा ने इस मान्यता को अस्वीकार करते हुए पृथ्वीराज रासो को व्रजभाषा का ही ग्रंथ बताया, राजस्थानी का नहीं।[5] डा० ग्रियर्सन ने भी चंदबरदायी को व्रजभाषा का

[1] हिन्दी साहित्य की भूमिका १९४०, पृ० ८८-८९।
[2] हिन्दी साहित्य की भूमिका, १९४०, पृ० ९४।
[3] विस्तृत विवेचन के लिए दृष्टव्य—कृष्ण काव्य और निर्गुण काव्यधारा . गोपालदत्त शर्मा व्रजभारती वर्ष ९, अंक २, २००८ वि०, पृ० ११ से १७ तक।
[4] सूर पूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य (भूमिका) पृ० ख।
[5] डा० धीरेन्द्र वर्मा १९३७ पृ० २८

प्रथम कवि मानकर १६ वीं शती में सूरदास को ही ब्रजभाषा का दूसरा एवं सर्वश्रेष्ठ कवि स्वीकार किया।[1] इस प्रकार बीच के लगभग ३०० वर्षों का साहित्य अंधकार में ही रहा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी हिन्दी साहित्य के इतिहास में सूरसागर को ब्रजभाषा की प्रथम साहित्यिक रचना स्वीकार करने में द्विविधा व्यक्त की और उसे किसी मौलिक गीतिकाव्य परंपरा का पूर्ण विकसित रूप मानने की कल्पना की,[2] क्योंकि सूरदास के पूर्ववर्ती ब्रजभाषा काव्य की कोई कृति उपलब्ध न थी।

वस्तुतः ब्रजभाषा में कृष्ण काव्य प्रायः पदों के रूप में मिलता है। सन्त नामदेव की रचनाओं में ब्रजभाषा का प्रारम्भिक रूप कुछ विकसित होता हुआ दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त 'गुरू ग्रंथ साहब' में संकलित संतों के पदों में अधिकांश रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। यद्यपि निर्गुनिए संतों की ये रचनाएं पूर्णतः भक्ति के राग रस से समन्वित नहीं है किन्तु इनके अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि ये रचनाएं ज्ञानात्मक होते हुए भी सगुण रूप के नामरूपात्मक संकेतों को अपने कथन का साधन बनाती हैं।

नई खोजों में सूर पूर्व ब्रजभाषा का जो साहित्य प्रकाश में आया है उससे यह स्पष्ट है कि ब्रजभाषा में जायसी के पूर्व प्रेमाख्यान परम्परा ने कई काव्य लिखे गये जो हिन्दू पद्धति के प्रेमाख्यान काव्य हैं। इनमें कवि दामो का लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा (१५१६ वि०) और नारायणदास की छिताईवार्ता (१५५० वि०) प्रमुख हैं।[3] डा० शिवप्रसादसिंह ने आरम्भिक ब्रजभाषा काव्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है[4]—

१ **चरित काव्य**—प्रद्युम्न चरित (संवत् १४११), हरिचन्द पुराण (सं० १४५३) रैदास कृत प्रह्लाद चरित (१५ वीं शती का अन्त), रणमल्ल छन्द (सं० १४५७)।

२. **कथावार्ता**—लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा (सं० १५१६), छिताईवार्ता (सं० १५५० के लगभग), मधुमालती (सं १५५० तक)।

३. **रास और रासो**—संदेश रासक (११ वीं शती), पृथ्वीराज रासो, खुमानरासो, विजयपालरासो, बीसलदेवरासो आदि।

४. **लीला काव्य**—सनेह लीला—विष्णुदास रचित (सं० १४९२) तथा परशुरामदेव की लीला संज्ञक कई रचनाएँ।

५. **षड्ऋतु और बारहमासा**—संदेशरासक का षड्ऋतु वर्णन, पृथ्वीराजरासो का षड्ऋतु वर्णन, नेमिनाथ चउपई तथा नरहरि का बारहमासा।

६. **बावनी**—डूंगर बावनी (सं० १५४८), छीहल बावनी (सं० १५८४)।

७ **विप्रमतीसी**—परशुरामदेव की विप्रमतीसी, कबीर बीजक की विप्रमतीसी।

---

[1] लिंग्विस्टिक सर्वे आव इण्डिया, जिल्द ९, भाग १, पृ० ७१-७३।
[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास, २००९ वि०, पृ० १६५।
[3] सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य पृ० १५।
[4] वही पृ० ३१५

८ बेलिकाव्य—कवि ठक्कुरसी की पचेन्द्रिय वेलि (१५५० वि०), तथा नेमिराजमति वेलि।

९ गेय मुक्तक—विष्णुदास, संतकवियों तथा सगीतज्ञ कवियो आदि के गेय पद।

१० मगल काव्य—रासो का विनय मगल, विष्णुदास का रुक्मिणी मगल, नरहरि भट्ट का रुक्मिणी मगल तथा मीराबाई का नरसी जी का माहेरो।

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर डा० शिवप्रसादसिंह ने सूरपूर्व ब्रजभाषा तथा उसके साहित्य का जो अनुशीलन प्रस्तुत किया है उसमे सूरदास तथा उनके समसामयिक अन्य कवियो की परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा की पीठिका का प्रत्यक्ष निदर्शन मिल जाता है और पृथ्वीराजरासो के निर्माण काल से सूरदास के काल तक की अद्यावधि अज्ञात सामग्री का उचित मूल्याकन होता है तथा शृङ्खला का पता चलता है। ब्रजभाषा में सूरदास से पूर्व कृष्णकाव्य का जो साहित्य उपलब्ध हुआ है उसमे सर्वाधिक प्राचीन रचना विष्णुदास (स० १४९२) रचित महाभारत कथा और स्वर्गारोहण मिलती है।[1] १९१२ ई० की खोज रिपोर्ट मे विष्णुदास रचित रुक्मिणी मगल नाम के एक और ग्रथ का विवरण दिया गया है।[2] इसके बाद (१९२६-२८) की खोज रिपोर्ट मे महाभारत कथा, स्वर्गारोहण पर्व और स्वर्गारोहण तीन रचनाओ की सूचना प्रकाशित हुई और इनका विवरण दिया गया। इनमे स्वर्गारोहण पर्व तथा स्वर्गारोहण तो एक ही रचना की दो प्रतियाँ प्रतीत होती है। कवि की सनेह लीला भ्रमरगीत का पूर्व रूप है। रुक्मिणी मगल मे कृष्ण और रुक्मिणी के परिणय की कथा कही गई है। विष्णुदास की भाषा १५ वी शती की प्रारम्भिक ब्रजभाषा का आदर्श रूप दिखाई देता है और १६ वी शती के कवियो की ब्रजभाषा के साहित्यिक रूप की पृष्ठभूमि का पता चलता है इसके साथ ही एक नये ऐतिहासिक तथ्य का पता चलता है कि ब्रजभाषा मे सगुण कृष्ण भक्ति का आरम्भ वल्लभाचार्य के वृन्दावन पधारने के ८०-९० साल पहले ही कवि विष्णुदास द्वारा किया जा चुका था।[4] इससे यह स्पष्ट है कि अभी भी अप्रकाशित साहित्य मे कुछ ऐसी सामग्री छिपी पड़ी है जिसमे वल्लभाचार्य के ब्रज आगमन के पूर्व चल रही भक्ति की धारा के प्रवाह तथा स्रोत का पता चल सकता है। इस ओर जिज्ञासु अनुसंधित्सुओं को कार्य करना चाहिए।

लक्षदास जी के समय तक ब्रजभाषा में कृष्णकाव्य की धारा

लक्षदास जी के समय से पूर्व की ब्रजभाषा में कृष्णकाव्य की धारा के प्रवाह का सक्षेप मे परिचय दिया जा चुका है। अब निम्नलिखित पक्तियों मे उनके पूर्ववर्ती एव समसामयिक ब्रजभाषा के कवियो की रचनाओ के वृत्त का भी सक्षेप मे परिचय दिया जा रहा है जिसमे तात्कालिक कवियो की भक्ति पद्धति तथा उनके द्वारा वर्ण्य-विषय की रूपरेखा स्पष्ट हो सके।[5]

---

[1] नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट (१९०६-१९०७-१९०८) पृ० ९२।
[2] नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट (१९१२-१४), पृ० २५२।
[3] वही, (१९२६-२८), पृ० ७६०।
[4] सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, १९५८ ई०, पृ० १५१।
[5] इनका तुलनात्मक अध्ययन अध्याय ६ में आगे दिया जायगा अत काव्य से उदाहरण न देकर संक्षेप मे विवेचन कर दिया गया है

वण्य-विषय—वसे तो कृष्ण भक्त कवियो ने मुख्यत: कृष्ण की लीलाओ का ही वर्णन किया है किन्तु सूरदास ने राम और कृष्ण दोनो के विषय मे ही काव्य लिखा है । उन्होने राम कथा का वर्णन वाल्मीकि रामायण के आधार पर किया है । कृष्ण के चरित का वर्णन मुख्यत: भागवत और हरिवंश पुराण से लिया गया है, किन्तु भागवत के दशम स्कध को प्रधानता दी है । इसमे दशम स्कध के दो भाग है—पूर्वार्ध और उत्तरार्ध । इसमें पूर्वार्ध उत्तरार्ध से बडा है । पूर्वार्ध मे कवि ने कृष्ण की बाल लीलाओ का मौलिक रूप मे वर्णन किया है जिसमे माँ यशोदा के हृदय की भावनाओ को ऐसा सर्वजनीन एव मनोवैज्ञानिक रूप दिया गया है कि बालक कृष्ण भी हमारे घरो मे 'कन्हैया' बनकर पैठ गये है । इसमे विषय की बार-बार आवृत्ति होने पर भी ऐसा रस है कि हम उसे पढते-सुनते नही अघाते ।

नन्ददास जी की प्रामाणिक मानी गई ११ रचनाओ मे से रासपचाध्यायी, भँवर-गीत, रुक्मिणी मगल तथा दशम स्कध (भागवत) मुख्य है । रास पचाध्यायी का कथानक तो भागवत के आधार पर लिखा गया है किन्तु रास वर्णन हरिवश पुराण पर आधारित है । शैली, प्रवाह एव मधुरता की दृष्टि से इस ग्रथ पर जयदेव के गीत गोविन्द का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । इस ग्रथ मे श्रीकृष्ण की रासलीला तथा गोपियों के विरह-मान का बहुत ही सरस वर्णन पाँच अध्यायो मे किया गया है ।

नन्ददास का दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ भँवरगीत (भ्रमरगीत) है । भ्रमरगीत तो सूरदास ने भी लिखा था किन्तु नन्ददास का भँवरगीत हिन्दी साहित्य की अनूठी कृति है । इसमे अनेक मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित करके गोपियो की वाग्विदग्धता एव उनके प्रेम मार्ग का निरूपण किया गया है । भँवरगीत मे कवि ने कथा को गौण रखकर दार्शनिक एव तार्किक पद्धति का आश्रय लिया है । नन्ददास ने भँवरगीत की कोई प्रस्तावना नही दी बल्कि ग्रन्थारम्भ उद्धव के उपदेश मे ही किया है । इस ग्रन्थ मे वियोग शृंगार का वर्णन बडी सफलता से किया गया है । अत मे गोपियो की अटल प्रेम भावना के आगे उद्धव हत-प्रतिभ होकर अपना सिर झुका देते है और उनकी प्रेम-महिमा की प्रशसा करते हुए कृष्ण के पास वापस चले जाते है ।

रुक्मिणी मगल की कथा वस्तु का मूलाधार 'भागवत' के अनुसार ही है किन्तु कवि ने यथास्थान काव्य-विस्तार की दृष्टि से कुछ परिवर्तन भी कर दिए है । प्रारम्भ मे रुक्मिणी की विरहावस्था का वर्णन विस्तार मे किया गया है । इसके बाद रुक्मिणी का पत्रवाहक द्वारका-पुरी के भव्य वैभव को देखता हुआ कृष्ण के पास पहुचता है । रुक्मिणी के पत्र मे अपने हरण का उपाय न बताकर अपने दृढ प्रेम तथा परवशता का ही उल्लेख किया गया है । अत मे रुक्मिणी हरण के समय के युद्ध का सकेत मात्र देकर कथा को समाप्त कर दिया गया है ।

दशम स्कन्ध मे श्री मद्भागवत के दशम स्कन्ध के प्रथम २९ अध्यायो का अनुवाद है फलत इसे दशम स्कन्ध का पूर्वार्ध भी नही कहा जा सकता है । इसमे भगवान् कृष्ण के जन्म से लेकर रास विहार लीला तक की ही कथा मिलती है । इस ग्रन्थ मे पुष्टि मार्ग की विचारा-वली के अनुसार प्रसग ही ग्रहीत किये गए है । श्रीमद्भागवत का अविकल अनुवाद होने पर भी इस ग्रन्थ के कुछ प्रसग वर्णन विस्तार की दृष्टि से बढाकर लिखे गए है ।

इसके अतिरिक्त वल्लभ सम्प्रदाय के अन्य कवियो—परमानन्ददास कुभनदास

कृष्णदास चतुर्भजदास छीतस्वामी गोविन्द स्वामी ने स्फुट पद लिखे जिनमे मुख्य रूप से श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं का ही चित्रण किया गया।

निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियो ने राधाकृष्ण की निकुज लीला तथा ब्रज-लीला का वर्णन किया। वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो ने जहाँ कृष्ण की वात्सल्य लीलाओ के वर्णन से उनकी कोमल लीलाओं की मनोवैज्ञानिक अभिव्यजना की और गोप-गोपियो के साथ नैसर्गिक सख्य की भावना के चित्र प्रस्तुत किये वहाँ निम्बार्की कवियो ने राधाकृष्ण की अष्टयाम सेवा का वर्णन तथा निकुजलीला का बेजोड मधुमय विन्यास ब्रजभाषा साहित्य मे लिखा। श्रीहरि भट्ट, हरिव्यासदेव तथा परशुराम देव आदि ने राधा की मान्यता को प्रश्रय देकर माधुर्य भाव की प्रतिष्ठा की। टट्टी सस्थान के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी ने विभिन्न राग-रागिनियो में राधा-कृष्ण की निकुज लीला के पद लिखे।

श्री भट्ट देव की रचनाओ मे आदिवाणी तथा युगल शतक को ब्रजभाषा की रचनाए बतलाया गया है।[1] वस्तुत यह एक ही पुस्तक है। आदिवाणी शब्द 'युगलशतक' के विशेषण के रूप मे प्रयुक्त हुआ है क्योंकि निम्बार्की कवियो मे श्री भट्ट देव ने सबसे पहले ब्रजभाषा मे काव्य रचना की, अत इसे 'आदिवाणी' कहा गया।[2]

'युगलशतक' के ६ भाग है जिनमे १०० दोहे तथा पद है—सिद्धान्त सुख, ब्रजलीला सुख, सेवा सुख, सुरत सुख, उत्साह सुख। इन पदो मे नित्य विहारीधाम वृंदावन तथा राधा-कृष्ण की रसकेलि, कृष्ण की दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा शृंगार भाव से उपासना, परमतत्व और उसकी शक्ति, रहस्यलीला तथा वर्ष के उत्सवो आदि का सरस वर्णन किया गया है। कवित्व की दृष्टि से युगल शतक हृदय-स्पर्शी रचना है तथा कवि की नूतन उद्भावनाएं इसमे प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं। भाषा सरल ब्रजभाषा है जिसमे प्रवाह है। (पद सख्या . ११-२५) मे कृष्ण के वेणुवादन को सुनकर गोप-गोपियाँ राधा-कृष्ण के निकट एकत्र हो जाती है। कृष्ण का दुलहा रूप मे तथा ग्वालो का बराती-रूप मे वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त मानलीला और दानलीला तथा कृष्ण के दैनिक कार्यो का परम्परा के रूप मे उल्लेख किया गया है।

हरिव्यास देव ने सस्कृत ग्रन्थो के अतिरिक्त हिन्दी मे 'महावाणी' लिखी। कुछ लोग इसे युगलशतक की टीका मानते है।[3] वस्तुत बात ऐसी नही है क्योंकि महावाणी की विषय वस्तु मे भी युगलशतक से अन्तर है। महावाणी मे उच्चकोटि का कवित्व है। इसमे ५ सुख बताये गए है—(१) सेवा, (२) उत्सव, (३) सुरत, (४) सहज, (५) सिद्धान्त। इनमे राधा-कृष्ण की अष्टयाम सेवा, आचार्यो की सखी भाव मे उपासना, मगला, शृंगार, मध्याह्न और शयन की क्रिया-विधि का वर्णन, नैमित्तिक उत्सवो की रूप रेखा, राधा-कृष्ण की रसकेलि, नित्यलीला तथा प्रेम की स्वाभाविक दशा और राधा-कृष्ण के सयोग वर्णन मे मिलन उत्कठा आदि का वर्णन किया गया है। सिद्धान्त सुख का विषय गम्भीर है जिसमे उपास्य तत्व, धाम तत्व तथा सखी नामावली आदि के द्वारा वैष्णव सिद्धान्तो का वर्णन किया गया है।

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २२७-२८।
[2] ब्रजभाषा आदिवाणी श्री युगलशतक : सम्पा० ब्रह्मचारी बिहारीशरण भूमिका पृ० १
[3] भागवत बलदेव २०१० वि० पृ० ३२४

इसके अनुसार श्रीकृष्ण प्रेम तथा सुन्दरता का प्रतिमूर्ति और परात्पर तत्व है। नित्य विहारी का चिदंश रूप निर्गुण निराकार ब्रह्म है। इसी नामावली मे आठ प्रधान सखियो तथा प्रत्येक के साथ की दासियों के नाम एव कार्य दिये गए है। हरिव्यास देव जी ने माधुर्य भाव से उपासना की। इनका कविता मे उपनाम 'हरिप्रिया' है। आदिवाणी साम्प्रदायिक ग्रन्थ है अत इसका वर्ण्य-विषय सीमित है। इसमे मानव जीवन की मान्यताओ को स्थान नही है। महावाणी के पद कीर्तन की परम्परा पर आधारित है।

श्री हरिव्यास देवाचार्य जी उत्तरी भारत के सर्वप्रथम सम्प्रदायाचार्य माने जाते है। इनके पहिले आचार्य दाक्षिणात्य बतलाये जाते है। ये निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक है। इस शाखा के लोग 'हरिव्यासी' नाम से प्रख्यात है।[1] श्री बलदेव उपाध्याय का कथन है कि 'निम्बार्क मतावलम्बी कवियो ने श्री हरिव्यास देव जी का वही स्थान है जो वल्लभानुयायी कवियो मे सूरदास जी को प्राप्त है।'[2]

निम्बार्क सम्प्रदाय के परशुराम देवाचार्य विरचित तेरह ग्रन्थ बताये जाते है जिनका सकलन परशुराम सागर नाम से विख्यात है।[3] उन्होने व्रज-मिश्रित राजस्थानी मे कविता लिखी। निर्गुण और सगुण दोनो विचारधाराओ का इन पर प्रभाव पड़ा। इनकी कविताओ मे साधना, आत्म-समर्पण, गुरू के प्रति आदरभाव तथा सांसारिक मनुष्यों को उपदेश का वर्णन है। इन्होने कबीर की भाँति हिन्दू-मुसलमान की एकता पर जोर दिया है।

सखी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास ने सिद्धान्त तथा विहार के पद लिखे। शृगार तथा विहार के पद केलिमाल के नाम से सकलित है। इनमे राधा-कृष्ण के जुगल रूप, नखशिख, डोल-झूलना और रस विलास आदि का वर्णन है। इनकी कविता मे स्निग्धता तथा प्रवाह की कमी है क्योंकि ये कठिन गेय राग-रागिनियो पर आधारित है। इनका विषय निकुजलीला तक ही सीमित होने के कारण सकीर्ण है। इस सम्प्रदाय के अन्य कवियो मे बीठलविपुल तथा विहारिनदेव की कविताएँ सुन्दर है। इनका वर्ण्य विषय भी स्वामी हरिदास जी की ही भाँति है किन्तु भाषा मे प्रवाह है।

गौडीय सम्प्रदाय के श्री रामराय ने 'आदिवाणी' मे गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्तो का गुणानुवाद किया है। कुछ विद्वान इनका नाम रामानन्दराय बताते है।[4] आदिवाणी गौडीय सम्प्रदाय का प्रथम भाषा ग्रन्थ माना जाता है। इसमें युगलरस का वर्णन है। इन्होने मगलाचरण मे चैतन्य तथा नित्यानन्द की कृष्ण के प्रति प्रेम-भक्ति की निमग्नता का सुन्दर वर्णन किया है। 'नैमित्तिक रास' तथा 'वसत प्रसाद' मे राधा-कृष्ण की प्रेमकेलि का वर्णन है। सिद्धान्त रस मे भगवानदास के लिए सम्प्रदाय के सिद्धान्तो की स्थापना समझाई गई है। इन पदो मे कवि ने राधामाधव के प्रेम को शाश्वत बताया है। अन्य दास-दासियाँ उनकी प्रेम-लीलाओ मे सहायक रूप मे चित्रित की गई है। सयोग, मान-विरह के पदो मे

---

[1] वही, पृ० ३२८-२५।
[2] भागवत सम्प्रदाय, २०१० वि०, पृ० ३२६।
[3] वही, पृ० ३३०-३१।
[4] द डिस्ट्री आव द मिडीवल वैष्णविज्म इन उड़ीसा - प्रभात मुकर्जी १९४० पृ० ७१ पर मे काव्य रचना करने वाले का नाम बताया है

नात्मक शैली अपनाई गई है। इसमें प्रकृति तथा षड्ऋतुएं उद्दीपन के रूप में चित्रित की गई है। कृष्ण को परम ब्रह्म तथा राधा को परम शक्ति का प्रतीक माना गया है। उपासक को कृष्ण का चिन्तन राधा भाव में करना ही अभीष्ट है।

माधवीदासी, गदाधर भट्ट, सूरदास, मदनमोहन आदि ने पदों में राधा-कृष्ण की युगल माधुरी का गेय पदों में सुन्दर चित्रण किया है। इसके लिये बसत, वर्षा, होली आदि ऋतुओं में राधा कृष्ण की रसकेलि को वर्ण्य-विषय का आधार बनाया गया है।

मीराबाई की माधुर्य उपासना की रचनाएँ भी चैतन्य की भक्ति-पद्धति से साम्य रखती है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री हितहरिवश ने अपने सरस पदों में राधा की उपासना को प्रधानता दी। उन्होंने राधा की सेवा के द्वारा ही श्रीकृष्ण की आराधना की पद्धति अपनाई। श्री हितहरिवश श्रीकृष्ण की वशी के अवतार कहे जाते है। इनके ग्रन्थ 'हित चौरासी' में ८४ पदों का सुन्दर सग्रह है। इनमें वर्णनात्मकता के साथ भाव-व्यजना भी उच्च कोटि की है। इस सम्प्रदाय में श्रीहरिराम व्यास तथा ध्रुवदास आदि उच्चकोटि के कवि हुए हैं।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक गो० हितहरिवश के हिन्दी मे दो ग्रन्थ है—(१) हितचौरासी, (२) स्फुटवाणी। हितचौरासी मे ८४ पदों का सग्रह है। यह सम्प्रदाय का मूलाधार ग्रन्थ है। शृंगार रस की पृष्ठ-भूमि में 'राधा कृष्ण' का अनन्य प्रेम, नित्य विहार, रासलीला, भक्तिभावना, प्रेम मे मान-विरह की स्थिति, राधावल्लभ का यथार्थ स्वरूप तथा नित्य विहार के चतुर्व्यूहात्मक अवयवों का वर्णन आदि ही ग्रन्थ का प्रमुख प्रतिपाद्य है। भगवान् के नित्यविहार वर्णन के ये पद लौकिक रूप से चित्रित किये जाने पर भी आध्यात्मिक रूप में ही स्वीकार किये जाते है। हितचौरासी मे वर्णित रास भी नित्य विहार की ही एक स्थिति है। कृष्ण का मुरलीवादन और कलिदजा तट पर रासलीला का वर्णन आख्यानात्मक शैली में नही लिखा गया। यह तो भावनापरक रास वर्णन है।

स्फुटवाणी मे श्री हितहरिवश जी के मुक्तक या प्रकीर्ण पदों का सकलन है। इनमे सिद्धात प्रतिपादन की दृष्टि से लिखे गये पद भी है। इसमे प्रेम, अनन्य भाव सिद्धान्त, कृष्ण-जन्म और राधा-रूप वर्णन आदि का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है। श्री हितहरिवश जी ने इस सम्प्रदाय का प्रवर्तन करके राधा को प्रधानता दी। राधा-मोहन की तन्मयता ने उनमे अन्य देवी-देवताओं की उपासना के लिए कोई स्थान नहीं छोडा। उनमे प्रेम की यह अनन्यता मीरा के 'दर्द की भाँति' संसार के अन्य सभी मार्गो एव साधनाओं से मुक्ति दिला देती है। श्रीहितहरिवश जी के इन दोनों ग्रथ रत्नों पर टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी है।[1]

श्री हरिराम व्यास रचित हिन्दी के दो ग्रथ उपलब्ध है—(१) रागमाला (२) व्यास वाणी। रागमाला तो सगीत शास्त्र का एक ग्रंथ है किन्तु व्यासवाणी मे उनके पद और दोहे सग्रहीत है।

व्यासवाणी मे माधुर्य भक्ति और राधा-कृष्ण की निकुज-लीला को मुख्य आधार मान-

[1] सिद्धान्त और साहित्य २०१४ वि० पृ० २९७-९८ तथा ३१७

कर कवि ने अनेक पद लिखे हैं इन पदो मे भक्ति की विभिन्न कोटियो तथा भक्ता के मन में अपने आराध्य के प्रति भावनाओ को स्पष्ट किया गया है। निकुज लीला के वर्णन का आधार राधा-कृष्ण, वृन्दावन और सहचरी है जिन्हे एक ही प्रेम-सूत्र मे पिरोया गया है। भक्ति के क्षेत्र मे राधा-कृष्ण की निकुज लीला को सयोग और वियोग दोनो रूपो में स्वीकृत करके उनका विवरण दिया गया है, किन्तु व्यास जी ने सयोग को कुज केलि का प्राण मानकर उनकी किशोर लीलाओ का सुन्दर विवेचन किया है और राधा का रूप वर्णन भी सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार ही चित्रित किया है। शृगार रस के चरमोत्कर्ष के लिए उन्होंने ऋतु वर्णन के प्रसग लिए है जो उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते है। व्यासजी ने अपनी वाणी मे वृन्दावन की महिमा का विस्तृत रूप मे वर्णन किया है और वहाँ पर निवास करने को जीवन की चरम सार्थकता और चरम ध्येय माना है। वृन्दावन को उन्होंने नित्यविहार का स्थल तथा परमधाम स्वीकार किया है।

व्यासवाणी मे कवि ने समाज सुधारक उपदेष्टा के रूप मे कबीर की भाँति ललकार कर उसमे फैल रहे ढोग और पाखण्ड की ओर लोक का ध्यान आकर्षित किया है। उन्हे धर्म के ठेकेदारो का प्रवचन, मिथ्यालाप एव बाह्याडबर कतई पसद नही था। इसीलिए धर्म के नाम पर जीने वाले और वेद-पुराणो को बाजार में बेचकर धन कमाने वाले ब्राह्मणो की उन्होंने खुल कर भर्त्सना की है। उन्होंने राधावल्लभ की पूजा को अनन्य भाव से स्वीकार कर लिया था। व्यासजी ने भी कबीर की ही भाँति कठोरवाणी मे शाक्त को समाज द्रोही, हेय एव त्याज्य माना और उसकी तो शक्ल से ही उन्हे नफरत हो गई थी।[1]

तुलसीदास की 'कृष्ण गीतावली' मे स्फुट पदो का सकलन है जिसमे कुछ विशेष घटनाओं को आधार बनाकर विभिन्न राग-रागनियो मे पद लिखे गए हैं। इन पदो की सख्या ६१ है। इस काव्य मे श्रीकृष्ण की बाल-लीलाएँ, गोपियो के उपालम्भ और उसके फलस्वरूप यशोदा का क्रुद्ध होना और कृष्ण को ऊखल से बाँध देना, इन्द्र कोप, गोवर्द्धन धारण, गोपिका प्रेम, मथुरा गमन गोपी-विरह, उद्धव-सवाद, भ्रमर-गीत आदि का वर्णन है। इसमे बाल लीला और उद्धव गोपी-सवाद का विस्तार से वर्णन किया गया है। इनमे सूरसागर के पदो का सा लालित्य है। भाव सुकुमारता बहुत स्वाभाविक बन पडी है। उद्धव-गोपी सवाद मे सूरदास के भ्रमरगीत प्रसग की ही भाँति निर्गुन पर फबतियाँ कसी गई है और योग साधना की बातो को निस्सार बताकर कुब्जा, भ्रमर और उद्धव पर व्यग्य बाणो की बौछार की गई है। अवधी के श्रेष्ठ एव वरेण्य कवि तुलसीदास की इस रचना का ब्रजभाषा मे भी वैसा ही मूर्द्धन्य स्थान है जैसा उनकी अवधी की अन्य रचनाओ का है। 'कृष्ण गीतावली' जितनी सरल है उतनी ही मनोवैज्ञानिक भी है। इसके कुछ पद सूरसागर मे मिलते है।

कृष्ण भक्ति की ये रचनाएँ मुख्यत दास्य भाव और सखा भाव में लिखी गई हैं। विनय के पदो मे कवियो ने दास्य भक्ति को अपनाया है। कृष्ण के वात्सल्य रस वर्णन तथा गोप-गोपियो की क्रीडा के समय रससिक्त होकर ये कवि भी उनके सखा बन गए किन्तु राधा-

---

[1] करि मन साकत को मुह कारौ।
साकत मोहि न देख्यौ भावे कहा बूढो कहा बारौ
पृ० ५३

कृष्ण की निकुंज लीला एवं अष्टयाम सेवा वर्णन का निवाह करने के लिए इन कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी स्त्री छाप रखी और सखी भाव में भगवान् के नित्य निकुंज विहार का वर्णन किया। अपवाद रूप में मीरा ने कान्ता भाव में कृष्ण के प्रति विनय के पद लिखे।

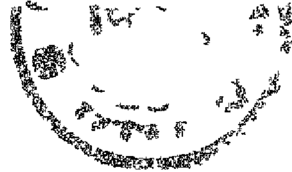
छंद— प्रारम्भ में कृष्ण काव्य प्रायः मुक्तक गीतों के रूप में लिखा गया। अपभ्रंश काल में लिखे गये पदों का प्रभाव परवर्ती साहित्य पर पड़ा। जयदेव के गीत-गोविंद और नाथ योगियों तथा संतो के गेय पदों का प्रभाव कबीर की रचनाओं पर प्रत्यक्ष दिखाई देता है। डा० विनयमोहन शर्मा ने नामदेव को हिन्दी में राग-रागिनियों में गीत शैली का प्रथम गायक माना है।[१] गुरू ग्रंथ साहब में संत कवियों के पदों के राग निश्चित है। इससे पता चलता है कि संत काल तक गेय पदों को किन्हीं संगीतकारों ने राग-रागिनी की सीमा में निबद्ध कर दिया था। परवर्ती काल में खुसरो, हरिदास, बैजू बावरा, तानसेन तथा गोपाल-नायक आदि संगीतज्ञों की रचनाओं ने इस दिशा को और भी परिपुष्ट किया।

नंददास के भागवत दशम स्कन्ध के पूर्व भी दोहा-चौपाई की शैली में विष्णुदास का रुक्मिणी मंगल, थेघनाथ की गीता भाषा, सधारु अग्रवाल का प्रद्युम्न चरित, लालचदास का हरिचरित्र आदि ग्रंथ लिखे जा चुके थे। भाषा काव्य में दोहा-चौपाई की यह परम्परा अपभ्रंश काल के सिद्ध साहित्य में कडवक' और 'घत्ता' का परिवर्तित रूप है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय में भी चौपाई प्रकार के छंद दिये गये है।[२] नंददास ने पंचाध्यायी में रोला और दोहा छंद को अपनाया है। सूरदास ने भी सूरसागर के कुछ स्थलों में रोला और चौपाई का प्रयोग किया है। 'भँवरगीत' में नंददास ने रोला और दोहा के मिश्रण से एक नये छंद का निर्माण किया। इस छंद के अन्त में १० मात्रा की एक छोटी-सी पंक्ति है जिससे भाव पूर्ति के साथ छंद की संगीत ध्वनि की भी पूर्ति होती है। इसी परम्परा का अनुकरण पं० सत्यनारायण कविरत्न ने अपने ग्रंथ 'भ्रमर गीत' में किया। गौड़ीय सम्प्रदाय के कवि गदाधर भट्ट ने भी रोला छंदों में वृन्दावन की प्रशंसा की है।

रस—ब्रजभाषा कृष्ण काव्य में वात्सल्य, शृंगार (संयोग और विप्रलम्भ), अद्भुत और शान्त रस का सुन्दर प्रयोग मिलता है। ब्रजभाषा के इन रससिद्ध कवियों के पूर्व कृष्ण की बाल-लीला और शृंगार का इतना सुन्दर प्रयोग नहीं मिलता। भागवत में कृष्ण के 'शक्ति रूप की उद्भावना की गई है किन्तु ब्रजभाषा के इन कवियों ने उनके बाल-रूप की मनोरम लीलाओं के साथ उनके लोक रक्षक रूप की भी अवतारणा की है। कंस के अत्याचारों से पीड़ित जनता को सान्त्वना देने के लिये अघासुर, बकासुर आदि का वध करना कृष्ण के लोक-रक्षक रूप का ही अंग है। उन्होंने कंस के अत्याचारों की ओर संकेत करते हुए जहाँ कृष्ण में 'देवत्व' का भाव प्रतिष्ठापित किया वहीं अद्भुत, वीर और रौद्र रस की भी सृष्टि की। श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में शील-सौन्दर्य-समन्वित भावना का आरोप कर देने से शृंगार रस के वर्णन के लिए पर्याप्त क्षेत्र निकल आया। शृंगार रस के वर्णन में भक्ति का प्राधान्य होने के कारण अश्लीलता का अंश नहीं आने पाया। आलम्बन विभाव के नायक-

---

२.[१] हिन्दी को मराठी संतों की देन भूमिका पृ० न तथा १३०।



नायिका कृष्ण-राधा हमारे आराध्य है और ईश्वरीय शक्तियो से विभूषित है। विप्रलम्भ के वर्णन मे इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि सामान्य स्त्री-पुरुष की भाँति रसकेलि करने पर भी उनका व्यक्तित्व और चरित्र उच्चतर और पवित्र ही रहे। निकुंज लीला तथा रास वर्णन मे भी सामाजिक शिष्टता का ध्यान रखते हुए मर्यादा का पालन किया गया है और आराध्य के प्रति आराधना का एक नया द्वार खोल दिया है। विनय के पदो मे अपने दैन्य तथा ग्लानि और कलिकाल ग्रसित होने की शिकायत है जिससे भगवान् शीघ्र ही भवजाल से मुक्त करे। विनय के ये पद शान्तरस मे है।

भाषा एवं शैली— प्रारम्भिक व्रजभाषा के साहित्य मे अपभ्रंश बहुल भाषा का प्रयोग किया गया किन्तु जैसे-जैसे क्षेत्रीय बोलियो का रूप स्थिर होता गया उसमे व्रजभाषा के शब्दो एव क्रिया-पदो का प्राधान्य होने लगा। इस प्रकार १६ वी शती तक आते-आते भाषा का रूप इतना समृद्ध एव सुस्थिर हो गया कि कृष्ण-भक्त कवियो के इतिवृत्त ने रामकाव्य के प्रणेता कवियो को भी कृष्ण काव्य लिखने के लिये प्रवृत्त किया। मीरा ने भी कृष्ण भक्ति के पद राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा मे लिखे। इससे स्पष्ट है कि व्रजभाषा उस समय की साहित्यिक भाषा थी जिसमे काव्य रचना करना प्रत्येक कवि अपना धर्म मानता था। व्रजभाषा के वरेण्य कवियो की वाणी से जो भाषा निःसृत हुई वह संगीतमय होने के साथ-साथ अन्तरतम की रागात्मक वृत्तियो को भी अपने मे अक्षुण्ण रूप मे सवारने की अद्भुत क्षमता रखती थी। सूरदास की भाषा मे व्रजभाषा का आंचलिक पुट है, लोकभाषा के अधिक समीप होने के कारण मसृण और परिष्कृत शब्दो की ओर उनका झुकाव नही है। नंददास ने शब्द चयन मे परिष्कार पर बल दिया है और शब्द मैत्री तथा ध्वन्यात्मक नाद सौन्दर्य को अपनाकर 'नंददास जडिया' का पद पाया है। किन्तु नंददास की भाषा मे हितहरिवंश के समान समृद्धता नही है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली को व्रजभाषा के प्रवाह मे ढालने की कला मे हरिवंश जी को अद्भुत क्षमता प्राप्त है—संस्कृत कवि जयदेव की पदावली मे विद्यापति ने प्रभाव ग्रहण किया था। हरिवंश जी ने जयदेव और विद्यापति दोनो की पदावली से प्रभाव ग्रहण करके उसे व्रजभाषा के कलेवर मे अभिनव रूप दिया।[1]

अवधी कृष्णकाव्य की पीठिका

'मेरी बोली पुरबिली' कहकर कबीर ने धडल्ले के साथ धर्म के ठेकेदारो को व्यावहारिक ज्ञान के शास्त्रार्थ के लिये ललकारा था और पण्डितो तथा मुल्लाओ के 'पवित्र ज्ञान' को 'कूप जल' और 'पुस्तक ज्ञान' की सज्ञा देकर 'बहते नीर' मे अवगाहन करने के लिये जनता को मार्ग दिखाना शुरू किया था। इस प्रकार वे जनता के मन से सन्देह-निवारण करके तथा पाखण्ड-खण्डन की दृष्टि से ही 'जनता की बोली' को अपनी 'बानी' की बानगी मे लाए जिसे आचार्य शुक्ल ने 'सधुक्कडी खिचडी' की सज्ञा दी है। अवधी मे विधिवत् काव्य लेखन का कार्य तो बाद मे प्रारम्भ हुआ जिसका प्रमाण प्रेमाख्यान कवियो की उपलब्ध रचनाओ से मिलता है। कबीर आदि निर्गुनिए सतो ने भी वैष्णव-परम्परानुमोदित सिद्धान्तो का प्रसार एव प्रचार तो किया ही, साथ मे मार्टिन लूथर की भाँति 'ज्ञान राशि' को सकुचित

[1] सिद्धान्त और साहित्य २०१४ वि० पृ० ३२८

परिधि मे केवल विशिष्ट समुदाय के पठन-पाठन के लिए ही अलम् नहीं माना अपितु उन्होंने सभी वर्गो एव वर्णों को बिना किसी भेद भाव के भगवद्भक्ति के ज्ञान को प्राप्त करने की ओर प्रेरित किया। निर्गुणिए मतो की भक्ति और वैष्णव भक्तो की उपासना पद्धति मे दो-चार बातो मे छोडकर व्यावहारिक रूप मे कोई विशेष अन्तर नही है।[1]

चारणकाल के अतिम चरण मे मुल्ला दाऊद का 'चन्दायन' ग्रथ मिलता है। विद्वानो की मान्य धारणा है कि यह अवधी का प्राचीनतम उपलब्ध काव्य है। डा० रामकुमार वर्मा ने अमीर खुसरो को अवधी और खडी बोली का प्रथम कवि माना है। उसका व्रजभाषा पर भी अच्छा अधिकार था।[2] इसके बाद कुतबन की 'मृगावती' और मझन की 'मधुमालती' की रचना हुई।[3] जायसी ने अपने काव्य 'पद्मावत' मे अपने समय के पूर्व लिखे गये सपनावती, मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती ग्रथो का उल्लेख किया है।[4] आज ये ग्रथ उपलब्ध नही है, अत यह कहना कठिन है कि ये रचनाएँ हिन्दू कवियो ने लिखी या मुसलमान कवियो ने। जायसी के पद्मावत के बाद उसमान कवि ने 'चित्रावली' शेखनबी ने 'ज्ञानदीप', कासिमशाह ने 'हंस जवाहिर', नूर मुहम्मद ने 'इन्द्रावती' तथा 'अनुराग बाँसुरी' आदि काव्य ग्रथ मसनवी शैली मे लिखे। इसके उपरान्त हिन्दू पौराणिक प्रेमाख्यान तथा मुसलमानी सूफी पद्धति से कुछ स्वतंत्र प्रेमाख्यान सम्बन्धी काव्य भी लिखे गये।[5]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अवधी मे काव्य रचना का श्रीगणेश प्रेमाख्यान काव्य मे हुआ। सूफी कवियो के ये प्रेमाख्यान काव्य मुख्यत चरित काव्य की पद्धति पर ही लिखे गये है। वस्तुत सर्वाधिक महत्वपूर्ण लोककथाओ को सूफी कवियो ने अपने काव्य के माध्यम मे साहित्यिक रूप देने की चेष्टा की। कालक्रम से उनमे से अधिकाश लोककथाएँ आज उपलब्ध नही है। उधर ब्रजभाषा मे भी अपने पौराणिक साहित्य की पृष्ठ-भूमि को लेकर चरित काव्य लिखे गये। उस काल के इन प्रेमाख्यान काव्यो की भाषा से स्पष्ट है कि इन कवियो ने अपने काव्य जन समाज की सरल और स्वाभाविक बोली मे लिखे। इसी कारण इनमे तुलसीदास की तरह सस्कृत के सामासिक पद तथा कठिन शब्दावलियाँ नही है।

डा० रामकुमार वर्मा का कहना है कि 'खुसरो के समय मे काव्य की दो प्रधान भाषाएँ थी—व्रजभाषा और अवधी।'[6] इससे स्पष्ट है कि खुसरो के समय तक शौरसेनी

---

[1] व्रजभारती, वर्ष ९, अक २, स० २००८, पृ० ११-१२।

[2] हिन्दी साहित्य का आलो० इति० (१९४८ ई०), पृ० ४५२ तथा ४७२।

[3] कुछ विद्वान 'मधुमालती' को जायसी के बाद की रचना मानते है। देखिये—मंझन का जीवन-वृत्त, त्रिपथगा, सूचना विभाग, लखनऊ, जुलाई १९५९।

[4] विक्रम धसा प्रेम के बारा। सपनावति कह गयेउ पतारा॥
मधुपाछ मुग्धावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी॥
राजकुँवर कचनपुर गयऊ। मृगावती कहँ जोगी भयऊ॥
साधु कुँवर खडावत जोग। मधुमालति कर कीन्ह वियोग॥
प्रेमावति कहँ सुरवर साधा। ऊपा लागि अनिरुध वर बाँधा॥ —जायसी कृत पद्मावत

[5] भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, १९५५ ई०, पृ० ३०-३१।
पदमावत सम्पा० वासुदेवशरण २०२१ वि० पृ० २

[6] हिन्दी साहित्य का आलो० इतिहास १९४८ ई० पृ० ४७२

अपभ्रंश तथा अर्ध मागधी से ब्रज तथा अवधी की बोलियाँ साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण करने लगी थी। इधर नई खोजों में जो साहित्य मिला है उससे यह पता चलता है कि ब्रजभाषा में साहित्य रचना का कार्य अवधी की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। अद्यावधि उपलब्ध साहित्य में ब्रजभाषा में एक प्राचीन काव्य 'प्रद्युम्न चरित' (सं० १४११) मिलता है।[1] इससे यह अनुमान होता है कि अवधी से पहले ब्रजभाषा ने शुद्ध साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण किया। इसी कारण ब्रजभाषा का साहित्य व्यापक रूप में लिखा गया। ब्रजभाषा का यह प्रभाव १९ वीं शती तक विशेष रूप से रहा और ब्रजभाषा 'स्टैण्डर्ड भाषा' के रूप में स्वीकार की गई। यही नहीं, अवध के कवियों ने भी ब्रजभाषा में काव्य रचना करने में अपना गौरव माना और गर्व के साथ कहा—'ब्रजभाषा हेतु ब्रजवास ही न अनुमानौ'।[2]

अवधी भाषा में लिखित काव्यों की लिपि प्रायः कैथी है जिसके कारण पाठान्तर हो जाता है और शुद्ध पाठ-निर्णय में कठिनाई होती है। प्रेमाख्यान काव्यों में जायसी के 'पद्मावत' की जो प्रति फारसी लिपि में प्राप्त हुई है उसमें बोलचाल की अवधी में सृजित काव्य का रूप सुरक्षित ही रहा क्योंकि फारसी लिपि में होने के कारण 'पण्डितों की शुद्धता का अंकुश' इन ग्रंथों पर न चल सका।

जब मुसलमानी आतंक से क्षुब्ध जनता ने निराश होकर भगवान् की ओर देखना शुरू किया तभी जनता के प्रतिनिधि धर्माचार्यों ने अपने मुख्य पीठ धार्मिक क्षेत्र और तीर्थ स्थानों पर बनाये। इन स्थानों पर रह कर उन्होंने लीलामय भगवान् के लोक-रक्षक और लोक-रंजक रूपों को समाज की मर्यादा के अनुरूप प्रतिष्ठापित किया और एतद्विषयक ग्रंथ एवं भाष्य लिखे। उसीसे प्रभावित होकर भक्त कवियों ने अपने काव्य को राग-रस-समन्वित करके शिष्ट रूप दिया जिससे जनता के जीवन में आशा और उत्साह का संचार होने लगा। उत्तरापथ में भगवान् के अवतारी रूप राम और कृष्ण हुए जिनके जन्म स्थानों (अयोध्या और ब्रज) की बोलियों ने साहित्यिक भाषाओं का रूप ग्रहण किया। द्रष्टव्य है कि रामकाव्य की अपेक्षा कृष्णकाव्य का क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ। ब्रजभाषा का प्रचार केवल ब्रज प्रदेश में ही नहीं अपितु अवधी क्षेत्र में भी पर्याप्त रूप में हुआ। स्वयं तुलसीदास ने रामचरितमानस, जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, बरवै रामायण और रामलला नहछू के अतिरिक्त शेष सभी रचनाएँ परिनिष्ठित ब्रजभाषा में लिखी। इतना होने पर भी भक्त कवियों ने अपने काव्य में 'ब्रज' और 'अवधी' दो भाषाओं के पार्थक्य की बात कभी नहीं कही क्योंकि उनका लक्ष्य 'भाषा-विवाद' नहीं था, भगवान् का लीला वर्णन था। हाँ, यह अवश्य हुआ कि राम की जन्मभूमि अयोध्या होने के कारण रामकाव्य प्रायः अवधी में ही लिखा गया और कृष्णकाव्य प्रायः ब्रजभाषा में। फिर भी कवियों की रचनाओं का अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राम का जीवन चरित ब्रजभाषा में और कृष्ण का जीवन चरित अवधी भाषा में भी लिखा गया। ब्रजभाषा के वरेण्य कवि सूरदास ने भी राम की लीलाओं का वर्णन किया और अवधी में कृष्ण काव्य की रचना लालचदास, बलवीर आदि कवियों ने की। लालचदास रचित काव्य 'हरिचरित्र' अवधी के कृष्ण काव्यों की परम्परा में उपलब्ध प्रथम काव्य है

---

[1] सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० ३१५।

[2] काव्य निर्णय : भिखारीदास (सं० १८०३) अध्याय १ छन्द १६।

जिसमे कृष्ण का चरित्र वर्णन प्रबन्ध काव्य के रूप में (स० १५८७) मे लिखा गया। यह ग्रंथ उस समय इतना समादृत एव प्रचलित हुआ कि उस काल मे इसका अनुवाद फारसी भाषा मे भी हुआ।[1] इससे विद्वानो की यह धारणा नितांत निर्मूल सिद्ध होती है कि कृष्ण-काव्य प्रबन्धकाव्य या महाकाव्य के रूप मे नही लिखा गया[2] और जो लिखा गया है वह १९ वी और २० वी शती मे ही लिखा गया।[3]

अवधी मे लिखित कृष्णकाव्य के प्रणेताओ ने व्रजप्रदेश के सम्प्रदायानुमोदित सिद्धान्तो के आधार पर प्राय. अपनी कविताएँ नही लिखी। कृष्णकाव्य का जो भी वर्णन मिलता है वह भागवत के अनुवाद के रूप मे तो है (उसे हम अविकल अनुवाद नही कह सकते) किन्तु कुछेक कवियो को छोडकर शेष ने स्वतत्र रूप से ही कृष्णचरित्र का वर्णन किया। कृष्ण-काव्य में यह चरित्र-वर्णन तीन रूपो मे मिलता है—(१) मुख्य कथा के रूप मे, कृष्ण की बाल-लीलाओ तथा उनके जीवन का वर्णन और गोपिका विरह। (२) गौण कथाओ के रूप मे, सुदामा चरित्र, रुक्मिणी मगल, दशम पर्व, महाभारत तथा जैमिनिअश्वमेध पर्व आदि के आधार पर अन्य कथाएँ। (३) अवान्तर कथाएँ—प्रद्युम्न चरित तथा उषा-अनिरुद्ध की कथा आदि के प्रसंग।

इन रचनाओ मे कवियो ने भक्ति पद्धति के—शान्त, दास्य, सख्य वात्सल्य, शृगार (माधुर्य) रूपो का ही अनुसरण किया है। अवधी के ये कृष्ण भक्त कवि प्रायः सम्प्रदायो की परम्पराओ के बधन से मुक्त रहे और उनका लक्ष्य प्रधानतः कृष्णचरित वर्णन ही रहा। सम्प्रदाय के दर्शन या भक्ति पद्धति का प्रचार उनका लक्ष्य नही था। इनमे से केवल लक्षदास तथा माधवीदासी की रचनाओं मे ही सम्प्रदायो की परम्पराओ पर आधृत भक्ति तथा चरित्र कथा का विवेचन किया गया है।

अवधी कृष्णकाव्य पर व्रजभाषा कृष्णकाव्य की धारा का प्रभाव

कृष्णकाव्य की मूलधारा का, सक्षेप मे विवेचन किया जा चुका है। इन पंक्तियो मे हम इसके प्रभाव की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करेगे।

व्रजप्रदेश के मुख्य केन्द्र—मथुरा, वृन्दावन को भगवान् कृष्ण की लीला-भूमि होने का गौरव प्राप्त है। कृष्ण भक्त आचार्यो ने अपने मुख्य केन्द्र यही पर स्थापित किये जिनमे मुख्य सम्प्रदायो की भक्ति पद्धति, उपासना के विविध रूपो तथा मान्यताओ को प्रश्रय दिया गया। उनके सम्प्रदायानुयायी कवियो ने अपने आचार्य के निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करके काव्य रचना की। इस प्रकार निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य तथा हितहरिवंश आदि आचार्यो ने भक्ति पद्धति की जो रूपरेखा निश्चित की उसी की पुष्टि उनके अनुयायी भक्त कवियो ने अपने काव्य के माध्यम से कृष्ण का लीलागान करते हुए की। किन्तु अवध प्रदेश मे जो भी

---

[1] हिन्दुई साहित्य का इतिहास तासी अनु० डा० वार्ष्णेय १९५३ ई०

कृष्ण काव्य लिखा गया वह व्रजप्रदेश के सम्प्रदायों की परम्परा को तद्रूप में ही ग्रहण न कर सका क्योंकि अवध के इन कवियों के वर्ण्य-विषय के मूलाधार मुख्यतः विष्णुपुराण, भागवत हरिवंश पुराण आदि धर्म-ग्रंथ ही थे।

लालचदास ने विष्णुपुराण का भी भाषानुवाद (सं० १५८५) किया था जिसकी खण्डित प्रतियाँ उपलब्ध होती है और उसके बाद भागवत दशम स्कन्ध का भाषानुवाद 'हरि-चरित्र' नाम से (स० १५८७) किया। लालचदास ने हरिचरित्र की कथा की आधार-भूमि विष्णु पुराण से ग्रहण करके 'भागवत' की मदाकिनी मे अवगाहन किया और दशम स्कन्ध की कथा का ही वर्णन किया। लालचदास की मृत्यु के उपरान्त आसानन्द ने 'हरिचरित्र' ग्रन्थ को भागवत मे वर्णित कृष्णचरित के अन्य प्रसंगो के (दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध) आधार पर महाभारत तक की कथा मे जोड दिया।

भगवान् कृष्ण के लोकरजक रूप का वर्णन निसर्ग सुषमा निबद्ध है कि जिसमे हमारा मन भी 'कन्हैया' की बाल-लीलाओ को अपने पुत्र की बाल-लीलाओ मे सम्बद्ध करके उसकी चिन्मय सत्ता की कल्पना करता हुआ नन्द और यशोदा के सौभाग्य की स्पृहा मे सन्तुष्टि पाता है। राजकुमार होने के कारण राम का चरित जन-जीवन से कुछ ऊँचा है किन्तु कृष्ण गोप-ग्वालो के सामान्य जन-जीवन की एक इकाई है। भागवत के दशम स्कन्ध में कृष्ण का चरित बड़ी ही सुन्दरता से वर्णित किया गया है। इसमे पदे-पदे कृष्ण के जगत्कारण तथा आदि ब्रह्म होने और ससार के पापियो का सहार करने हेतु पृथ्वी पर अवतरित होने की कथा कही गई है। कवि लालचदास के काव्य मे उस निराकार ब्रह्म के सगुण-साकार रूप धारण करने का प्रमुख कारण यही बताया गया है। शिव, राम और कृष्ण को एक ही पर-ब्रह्म की तीन शक्तियाँ मान कर उनमे समन्वय स्थापित करने की प्राचीन परम्परा का पालन किया गया है। अवधी के इन कृष्ण काव्यो मे व्रजभाषा मे वर्णित कई महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक प्रसगो—भ्रमरगीत तथा तार्किक पद्धति पर सगुणोपासना की प्रतिष्ठा और निराकार की भावना का खण्डन—को प्राय नही अपनाया गया। (लक्षदास का काव्य इसका अपवाद है जिसका विवेचन आगे किया जायगा)। उन्होने तो सगुण और निर्गुण को एक बताकर सामान्य ढग से उसका विवेचन किया। इस प्रकार के प्रसगो की ओर इन कवियो का ध्यान, सम्भवतः इसलिए नही गया क्योकि भागवत का अनुवाद करते हुए भी वे केवल कृष्ण चरित को प्रधानता देते रहे और सम्प्रदायो की भक्ति पद्धति के प्रभाव मे भी वचित रहे। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि ये कवि कृष्ण के लीलाधाम से जाकर किसी सम्प्रदाय मे दीक्षित नही हुए और उन्होंने स्वतन्त्र रूप से ही कृष्ण चरित का मुक्तक तथा प्रबंध रूप मे वर्णन किया।

अवधी मे लिखित यह कृष्ण काव्य व्रजभाषा के वरेण्य कवियो से भी पूर्व की प्रचलित परम्पराओ के आधार पर लिखा गया। अत इन प्रसगो को इतने प्राजल रूप मे ग्रहण न किया जा सका जितना कि व्रज के कवियो ने किया। कवि विष्णुदास की उपलब्ध रचना (सं० १४९२) मे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्राकट्य के ८०-९० वर्ष पूर्व मे ही मे कृष्ण-काव्य लिखा जाने लगा था वैसे कृष्णचरित वर्णन की यह परम्परा सस्कृत मे प्रारम्भ होकर प्राकृत और के प्राचीन काव्यो मे होती हुई

के रूप मे, हिन्दी को भी प्राप्त हुई। इसी पूर्वापर परम्परा के अनुसार हमारे प्राचीन साहित्य मे नैसर्गिक शोभा की आधार-भूमि पर ऋतु वर्णन आदि की परम्परा मिलती है। प्रेमाख्यान काव्यो मे बारहमासा तथा षड्ऋतु वर्णन को सुन्दरता से अंकित किया गया और अवधी के अन्य कवियो ने भी इसे परम्परागत् दाय के रूप मे प्राप्त किया। लक्षदास जी के समय मे भ्रमरगीत, बारहमासा, षड्ऋतु वर्णन, स्तोत्र तथा नामावली आदि का पर्याप्त प्रचलन हो चुका था, अतः उन्होने भी अपने काव्य मे इन सभी शैलियो मे भावपूर्ण रचनाएँ की।

व्रजभाषा के सूरसागर तथा कृष्ण गीतावली आदि ग्रन्थो की भाँति अवधी के इन कृष्ण-काव्यो को भी जन-सामान्य की प्रचलित बोली मे लिखा गया जिससे जनता अपने भगवान् की लीलाओ को समीप मे पढ, सुन और समझ सके। अवधी के कवियो ने विभिन्न स्थलो पर विविध रूपो मे कृष्ण की शोभा का वर्णन किया है और कृष्ण के शक्ति-शील-सौन्दर्य समन्वित रूप की पवित्र झाकी प्रस्तुत की है। इन काव्यों मे गोपियो का विरहवर्णन और नद-यशोदा के वत्सल-भाव की चरम परिणति अवश्य दिखाई गई है किन्तु उसमे वह रस-प्रवणता, अगूर की सी मिठास और मनमोहकता नही आ सकी जो सूर ने प्राप्त की। परम्परागत कृष्णचरित को प्रबन्ध कथा के रूप मे लिखने का कार्यारम्भ किया गया। लालचदास, आसानद और लक्षदास ने कृष्ण-चरित को प्रबन्ध काव्य के रूप मे प्रस्तुत किया। भीम, बलवीर तथा गोविन्ददास ने महाभारत के कुछ पर्वो का भाषानुवाद किया या स्फुट रूप मे कृष्ण के विषय मे कविताएँ लिखी।

व्रजभाषा मे लिखित इस कृष्णकाव्य का प्रभाव रामकाव्य पर भी पडा। तुलसीदास की गीतावली पर सूरसागर की स्पष्ट छाप है। गीतावली मे राम के बाल-वर्णन का प्रसग कृष्ण के बाल-वर्णन की ही भाँति किया गया है। राम-काव्य मे भी हिंडोला, वसत, होली आदि के प्रसग गृहीत हुए। कृष्ण के वियोग मे जो दशा यशोदा और गायो की होती है वही राम के वियोग मे कौशल्या और राम के घोडो की हुई है। तुलसीदास की कृष्ण गीतावली के कुछ पद भी सूरसागर के पदो मे मिलते है। जानकी रसिकशरण (सं० १७६०) के 'अवधी सागर' ग्रथ पर कृष्णकाव्य का यथेष्ट प्रभाव है।[1] श्रीरामचन्द्र और सीता की अष्टयाम सेवा, उनका रास, नृत्य, विहार आदि कृष्ण-काव्य की परम्परा के रूप मे ही लिखे गए है। परवर्ती काल मे तो कृष्ण भक्ति काव्य का प्रभाव राम-काव्य पर व्यापक रूप मे पडा और राम के मर्यादा चरित्र को भी (राधा-कृष्ण के शृगारी चरित्र की भाँति) शृगारी वृत्तियो मे लिप्त करके अंकित किया गया।[2] इतना ही नही, इसके आधार पर सम्प्रदायो का प्रवर्तन भी आरम्भ हो गया। 'स्वसुखी शाखा' और 'तत्सुखी शाखा' में राम-सीता की पति-पत्नी रूप मे सेवा तथा सखी भाव मे उनकी उपासना की पद्धति प्रचलित की गई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन सम्प्रदायो की इस परम्परा तथा तज्जनित साहित्य की कडे शब्दो मे भर्त्सना की है।[3]

---

[1] हिन्दी साहित्य का आलो० इति०, पृ० ६८०।
[2] वही पृ० ८४ तथा ६९०
[3] हिन्दी साहित्य का इतिहास २००९ वि० पृ० १५३ ५४

कृष्णकाव्य की धारा का प्रभाव इतना व्यापक और लोकप्रियता सक्षम था कि तुलसी-दास जी ने अपने गौरवभूत महान् ग्रंथ रामचरितमानस का भागवत के सिद्धान्तो की छाया ग्रहण करते हुए लिखा। इस सम्बन्ध मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि 'रामचरित-मानस या तुलसीकृत रामायण मे भागवत के सिद्धान्त भरे पड़े है। अन्तर केवल इतना ही है कि भागवत मे जो स्थान कृष्ण को दिया गया है, वही स्थान रामायण मे रामचन्द्र को दिया गया है और भागवत मे जहाँ माधुर्य भाव को प्रधान स्थान दिया गया है, वही रामायण मे प्रीतिभाव को।'[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य की मूलधारा का विकास इस रूप मे हुआ—

(१) ब्रजभाषा मे लिखित कृष्ण-काव्य की उपलब्ध रचनाएँ अवधी कृष्ण काव्य की अपेक्षा अधिक प्राचीन है।

(२) अवधी कृष्ण-काव्य विष्णु पुराण, भागवत तथा हरिवंश पुराण के आधार पर लिखा गया और व्रज के सम्प्रदायो की परम्पराओ से प्राय वंचित रहा। लक्षदास जी इसके अपवाद है।

(३) ब्रजभाषा मे वर्णित भ्रमरगीत, बारहमासा, षड्ऋतु वर्णन, स्तोत्र तथा नामावली आदि को अवधी कृष्ण-काव्य के प्रणेता कवियो ने भी ग्रहण किया।

(४) ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य की भाँति अवधी कृष्ण-काव्य भी जन-सामान्य की प्रचलित बोली मे लिखा गया।

(५) अवधी कृष्ण-काव्य भी प्रबन्ध (कथा के) काव्य के रूप मे लिखा गया।

(६) ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य का राम-काव्य पर भी प्रभाव पड़ा। राम-काव्य मे भी षड्ऋतु वर्णन अष्टयाम सेवा, रास नृत्य-विहार आदि का वर्णन होने लगा और राम के मर्यादा चरित्र को भी शृ गारी वृत्तियो मे लिप्सित करके लिखा गया।

(७) कृष्ण-काव्य की भाँति राम-काव्य मे भी सेवा तथा सखी भाव से उपासना की पद्धति प्रचलित हुई।

रामकाव्य की धारा का कृष्णकाव्य पर प्रभाव

उत्तरी भारत मे रामभक्ति के प्रचार का श्रेय स्वामी रामानन्द को ही दिया जाता है क्योंकि रामानन्द ने संस्कृत के ग्रन्थो का अनुशीलन करके राम की कथा को जन-समाज की बोली में सर्वजनसुलभ बना दिया। रामानन्द की यह भक्ति-परम्परा दो रूपो मे विकसित हुई—(१) संत मत की निर्गुण-निराकार की पृष्ठभूमि को लेकर, (२) तुलसीदास आदि परवर्ती कवियो की सगुण भक्ति के आधार पर। राम काव्य की निर्गुण और सगुण भक्ति-धारा का प्रभाव कृष्ण-काव्य मे भ्रमरगीत के रूप मे दिखाई दिया जिसमे ब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूप को विवाद का आधार बनाया गया। राम-काव्य की इस परम्परा का प्राचीनतम रूप वाल्मीकि रामायण मे मिलता है जिसमें राम को सामान्य मनुष्य के रूप मे

---

[1] हिन्दी साहित्य की भूमिका डा० द्विवेदी १९४८ ई० पृ० ७१

चित्रित किया गया है। वे एक महापुरुष तो है किन्तु उनमे देवत्व की छाया नही है। वाल्मीकि रामायण का रचना-काल ६०० या ४०० वर्ष ईसा पूर्व माना जाता है।[1] अत्यधिक प्राचीन ग्रन्थ होने के कारण कालातर मे इसमे प्रक्षिप्ताश भी सम्मिलित हो गये फिर भी ग्रन्थ का अधिकांश रूप अविकृत ही माना जाता है।

ईसा के २०० वर्ष पूर्व बौद्ध धर्म के चरमोत्कर्ष के समय बुद्ध को ईश्वरीय गुणो से विभूषित करके भगवान् का पद दिया गया इसी के फलस्वरूप वायुपुराण में राम को विष्णु का अवतार मानकर उनमें भी देवत्व की भावना आरोपित की गई। कुछ विद्वान वायु पुराण का रचना काल ईसा से ५०० वर्ष पूर्व मानते है।[2] महाभारत, नारायणीय तथा संहिताओ मे विष्णु के रूप और शक्ति के विकास के साथ ही राम का भी विकास हुआ। वे विष्णु के १० अवतारो मे गिने जाने लगे। विष्णुपुराण मे राम-भक्ति के विकास के साथ ही शक्ति को सीता का रूप दिया गया। अध्यात्म रामायण के समय तक राम सर्वशक्ति समन्वित देवत्व की कोटि मे गिने जाने लगे और ११वी शती तक राम के रूप मे निरन्तर परिवर्द्धन होता रहा और तभी राम-भक्ति को सम्प्रदाय का रूप दिया गया।[3] चौदहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे रामानन्द ने जाति-बंधन के विचार को ढीला करने और राम-भक्ति का प्रचार करने के उद्देश्य मे उत्तरी भारत मे यात्राएँ प्रारम्भ कर दी। स्वामी रामानन्द ने संस्कृत के अतिरिक्त काव्य भाषा मे भी कुछ रचनाएँ की और दास्य भाव से राम की उपासना पर जोर दिया। रामानन्द के सिद्धान्तो और उपासना की पद्धति का तुलसी ने अपने काव्य मे अद्भुत समायोजन किया।

तुलसीदास के पूर्व रचित रामकाव्य के प्रणेता दो कवियो का विवरण उपलब्ध होता है—(१) श्रीनिवासदास के शिष्य भगवतदास थे जिन्होंने अद्वैतवाद के खण्डन तथा विशिष्टाद्वैतवाद के समर्थन मे 'भेद भास्कर' नाम का ग्रन्थ लिखा। भगवतदास १४वी शताब्दी के अंत मे हुए।[4] (२) चन्द कवि ने दोहा-चौपाई मे हितोपदेश का अनुवाद (स० १५६३) बडी सफलता के साथ किया।[5] कवि की यह रचना सरल और प्रौढ़ है। संवत् १६४२ मे मुनिलाल ने 'राम-प्रकाश' ग्रंथ मे राम-कथा रीति शास्त्र के अनुसार लिखी। भाषा मे रामकाव्य के प्रणेताओ मे तुलसीदास जी ही सर्वश्रेष्ठ कवि हुए जिनके रामचरितमानस की सफलता और उत्कृष्टता का प्रमाण यह है कि 'मानस' के बाद रामकाव्यो मे प्रबन्ध रूप मे कोई भी ग्रन्थ इतना समादृत नहीं हुआ।

राम साहित्य के प्रणेताओ ने वैष्णव धर्म के आदर्शो के आधार पर ज्ञान और कर्म से भक्ति को श्रेष्ठ माना और सेव्य-सेवक भाव पर जोर दिया। इस साहित्य मे स्थान-स्थान पर राम के परब्रह्म होने का निर्देश है जो कि भागवत का प्रभाव है। तुलसीदास ने राम की बाल मनोवृत्तियो मे प्रवेश नही किया प्रत्युत् उनको दृश्य और श्रव्य रूप मे ही उपस्थित

---

[1] एन आउटलाइन आव द रिलीजस लिटरेचर आव इण्डिया फर्कुहर, पृ० ४।
[2] एन्साइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग १२, पृ० ५७१।
[3] वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स, पृ० ४७।
[4] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, (१९४८ ई०), पृ० ४८२।
[5] खोज रिपोर्ट १९१७-१८-१९, पृ० १२, संख्या ३६।

किया और इसमे सारी घटनाओ को वर्णनात्मक ढंग से ही सीधे-सादे शब्दो मे स्पष्ट किया है क्योकि राम परब्रह्म के अवतार तो थे ही तुलसी के सेव्य भी थे। अत मर्यादा की प्रतिष्ठा बनाये रखना भी अत्यावश्यक था। रामकाव्य अवधी और ब्रज दोनो ही भाषाओ मे लिखा गया।

अवधी मे रचित कृष्णकाव्य रामकाव्य की मूलधारा से प्रभावित हुआ और अवधी के इन कवियो ने दास्य भक्ति के आधार पर कृष्ण कथा का वर्णनात्मक ढग से सीधे सादे शब्दो मे कहा जिनमे श्रीकृष्ण के परब्रह्म या आदिब्रह्म होने का स्थान-स्थान पर सकेत किया गया है। कृष्ण का यह चरित्र भी मर्यादा की सीमा मे बँधा हुआ है। कृष्ण लोकरजक लीलाएँ तो करते ही है किन्तु 'परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्' होने के कारण उनका लोकरक्षक रूप और भी अधिक महत्वपूर्ण है। वे दुष्ट और राक्षसो का सहार करके आर्त्त पृथ्वी का कष्ट दूर करने के लिए ही पृथ्वी पर अपने समस्त परिकर तथा देवताओ सहित अवतार धारण करते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राम-भक्ति काव्य की परम्परा का कृष्ण-काव्य पर निम्नलिखित प्रभाव पडा—

(१) स्वामी रामानन्द ने राम-भक्ति की जो पद्धति और परम्परा चलाई उसके अनुसार राम-भक्ति निर्गुण (जैसे—कबीर) और सगुण (जैसे—तुलसी) दोनो रूपो मे विकसित हुई। इसी के फलस्वरूप कालान्तर मे कृष्ण काव्य मे भ्रमरगीत की परम्परा प्रारम्भ हुई जिसमे ब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूप को विवाद का आधार बनाया गया।

(२) राम काव्य से प्रेरित होकर कृष्ण काव्य मे भी दास्य भावना पर आधारित रचनाएँ की गई और कृष्ण के मर्यादा चरित्र (लोकरक्षक रूप) के महत्व को भी प्रतिपादित किया गया।

अवधी कृष्णकाव्य का इतिहास

पिछले पृष्ठो मे हमने कृष्णकाव्य के विकास की परम्परा का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है जिसमे अवधी कृष्णकाव्य की पीठिका के रूप मे उस समय तक की विकसित साहित्यिक परम्पराओ का सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सके। अब लक्षदास की काव्य-रचना भक्ति-पद्धति तथा भाषा-शैली आदि पर विचार करने के पूर्व हम अवधी मे कृष्णकाव्य के प्रणेता अन्य कवियो तथा उनके रचित साहित्य के विषय मे विचार करना उपयुक्त समझते है। एतदर्थ इन कवियो के जीवन तथा कृतित्व का संक्षिप्त परिचय हम आगे की पंक्तियो मे देंगे। अवधी कृष्ण-काव्य के उपलब्ध साहित्य मे सर्वप्रथम रचनाएँ माधवीदासी की मिलती है जो फुटकर पदो के रूप मे उपलब्ध है। अवधी कृष्णकाव्य को प्रबन्ध रूप मे प्रस्तुत करने का कार्य सम्भवतः लालचदास ने ही सबसे पहले किया क्योकि इनकी रचना 'हरिचरित्र' मे कृष्ण की कथा को क्रमबद्ध रूप मे प्रस्तुत किया गया है। 'हरिचरित्र' के वर्ण्य-विषय आदि की पद्धति से परवर्ती कवि भी पर्याप्त प्रभावित हुए प्रतीत होते है। इसका विस्तृत विवेचन आगे किया जायगा।

माधवी

इनका पूरा नाम माधवीदासी था। विद्वानो को इनके पुरुष होने का भ्रम है किन्तु ये भक्त महिला थी और चैतन्य सम्प्रदाय की अनुयायिनी थी।[1] इनके आविर्भाव काल का विवरण अन्यत्र कही नही मिलता। डा० बालमुकुन्द गुप्त ने अपनी थीसिस 'हिन्दी मे कृष्ण काव्य का विकास' मे माधवीदासी को, चैतन्य महाप्रभु के समय मे विद्यमान बताया है।[2]

माधवीदासी के पदो मे राधा-कृष्ण का मासल चित्रण नही है। भावुकता-पूर्ण कविता है जिसमे रस है और तन्मय कर देने की क्षमता।[3] शब्द-चयन सुन्दर है। उन्होने सस्कृत के शब्दो का प्रयोग अधिक किया है, काव्य की भाषा अवधी है।

लालचदास

लालचदास रायबरेली के निवासी हलवाई थे। इनके आविर्भाव काल और रचनाकाल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे परस्पर मतभेद है।[4] लालचदास की रचनाओ का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्होने स० १५८५ मे विष्णुपुराण और स० १५८७ मे भागवत दशम स्कध या हरिचरित्र की रचना की थी[5] जिसमे कृष्ण के चरित का वर्णन किया गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो ने लालचदास तथा उनकी रचनाओ को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है अतः इनके विषय मे विस्तृत विवरण उपलब्ध नही होता। हमने 'हरिचरित्र' के वर्ण्य-विषय आदि पर कुछ विस्तार से विचार किया है क्योकि अवधी कृष्णकाव्य की परम्परा मे यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रथ मे कृष्ण की कथा को सबसे पहले दोहा-चौपाई की शैली मे क्रमबद्ध रूप मे लिखा गया है।

लालचदास कृत 'हरिचरित्र' की एक विशेषता यह और है कि इस ग्रंथ को लालचदास अपने जीवनकाल मे पूरा न कर पाये। इसे बाद मे आसानद ने पूरा किया।[6]

हरिचरित्र का वर्ण्य विषय

हरिचरित्र को लालचदास ने भागवत के आधार पर लिखा अवश्य किन्तु उसे भागवत का अविकल अनुवाद नही माना जा सकता है क्योकि लालचदास ने इस रचना के वर्ण्य-विषय

---

[1] हिन्दी मे कृष्ण काव्य का विकास (टकित प्रति) : डा० बालमुकुन्द गुप्त, (आगरा विश्व-विद्यालय पुस्तकालय), पृ० ६३८।

[2] वही।

[3] मध्यकाल की हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० २१४।

[4] हिन्दुई साहित्य का इतिहास : तासी, अनु० डा०लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० २७१-२७३।
हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास : ग्रियर्सन, अनु० किशोरीलाल गुप्त, पृ० ११३।
साहित्य, वर्ष ९, अंक ३, पृ० १७।
ब्रजभारती वर्ष ५, अक २, पृ० ६।

[5] हिन्दी अनुशीलन—अवधी मे कृष्ण-काव्य के प्रणेता कवि लालचदास, वर्ष १४, अक ३, पृ० १८

[6] इस सम्बन्ध मे 'आसानद' का विवरण देते समय विस्तार से विचार किया जायगा।

का आधार मुख्यत विष्णुपुराण हरिवंश पुराण देवीभागवत और श्रीमद्भागवत के पर्याप्त अनुशीलन के बाद किया है। इस ग्रंथ में कवि ने कुछ प्रसंग स्वयं नये जुटे हैं। तृतीय अध्याय में देवकी और यशोदा का यमुना तट पर सामान्य नारियों की भाँति मिलना बताया गया है जिसमें यशोदा ने देवकी को अपना बालक देने का आश्वासन दिया है।[1] भागवत में आठवें बालक को नंद के पास भेजने की बात नंद और वसुदेव की मित्रता के कारण बताई गई है। वस्तुत यह लालचदास का मौलिक सूझ है। वैसे मनोवैज्ञानिक तथ्य भी यही है कि नारी-हृदय पुत्र वियोग की आशंकामात्र से विचलित होकर टूक-टूक हो जाता है। कवि ने इस नये प्रसंग को जिस रूप में ग्रहण किया है उससे इस कथा को एक नई दिशा मिली है। बालक कृष्ण के प्रति यशोदा के प्रगाढ़ प्रेम का सूत्र यशोदा की वचनबद्धता बनाई गई है।[2] सातवें अध्याय में श्रीधर ब्राह्मण का वर्णन किया गया है। वह कंस की प्रेरणा से श्रीकृष्ण को मारने का प्रयत्न करता है। विचारणीय है कि श्रीमद्भागवत में श्रीधर ब्राह्मण का प्रसंग नहीं दिया गया है। इस ग्रंथ के ८७ अध्यायों को भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर लालचदास ने लिखा जिसमें गर्भ स्तुति, जन्म स्तुति, असुर मंत्र विचार वसुदेव नंद संवाद पूतना वध, श्रीधर विप्र अंगभंग, तृणावर्त-कागासुर वध, कृष्ण बाल चरित्र वर्णन, उलूखल बंधन, यमलार्जुन मोक्ष, बकासुर-अघासुर वध, बह्म बछाहरन (ब्रह्माजी का मोह नाश) और ब्रह्मा जी द्वारा की गई स्तुति, यमुना प्रवेश, कालिय मोक्ष प्रदान, दावाग्निमोचन, प्रलम्ब वध, वर्षा ऋतु वर्णन, वस्त्र विमोचन, गोवर्द्धन पूजा तथा इन्द्र स्तुति, कामधेनु स्तुति, वरुण संवाद, रास क्रीडा एवं रास मण्डल, विद्याधर मोक्ष, शंखचूड आदि दैत्य वध, अक्रूर वध एवं अक्रूर संवाद गोपी विलाप एवं अक्रूर स्तुति, सुदामा गृह भोजन नगर प्रवेश हस्ती कुवलया-पीड वध, मुष्टिक चाणूर वध, तथा कंस वध तक की कथा दी गई है।

४८ वें अध्याय का प्रारम्भ नंद मोह से होता है, उसके बाद गुरु पुत्र प्रदान करने की कथा, उद्धव मथुरा गमन आदि प्रसंगों से पुन कथा प्रारम्भ की गई है। इस भाग को आसानन्द ने लिखा है जिसमें कालयवन वध, मुचकुंद स्तुति, रेवती-हलधर विवाह, रुक्मिणी

---

[1] सुनु राजा हरि कथा सोहाई। गई देवकी जमुन नहाई।
जसोमति गई नंद की नारी। संग लिये पुनि आई गुआरी।।
बालक संग गुआरिन लीन्हा। देखि देवकी रोदन कीन्हा।।
× × ×
कहे देवकी सुनहु जसोदा। सब सुख छार सून जेहि गोदा।
मैं देवकी कंस मोर भाई। षट बालक मोर कतेसि छिनाई।
बहुरि आस मोहि कह विधि दीन्हा। जानत होत हिउ हाँसे कीन्हा।।
सुन तज सोद मा गहवरी। रोवहि दुवोकर गहि धरी।।
कहे जसुदा सुनु देवकी नारी। हम तुहवा चाकरहि विचारी।।
मैं सुत आपन देव पठाई। जिमि नहि जाने कंस गोसाई।।
मैं सतु कीन्ह बहिनि तेहि मैं सुत दैहो तोहि।
अब जनि बिलपु देवकी शिव बाचा है मोहि।। —हरिचरित्र (हस्तलिखित

[2] देवकी और यशोदा के परस्पर मिलने और अपने बच्चों को आदान-प्रदान करने का संकेत 'देवीभागवत' में मिलता है।

द० देवीभागवत विशेषांक गीताप्रेस पृ० २०८

हरण एवं विवाह, शम्बर वध, रति विवाह, मणिहरण की कथा, पारिजात लाने की कथा बज्रनाभ, रुक्म बाणासुर, पौण्ड्रक वसुदेव, द्विविध वानर, जरासंध और शिशुपाल आदि के वध की कथा, राजसूय यज्ञ कृष्ण-सुदामा भेंट, सुदामा का दारिद्र्य भंजन, बलदेव जी की तीर्थयात्रा और स्नान आदि का वर्णन किया गया है। अंत मे षट् बालक मोक्ष, वेद स्तुति, अर्जुन-सुभद्रा विवाह का प्रसग देते हुए विप्र पुत्र प्रदान की कथा दी गई है। इस ग्रथ मे कथानक का अनावश्यक विस्तार नहीं किया गया। केवल प्रमुख प्रसगो को वर्णनात्मक ढग से विष्णु पुराण और भागवत की कथावस्तु के आधार पर लिखा गया है। ग्रथ के अध्यायो का क्रम कवि ने अपनी सुविधा के अनुसार रखा है। लालच रचित कथा के कुछ प्रसगो को आसानद ने पुनः लिखा है।

भक्ति पद्धति—इस ग्रथ मे कृष्ण को आदि ब्रह्म के रूप मे माना गया है और राम, कृष्ण और शिव मे अभेद मानकर उनका स्मरण किया गया है। कवि की भक्ति भगवान् के नाम चिंतन, कथा-श्रवण तथा उनके गुणानुवाद मे ही अतर्भुक्त हो गई है। दैवी गुणो मे विभूषित भगवान कृष्ण तथा राम का चरित्र उज्ज्वल रत्न की भाँति दीप्त हो उठा है। लालचदास ने कृष्ण के मर्यादा भाव (लोक रक्षक) और लीला भाव (लोक रजक) दोनो ही रूपो का वर्णन किया है। ग्रथ मे यथास्थान निर्गुण और निराकार ब्रह्म की ओर संकेत किया गया है किन्तु वह भगवान् के सगुणोपासक रूप को स्पष्ट करने मे सहायक ही हुआ है।[1] लालचदास ने राम और कृष्ण के नाम मे अभेद भाव माना है[2] और सुत-कलत्र को भगवतसमर्पण करना ही श्रेष्ठ समझा है।[3]

हरिचरित्र की प्रतिया प्राय कैथी लिपी मे मिलती है जिसके कारण पाठ भ्रष्ट हो गया है। हमारा अनुमान है कि कवि का काव्य वर्तमान उपलब्ध पाठो से निश्चय ही शुद्ध रहा होगा। उस काल की रचनाओ को देखते हुए कवि की यह रचना बहुत सुन्दर है। इस ग्रथ को आलोचको के द्वारा साधारण कोटि का घोषित करने की बात[4] इसके आद्योपान्त अनुशीलन से भ्रमपूर्ण सिद्ध होती है। वस्तुत अद्यावधि उपलब्ध अवधी की रचनाओ मे कवि लालचदास ही प्रथम कवि है जिन्होंने कृष्ण की कथा को प्रबन्ध रूप में लिखने का सफल प्रयास किया। कवि के इस प्रयास का जनता ने उल्लसित हृदय से स्वागत किया और समस्त उत्तरापथ मे इसका प्रचार हुआ। इतना ही नही फारसी भाषा मे इसका अनुवाद होना

---

[1] क अदभुत चरित चतुरभुज बुध जन करहि विचार।
मगुन सरूप सो निर्गुन इहै सो नद कुमार॥
—हरिचरित्र (हस्तलिखित प्रति)

ख. सुर नर मुनि सबै अनदित छूटहि वसुधा भार।
लालच के प्रभु निर्गुन जस्मत है ससार॥—वही

ग जेहि ठाकुर का अत न पाइय। सगुन सरूप सुनत तरि जाइय॥—वही

[2] अमृत रसना चाखहु राम कृष्न को नाम।
सपनेहु सकट न पावै लालच बोलहु राम॥—वही

[3] सुत कलत्र अन लालच बलि बलि जादौनाथ॥—वही

[4] हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १९८।
हिन्दी साहित्य का आलो० इति० (१९४८ ई०) डा० रामकुमार वर्मा पृ० ८४१

इसकी सवजन प्रियता का और भी श्रेष्ठ प्रमाण है [1] की इस रचना का कृष्ण काव्य के परवर्ती कवियो पर भी प्रभाव पडा हमारे कवि लक्षदास भी की इस रचना से प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं जिसके सम्बन्ध मे आगे उल्लेख किया जायगा।

छद, रस, अलंकार

लालचदास के दोनो काव्य ग्रंथ (हरिचरित्र और विष्णुपुराण) केवल दोहा चौपाई की शैली में लिखे गये है। 'हरिचरित्र' मे चौपाई के बाद दोहा देने की पद्धति मे कोई नियम नही है। कहीं ६ अर्द्धाली के बाद दोहा दिया गया है तो कही १७ अर्धाली के बाद। वैसे सारे काव्य मे ६ अर्धालियो से लेकर १७ अर्धालियो के बाद दोहा रखा गया है। लालचदास की इसी परम्परा को लक्षदास ने भी अपने काव्य मे ग्रहण किया है।

सारे काव्य ग्रथ मे तीन रसो का वर्णन मिलता है—अद्भुत, शान्त और शृगार। शृगार के दोनो पक्षो का वर्णन है किन्तु सयोग शृगार के वर्णन मे कवि ने अधिक कुशलता दिखाई है। रासलीला वर्णन मे सयोग की लीलाओ का सम्यक् वर्णन है और गोपी विलाप (३९ वा अध्याय) मे कृष्ण के विरह मे उत्पन्न मनोदशा का जीता-जागता चित्र खीचा गया है।

कवि ने कथा को और भी उत्तम और ग्राह्य बनाने के लिये अलकारो का स्वाभाविक प्रयोग किया है। इससे ग्र थ के काव्यगत सौन्दर्य में भी वृद्धि ही हुई है।

अनुप्रास—	कर कंकन कटि किंकिनि बाजे। मोर पक्ष सिर मुकुट बिराजे।[2]
ललितोपमा—	डरत डरत ग्रह भीतर पैसे। पर धन हरे चोर चलु जैसे॥[3]
उपमेयोपमा—	जोवत बदन सुगुध भा जोगी। जूभ्फि परे जनु काम वियोगी॥
	सती सीता गुन गौरी रूप अहेल्या नारि।
	जैसी वह तैसी यह विधि ने गढी सभारि॥[4]
अनन्वयोपमा—	जेहि देषत मन अनत न जाई। जस कुहरू के जोति सोहाई॥[5]
उत्प्रेक्षा—(१)	जनलक अध लोचन जनु पाए।[6]
(२)	हरि के निकट दत बक आवा। मनहु राहु रवि सन्मुष आवा॥[7]
सन्देह—	विमल कुसम सुगध सोहाए। की जदुनाथ मोहि पहिराए॥[8]
रूपकातिशयोक्ति—	बेनु विषान वशी कर लीन्हे। सोभित मनि गन भूषन कीन्हे।
	गु जाफल सोभित बनमाला। मद मद गति चलत गोपाला॥

[1] हिन्दुई साहित्य का इतिहास . तासी, हिन्दी अनुवाद, पृ० २७१।
[2] हरिचरित्र (हस्तलिखित), पृ० २७।
[3] वही, पृ० २१।
[4] हरिचरित्र (हस्त०), पृ० ५०।
[5] वही, पृ० ५६।
[6] वही, पृ० १६।
[7] वही पृ० २७।
[8] वही पृ० ४९

कर कंकन कटि किंकिनि बाजे मोर पक्ष सिर मुकुट बिराजै ।।
कर तल वेनु कमल दल लोचन । उर वन माल वनित मे मोचन ।.
भौंहन बीच तिलक पत्रावलि । कु डल लोल कंठ मुकुतावलि ।।
प्रान जिवन मन हरन मुरारी । चरन रेनु लालच बलिहारी ।।[1]

अतिशयोक्ति—नृप देषत दुष सबै नसावा । त्रषा लागि अनु अमृत पावा ।।
देत आलिगन हृदौ जुडाना । रोम रोम पुलकित भे प्राना ।।
जानहु मृतक सजीवनि पाई । देह तपत जनु भले चढाई ।।[2]

प्रतीप— सोभित सौरह कला मयकु । औगुन इहे जो लागु कलकु ।।
चन्द्र बिम्ब जनु कु द चढावा । विधि ने छोरि कलकल गावा ।।
सो मयक विधि निर्मित कीन्हा । त्रिभुवन तेहि कढि जनु लीन्हा ।।
जोवत बदन मुगुध भा जोगी । जूझि परे जनु काम वियोगी ।।[3]

रूपक— मधुबन की सब सषी सभागी । अंबुज नैन निहारै लागी ।।[4]

सांगरूपक—चरनन आदि सिगार बनावा । ऐंडिन जनु मजीठ रचि लावा ।।
कहि न जाइ नष जोति अपारा । अगुरिन उदै भयउ जनु तारा ।।
नेपुर खब्द भयेउ झनकारा । सोवत मदन जगावनि हारा ।।
अति अनूप गुलफन के आभा । जांघ जुगल जनु कदली खभा ।।
हीरा छोलि जो चोलि चढावा । लंक न डोलै जनु भरमावा ।।
लटकि रही कटि ऊपर चौरी । लकहीन डोलै जनु भौरी ।।
नीवी गाठि दीन्हि मुह मोरी । अति गभीर नाभि अति थोरी ।।
अपे पयोधर सुभग सोहाए । कनक कलस जनु नेत ओठाए ।।
कनक दड जनु भुजा निनारे । जनु बिसकर्मै चित्र सवारे ।।
रचि विचित्र विधि ग्रीव निर्मई । रतन जरित जनु कनक तवाई ।।[5]

परिणाम— रसना कवल पत्र फहराई । दसन जोति जनु मनि रचि लाई ।।[6]

विशेष—लालचदास की इस रचना में अवधी का चलता हुआ रूप प्रयुक्त किया गै
वदेशी भाषाओं के शब्द (जैसे-कुरबानी, मुकाबला, जुल्फे, कसम आदि) भी प्रयुक्त कि
और यत्र-तत्र मारवाडी के शब्द भी (न जाणे, माणा आदि) भी मिलते है । कवि
गत रूढियो (जैसे-अपशकुन, बुरे स्वप्न) का भी प्रयोग किया हे । जिस प्रकार परवत
मे गोस्वामी तुलसीदास ने राम-लक्ष्मण के जनकपुरी मे घूमते समय धनुप यज्ञ मे रा
ोमिलना तथा धनुष की कठोरता के विषय मे नर-नारियों के वार्तालाप का वर्णन किया

ही, पृ० २७ ।
ही, पृ० ५५ ।
रिचरित्र (हस्त०) पृ० ५० ।
ही, पृ० ६७ ।
ी पृ० ५८ ।
ही पृ० ५१

उसी प्रकार लालचदास ने राम-कृष्ण के मथुरा में घूमने तथा मल्लयुद्ध के पूर्व इनकी कोमलता के बारे में नर-नारियों के विचार व्यक्त कराये है जो कि श्रीमद्भागवत का प्रभाव है।

विष्णु पुराण—इस ग्रंथ के केवल प्रथम १७ पृष्ठ ही डा० शिवगोपाल मिश्र के पास है जो हरिचरित्र के साथ ही सिले हुए है। स० १७४७ में जगदीश श्रीवास्तव कायस्थ ने इसकी प्रतिलिपि कैथी लिपि में की। ग्रंथ में राम और कृष्ण के चरित्र का संक्षेप में वर्णन मिलता है। इसमें मरण के समय कृष्ण और उद्धव की वार्ता भी दी गई है। इस ग्रंथ की दो प्रतियाँ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के साहित्य विभाग में है।

आसानन्द

आसानन्द रायबरेली के निवासी थे किन्तु वृत्ति के हेतु हस्तिनापुर में रहते थे। वे जाति के कायस्थ थे। उनके पिता का नाम प्रताप था। वे धर्म की मूर्ति तथा ब्राह्मण एवं गुरुभक्त थे।

अपने जीवनकाल में लालचदास ने 'हरिचरित्र' के केवल ८८ अध्याय ही लिख पाये किन्तु जब उन्हें प्राण संकट होने लगा तो उन्होंने गंगाजी के तट पर इस ग्रंथ के अपूर्ण रह जाने पर दुःख प्रकट किया और अपने शिष्यों (मित्रों ?) को उसे पूरा करने का आदेश दिया।[1] लालच की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद स० १६०१ में आसानन्द के हृदय में भक्ति स्फुरित हुई और उसने ८६ वे अध्याय से 'हरिचरित्र' ग्रंथ को लिखना प्रारम्भ किया और ९० अध्यायों में समाप्त कर दिया। अपनी ख्याति के प्रति अनासक्त इस भक्त कवि ने सारे ग्रंथ में लालच तथा जनलालच उपनाम देकर ही कथा को पूर्ण किया है।[2]

प्रो० नलिन विलोचन शर्मा ने लालच कृत विष्णुपुराण का रचनाकाल स० १५८५ वि० स्वीकार किया है और आसानन्द का स० १६७१ वि०।[3] इस प्रकार लालच के कुछ वर्ष बाद आसानन्द के रचना करने का समय ८६ वर्ष बाद आता है जो 'कुछ' की परिधि के बाहर निकल जाता है। वस्तुतः यह स० १६०१ है जब आसानन्द ने ग्रंथ रचना प्रारम्भ की, सं० १६७१ नहीं।[4] 'हरिचरित्र' के वर्ण्य विषय आदि का विवरण पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है।

भीम कवि

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट में भीम कवि की दो रचनाओं के प्राप्त होने की सूचना दी गई है—

---

[1] साहित्य सन्देश दिसम्बर १९५८, पृ० २६७।

[2] संवत केतिक बीति जब गयऊ, सोडस सत एकोतर भयऊ।
बिस्नु भगति उपजावहु भाऊ। हरिपद लीन आसानद नाऊ॥
× × ×
सुनि हरि कथा हर्ष जिव भएऊ। आसानद भगति जिव ठएऊ॥
लालच कीन आधा सौं आई। किस्न दयाल समक भै जाई॥
जो गनपति दया चितकरई। सारद माए जिमि अनुसरई॥
श्री हरि हिरदै बुधि परगासौ। कहत सुनत दुख पातख नासौ॥

[3] साहित्य वर्ष ८ अंक ३ पृ० १७

[4] साहित्य सन्देश दिसम्बर १९६० मेरा लेख हरिचरित्र और का समय पृ० २६५

१ हरि लीला सोलह कला स० १५४१ वि०

(२) डगव पर्व, रचनाकाल स० १५५० वि०।[१]

डा० शिवगोपाल मित्र ने भी भीम कवि कृत दो रचनाओं के प्राप्त होने की सूचना दी है—(क) डगवै परिग्रह, (ख) चक्र व्यूह कथा।[२]

'डगवै कथा' श्रावण शुक्ला सप्तमी सम्वत् १५८७ वि० को प्रारम्भ हुई जब कि दुर्मुख सवत्सर था।[३] इस पुस्तक की एक प्रतिलिपि स० १६४६ की है और दूसरी स० १७४४ की है।[४] 'डगवै कथा' मे भीम कवि ने अपने गाँव का नाम अमरनगर बताया है। वे कायस्थ कुल मे रतन और बलवीर के यहाँ पैदा हुए थे। उन्होने अपने आश्रय-दाता बघेलराजा भोपति की राजधानी का विस्तार से वर्णन किया है। राजा भोपति की रानी मनिकादेई अत्यन्त धर्मपरायणा थी। उसके घटमादेई नाम की पुत्री थी जो महाभारत की 'डंगवै कथा' का नित्यप्रति पाठ करती थी। भीम कवि ने 'भाषा' मे यह कथा उसी के लिये लिखी।[५]

'चक्र व्यूह कथा' की उपलब्ध तीन प्रतियो मे एक पूर्ण प्रति है। उसमे ग्रन्थ का रचना काल नही दिया गया किन्तु लिपिकाल पूस सुदी ५ सम्वत् १७४६ है। इस प्रति मे कवि ने आत्म-परिचय के रूप मे कुछ भी नही लिखा।[६]

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे प्राप्त 'हरि लीला सोलह कला' (रचना काल स० १५४१) की रचना राजस्थानी भाषा में हुई है। प्रस्तुत पुस्तक का विस्तृत विवरण इस समय कहीं उपलब्ध न होने से यह कहना कठिन है कि उक्त ग्रन्थ के रचयिता हमारे आलोच्य कवि भीम ही है या इस नाम के कोई अन्य कवि भीम है।

बलवीर

ये निरहुन के क्षत्रिय थे। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसके ग्रन्थ 'दगव पर्व' का रचना काल १५५२ ई० दिया है।[७] पता नही डा० अग्रवाल ने किस आधार पर इसका समय १५५२ ई० (स० १६०९) माना है। वस्तुतः यह गलत है क्योकि कवि ने अपने ग्रन्थ का रचना काल स० १६०८ बताया है।[८] इस ग्रन्थ मे महाभारत के युद्ध का अवधी भाषा मे वर्णन किया गया है। कवि ने ग्रन्थारम्भ गणेश वदना मे करते हुए सक्षेप मे आत्म-परिचय

---

[१] नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका, वर्ष ५६, स० २००८, पृ० ३० तथा ४६।

[२] साहित्य सन्देश, मार्च १९५९, पृ० ४२१।

[३] सवत पन्द्रह सौ सत्तासी भयेऊ। दुरमुख नाम संवत् चलि गयेऊ।।
सावन शुकुल सत्तिमी आई। भीम कथा डंगवै बनाई।।
—साहित्य सन्देश, मार्च १९५९, पृ० ४२१।

[४] वही, पृ० ४२५।

[५] वही, पृ० ४२१।

[६] वही पृ० ४२१।

[७] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६०, अंक सवत् २०१२, पृ० ५६।

[८] संवत् सोरह सय बरिस तापर बीते आठ।
कीन्हौ दगव पर्व को प्रगट पुरातिम आठ
खोज रिपोर्ट १९१७-१९ एपेंडिक्स प्रथम सख्या १३

दिया है खोज रिपोर्ट में कविता का नमूना भी दिया गया है किन्तु वह अत्यल्प है खोज रिपोर्ट के सम्पादक ने उसे साधारण श्रेणी का कवि बताया है।[1]

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में लिरहुत के क्षत्रिय ललीर का उल्लेख किया है जिन्होंने महाभारत पर 'द्रोण पर्व' नामक पुस्तक लिखी। इनका आविर्भाव काल संवत् १६०८ बताया है। रचना साधारण है।[2] हमारा अनुमान है कि ललीर कोई पृथक् कवि नहीं है, यह बलवीर ही है।

गोविन्ददास

सरोजकार ने इनका नाम व्रजवासी गोविन्ददास लिखा है और इनका समय सं० १६१५ माना है। ये नाभाजी के शिष्य थे। रागसागरोद्भव में इनकी कविता है।[3] डा० रामकुमार वर्मा ने इनका जन्म संवत् १६११ बताया है। इन्होंने भक्ति विषयक अच्छे पद लिखे। इनके ग्रन्थ का नाम 'एकादश पद' दिया गया है जिसमें राधा-कृष्ण के विषय में सुन्दर भजन लिखे गए हैं। काव्य ब्रजभाषा में है किन्तु उस पर पूर्वी प्रभाव भी है। कवि का आविर्भाव काल सं० १६४० है।[4] ग्रन्थ के प्राप्य न होने के कारण उसका विस्तृत विवरण देना सम्भव नहीं है।

कृष्णकाव्य का सिंहावलोकन

वर्ण्य विषय—कृष्णकाव्य का वर्ण्य विषय मुख्यतः विष्णुपुराण, हरिवंश पुराण और भागवत पर आधारित है। कृष्ण के जिन विविध रूपों को व्रज प्रदेश के कवियों ने सरल भाषा में अंकित किया है, वह जन जीवन के अधिक समीप है। राम जहाँ एक राजकुमार है और समाज के स्तर से ऊँचे उठकर भी मर्यादानुसार कार्य करते हुए दिखाये गये हैं वहाँ कृष्ण तो गोप ग्वालों तथा जन सामान्य के बीच की एक इकाई है। भागवत के दशम स्कन्ध में कृष्ण की जिन बाल-लीलाओं का वर्णन किया गया है, कृष्ण भक्त कवियों ने, सामान्यतः उसी विषय को अपने काव्य का आधार बनाया। भगवान् कृष्ण की लीलाओं में रासलीला को विशेष प्रश्रय दिया गया जिसके कारण प्रकृति की शोभा और ऋतु वर्णन को विशेष प्रोत्साहन मिला। कृष्ण के परदेश चले जाने पर गोपियों ने उनकी स्मृति में दिन और महीने गिनने प्रारम्भ किये फलतः 'बारहमासा' को काव्य का रूप मिला। व्रज और अवधी के लगभग सभी कवियों ने षड्ऋतु वर्णन और बारहमासा की पद्धति को अपनाकर अपनी काव्य रचनाएँ कीं। ब्रजभाषा के कवियों ने 'भ्रमरगीत' को एक नये ढंग से लिखा जो उनकी मौलिक चीज थी।

अवधी के कवियों ने कृष्णकाव्य को दास्य भाव से प्रेरित होकर लिखा है[5] किन्तु

---

[1] वही।
[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १९४८ ई०, पृ० ८४४।
[3] शिवसिंह सरोज, १८८३ ई० पृ० ८८ तथा ४०६।
[4] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १९४८ ई०, पृ० ८४४-४५।
[5] भक्ति हेतु जन लालच हरषित बंदौं पाय।

× × ×

चरन सरन जन लालच कसे हरिचरित्र हस्तलिखित पृ० १

ब्रज के कवियों ने सखी और सखा भाव में इनकी क्रीड़ाओं का चित्रण किया और नित्य विहार तथा अष्टयाम सेवा को विविध रूपों में गाया। सखा भाव में कृष्ण के स्तवन को प्रधानता पुष्टिमार्ग से मिली और सखी भाव का प्रेरणास्रोत निम्बार्क सम्प्रदाय हुआ। राधा-वल्लभ सम्प्रदाय ने राधा को ही आराध्या मानकर आनुषंगिक रूप में कृष्ण की पूजा को श्रेष्ठ माना। इसके अपवाद स्वरूप मीरां ने एकान्त प्रियतम के रूप में कृष्ण भगवान् का स्तवन किया। चैतन्य सम्प्रदायानुयायी कवियों ने भी मीरां की भाँति कान्ता भाव (राधा रूप में) में कृष्ण की उपासना करना अपना अभीष्ट माना।

ब्रजभाषा में कृष्ण भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायों के प्रवर्तन के कारण कृष्ण चरित तथा उनकी लीलाओं को विविध रूपों में ग्रहण करके काव्य का माध्यम बनाया गया। इसमें सम्प्रदायों के दर्शन और भक्ति पद्धति का विशेष प्रभाव पड़ा। अवधी में जो भी कृष्णकाव्य उपलब्ध होता है (दो एक कवियों को छोड़कर) वह सम्प्रदायों की परिधि में नहीं आता। वह तो संस्कृत के ग्रंथों का केवल भाषा रूप ही है।

ब्रज और अवधी के कृष्णकाव्य में कृष्ण के जिस स्वरूप का विकास हुआ उसमें नखशिख वर्णन, षड्ऋतु और नायक-नायिका भेद को विस्तृत रूप दिया गया। इसी अलंकारभारवनिता भाषा ने रीतिकाल के काव्यों की रूपरेखा और पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

छंद—अवधी कृष्ण काव्य प्रायः दोहा-चौपाइयों में ही लिखा गया। ब्रजभाषा के कवियों ने भी दोहा-चौपाई छंद को अपनाया क्योंकि दोहा-चौपाई छंद वर्णनात्मकता के लिये सर्वोपयुक्त छंद है। इस छंद में कृष्ण के चरित को प्रबंधात्मक रूप में लिखने में सुविधा रही। 'मधुमालती' और 'मृगावती' में चौपाई की ५ पंक्तियों के बाद एक दोहा है, 'पद्मावत' में सात के 'रामचरितमानस' में आठ पंक्तियों के बाद दोहा रखा गया है किन्तु लालचदास के 'हरिचरित्र' बाद और में इस प्रकार का कोई बंधन नहीं रहा। उन्होंने ६-७-८ अर्धालियों से लेकर १७ अर्धालियों के बाद तक दोहा रखने का क्रम अपनाया जो अपभ्रंश का प्रभाव है क्योंकि पुष्पदंत के 'महापुराण' में ६ अर्धालियों से लेकर १०-११-१२ और १३ अर्धालियों के कडवक के बाद 'घत्ता' का प्रयोग किया गया है। लक्षदास की रचनाओं में भी चौपाइयों के प्रयोग के बाद दोहा रखने का कोई निश्चित क्रम नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कवियों ने दोहे के प्रयोग के इस प्रतिबन्ध को कथा के प्रसंग के सम्यक् निर्वाह की सुविधा के लिये शिथिल कर दिया। लक्षदास ने कृष्ण काव्य के लिये बरवै छंद का नया प्रयोग प्रारम्भ किया। इनके सम्बन्ध में आगे विचार किया जायगा। ब्रजभाषा कृष्ण काव्य में पदों का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है किन्तु अवधी में पद साहित्य नहीं लिखा गया क्योंकि उसकी गरिमा तो ब्रजभाषा की ही अनुपम निधि है।

रस—ब्रजभाषा कृष्णकाव्य में वात्सल्य रस विशेष रूप में उपलब्ध होता है। सामान्यतः ब्रज और अवधी कृष्णकाव्य में तीन रसप्रधान हैं—शृंगार, अद्भुत और शान्त। शृंगार में संयोग और वियोग दोनों रूपों का चित्रण बड़ी कुशलता से किया गया है। शील, शक्ति और सौंदर्य समन्वित होने के कारण श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व कोमल रसों के लिये सर्वथा उपयुक्त ही रहा। इसके अतिरिक्त वीर, रौद्र और करुण रस के प्रसंग अवधी कृष्ण काव्य में उपलब्ध होते हैं चाणूर मुष्टिक तथा कंसादि के साथ युद्ध वर्णन में वीर और रौद्र रस तथा

कंस के मरने पर रानियों का विलाप करुण रस के अन्तर्गत आता है। कारागार में वसुदेव देवकी को भगवान् कृष्ण के चतुर्भुज रूप में दर्शन तथा मिट्टी खाते समय यशोदा को दिखाया गया विराट रूप अद्भुत रस की भावपूर्ण अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है।

भाषा—पिछले पृष्ठों में किये गये विवेचन से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि व्रज और अवधी दोनों ही भाषाओं में कृष्ण काव्य लिखा गया। अवधी में लिखित कृष्णकाव्य व्रजभाषा में रचित कृष्णकाव्य की भाँति न तो समृद्ध हो सका और न प्रसिद्धि ही पा सका। कारण यह है कि व्रजभाषा में जो कोमलता है वह कृष्ण के लोकरंजक रूप तथा उनकी लीलाओं की अभिव्यक्ति करने में पूर्णतया सफल हुई है। सूरदास, हितहरिवंश आदि व्रजभाषा के कवियों की भाषा संस्कृतमय है, मीरा की मारवाड़ीमय किन्तु लालचदास आदि अवधी के कवियों की भाषा जन सामान्य की बोली का ही परिष्कृत रूप है। लक्षदास ने भी इसी भाषा-शैली को अपनाया। व्रजभाषा में जो भी कृष्णकाव्य मिलता है उसमें अवधी तथा अन्य भाषाओं की शब्दावली तथा क्रियाएँ मिलती हैं, इन भिन्न भाषाओं में भोजपुरी, कनौजी, अरबी, फारसी तथा मारवाड़ी मुख्य है। वस्तुतः इन भाषाओं के शब्दों के प्रयोग से व्रज तथा अवधी भाषा का रूप और भी अधिक व्यापक हो गया है और वह भावाभिव्यंजन में भी सहायक हुआ है। तुलसी के 'रामचरितमानस' की रचना के बाद में तो अवधी भाषा का रूप इतना विस्तृत और व्यापक हुआ कि परवर्तीकाल के कवियों ने अवधी में पर्याप्त रचनाएँ प्रस्तुत की।

अध्याय २

लक्षदास जी का जीवन परिचय

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट (१९३२-३४) मे कुछ ऐसे कवियो के भी नाम दिए गए है जिनके विषय मे पिछली खोज रिपोर्टों मे कोई विवरण नही मिला था। इसमें कवि लक्षदास का नाम ५१वी सख्या पर दिया गया है और उनके कुछ पद मिलने की सूचना दी गई है।[1] इसके अतिरिक्त उनके विषय मे और कोई विवरण नही दिया गया है।

कवि के विषय मे सूचना का दूसरा स्रोत, 'पंचदूत' पाक्षिक पत्र है जिसमे सरस्वती के भूतपूर्व सम्पादक प० देवीदत्त जी शुक्ल के कहने से फतेहपुर के जिला नियोजन अधिकारी एव पचदूत के सम्पादक कैप्टेन शूरवीर सिंह के १९५५ ई० मे गुनीर गॉव मे खोज कराने का विवरण दिया गया है और लक्षदास जी के जीवन तथा उनकी रचनाओं के विषय में कुछ सूचनाएँ प्रकाशित की गई है।[2] इसके बाद लक्षदास जी के विषय मे पत्र-पत्रिकाओ में विद्वानो के लेख प्रकाशित होते रहे है जिनमे कवि के जीवन की कुछ घटनाओ पर आधारित जनश्रुतियो तथा उनकी रचनाओ की ओर सकेत किया गया है।[3] कवि लक्षदास जी की रचनाओ के अद्यावधि अप्रकाशित रहने के कारण हिंदी साहित्य ससार कवि तथा उसकी रचनाओं के सबध मे अनभिज्ञ रहा।

हसवा फतेहपुर के कवि चंददास ने अपने ग्रंथ 'भगत बिहार' मे लक्षदास जी के नाम मे एक अनुराग (अध्याय) लिखा है जिसमे लक्षदास जी के चमत्कार एवं सिद्धियो का वर्णन है।[4] चंददास जी लिखित यह वृत्त जनुश्रुतियों पर आधारित प्रतीत होता है। इससे कवि की महत्ता का ज्ञान अवश्य होता है किंतु उसमे से वास्तविकता को खोज निकालना कठिन-सा है। लक्षदास जी के विषय मे उपलब्ध आज की जनश्रुतियो में चददास जी के समय से पर्याप्त अतर हो गया है क्योकि लोक में उसके विषय मे तथा अन्य महात्माओ के विषय मे प्रचलित जनश्रुतियाँ इस प्रकार घुलमिल गई हैं कि ऐतिहासिक साक्ष्य के अभाव में सही बात को

---

[1] नागरी प्रचारिणी सभा काशी, खोज रिपोर्ट (१९३२-३४), पृ० ३९९।

[2] पंचदूत, वर्ष ६, अंक १।

[3] (क) पचदूत, वर्ष के ६ अक १, २, ३, ५, ६, ११, १४, १७, (ख) भारत, २६ अक्टूबर १९५५, (ग) अमृत पत्रिका, २३ सितम्बर १९५५, (घ) इलाहाबाद यूनीवर्सिटी मैगजीन, दिसम्बर १९५६, (ङ) भारतीय साहित्य आगरा अक्टूबर १९५६, (च) साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १७-२-१९५७, (छ) अरविंद, २६ जनवरी, १९५८।

[4] हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग वेष्टन सख्या १३१३ पुस्तक सख्या १९९२ (अनुराग ७८ वाँ

छाँटकर निकालना कठिन है। वस्तुत. कवि के विषय मे जो कुछ प्रामाणिक वृत्त मिलता है वह स्वय कवि की रचनाएँ है।

अध्ययन की सामग्री—गो० लक्षदास जी की जीवनी के अध्ययन के लिए निम्नलिखित सामग्री प्राप्त होती है—

१. वहिर्साक्ष्य—इसमे लक्षदास जी के विषय मे सूचना देने वाले तीन स्रोत है—

(अ) जिनमे लक्षदास जी के विषय मे अस्पष्ट रूप मे वर्णन मिलता है—

(१) भक्तमाल, (२) मूलगोसाई चरित।

(आ) स्पष्ट उल्लेख—भगत विहार।

(इ) जनश्रुति।

२. अंतर्साक्ष्य—(१) कृष्णरससागर, (२) भागवतपुराणसार।

भक्तमाल—भक्तमाल की रचना भक्त प्रवर नाभादास जी ने स० १६५० के लगभग की। उन्होंने इसमे अपने समय तक के भक्तो का सक्षिप्त विवरण दिया है या नामोल्लेख किया है। इसमे 'लाखा' नाम के ६ भक्तो का उल्लेख है। सक्षेप मे इन भक्तो के विषय मे विचार करना समीचीन होगा।

(१) १०४वे छप्पय मे 'लखा' नाम्नी किसी भक्त महिला का उल्लेख है।[1]

(२) १७१वे छप्पय मे 'लच्छि' नाम की हरि-भक्त महिला का नाम आया है।[2] किन्तु रूपकला जी की वार्तिक मे इनका नाम 'लक्ष्मीबाई' दिया गया है।[3]

(३) १०७वे छप्पय मे 'लाखा वानर' की प्रशस्ति है। ये मारवाड़ के निवासी और परम भक्त थे।[4] प्रियादास ने अपनी टीका मे इन्हे 'हनुमानवशी' वानर' लिखा है।[5] उन्होंने मारवाड के डोम, चारण या भाट को उत्तर प्रदेश के सूप वेचने वाले बसफोड या भंगी से पृथक् माना है।

(४) १५९वे छप्पय मे वर्णित 'लाखै अद्भुत' श्री कील्हदेव जी के शिष्य हुए।[6]

(५) ६९वे छप्पय मे 'लाखोजी' का नाम आया है जिसमें यह कहा गया है कि अपने अनुकूल जनो की अभिलाषा को चिन्तामणि के समान पूरा करके इन्होंने अपना सुयश जग मे प्रकाशित किया।[7]

(६) १७९वे छप्पय मे 'लाखै अनुरागी' का नाम लिखा है। इन्होंने सतो की सेवा करके अपने कार्य से श्याम सुजान को सन्तुष्ट किया।[8]

१०४ एव १०६वे छप्पय मे क्रमश. वर्णित 'लखा' एव 'लच्छि' नाम्नी महिलाओ का उल्लेख है, अत. इस विषय मे कुछ भी कहने की आवश्यकता शेष नहीं है। १०७वे छप्पय मे

---

[1] कल्याण भक्त चरितांक (२००८ वि०), नाभादास का भक्तमाल, पृ० ११।
[2] कल्याण भक्त चरितांक (२००८ वि०) नाभादास का भक्तमाल, पृ० १६।
[3] भक्ति सुधा विन्दु स्वाद—सीताराम शरण भगवानप्रसाद (१९६६), पृ० १२४९।
[4] कल्याण भक्त चरितांक (२००८ वि०) भक्तमाल, पृ० ११।
[5] भक्ति रसबोधिनी टीका, पद सख्या ४२२ से ४२८ तक, पृ० ११८-११९।
[6] कल्याण भक्त चरितांक (२००८ वि०), भक्तमाल, पृ० १५।
[7] वही पृ० ११।
[8] वही पृ० १७

वर्णित लाखा वानर मारवाड़ देश के निवासी एवं हनुमान जी के भक्त थे, किन्तु हमारे आलोच्य कवि लक्षदास जी गुनीर गाव (जिला फतेहपुर-हसवा) के निवासी थे।[1] १५९वें छप्पय में कथित 'लाखै अद्भुत श्री कील्हदेव जी के शिष्य हुए। अतः ये भी एक सिद्ध संत थे। ९९वें छप्पय मे 'लाखोजी' तथा १७९वें छप्पय में वर्णित 'लाखै अनुरागी' के गुण एवं कार्य मिलते-जुलते बताये गए है। अतः अनुमान होता है कि ये दोनो एक ही व्यक्ति के दो नाम थे। ये दोनो नाम लक्षदास जी के नाम से मिलते-जुलते है। नाभादास कृत भक्तमाल मे इस प्रकार एक ही व्यक्ति के विषय मे कई छप्पयो मे संकेत किया गया है। जैसे-आसकरन के विषय मे १०२, १५६, १७२ मे, परशुराम के विषय मे १०२ तथा १३८वें छप्पय मे तथा नरहर्यानंद के बारे मे ६७ तथा १००वें छप्पय मे लिखा गया है। वस्तुतः एक ही व्यक्ति के विषय मे कई छप्पयो मे विवरण देने का कारण यह रहा है कि भक्त, कवि, सन्यासी, संत सेवा, कीर्तन करने वाले आदि विभिन्न कार्यो तथा दशाओ मे उसी नाम की आवृत्ति हो गई है। इसी प्रकार लक्षदास का नाम भी दो बार लिखा गया। संत चददास ने भगतबिहार मे लक्षदास जी के विषय मे जो विवरण दिये है उनमे भी लक्षदास जी के कार्यों के विषय मे इसीप्रकार के संकेत मिलते है।[2]

निष्कर्ष—

(१) लाखोजी तथा लाखै अनुरागी के कार्य प्रायः समान ही थे। इससे अनुमान होता है कि, सम्भवतः, एक ही व्यक्ति के दो नाम थे।

(२) वे सत सेवी एवं परम भगवद्भक्त थे।

(३) ये नाम लक्षदास जी के नाम से मिलते-जुलते है। सम्भव है कि स्थान-भेद तथा उच्चारण-भेद के कारण इन्ही नामो से लक्षदास के विषय मे वर्णन किया गया हो।

मूलगोसाईं चरित—बाबा वेणीमाधवदास ने इस ग्रंथ की रचना स० १६८७ मे की। इसमे तुलसीदास जी के भ्रमण तथा उनके चमत्कारो का वर्णन किया गया है। यद्यपि कुछ विद्वान् इस पुस्तक की प्रामाणिकता को संदिग्ध ठहराते है[3] फिर भी इतना स्वीकार करने मे हमें कोई आपत्ति नही होनी चाहिए कि प्रस्तुत पुस्तक को छंदोबद्ध करते समय कवि ने तुलसीदास जी के सम्बन्ध मे बहुप्रचलित जनश्रुतियो को ही अपना आधार बनाया है।

हमारे देश मे आत्म-कथा लिखने की परम्परा नही रही, उनकी रचनाओ मे अपने सम्बन्ध मे यत्र-तत्र कुछ संकेत अवश्य मिल जाते है जिनकी पुष्टि लोक मे प्रचलित जनश्रुतियो से होती है। हमारे देश में महापुरुषों एवं साधुओ के प्रति श्रद्धा भाव होने के कारण उनके बारे मे जनश्रुतियां प्रचलित हो जाती है। कालान्तर में जब उक्त व्यक्ति के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक वृत्त की शृंखला टूटने लगती है तो जनश्रुतियां उनमे ठीक योग बिठा देती है। इस प्रकार जनश्रुतियो का भी कुछ आधार होता है। मूलगोसाईंचरितकार ने जिन जनश्रुतियो को संकलित करके हमारे सामने रखा है वे या तो आज उपलब्ध नहीं है या उनका रूपान्तर हो गया है। अतः उन्हे एकदम उपेक्षित कर देना सर्वथा उचित नही है।

---

[1] इनके जन्म स्थान आदि के विषय मे आगे विस्तार मे विचार किया जाएगा।
[2] भगत बिहार (सम्मेलन वाली प्रति, हस्तलिखित), पृ० २८३-२८९।
[3] तुलसीदास डा० मा गुप्त पृ० ४०

आज का फतेहपुर-हसवा महाभारत काल मे हंसध्वजपुरी कहलाता था और मुसलमान काल मे इसे हंसपुरा या हंसपुरी कहते थे। फतेहपुर-हसवा के सन्त कवि चन्ददास ने लिखा है—

गंगा यमुना मध्य में हंसध्वज को ग्राम।
हंसपुरो शुभ नाम तेहि तहाँ कियेउ जन धाम।[1]

यह हंसपुरी (हंसध्वजपुरी) आज का फतेहपुर-हसवा ही है क्योकि संत चंददास ने इसकी जो स्थिति बताई है वह एक-ही है।[2]

मूल गोसाईं चरित में तुलसीदास के हंसपुरा जाने का उल्लेख किया गया है।[3] अत सम्भव है कि वे लक्षदास जी से मिले हों। आज भी गुनीर गाँव तथा फतेहपुर-हसवा में तुलसीदास और लक्षदास के पारस्परिक मिलन के सम्बन्ध मे जनश्रुतियाँ प्रचलित है।[4] अत अनुमान होता है कि तुलसीदास जी लक्षदास जी से मिलने के लिये गये।

निष्कर्ष

(१) तुलसीदास जी हंसपुरा (हंसध्वजपुरी या फतेहपुर हसवा) गये थे।

(२) लक्षदास और तुलसीदास के पारस्परिक मिलन के सम्बन्ध मे लोक में जनश्रुतियाँ मिलती हैं वे मूलगोसाईंचरित मे दी गई तुलसीदास की हंसपुरा यात्रा की पुष्टि करती है। इससे अनुमान होता है कि तुलसीदास लक्षदास से मिलने के लिए हंसपुरा (फतेहपुर हसवा) गये थे।

भगत बिहार—संत कवि चंददास ने यह ग्रंथ संवत् १८०७ मे लिखा। नाभादास कृत भक्तमाल की परम्परा मे यह भी एक विशाल ग्रंथ है जिसमे भक्त एवं संत महात्माओं के विषय मे जीवन वृत्त या सूचनाएँ दी गई है। भक्तमाल मे नाभादास जी ने भक्तो के चरित्र का संक्षेप मे वर्णन किया है। किसी-किसी भक्त का नाम तो कई छप्पयो मे आया है क्योकि एक ही व्यक्ति कवि, भक्त, संतसेवा करने वाले, संन्यासी आदि विभिन्न दशाओ मे होने से उसका नाम कई बार गिनाया गया है। प्रियादास जी ने अपनी टीका मे भक्तमाल मे उल्लिखित प्रमुख संतो के विषय मे विस्तृत विवरण दिया है। संत कवि चंददास का 'भगत बिहार' उसी परम्परा की एक कडी है। इसमे भक्तमाल की भाँति विभिन्न दशाओ मे भक्तो के नामो की पुनरावृत्ति नही की गई है प्रत्युत् एक ही व्यक्ति के विषय मे उन दिनो प्रचलित जनश्रुतियो पर आधारित विभिन्न विवरण दिये गये है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भगत बिहार के लेखक के समक्ष भक्तमाल तथा प्रियादास की टीका दोनो के आदर्श उपस्थित थे।

कवि चंददास ने भगत बिहार मे लक्षदास जी के जीवन के विषय मे जो विवरण

---

[1] रामविनोद (हस्तलिखित) चंददास।
[2] मद्ध मुता रवि गंग समीपा। बाण कोश थल ग्राम महीपा।
—श्री भागवतगीता (हस्तलिखित) अन्तिम पृष्ठ।
[3] मूलगोसाईं चरित (गीता प्रेस) पृ० ४४
[4] इन जनश्रुतियो का विस्तृत विवरण आगे दिया गया है

ा है उसकी यत्किंचित् पुष्टि से भी होती है लक्षदास जी के विषय
नेहपुर हसवा) मे जो जनश्रुति आज भी प्रचलित है उनमे भी बहुत कुछ साम्य है

ात विहार में वर्णित लक्षदास का जीवन वृत्त

भगत विहार की सम्मेलन वाली प्रति में 'श्री लक्षदास अनुराग' नाम से एक वा गया है जिसमें पृष्ठ २८८ से २८६ तक मे दिये गये विवरण के आधार पर का जीवन वृत्त, सक्षेप मे इस प्रकार है[२]. —

इसके सम्बन्ध में आगे विस्तार मे विचार किया जायगा।

दोहा— लक्षदास लक्षन सहित, वासी सदा सुनीर।
द्विज कुल कलस पवित्र अत, जथ। सो गग मर्रार ॥१३८९॥
सुरसर निकट गाम सुभ जानौ। तहाँ वास साधु जनि मानौ ॥
परमानन्द पिता व्रत धारी। कृष्ण भजन के उर अधिकारी ॥
तिलक माल कण्ठी सुभ लीन्ही। वैराग रीत तन निरभै कीन्ही ॥
गुरु सरूप तिनको हरि भेटे। दै दरसन पातख तन मेटे ॥
लक्षदास तिनके सुत ज्ञानी। सुरसर निकट वास सुभ जानी ॥
पिता सुरीत पंथ अनुरागी। पूजै सदा विपुल वैरागी ॥
गीता आद कथा गुन करनी। अपर पुरान सो कीरत बरनी ॥
निरमल बुद्ध ज्ञान के सागर। भजन जजन पूजा रतनागर ॥
सुरसर भक्त नेम दिढ धरई। मज्जन सदा प्रान प्रन करई ॥
दोहा—मज्जन गगा नीर बिन, करै नहीं जल पान।
सतन जैसौ नेम दिढ संजम सौची प्रान ॥१३९०॥
सुमन चढाय सो बिजन आनै। दै प्रसाद साधु मनमानै ॥
ता पाछे पुनि भोजन करहीं। येहु व्रत दास निरतर धरहीं ॥
येहि प्रकार बहुत दिन बीते। कुमार भौ जोबन औसर रीते ॥
भये विरध साधु तट वासी। मज्जन प्रीत सदा परकासी ॥
येक समै सुरसर थल त्यागेउ। देस साध समै अनुरागेउ ॥
कोस येक आगू थल कीन्हो। गगा जाय वास तहाँ कीन्हो ॥
नितप्रत लच्छदास तट आवैं। मारग चलत अग श्रम पावैं ॥
महा कस्ट तन विह्वल डोलै। राम राम गगा मुख बोलै ॥
समौ निदाघ तेज रवि कीन्हों। सुरसर पथ सदा पद दीन्हों ॥
दोहा—नगन चरन प्रन प्रान दिढ, सदा सुमारग रीत।
दहेउ तेज सो तास पद, भयो कलेवर भीत ॥१३९१॥
जाय समीप ध्यान उर कीन्हो। हठ व्रत प्रान साथ तब लीन्हो ॥
की सुरसर सम निकट विलासी। की तन तजौं भजौ अविनासी ॥
मम प्रन जान संतता कीजै। वेग निवास ग्राम तट लीजै ॥
सध्यान समै सुरसर सुखरासी। नभ निवास सुर गिरा प्रकासी ॥
तज हठ प्रान आव निजु गेहा। बसौ निकट अब सहित सनेहा ॥
लोचन मूंद चरन मग दीजै। पाछै द्रस्ट साध नहीं कीजै ॥
धारा सग चली जन कैसे। धर्मधीर कृत कीरत जैसे ॥
आय ग्राम ढिग लोचन खोले पाय समीप साधु जन बोले

लक्षदास जी का जीवन परिचय

(१) लक्षदास जी गुनीर गाँव के निवासी थे। यह गाँव गगाजी के तट
ा है।

(२) वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए।

(३) उनके पिता का नाम परमानन्द है, वे कृष्ण-भक्त है। कण्ठी, माला
रण करते है। 'वैराग की रीति' मे उन्होने अपने तन को निर्भय कर दिया। 'गु
भगवान् ने उन्हे दर्शन दिये और उनके पाप नष्ट कर दिये।

(४) ज्ञानी लक्षदास उन्ही के पुत्र है, वे भी गंगाजी के निकट रहते है औ
त पर चलते हुए साधु-सेवा मे रत रहते हैं।

दोहा— धन्य धन्य सुर पावनी, सुरसर हरन विकार।
करत भुवन युत विपुल नर, सुर मुन नभ जयकार ॥१

धाये लोग धाम सो तब ही। आई विसद धार पुर जब ही ॥
चदन अरग सुमन बर माला। मधुर क्षीर रस अपर बिसाला ॥
नाना भाँति सो पूजा करही। सुरसर ध्यान प्रान ते धरही ॥
लछदास को सीस नवावे। पदरज ले कर भाल चढावे ॥
असतुत गिरा ध्यान अधकारी। धंन धन हो भक्त मुरारी ॥
ग्राम पुनीत नाथ तुम कीन्हो। जहाँ साधु जन जन्म सो लीन्हो ॥
सुन सुन सुजस अपर पुरवासी। सेवक नर नारी सम दासी ॥
कठी माल सो दिक्ष्या दानन। लेत अनेक पाय पद ध्यानन ॥
धाम दिव्य स्व सजम धारी। पुजा साध नाम अधिकारी ॥

दोहा— रहे निरास निवास ग्रह, जथा कज जल जाल।
गावत कीरत क्रसन सुख, नाना चरित बिसाल ॥१

बहुर ध्यान क्रत दरसन हेना। भये निवासी ब्रह्म निकेना ॥
मगन प्रेम उर भक्त बढ़ाई। क्रसन दरस मनत लघुताई ॥
देख नेम दिढ क्रसन निधाना। गुरु सरूप आये भगवाना ॥
चरचा ज्ञान भगत समुझाई। नौधा प्रेम भजन निपुनाई ॥
करत असन निज निकट बोलाये। येकहि पात्र पास बैठाये ॥
लक्षदास संका उर आने। भोजन करत देव सम जाने ॥
जब जब ग्रास वास कत करई। धोय नीर पुन पुन अनुसरई ॥
दिव्य रूप तब नाथ देखाये। भुजो चार तन सुछ सोहाये ॥
दरसन पाय चरन लपटाने। बहुर क्रसन गुर रूप समाने ॥

दोहा— हरखत साधू अगवर, बरखत प्रेम अपार।
बहुरि गये निज सदन कौ दै दरसन सुखसार ॥१

पाय दरसन भये परसन भक्त सरसन चाव सो।
ससार कीरत कलित रचना भजन नाना भाव सो ॥
भगवान दान प्रमान कीन्हौ, साधु दिव्य उपाव सो।
जन चन्द निरमल भये सतन, बचे जम गन दाव सो ॥

दोहा—प्रभु रानी आनी दाया जानी कीरत दास।
चन्द बिहार सुधार उर, सोक्रित दुरित बिनास ॥ १२६५।

इति श्री भगत बिहार गुनाद विसद हरन पाप सेखदायक पुन सर्ब ललि
वेदय जोग सुखद सपदा सिध मुक्त प्रदान श्री चन्ददास कृत भाषा प्रबध श्र
नूरागु बरनन नाम अठहत्तर अध्याय ७८

(५) वे गीता तथा पुराणादि की कथा कहते हैं।

(६) वे गंगाजी के भक्त है। नित्य प्रति गंगास्नान करने का प्रण कर रखा है। बिना स्नान किये हुए वे जलपान भी नहीं करते।

(७) साधुओं को भोजन कराने के बाद ही वे स्वयं भी प्रसाद पाते है।

(८) यही कार्य करते हुए कौमार्य से यौवन काल तक का समय बीत गया।

(९) वृद्धावस्था मे भी उनका यही क्रम चलता रहा। गंगा स्नान के प्रति उनका प्रेम और भी अधिक स्पष्ट हुआ।

(१०) एक बार गंगाजी गाँव से एक कोस दूर चली गई। फिर भी लक्षदास जी नित्य प्रति गंगाजी के तट पर जाते रहे।

(११) शरीर में कष्ट होने और थक जाने पर भी उन्होंने 'राम राम और गंगा' का नाम लेते हुए जाने का क्रम पूर्ववत् जारी रखा। 'निदाघ' के समय मे 'रवि के तेज' होने पर भी वे अपने प्रण को निभाने के लिये नंगे पाँव जाते रहे।

(१२) एक दिन उन्होंने गंगाजी के समीप जाकर हृदय मे उनका ध्यान किया और अपने मन मे यह 'हठ व्रत साध लिया' कि या तो गंगाजी मेरे समीप (पूर्व स्थान पर) रहेंगी अन्यथा मैं भी 'अविनासी' का भजन करते हुए यह शरीर त्याग दूँगा।

(१३) मध्याह्नकाल मे आकाशवाणी हुई कि अपने 'हठ को त्याग कर' घर जाओ, अब मै तुम्हारे निकट सनेह 'सहित' रहूँगी। तुम 'लोचन मूँदकर' आगे चलो परन्तु पीछे मुड़कर मत देखना।

(१४) गंगाजी की धारा उनके पीछे-पीछे चल दी। गाँव के समीप आकर जब उन्होंने अपने नेत्र खोले तब साधुजनों ने 'गंगाजी की जय' का उद्घोष किया।

(१५) उद्घोष सुनकर लोग घरो से भागे आए और विविध भाँति से गंगाजी की पूजा की।

(१६) वे लक्षदास जी के चरणो मे अपना सिर झुकाने लगे और उनकी चरणरज को मस्तक पर चढ़ाने लगे।

(१७) तभी से ओर पास के गाँवो मे इनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई। उन्होंने कण्ठी-माला देकर लोगो को दीक्षा देना प्रारम्भ कर दिया।

(१८) 'जल जाल से पृथक् रहने वाले कंज' की तरह वे अपने 'गृह' (गृहस्थी ?) से निराश रहे।

(१९) उन्होंने भगवान् कृष्ण का जीवन चरित विविध प्रकार से गाया और 'नाना भाव के भजन' लिखे।

(२०) अपने प्रति दृढ़ नियम एवं भक्ति देखकर भगवान् कृष्ण 'गुरु सरूप' मे उनके समीप आये। ज्ञान चर्चा एवं नवधा भक्ति को समझाने के उपरांत भगवान् ने उनके यहाँ भोजन किया। अंत मे लक्षदास जी की शंकाओं का निवारण करने के हेतु उन्होंने लक्षदास जी को चतुर्भुज रूप मे दर्शन दिये।

भक्त बिहार के उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलते है —

१) उनका निवास गंगा तट पर स्थित गुनीर गाँव है

(२) पिता परमानन्द के भक्ति सम्बन्धी गुणों तथा परम्परागत संस्कारों का प्रभाव पुत्र पर भी पड़ा।

(३) उन्होंने भगवान् की भक्ति श्रेष्ठतम रूप में की थी।

(४) वे अपने नियमों एवं प्रण के बड़े पक्के थे। गंगाजी को लौटाकर गाँव तक लाने की कथा से उनके चरम महत्व का निर्देश मिलता है।

(५) उन्होंने कृष्ण का जीवन-चरित विविध प्रकार में प्रभूत मात्रा में गाया।

(६) वृद्धावस्था में उन्होंने शिष्य करना प्रारम्भ कर दिया था।

(७) उन्हे भगवान् के दर्शन हुए थे।

गो० लक्षदास जी के सम्बन्ध में प्रचलित जनश्रुतियाँ

गो० लक्षदास जी गुनीर (फतेहपुर-हसवा) के निवासी थे। सचवारा (इलाहाबाद) में उनकी शिष्य-परम्परा के लोग रहते है। इन गाँवों में लक्षदास जी के विषय में कुछ जन-श्रुतियाँ प्रचलित है। इनमें से कुछ तो समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई शेष को मैंने स्वयं गुनीर में ही संकलित किया।

सिद्धि सम्बन्धी—(१) गो० तुलसीदास जी अपनी साधु मण्डली के साथ तीर्थभ्रमण को जाया करते थे। एक बार वे गंगाजी को पार करके शिवराजपुर घाट पर उतरे। यह स्थान फतेहपुर-हसवा जिले में गंगाजी के तट पर स्थित है। उन दिनों यह एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ पर निरन्तर साधु समागम और सत्संग होता रहता था। कहते है, यहाँ पर मीराबाई भी आई थी। कहा जाता है कि मीरा के इष्टदेव कृष्ण भगवान् की मूर्ति, जो उन्हे साधु ने दी थी, आज भी शिवराजपुर घाट के सेठ हरिप्रियाशरण के पास है।

शिवराजपुर घाट पर उतरने के बाद तुलसीदास ने अपने साथी साधुओं से कहा—'यहाँ से कुछ दूर गुनीर गाँव में महात्मा लक्षदास जी रहते है। उनके यहाँ पर चलना चाहिये और वहीं पर खीर-पूड़ी खाएंगे।' सभी साधु तैयार हो गये और कुटिया घाट होते हुए गुनीर पहुँचे।

गो० तुलसीदास के गुनीर आगमन की सूचना लक्षदास जी के पास पहुँची। वे उस समय जूड़ी (ज्वर) में पड़े हुए थे। उन्होंने तुलसीदास जी से मिलने का निश्चय किया और जूड़ी को उस समय तक कम्बल में रहने का आदेश दिया जब तक वे अतिथि से मिलकर न लौटें।

लक्षदास जी तुलसीदास जी से मिले और उन्हे अपनी कुटिया में लिवा लाए। वहाँ पर तुलसीदास जी ने कम्बल के हिलने का कारण पूछा। लक्षदास जी ने कहा—'आपके आगमन की सूचना मिलने के समय मैं जूड़ी से ग्रसित था। आप से मिलने के समय तक के लिए ही मैंने जूड़ी को कम्बल में रहने का आदेश दिया सो यह जूड़ी ही कम्बल को हिला रही है।'

भगवद्भक्ति-चर्चा के बाद तुलसीदास जी ने उनसे भोजन-व्यवस्था के बारे में पूछा। लक्षदास जी ने कहा —'महाराज, खीर-पूड़ी तैयार है क्योंकि आपने आज शिवराजपुर घाट में मेरे यहाँ पर यही खाने की इच्छा व्यक्त की थी

टिप्पणी—गुनीर गाँव मे, लक्षदास जी की कुटिया से लगभग एक फर्लांग की दूरी पर आज भी एक बरगद का पेड है जिसके नीचे हनुमान जी की एक मूर्ति है। कहते है, यही पर तुलसीदास जी तथा उनकी साधु मण्डली ने खीर-पूड़ी खाई थी। गाँव वालो ने बताया कि लक्षदास जी के समय मे गगाजी इसी स्थान के निकट होकर बहती थी।

(२) उपर्युक्त जनश्रुति थोडे मे रूपान्तर से इस प्रकार भी कही जाती है—

गो० तुलसीदास जी अपनी मण्डली के साथ शिवराजपुर घाट आये। वहाँ से वे गगा-जी पार करके लक्षदास जी से मिलने के लिए गुनीर जा पहुँचे। उस समय लक्षदास जी को जूडी आ रही थी। परन्तु तुलसीदास जी के आगमन की सूचना पाकर उन्होने उनसे मिलना चाहा और पुआल से बनी हुई गुदड़ी (चटाई) को अपना ज्वर दे दिया।

जब लक्षदास जी तुलसीदास जी को लिवा कर अपने साथ कुटिया मे लाये तब वह गुदड़ी डगमग डगमग करके हिल रही थी। तुलसीदास जी ने उसके इस प्रकार हिलने का कारण पूछा। उन्होने उत्तर दिया—'आपका स्वागत करना आवश्यक था अत अपना ज्वर मैंने गुदडी को दे दिया है।' भगवद्भक्तिविषयक बातचीत के उपरान्त तुलसीदास जी ने कहा—'लक्षदास जी खीर-पूड़ी खिलाओ।' लक्षदास जी ने राधा-कृष्ण की मूर्ति के पास रखे हुए गंगाजल के पात्र को उठा लिया। उन्होने उसे खोलकर सभी को खीर-पूड़ी खिलाई।

(३) गो० तुलसीदास तथा लक्षदास जी मे परस्पर भगवद्भक्तिविषयक चर्चा होती रही। देर हो जाने पर तुलसीदास जी ने गगा स्नान के लिए जाने की इच्छा प्रकट की। लक्षदास जी ने कहा—'आप वहाँ तक क्यों हैरान होते हैं, गगाजी यही पर आजाएँगी।' ऐसा कहने के बाद उन्होने गगाजी की स्तुति की। थोडी देर बाद गगाजी कुटिया के समीप आ गईं। तुलसीदास जी ने उसमे स्नान किया, फिर वे अपने पूर्व स्थान को वापस लौट गईं।

नीम के पेड़ सम्बन्धी—(४) गो० लक्षदास जी की कुटिया के सामने जर्जर अवस्था मे एक नीम का पेड है। गाँव वालो का कहना है कि यह नीम गो० तुलसीदास जी की फेंकी हुई दातुन से उगा था।

(५) इसी नीम की उत्पत्ति के विषय में सचवारा मे एक दूसरी जनश्रुति कही जाती है—

सचवारा (इलाहाबाद) मे लक्षदास जी की शिष्य परम्परा के लोग रहते है। उसी परम्परा मे श्री हरवंशीलाल जी है। गुनीर में लक्षदास जी की कुटिया के सामने स्थित नीम के पेड के सम्बन्ध मे उन्होने मुझे बताया कि वह पेड लक्षदास जी की दातुन से ही उगा था, ऐसा उन्होने अपने पूर्वजों से सुना था।

(६) इसी प्रकार कुबड़ी घाट पर उत्पन्न हुए और नीम के विषय में सचवारा गाँव से यह जनश्रुति प्राप्त हुई—

गो० लक्षदास जी के समकालीन भगत आसकरन कड़ा (मानिकपुर) के दीवान थे। राजकीय सेवा से अवकाश प्राप्त करने के बाद वे अपना अधिकांश समय भगवद्भजन मे ही व्यतीत करते थे। इतनी दीर्घायु हो जाने पर भी उन्होने अपना कोई गुरु नही बनाया। इन दिनो वे कड़ा ( ) के समीप कुबड़ी घाट पर रहते थे एक दिन बाबा और

भगत जी की भेंट यही पर हुई। कुशल-मगल पूछने के बाद दोनों मे परस्पर विचार-विनिमय हुआ। लक्षदास जी ने कहा—'भगत जी आप किसी का शिष्यत्व ग्रहण कर लीजिये।' निगुरा होना ठीक नहीं है। भगत जी ने कहा—'हाँ महाराज हो जाऊँगा'।

दूसरे दिन प्रात काल अपने दैनिक कार्यो से निवृत्त होकर भगत जी ने गगाजी मे स्नान किया और अपनी धोती निचोड कर आकाश मे फेंक दी। सूख जाने पर उसे पुनः पहन लिया। भगत जी के इस चमत्कार को देखकर लक्षदास जी ने यह समझ लिया कि भगत जी को अपनी सिद्धियो का घमण्ड है। लक्षदास जी ने उनसे तो कुछ नही कहा परन्तु अपनी प्रयुक्त दातुन को चीर कर वहीं पर गाढ़ दिया और उसके पास अँगुली से एक गड्ढा कर दिया फिर उसमे गगाजल भर दिया। कुछ समय बाद नीम की उस लकड़ी मे से कौंपल फूटने लगीं और पेड के जमने के लक्षण दिखाई दिये। यही नीम बाद मे कुबडी नीम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भगत जी के वंशजो का कहना है कि अब से ३० वर्ष पहले (सन् १९२८ ई० तक) यह पेड़ विद्यमान था। लक्षदास जी की ऐसी अपूर्व सिद्धि देख कर भगत आसकरन उनके शिष्य हो गए।

(७) **भगवान् के दर्शन**—कहा जाता है कि लक्षदास जी को भगवान् के दर्शन हुए थे। इस सम्बन्ध मे गाव मे यह जनश्रुति प्रचलित है—

जब तुलसीदास जी लक्षदास जी से मिले तो तुलसीदास जी ने विनोद भाव से उनसे उनके मोटे होने का कारण पूछा। लक्षदास जी ने उत्तर दिया—

तुलसी हरि भेटे नही, नही भई पहचान।
हरि भेटे सशय गई ताते देह मुटान॥

(८) **ठाकुर जी के चमत्कार के विषय मे**—गुनीर मे लक्षदास जी की कुटिया मे जिस मूर्ति की सेवा की जाती है, कहते है, यह विग्रह लक्षदास जी के समय का ही है। जिस प्रकार लक्षदास जी की सिद्धियों के बारे मे लोक-मानस मे विश्वास दृढ हो गया था। उसी प्रकार उनके ठाकुर जी के चमत्कार के बारे मे भी जनश्रुतियाँ प्रचलित होने लगी।

गो० लक्षदास जी की शिष्य परम्परा[1] मे तुलसा के पति सदाशिव जब बगाल चले गये तब लक्षदास जी के ठाकुर जी गुनीर की कुटिया मे ही रह गये थे। उन दिनो गाँव के कुछ लोगों ने ठाकुर जी की सेवा का भार अपने ऊपर ले लिया। उस समय के विषय मे गुनीर गाँव के स्व० ठाकुर बलभद्रसिह बताया करते थे[2] कि उन्होने घनी रात्रि मे कई बार मदिर के भीतर कीर्तन की ध्वनि सुनी थी। भगवान् के रास करने के विषय मे वे परम्परा से चली आती हुई जनश्रुति को भी सुनाया करते थे। उन्होने सुना था कि कुटिया के पीपल के वृक्ष तक एक दिव्य आभा जाती हुई दिखाई देती थी और बाद मे रास लीला की ध्वनि भी सुनने मे आती थी।

(९) सचवारा गाँव मे ठाकुर जी के कीर्तन एव रास के बारे मे ऐसी ही जनश्रुति प्रचलित हो गई थी। भगत आसकरन के वंशज श्री हरवंशीलाल जी ने मुझे यह बताया

---

[1] शिष्य परम्परा का विस्तृत विवरण अन्यत्र इसी पुस्तक मे दिया गया है।
[2] ठाकुर बलभद्रसिह आज से १० वर्ष पूर्व तक जीवित थे

कि उनके पिताजी कहा करते थे कि गुनीर की कुटिया के बद मन्दिर मे ठाकुर जी के रास करने तथा कीर्तन की ध्वनि के बारे मे उन्होने भी लोगो से सुना था।

जाति के विषय मे—गुनीर वासी श्री शिवभजन प्रसाद ने लक्षदास जी के अध्वर्यु कहे जाने के विषय मे निम्नलिखित किवदन्ती बताई है—

आसाम की ओर क्षत्रिय अरख कहलाते है। इनकी जमीदारी चदनपुर और मुरादपुर गॉव मे थी। अरख शराबी होते थे। एक बार होली के दिन उन्होने शराब पी ली। समीपवर्ती गॉव के ठाकुरो से इनकी कुछ कहा-सुनी हो गई, झगड़ा बढ गया। मारपीट शुरू हो गई। अरखो की एक गर्भवती लड़की भयभीत होकर लक्षदास जी की कुटिया पर पहुँची और इनसे शरण मॉगी। लक्षदास जी ने उससे अपनी कुटिया मे जाने को कहा। अरखो को मारने के लिए ढूँढ़ते हुए ठाकुर लोग लक्षदास जी के पास आये और उनसे लड़की को बाहर निकालने को कहा। लक्षदास जी ने कहा—'वह लडकी हमारी है।' इस पर ठाकुरो ने पूछा—'क्या तुम इसके हाथ का भोजन खालोगे ?' लक्षदास जी ने 'हॉ' कहा और उसके हाथ का भोजन स्वीकार किया। तब ठाकुर उन्हे छोड़कर चले गये और लक्षदास जी को अध्वर्यु कहा, जिसका अर्थ था, आधे ब्राह्मण+आधे अरख और इसके बाद मे वे अध्वर्यु कहे जाने लगे।

जनश्रुतियों में प्रामाणिक तत्व

ऊपर लक्षदास जी के जीवन की सामग्री का बहिसक्षिय के आधार पर उल्लेख किया गया है। इन जनश्रुतियों तथा लिखित विवरण मे पर्याप्त समानता मिलती है। कवि के विषय में प्रचलित इन चत्मकारपूर्ण घटनाओं के सम्बन्ध मे यह कहना कठिन है कि इनका अथ और इति कहॉ से है ? 'भगल बिहार' सवत् १८०७ में लिखा गया। यह समय लक्षदास जी के अवसान के लगभग २०० वर्ष बाद का है। इस समय तक कवि के विषय मे लोक मानस मे चत्मकारपूर्ण घटनाओं का पर्याप्त प्रचार हो चुका था। सभवत इसी प्रकार लक्षदास की भक्ति एव सिद्धि के विषय में लोक-विश्वास की दृढता को देखकर चंदनदास जी ने उसे छन्दोबद्ध कर दिया। आगे पंक्तियों मे लक्षदास जी के विषय मे प्रचलित जन-श्रुतियों की वैधता के विषय मे विचार किया गया है।

जनश्रुतियो मे सर्वाधिक प्रचलित कथा गो० तुलसीदास के गुनीर आकर गो० लक्षदास जी से मिलने की है। यह कथा थोडे बहुत अन्तर से विविध रूपो मे मिलती है। मूलगोसाईं चरित मे गो० तुलसीदास के हंसपुरा जाने का उल्लेख किया गया है। यह हंसपुरा आधुनिक फतेहपुर हसवा की है। चंददास जी ने अपनी कविता मे इसका नाम हंसपुरी दिया है।[1]

मूलगोसाईंचरितकार ने इस पुस्तक मे गो० तुलसीदास जी की यात्रा का विवरण मुख्यरूप से लिखकर उनका महत्व प्रतिपादित किया है। इसी कारण उनमे उनके हंसपुरा जाने का संकेतमात्र किया है। आज भी गुनीर गाव मे तुलसीदास और लक्षदास के मिलन

---

[1] इस सबंध मे इसी प्रबंध म पृष्ठ ५३ पर विस्तार से विचार किया गया है

के विषय में प्रचलित जनश्रुतियों से मूलगोसाईंचरितकार के इस कथन की पुष्टि होती प्रतीत होती है कि तुलसीदास जी हसपुरा गए थे।

भगतबिहार मे चददास जी इस विषय मे मौन है। इसका कारण सम्भवत यह रहा हो कि चददास जी ने लक्षदास जी की भक्ति-भावना एव सिद्धियो का वर्णन करके उनके महत्व का प्रतिपादन करना ही अपना उद्देश्य बनाया हो और इसीलिए अन्य गौण प्रसगो को उन्होने छोड दिया हो।

गगाजी के गुनीर से दूर चले जाने और लक्षदास जी के उसको तुलसीदास जी के स्नान हेतु वापस लौटाने के विषय में भी एक जनश्रुति प्रचलित है। 'भगतबिहार' मे भी गगाजी को लक्षदास जी द्वारा गुनीर वापस लाने के विषय मे लिखा गया है। उसमे भक्त की महत्ता तथा उसका गगाजी के प्रति अगाध प्रेम दिखाना ही चददास जी का उद्देश्य रहा, ऐसा प्रतीत होता है। कालान्तर मे लोक मे प्रचलित तुलसीदास के आगमन और लक्षदास जी के गगाजी को वापस लौटकर लाने की बात मे कुछ ऐसा मिश्रण हो गया कि वह भी उनकी सिद्धि और चमत्कार का एक अभिन्न अग बन गया।

गुनीर मे लक्षदास जी की कुटिया के सामने जर्जर दशा मे आज भी एक नीम का पेड स्थित है। इसके विषय मे जनश्रुति है कि यह तुलसीदास की फेकी हुई दातुन से उगा था। इसी प्रकार लक्षदास जी की दातुन से कड़ा मे कुवडी घाट पर स्थित एक और नीम की उत्पत्ति के विषय मे जनश्रुति प्रचलित है। इस स्थान पर लक्षदास और आसकरन की भेट हुई थी।

नीम की इस प्रकार की उत्पत्ति को यदि चमत्कार पर आधारित माना जाय तो कुछ भी कहने की आवश्यकता शेष नही रहती। वैसे आज का विज्ञान नीम के इस प्रकार उत्पन्न होने का कोई आधार नही मानता। वस्तुत ऐसा प्रतीत होता है कि लक्षदास जी की बढती हुई प्रसिद्धि के साथ ऐसी ही कुछ और कथाओं को भी जोड दिया गया जो उनके चमत्कार और सिद्धियो की प्रचारक है। नीम की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे वैज्ञानिक आधार पर आगे विस्तार मे विचार किया जायगा।

तुलसीदास जी और लक्षदास जी की पारस्परिक विनोद-वार्ता मे लक्षदास जी के मोटे होने का जो कारण बताया गया है उसमे दो बाते स्पष्ट होती है—(१) लक्षदास जी को भगवान् के दर्शन तुलसीदास जी के इस मिलन से पूर्व हो चुके थे। (२) लक्षदास जी तुलसीदास जी से आयु मे बडे थे। सम्भवत यह वह समय था जब गुरू से ज्ञान प्राप्त करने के बाद तुलसीदास जी ने तीर्थ-यात्राएँ प्रारम्भ की थी। तुलसीदास जी को भगवद्दर्शन उसके बाद हुए थे।

कृष्णरससागर मे 'जुगलकिसोर लीला' के प्रसग मे कवि ने 'हरिहि पाय मुनि फूलत जैसे' कहा है।[1] इससे यह प्रतीत होता है कि कवि का यह अपना अनुभव था कि भगवान् के दर्शन होने पर कोई कामना शेष नही रहती और चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। 'भगतबिहार' मे भी भगवान् के उन्हे दर्शन देने की कथा दी गई है। इससे यह अनुमान होता है कि उन्हे भगवान् के दर्शन हुए थे।

---

[1] कृष्ण (हस्तलिखित पृ० १८

अध्वर्यु जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो कथा प्रचलित है वह प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती है क्योंकि वैदिक यज्ञों के समय अध्वर्यु यजुर्वेद का मन्त्र पढ़ने वाले ब्राह्मण को कहते थे।

ठाकुर जी के रास आदि चमत्कारपूर्ण कथाओं के सम्बन्ध में जो कुछ विवरण दिया गया है उसे सर्वथा प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है क्योंकि ये तो लोक-विश्वास की बात है। इस सम्बन्ध में कुछ भी न कहना अधिक सुखप्रद होगा।

लक्षदास जी के चमत्कार एवं सिद्धि सम्बन्धी उपलब्ध जनश्रुतियों के वर्तमान स्वरूप से अनुमान होता है कि उन्हें अपनी सिद्धियों के प्रदर्शन में लोगों को चमत्कृत करने का चाव था। वस्तुत. यह बात ऐसी नहीं है क्योंकि लोक मानस में श्रेष्ठ पुरुषों के जीवन से इस प्रकार की अलौकिक एवं असम्भव घटनाओं को सम्बद्ध कर देने की प्रथा सदा से चली आ रही है। इसमें भी मजेदार बात यह है कि उनके जीवन की जो भी बात जितनी ही अधिक अद्भुत और चमत्कारपूर्ण होती है उतनी ही अधिकता के साथ लोक-विश्वास भी उसकी ओर आकर्षित होता चला जाता है। इसी आधार पर भक्त कवि लक्षदास जी के जीवन की घटनाओं को भी ऐसा ही रूप देने की चेष्टा होती रही है और आज उसमें से वास्तविकता को छाँटकर ढूँढ निकालना कठिन हो गया है।

अंतर्साक्ष्य—लक्षदास जी के जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ संकेत मिलते हैं वे उनकी रचनाओं—कृष्णरससागर तथा भागवत पुराणसार में—यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। इन रचनाओं में कवि के आत्मकथात्मक संकेत दो रूपों में मिलते हैं—(१) जिनमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है (२) जिनमें चलता हुआ वर्णन या संकेत मात्र करके छोड़ दिया गया है। ऐतिहासिक सामग्री के अभाव में कवि के सामान्य कथन, कथा के प्रसंगों में कथित संकेतों तथा आत्म-कथन में से सही बातों को छाँटकर निकालना प्रायः कठिन हो गया है फिर भी आगे की पंक्तियों में हम लक्षदास जी के आविर्भावकाल तथा उनके जीवन के सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री का परीक्षण करके उनके जीवन वृत्त का प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत करेंगे।

समय

लक्षदास जी के आविर्भाव काल के विषय में कोई निश्चित वृत्त उनकी रचनाओं में नहीं मिलता है किन्तु कवि के जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ विवरण उपलब्ध है उससे उनके समय का अनुमान हम निम्नलिखित पंक्तियों में करेंगे—

(१) लक्षदास जी ने अपनी रचना 'कृष्णरससागर' में बारह वन वर्णन के प्रसंग में श्री गोविन्ददेव, मदनमोहन, राधावल्लभ, गोपीनाथ और बिहारी जी का उल्लेख किया है।[1] इससे यह स्पष्ट है कि ये मन्दिर उनकी वृन्दावन यात्रा के पूर्व प्रसिद्धि को प्राप्त थे। इन मंदिरों की प्राचीनता हमें अन्य सूत्रों से भी ज्ञात होती है जिससे पता चलता है कि ये मन्दिर अकबर के तक प्रसिद्धि को प्राप्त हो चुके थे हम इसके विषय में संक्षेप में

डिस्ट्रिक्ट मैमोयर मथुरा मे ग्राउज ने गोविन्ददेव जी के मदिर का निर्माण समय सवत् १६४७ लिखा है[1] किन्तु निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्वेषक कहते है, यह प्रतिमा श्री हरिव्यास देवाचार्य जी के शिष्यो से प्राप्त हुई थी।[2] हरिव्यासदेवाचार्य जी का समय विक्रम की १६ वी शताब्दी माना जाता है।[3] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान मदिर की अपेक्षा प्रतिमा अधिक प्राचीन है तथा मंदिर निर्माण के पूर्व ही वह पर्याप्त प्रसिद्ध थी।

मदनमोहन जी के मदिर का निर्माण-काल ग्राउज ने सवत् १६४८ दिया है[4] किन्तु निम्बार्क सम्प्रदाय वालो का कहना है कि मदनमोहन जी का नाम पहले मदनगोपाल था। वे विश्वनाथ चक्रवर्ती के 'मदनगोपालाष्टक' से इसकी पुष्टि करते है। उनका कहना है कि गद्दी पर विराजने के पूर्व श्री भट्टदेवाचार्य जी इसी मूर्ति की सेवा किया करते थे और 'युगल शतक' के 'मदनगोपाल शरण तेरी आयो' आदि पदो से इस बात को सिद्ध करते हैं।[5] श्री भट्ट देवाचार्य जी का स्थिति काल सवत् १३५२ वि० है।[6] इस विवरण से स्पष्ट है कि मन्दिर के निर्माण का समय बहुत बाद का है और मूर्ति पर्याप्त प्राचीन है।

श्री गोपीनाथ जी का पुराना मन्दिर मोदू पडित के आदेश के अकबर के दरबारी रायसैल क्षत्रिय ने सवत् १६४६ मे बनवाया था।[7] निम्बार्क सम्प्रदाय वाले इसे भी श्री भट्ट देवाचार्य जी के समय की मूर्ति मानते है। भट्ट जी विशेषतः वशीवट पर रहा करते थे। मोदू पडित को यह मूर्ति वशीवट के एक वृक्ष के नीचे मिली थी। इसी स्थान पर श्री भट्ट जी ने 'युगल शतक' की रचना की थी जो ब्रजभाषा की आदि वाणी मानी जाती है।[8] उपर्युक्त मूर्तियो की भाँति यह मूर्ति भी प्राचीन सिद्ध होती है।

श्री राधावल्लभ जी का पुराना मन्दिर संवत् १६८३ मे बनवाया गया[9] लेकिन मूर्ति की स्थापना सवत् १५८२ वि० मे हुई थी।[10] इससे यह सिद्ध होता है कि मूर्ति मन्दिर के निर्माण के पूर्व भी प्रसिद्ध थी।

बिहारी जी के नाम मे दो मन्दिर वर्तमान है—श्रीरसिकबिहारी जी तथा श्री बाँके बिहारी जी। 'रसिक बिहारी' का प्राकट्य युधिष्ठिर संवत् १८५० मे निधुवन में हुआ था। अर्थात् आज से ३२०५ वर्ष पूर्व। श्री विट्ठल विपुलदेव जी ने अपने ग्रथ गुरु प्रणालिका सिद्धात सार मे इसका उल्लेख किया है।[11] सवत् १६२७ वि० मे 'रसिक बिहारी' जी के

[1] डिस्ट्रिकट मैमोयर, मथुरा, १८८० ई०, पृ० २३२।
[2] श्री वृन्दावन दर्शन विधि (२०११ वि०), पृ० ८।
[3] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (२००८ वि०), पृ० २५।
[4] डिस्ट्रिकट मैमोयर, मथुरा, (१८८० ई०), पृ० २३२।
[5] श्री वृन्दावन दर्शन विधि (२०११ वि०), पृ० १३।
[6] श्री निम्बार्काचार्य पीठ का संक्षिप्त परिचय (२०११ वि०), पृ० १२।
[7] श्री सर्वेश्वर-वृन्दावनाक (२०१३ वि०), पृ० ३३२।
[8] श्री वृन्दावन दर्शन विधि (२०११ वि०), पृ० ४।
[9] वही पृ० १४।
[10] सूरदास—डा० ब्रजेश्वर वर्मा, १९४६ ई०, पृ० १८।
भारतेन्दु ग्रथावली, तृतीय भाग, २०१० वि०, पृ० ५६०।
[11] श्री दर्शन विधि (२०११ वि०) पृ० ११

मन्दिर प्राकट्य स्थल में तानसेन ने अकबर को स्वामी हरिदास जी के दर्शन कराए थे और तभी स्वामी जी का संगीत भी सुनवाया था।[१] दूसरी प्रतिमा श्री बांके बिहारी जी की है जो श्री हरिदास जी को निधुवन की भूमि में प्राप्त हुई थी और इसका मन्दिर २० वीं शताब्दी के आरम्भ में बनवाया गया। स्वामी हरिदास जी का स्थितिकाल वि० संवत् १५३७-१६३२ माना गया है।[२] इस प्रकार इन मूर्तियों की प्राचीनता के विषय में संदेह का स्थान ही शेष नहीं रहता।

औरंगजेब के शासन काल में जब मन्दिरों को तोड़ने तथा मूर्तियों को खंडित करने का क्रम चला तब तो बहुत से ठाकुर जी इधर-उधर भेज दिये गए। इस उलट-फेर में उनके स्थान भी बदल गए। अतः आज यह निश्चय करना कठिन है कि कौनसा मन्दिर कितना प्राचीन है। फिर भी उपलब्ध प्रमाणों से तथा सम्प्रदाय की परम्पराओं के आधार पर इन मूर्तियों की प्रसिद्धि का समय अकबर का राज्यकाल निकलता है। गोस्वामी लक्षदास जी के वृन्दावन जाने के समय ये मूर्तियाँ पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुकी होंगी तभी तो उन्होंने अपने काव्य में इनकी ओर संकेत किया है।

(२) कृष्णरससागर में कवि ने 'गौतम नृप विवेक रवि पावो' कहकर अपने स्थान के गौतम राजा का उल्लेख किया है। 'गौतम' बड़े प्रतापी राजा थे। उन्होंने कोई यज्ञ भी किया था।[३] अर्गल इनकी राजधानी थी। अर्गल के इन गौतम राजाओं का अब कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है किन्तु फतेहपुर गजेटियर में इस वंश के राजाओं की एक पर्याप्त लम्बी सूची दी गई है।[४] यह सूची क्रमबद्ध इतिहास के रूप में नहीं है फिर भी इससे यह पता अवश्य चलता है कि गौतम राजाओं का चरमोत्कर्ष हुमायूँ के विरुद्ध शेरशाह को सहयोग देने के समय तक रहा किन्तु अकबर ने उन्हें पराजित करके नष्टप्राय कर दिया। शाहजहाँ के समय तक ये नाममात्र के राजा या जमींदार मात्र रह गए।[५]

इस प्रकार कृष्णरससागर में गौतम राजाओं के विषय में दिये गए संकेत से यह अनुमान होता है कि लक्षदास जी ने अकबर के राज्यकाल के प्रारम्भिक दिनों में गौतमों का वैभव देखा था और यह काव्य रचना उन्होंने तभी की होगी।

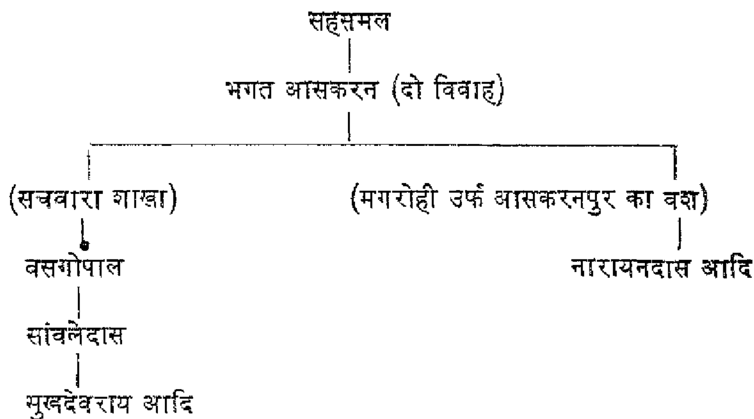
(३) लक्षदास जी ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में शिष्य बनाना प्रारम्भ कर दिया था, यह 'भगत बिहार' से स्पष्ट है।[६] उनकी यह शिष्य-परम्परा तीन रूपों में प्राप्त होती

---

[१] वही, पृ० ४।
[२] श्री सर्वेश्वर वृन्दावनांक (२०१३ वि०), पृ० २३३-२३८।
[३] ....गौतम नृप विवेक रवि पावो।
तिन करि जग्य वृत्ति बहु दीन्हीं। द्विज अध्वर्ज जानि जग कीन्हीं।
कृष्णरससागर (हस्तलिखित ग्रंथ), पृ० ११।
[४] ए सप्लीमेंट टू द फतेहपुर गजेटियर १८८७ ई० : पृ० ३२ से प्रारम्भ।
[५] स्टेटिस्टीकल डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरीकल एकाउंट आव द नार्थ वैस्टर्न प्राविन्सेज आव इण्डिया, जिल्द ८ भाग ३, फतेहपुर (१८८४ ई०), पृ० ७०।
[६] सुन सुन सुजस अपर पुरबासी। सेवक नर नारी सम दासी।
कंठी माल सो दिच्छा मानन लेत अनेक पाय पद
भगत बिहार हस्तलिखित ग्रंथ पृ० २८९

है—(१) गुनीर मे रहने वाले गद्दी के अधिकारी, (२) लक्षदास के शिष्य भगत आसकरन के वंशधर जो बधुरी-सचवारा (इलाहाबाद) मे रहते है। (३) श्रीधाम क्षेत्र भाषा में बताये गए शिष्य। (इनके बारे मे विवरण आगे दिया गया है।)

कवि के निवास स्थान गुनीर गाँव जाने पर मुझे पता चला कि लक्षदास जी के एक शिष्य के वंशधर सचवारा (इलाहाबाद) मे रहते है। कवि के विषय मे और भी वृत्त जानने की इच्छा से मैं सचवारा गॉव को गया। वहाँ लोगो ने बताया कि लक्षदास जी ने उनके पूर्वज भगत आसकरन को अपना शिष्य बनाया था। भगत जी कडा-मानिकपुर मे दीवान थे किन्तु लक्षदास जी के शिष्य होने के पूर्व वे अपने पद से अवकाश प्राप्त कर चुके थे।* भगत जी के वंशज अब भी सचवारा-बधुरी तथा आसकरनपुर उर्फ मगरौही मे रहते है। उनके वंशज बाबू शारदाप्रसाद जी खरे ने अपना वंश-वृक्ष तथा मुगलकाल के शाही फरमान आदि (रेकार्ड) मुझे दिखाए जिनके आधार पर निम्नलिखित विवरण ज्ञात हुआ। भगत जी का वंश-वृक्ष इस प्रकार चला—



* अकबर १४ वर्ष की अवस्था मे गद्दी पर बैठा (९६३ हिजरी रवीउल अव्वल)। उसके राज्यकाल के प्रारम्भिक १० वर्ष तक इस परिवार का कोई व्यक्ति नौकर नही था। ९७४ हिजरी मे लाला वंसगोपाल कानूनगो हुए जो २८ साल तक कानूनगो रहे। उसके बाद लाला सावलेदास १००२ हिजरी मे कानूनगो हुए और १२ साल तक रहे।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि भगत आसकरन अवस्था मे अकबर से ज्येष्ठ थे। भगत जी के ज्येष्ठ पुत्र वसगोपाल सवत् १६२४ वि० (९७४ हिजरी) में कानूनगो हुए। भगत जी के वंशजो का कहना है कि आसकरन ने अपनी परिपक्वावस्था में लक्षदास जी का शिष्यत्व ग्रहण किया था। यह समय अकबर के सिंहासनारूढ होने का प्रारम्भिक काल था। इसी समय लक्षदास और तुलसीदास तथा आसकरन तीनो के वर्तमान होने का पता चलता है।

भगत आसकरन आयु मे लक्षदास जी से भी ज्येष्ठ थे, यह जनश्रुति है, किन्तु फिर भी उन्होंने लक्षदास जी से प्रभावित होकर उनका शिष्य होना स्वीकार किया था, तुलसी का नही। सम्भवत उस समय तक तुलसीदास ने लोक मे वह प्रसिद्धि प्राप्त न कर पाई थी जो उन्हें मानस' की रचना के बाद मिला के निवास ग्राम मगरोही तथा

राजापुर के निकटस्थ गाँव होने पर भी भगत आसकरन का तुलसीदास से कोई सम्बन्ध होने की सूचना उनके (भगत जी के) परिवार की परम्परा मे नही मिली। अत यह अनुमान होता है कि लक्षदास और आसकरन का परिचय सम्बन्ध तुलसी के प्रसिद्धि पाने के समय से पूर्व का रहा होगा जिसके कारण भगत आसकरन ने लक्षदास का शिष्य बनना स्वीकार किया था।

(४) लक्षदास की कुटिया के सामने गुनीर गाँव मे एक नीम है जिसकी उत्पत्ति तुलसीदास जी की फेंकी हुई दातुन को गाड़ देने से मानी जाती है। यह नीम जर्जर अवस्था मे आज भी विद्यमान है। इस नीम की उत्पत्ति के विषय मे प्रचलित कथा को प्रामाणिक मानने मे हमे आपत्ति है क्योकि (१) नीम की कलम नही लगती, (२) वन-विभाग के विशेषज्ञो के कथनानुसार नीम की अधिकतम आयु विशेष दशाओं में भी २०० वर्ष से अधिक नही होती। आज लक्षदास जी तथा तुलसीदास जी को दिवगत हुए लगभग ४०० वर्ष होते जा रहे है। अत इस दृष्टिकोण से इस नीम की प्राचीनता सन्देहास्पद है। हाँ, यह सम्भव है कि इसी स्थान पर स्थित पुराने नीम की जड़ के समीप ही कोई दूसरा नीम उग आया हो और पहले नीम के गिर जाने पर भी लोक-विश्वास नये नीम के साथ उसी प्रकार जुड गया हो। इस प्रकार तो हम इस नये नीम को लगभग २०० वर्ष का मान सकते है और इस दशा मे संभव है कि इसका पूर्ववर्ती नीम लक्षदास तथा तुलसीदास के समय का ही हो।

इस सम्बन्ध मे अनुभवी वयोवृद्ध लोगो से बातचीत करने पर पता चला कि यदि नीम के तने (Trunk) को काट दिया जाय तो वही नीम फिर से हरा-भरा हो जाता है और ४००-५०० वर्ष तक चलता रहता है। जो भी हो, इस नीम की प्राचीनता किसी न किसी रूप मे स्वीकार्य हो ही जाती है।

नीम की इस प्रकार की उत्पत्ति को महात्माओं का चमत्कार मान लेने पर तो इस विषय में कुछ भी न कहना अधिक सुखप्रद होगा।

उपर्युक्त विवरणो से यह निष्कर्ष निकलता है कि लक्षदास जी अकबर के राज्यकाल मे थे और सवत् १६२४ वि० के लगभग विद्यमान थे। आयु मे तो वे, सम्भवतः, तुलसीदास जी से भी ज्येष्ठ थे। लक्षदास जी ने दीर्घायु प्राप्त की थी[1] किन्तु निश्चित सूचना के अभाव मे यह बताना कठिन है कि वे कितनी आयु भोग कर दिवगत हुए।

जन्म स्थान एव निवास

अन्तर्साक्ष्य एव बहिर्साक्ष्य दोनों मे ही लक्षदास जी को गुनीर गाँव का वासी बताया गया है। कनिंघम ने गुनीर को बहुत प्राचीन एव बौद्धकाल का गाँव बताया है। कृष्णरस-सागर में भी कवि ने गुनीर गाँव को गौतम राजाओं के राज्य का एक अग बताया है। इसकी स्थिति नग (नगर के निकट बताई गई है जहा कवि के पिता रहते थे

का जन्म भी, सम्भवत:, यहीं पर हुआ होगा। जन्म स्थान के विषय में निश्चित रूप से कहना कठिन है क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है।[१]

'भगत विहार' में संत चददास ने लक्षदास को 'वासी सदा गुनीर' लिखा है।[२] इसमें कवि लक्षदास के गुनीर निवास की पुष्टि तो होती ही है, किन्तु जन्म-स्थान के विषय में यहाँ भी कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया। गाँव में प्रचलित जनश्रुति तथा 'कृष्ण रस सागर' से यह पता चलता है कि स्थायी रूप से गुनीर में रहते हुए भी वे तीर्थ पर्यटन के लिए जाया करते थे। गुनीरवासियों ने मुझे बताया कि उन्होंने अपने पूर्वजों से लक्षदास और तुलसीदास के साथ-साथ वृन्दावन जाने की बात सुनी है। इनके अतिरिक्त उन्होंने अन्य तीर्थों की भी यात्राएँ की थी। कृष्णरससागर में उनके 'व्रजवास' का भी संकेत मिलता है।[3]

पिता

अंतर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य दोनों में ही लक्षदास के पिता का नाम परमानन्द बताया गया है। लक्षदास जी ने 'कृष्णरससागर' में गौतम राजाओं द्वारा कराये गए एक यज्ञ का उल्लेख किया है। इस अवसर पर राजा ने अध्वर्यु ब्राह्मणों को बहुत सा दान देकर सम्मानित किया था। अध्वर्यु ब्राह्मणों की इसी परम्परा में परमानन्द हुए जो सत्यवादी, शीलवान एवं भगवद्भक्त थे।[४] भगत बिहार में भी परमानन्द को कृष्ण का परम भक्त बताया गया है। वे परम वैष्णव एवं भगवदीय थे। उन्होंने वैराग्य धारण करके अपने शरीर को निर्भय कर दिया था। भगवान् ने गुरु के रूप में उन्हें दर्शन दिए। परम ज्ञानवान लक्षदास उन्हीं के पुत्र थे।[५]

जाति

कृष्णरससागर में कवि ने स्वयं को अध्वर्यु (अध्वर्ज) ब्राह्मण बताया है।[६] अध्वर्यु वैदिककालीन ब्राह्मण कहे जाते है।[७] ये प्राय. अवध पश्चिमोत्तर प्रान्त तथा गोरखपुर में पाये जाते है।[८] अध्वर्यु शब्द की व्युत्पत्ति (आधे ब्राह्मण + आधे अरब) के सम्बन्ध में गुनीर गाव

---

१ नग्र निकट गुनीर सुहावौ। गौतम नृप विवेक रवि पावौ।
तिन करि जग्य वृत्ति बहु दीन्ही। द्विज अध्वर्ज जाति जग कीन्ही।
परमानन्द तात कुल तामें। सत्य सील भावत हरि नामें॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित ग्रंथ), पृ० ११।

२ भगत बिहार (हस्तलिखित ग्रथ), पृ० २८८

३ बाल बिहार रास व्रज बसिके। करो ढिठाई प्रभु सो कसिकै॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०।

४ कृष्णरसागर (हस्तलिखित), पृ० २८८।

५ परमानंद पिता व्रत धारी। कृसन भजन के उर अधिकारी।
तिलक माल कण्ठी सुभ लीन्ही। वैराग रीति तन निरभै कीन्ही॥
गुरू सरूप तिनको हरि भेंटे। दै दरसन पातक तन मेटे।
लक्षदास तिनके सुत ज्ञानी। —भगतबिहार (हस्तलिखित) पृ० २८८।

६ कृष्णरसागर (हस्तलिखित), पृ० ११।

७ वैदिक इन्डैक्स आव नेम एण्ड सब्जेक्ट्स. भाग १ (१९५८ ई०), पृ० २१।

८ हिन्दू ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स १८७९ ई० भाग २ शैरिंग भूमिका—पृ० २२

मे एक कथा प्रचलित है ।[1] इस कथा को हम प्रामाणिक नहीं मान सकते क्योंकि वैदिक यज्ञों के समय अध्वर्यु यजुर्वेद का मंत्र पढ़ने वाले ब्राह्मण को कहते थे । इसी कारण कालांतर मे यजुर्वेद को 'अध्वर्युवेद' भी कहा गया ।[2] बाद में अध्वर्यु का काम करने वाले लोग ही अध्वर्यु जाति के नाम से अभिहित किये गए ।

अर्गल के गौतम राजाओं ने कोई यज्ञ किया था जिसमे लक्षदास के किसी पूर्वज ने अध्वर्यु का काम किया था । कालांतर में उनके वंशधर भी अध्वर्यु कहे जाने लगे होंगे । इसी कारण परमानन्द भी अध्वर्यु कहे गए । इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि लक्षदास जी अध्वर्यु ब्राह्मण थे । उन्होंने अपने काव्य में स्वयं को अध्वर्यु कहकर अपने कुल, गौरव तथा आत्मप्रशंसा के भाव को व्यक्त किया है उसमे वर्णसंकर की भावना कहीं भी नहीं दिखाई देती । इसलिए अध्वर्यु की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में गुनीर गाँव मे प्रचलित कथा को हम किसी भी दशा मे प्रामाणिक मानने को तैयार नहीं है ।

नाम

अंतर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य से लक्षदास जी के बाल्यकाल के नाम का पता नहीं चलता है । अनुमान होता है कि सन्यास ग्रहण करने के पूर्व उनका नाम 'लछिमीधर' था क्योंकि कृष्णरससागर में संकलित 'समस्तानंदप्रद स्तोत्र' तथा 'हरिहर नामावली' में रचयिता का नाम 'लछिमीधर' आया है ।[3] काव्य की दृष्टि मे इन दोनों रचनाओं मे प्रौढ़ता नहीं है । हो सकता है ये कवि की प्रारम्भिक रचनाएं हों । उनका 'लक्षदास' नाम तो सन्यास ग्रहण करने के बाद रखा गया प्रतीत होता है क्योंकि लक्षदास के अंत मे 'दास' शब्द से यह स्पष्ट है कि उस समय सन्यास ग्रहण करने के बाद जो लोग वैरागी बनकर परिभ्रमण करते और साधु सत्संग मे लीन रहते थे उनके नाम के अंत मे प्रायः 'दास' शब्द जोड़ दिया जाता था, जैसे—कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, मलूकदास, धर्मदास आदि ।

नाभादास जी के भक्तमाल की परम्परा मे संत चंददास ने 'भगत विहार' ग्रंथ लिखा है । इसमे लक्षदास जी के नाम पर एक अनुराग (अध्याय) लिखा गया है जिसमे कवि का नाम लक्षदास है[4] किन्तु पुस्तक के प्रारम्भ मे दी गई भक्तों की सूची मे उनका नाम 'लीछीदास' दिया गया है । यह प्रतिलिपिकार की भूल के कारण अशुद्ध लिख गया प्रतीत होता है । इस ग्रंथ में भी लक्षदास के बाल्यकाल के नाम का कोई संकेत नहीं है । इसका कारण यह ज्ञात होता है कि चंददास जी ने हमारे आलोच्य कवि के लगभग २०० वर्ष बाद इस ग्रंथ की रचना की । इसलिए उन्हें लक्षदास जी के बाल्यकाल के नाम के विषय मे कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ होगा । उन्होंने उनके विषय में लोक मे प्रचलित केवल चमत्कार तथा

---

[1] गो० लक्षदास जी के सम्बन्ध मे प्रचलित जनश्रुतियों के अन्तर्गत 'जाति के विषय मे' शीर्षक के अन्तर्गत कथा दी गई है ।—देखिये पृ० ६० ।

[2] हिन्दी शब्द सागर, भाग १ (१९१२ ई०), पृ० ६० ।

[3] (क) कौन लछिमीधरमी दसानद. ।
(ख) लछिमीधर हरिहर जस गुन अभेदकारी ।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ९७ ।

[4] लक्षदास लक्षन सहित बासी सुभ्र गुनीर भगतविहार हस्तलिखित पृ०२८८

सिद्धियो की घटनाओ के विषय मे ही सुना होगा जिसका उन्होने अपने काव्य मे उल्लेख किया है।

'कृष्णरससागर' तथा 'भागवत पुराणसार' की उपलब्ध प्रतियो मे कवि ने अपना नाम लछ, लछि, लछी, लछदास, लछिदास तथा लछीदास दिया है। इस प्रकार अपने काव्य मे कवि ने जिस नाम के लघुरूप दिये है वे सभी लक्षदास के पर्याय या तद्भव रूप है। अवधी मे उच्चारण भेद से लक्षदास का नाम 'लछदास' होता है और ब्रज मे लाखा या लाखादास या इसी से मिलता-जुलता कोई और पर्याय शब्द हो सकता है। गुनीर गाँव के लोग इन्हे 'लछदास' कहते है तथा सचवारा (इलाहाबाद) गाँव की शिष्य परम्परा मे भी इनका यही नाम प्रचलित है। वृंदावन मे निम्बार्क सम्प्रदाय मे इनका नाम लक्षपाकी या लाखापाकी प्रचलित है। अत. सम्भव है कि सन्यास ग्रहण करने के बाद इनका नाम लक्षदास रखा गया हो।

नाभादास जी के भक्तमाल मे 'लाखा' नाम के छै भक्तों का नामोल्लेख या यत्किंचित् वर्णन मिलता है[1] किन्तु इनमे से 'लाखो जी' तथा 'लाखै अनुरागी' के गुण एवं कार्य वही है जो चददास जी ने 'भगतविहार' मे लक्षदास जी के बताये है।[2] अनुमान है कि 'लाखा जी' तथा 'लाखै अनुरागी' एक ही व्यक्ति रहे होगे क्योकि भक्तमाल मे नाभादास जी ने कई व्यक्तियो के विषय मे विभिन्न छप्पयो मे उल्लेख किया है।[3] भक्त, कवि, सन्यासी, सत-सेवा तथा कीर्तन करने वाले आदि विभिन्न कार्यो तथा दशाओ मे गिनाये जाने के कारण एक ही व्यक्ति के नाम की आवृत्ति कई बार हुई है। 'लाखोजी' तथा 'लाखै अनुरागी' नामो की आवृत्ति का भी यही कारण रहा होगा। अत अनुमान होता है कि ये दोनो एक ही व्यक्ति के दो नाम थे। ये दोनो नाम लक्षदास जी के नाम से मिलते-जुलते है। सत चददास ने 'भगतबिहार' मे लक्षदास जी के विषय मे जो विवरण दिये ह उनमे भी उनके कार्यो के विषय मे इसी प्रकार के सकेत मिलते ह।[4]

लक्षदास जी ने कविता मे अपना सखी नाम 'लछ' तथा 'लच्छि' दिया है[5] तथा स्वयं को सखी रूप मे मान कर भगवान् की मधुर भाव मे उपासना की है।[6] 'कृष्णरससागर' की पुष्पिका मे लक्षदास जी के नाम के पहिले गोसाई लिखा गया है। इससे कवि की महत्ता तथा जनता मे उनके प्रति पूज्य भाव का पता चलता है।

---

[1] भक्तमाल छप्पय सख्या ६६, १०४, १०७, १५९ १७१, १७६ (कल्याण के भक्त चरिताक २००८ मे दिये गये नाभादास के भक्तमाल से उद्धृत)

[2] भगत बिहार (हस्तलिखित), पृ० २८८-२८९।

[3] उदाहरण के लिए भक्तमाल मे वर्णित कुछ भक्तो के विषय मे लिखे गये छप्पयो की सख्या इस प्रकार है—

(क) आसकरन—छप्पय सख्या १०२, १५६, १७२।

(ख) परशुराम— ,, ,, १०२, १३८।

(ग) नरहर्यानंद— ,, ,, ६७, १००।

[4] भगत बिहार (सम्मेलन वाली हस्तलिखित प्रति), पृ० २८८-२८९।

[5] स्यामा तू नित आइयै इन कुंजन बन छाह।
लछ मिलावति तोहि हौ कान्ह कुंवर गहि बाह हस्तलिखित पृ० ९८

[6] वही पृ० ९०

जीवन-वृत्तांत

लक्षदास जी के बाल्यकाल एवं शिक्षा के विषय में अंतर्साक्ष्य (कवि की रचनाएँ) एवं बहिर्साक्ष्य (भगत विहार आदि ग्रंथ एवं जनश्रुतियाँ) मौन है। अतः उनके बाल्यकाल आदि के विषय मे कुछ भी कह सकना असम्भव है। उनके बाद के जीवन के विषय मे यत्र-तत्र जो संकेत मिलते है, उनके आधार पर अनुमान होता है कि उन्होने गृहस्थ धर्म धारण किया था। गुनीर गाँव वालो ने मुझे बताया कि उनके गृहस्थ धर्म धारण करने के बारे मे जनश्रुति तो है किन्तु इससे अधिक कुछ भी बता सकने मे वे असमर्थ है क्योकि इस विषय मे कोई प्रामाणिक वृत्त उनके पास नही है। कवि लक्षदास जी रचित 'श्रीमद्भागवत पुराण सारांश' की उपलब्ध प्रति की पुष्पिका मे उनके एक वंशज 'शिवदीन' का नाम है। इस ग्रंथ की प्रतिलिपि उन्होंने सवत् १८७२ में की थी। इसी मे उन्होंने स्वयं को लक्षदास का वंशज बताया है।[1] इससे भी यह अनुमान होता है कि लक्षदास जी ने संभवतः गृहस्थ धर्म धारण किया था।

भगत विहार मे संत कवि चंददास ने लक्षदास के कौमार्य से लेकर यौवन काल तक के अवसर के रीते (व्यर्थ) ही बीत जाने के विषय मे संकेत किया है।[2] इससे अनुमाना जाता है कि गृहस्थ धर्म मे वे कमलवत् रहे परन्तु उसमे उनका अनुराग नही रहा[3] इस प्रकार वे विदेहराज जनक की भांति निर्लिप्त संत थे।

लक्षदास जी ने कब सन्यास ग्रहण किया इसका कोई उल्लेख अंतर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य मे नहीं मिलता किन्तु जनश्रुति है कि वे गोस्वामी तुलसीदास जी के साथ गुनीर से वृन्दावन गये थे। इसके बाद अयोध्या, काशी, जयपुर और जोधपुर आदि स्थानो की भी तीर्थाटन के लिये गए थे। उस समय तक उनकी अवस्था काफी हो गई थी। लक्षदास जी की कुटिया मे जो मूर्तियाँ आज भी विद्यमान है उनमे से राधा-कृष्ण की मूर्तियों के बारे मे गुनीर-वासियो का कहना है कि इन्हे लक्षदास जी जोधपुर मे लाये थे।

कृष्णरससागर मे कवि ने अपने गुरू का नाम रूपनरायन बताया है और उनके वृन्दावन मे रहने का संकेत किया है।[4] कवि के वृन्दावन वास के सम्बन्ध मे अंतर्साक्ष्य मे संकेत मिलता है। भगवान के 'बालविहार' 'रास की कथा' को तो कदाचित् उन्होने व्रज मे रहकर ही लिखा था।[5] इसके अतिरिक्त व्रज के स्थानो-नदगांव, बरसाना, वृन्दावन, मथुरा तथा यमुना की महिमा का भी उन्होने पर्याप्त वर्णन किया है जिसमे इन स्थानों तथा यमुना

---

[1] पंचदूत, वर्ष ६, अंक १—'महात्मा लक्षदास गोसाई' शीर्षक लेख।

[2] येहि प्रकार बहुत दिन बीते। कुमार सो जोवन औसर रीते।
—भगतबिहार (हस्तलिखित), पृ० २८९।

[3] रहे निराम निवास ग्रह जथा कंज जल जाल।
गावत कीरत कृष्न मुख नाना चरित बिसाल।।—वही, पृ० २८९।

[4] कहीं-कहीं उन्होने अपने गुरू को स्वरूपनरायन तथा नरायन भी लिखा है। वस्तुतः वे हरिव्यासदेवाचार्य जी के शिष्य थे। इस सम्बन्ध मे आगे विचार किया गया है।

[5] बाल बिहार रास ब्रज बसिकै करौ ढिठाई प्रभु सो कसिकै।
हस्तलिखित पृ० १०

के प्रति उनका विशेष प्रेम भाव प्रकट होता है। इसके साथ ही यह भी अनुमान होता है कि स्थायी रूप मे गुनीर में रहते हुए भी वे 'ब्रजवास' तथा गुरु-दर्शन करने के लिए वृन्दावन जाते रहे होंगे।

वृद्धावस्था एवं अंतिम समय

कवि ने दोहावली मे 'चरन पानि लोचन वचन बल और बुद्धि' के साथ छोड़ देने की शिकायत की है और 'जरा के जोर' मे बचाने वाले केवल 'ब्रजनाथ' ही बताये है।[1] इससे यह ज्ञात होता है कि वृद्धावस्था मे वे बहुत अशक्त हो गये थे और इस बात का उन्हें बहुत दुःख था।

'भगत बिहार' मे चंददास ने लक्षदास को 'भये बिरध साधू तटवासी' लिखा है और उनके द्वारा 'हठ-व्रत करके गगाजी को वापस गुनीर लौटाने' के विषय में भी बताया है। लक्षदास जी की ख्याति तभी से और भी बढ गई। वे लोगों को 'कण्ठी माला' देकर 'दीक्षा' देने लगे।[2] इस प्रकार उनकी चमत्कार और सिद्धि की घटनाएँ लोक मे प्रभूत मात्रा मे फैलने लगीं। आज के वैज्ञानिक युग मे संतो के इन चमत्कारो की प्रामाणिकता के विषय मे कुछ भी कहना उचित नहीं है क्योंकि ये तो लोक-मानस की श्रद्धा एवं विश्वास के साथ फूलते-फलते रहते हैं।

इनकी मृत्यु कब, कहाँ और कैसे हुई इसके विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी नही मिलता। गुनीर मे जनश्रुति है कि जीवन के अंतिम दिनो मे वे वृन्दावन चले गये थे और इनका शरीरान्त भी वहीं पर हुआ। 'भगत बिहार' मे भी इनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे कोई उल्लेख नही है। इससे यह अनुमान होता है कि इनका देहावसान भी कदाचित् वृन्दावन मे ही कहीं पर हुआ। वृन्दावन मे उनके निवास स्थान आदि के विवरण अज्ञात है। ऐसा ज्ञात होता है कि लक्षदास जी के वृन्दावन चले जाने के बाद लोक मे उनके विषय मे कदाचित् कुछ भी ज्ञात नही हुआ अन्यथा चन्ददास जी उसका उल्लेख भगत बिहार मे अवश्य करते।

स्वभाव

लक्षदास जी का स्वभाव सरल था। वे निष्कपट एव आडम्बर रहित थे।[3] संतसेवा

---

[1] दोहावली (हस्तलिखित), संख्या १८६।

[2] भगत बिहार (हस्तलिखित), पृ० २८६।

[3] लछी अपावन जानि कैं तजत नाथ केहि हेतु।
पाये आपनी पानही चीन्हि लाख मे लेतु॥ दोहावली, संख्या १५५
दीनबन्धु वानौ विदित विस्वंम्भर सो नाउ।
लछी आपनी मूढ़ना द्वार पराये जांउ॥ दोहावली, संख्या १६३
दयासिधु दीनबन्धु सतन सुषदाई।
देहै अभय मुक्त मदा हिरदे मन लाई॥
जानेउ मतिमद कहा भरमेउ जग आई
लछदास सरन परेउ वासर निसि गाई अवरवेद २६ १ ५६ पृ० १६

उनका परम पावन लक्ष्य था क्योंकि वे सत समागम को मुक्ति का द्वार मानते थे।[1] 'भगत बिहार' में भी उनके गंगा स्नान करने के दृढ नियम तथा सतो की सेवा करने का वर्णन किया गया है।[2] उन्होने अपने समय की राजनीतिक अवस्था या शासन की नीति के सम्बन्ध मे कोई सकेत नही किया, परन्तु समाज मे फैल रहे साम्प्रदायिक विद्वेष को शात करके शैव और वैष्णवो मे सामजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है और इसीलिए उन्होने कहा कि जो लोग शिवजी के विरोधी है वे परम पद पाने के अधिकारी नही है।[3] वस्तुत शिव और कृष्ण मे कोई तात्विक भेद नही है। उन्होने भगवान् के नाम की महिमा बताते हुए कृष्ण को सर्वोपरि माना है क्योकि कृष्ण के केवल नाम स्मरण मात्र से प्रबल पातक भी रुई के पहॉड की भाँति क्षणभर मे जल कर नष्ट हो जाते है।[4] सामाजिक नियमो मे मर्यादा पालन को वे आवश्यक समझते थे।[5] वे भगवद्भक्त के लिए वर्ण-व्यवस्था के बधन शिथिल करने के पक्ष मे थे। "पचाध्यायी गोपिका गीत" के प्रसग मे इस कथन को उन्होने सामान्यत. स्वीकार करने के योग्य माना है।[6] ब्रज मे तो जाति-पॉत का कोई बन्धन ही नही रहा।[7] "जडभरतोपाख्यान" मे कवि ने ब्राह्मणो के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए उनके शाप से वश नाश तथा नरक यातना का संकेत किया है।[8] उन्होने कुसग

---

१ लछी साधु श्रुति कहत हैं महिमा नाथ अनन्त।
ते प्रभु तब ही मिलत है जबहि मिलत है सन्त ।। दोहावली, संख्या ७
पीछे भगत अनन्य के डोलत हैं भगवन्त।
और सकल मग त्यागि कै लछी सेइये सन्त ।। वही, संख्या ८
मनि मय मजुल मुकुट सिर लछी भारु जनु भूरि।
जिन ऊपर सोभित नहीं सुभग सत पग धूरि ।। वही, सख्या ६२

२ मज्जन गंगा नीर बिन करै नहीं जलपान।
संतत ऐसो नेम दिढ संजम सोधी प्रान ।।
सुमन चढाय सो बिजन आनै।
दै प्रसाद साधू सनमानैं ।। भगत बिहार, पृ० २८६

३ रहस देषि शिव चलत भे दूरि लिष्यौ यह बात ।।
जे हरि में लवलीन हैं चले परम पद जात ।।
लिष्यो कृस्न यह देषिकै या में नही विवेक।
जे निदक हैं सम्भु के तेन जात जन येक ।। कृष्णरससागर, पृ० ६७

४ कृष्ण नाम पातक प्रबल पातक रुई पहार।
लछी तनक किनुका परे होत सबै जरि छार ।। दोहावली, सख्या १६०

५ मातु तातु सुत पतिन तजि निसि आइउ केहि काज।
लछ देषि बन जाहु घर कहो कुँवर ब्रजराज ।। वही, सख्या १७
भलो मदपति आपनो त्रिय सेवै मनु लाइ।
लछी विमुष पति अक्ति है सती सयानपु जाइ ।। वही, संख्या १८

६ हरि कुल बरन कछू नही मानत।
भजन नाथ अपनो कै जानत ।। कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ४३

७ जाति पाँति सब एक है ब्रज में बसै को और। वही, पृ० १०५

८ बैरो एक ब्राह्मण के कुल को की अपराध होइ ना तन को
साप ज्वाल सब वश जलावे कुटुम सहित फिरि नक पठावै वही पृ० ८

परित्याग पर बहुत जोर दिया है मता क लिये ना इस ० बताया है [1] इसी कारण व्यर्थ के वाद-विवाद मे अपना समय नष्ट करने की अपेक्षा भगवान् की कथा सुनने को वे श्रेयस्कर मानते थे।[2] उनका विश्वास था कि भगवान् के किये हुए को कोई टाल नही सकता। इसीलिए वे भाग्य-बल पर विश्वास करते थे।[3] उन्होंने भूत-पूजा का विरोध करते हुए लिखा है कि मृत्यु मे कोई नही बचा और बाँझ के पुत्र होना असम्भव है फिर भी अज्ञानी लोग भूत की पूजा करते हैं और कृष्ण के चरणो का स्मरण नही करते।[4] वे नारी को माया की प्रतीक मानते थे इसीलिये उन्होंने उसमे बचने के लिए यत्र-तत्र सकेत किये है।[5] वे कृष्ण के प्रति प्रेम की भावना मे चातक, मीन, चकोर तथा हारिल की लकडी की सी अनन्यता चाहते थे।[6] उनकी दृष्टि मे केवल पत्थर पूजा ही सब कुछ नहीं है प्रत्युत् उसके साथ प्रेम का प्राधान्य भी होना चाहिए।[7]

सम्प्रदाय

कृष्णरससागर मे कवि ने राधा-कृष्ण की उपासना माधुर्य भाव मे की और अपने गुरु तथा उनके पूर्ववर्ती आचार्यों—विष्णुस्वामी, बुध, वर्धमान, गगल आदि अन्य जन—के नाम भी गिनाये है।[8] आचार्यों की इस परम्परा के बारे मे पूछताछ करने पर निम्बार्क सम्प्रदाय के वृंदावनस्थ अधिकारी श्री व्रजवल्लभ शरण जी ने बताया कि इस सम्प्रदाय के आचार्यों की कई परम्पराएं रही है जिनमे दो प्रकार के आचार्य हुए हैं (१) गृहस्थ, (२) विरक्त। सम्प्रदाय की मान्यताओ के अनुसार विरक्तो को ही गद्दी का अधिकारी बनाते है, अतः प्रायः उन्ही का वर्णन करने की परम्परा रही है। गृहस्थ आचार्यो का कहीं-कहीं नामोल्लेख

---

१ लछ कुसगत मयल ते होत सत पट लाट।
तजहि लाग लपि मृतक पट सुरसरिहि को घाट॥ दोहावली, सख्या ९८
लछी कुसंगनि के बसे घटे बडेन की कानि।
भुवन पातकी आपनो होत अपावन पानि॥ वही, संख्या ९९

२ तजि मिथ्याश्रम वाद विवाद।
श्री गोविन्द कथावित स्वाद॥ कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ९६

३ कीबो होत करतार को पलक परै नहि बीचु।
लछी जतन बलु चहतु है नीच बचाई मीचु॥ दोहावली, संख्या १८७

४ सांची मीचु ना बयो बाँझ न ब्यानी पूत।
लछ कृष्ण पद छाड़ि तऊ पावर पूजहि भूत॥ दोहावली, सख्या ९३

५ त्रीय है काम बधिक की गासी। आपु अनग त्रिया है फासी॥
+ +
लछदास हरि नेह करि जिन तिय बस मनु कीन्ह।
नेम ज्ञान तप धरम को अंजुरी भरि जल दीन्ह॥ कृष्णरससागर, पृ० ८४

६ दोहावली संख्या ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, १८१, १८३।

७ जगु जानै अरु सबकु हैं पाथर नहिन पमेव।
लछी प्रेम ते प्रगट भे पाथर त्रीभुअन देव॥ वही, संख्या १८२

८ विष्णु स्वामी बुध जन
तिन ते श्री गुरु लह्यो सुखद हरि नाम महाधन पृ० ६५

मिलता है। हो सकता है कि विष्णु स्वामी तथा बुधाचार्य इसी प्रकार के गृहस्थ आचार्य हों जो लक्षदास के समय तक साधु-समाज में तो प्रसिद्ध रहे हों किन्तु सम्प्रदाय ग्रंथों में विधिवत् उनका उल्लेख न किया गया हो।

वर्धमान और गंगल तो निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य थे ही। नाभादास जी के भक्तमाल में वर्धमान और गगल को हरिभक्ति का थम्भ (स्तम्भ) बताकर भीष्म भट्ट का पुत्र लिखा गया है।[1] श्री रूपकलाजी की वार्तिक में इनकी निष्ठा कीर्तन करने वाले भक्तों में गिनाई गई है।[2] श्री ध्रुवदास जी रचित 'ध्रुवनामावली' में 'वर्धमान श्री भट्ट अरु गगल ब्रज वृन्दावन आयो" लिखा गया है।[3] इसकी टीका करते हुए श्री राधाकृष्णदास जी ने इन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय का अनुयायी बताया है।[4] श्री बालकराम जी विरचित भक्तमाल की 'भक्तदाम गुण चित्रनी टीका' (रचना काल सं० १८३३ वि०) नाम की एक टीका भी देखने को मिली है। इसमें वर्धमान और गंगल को निम्बादित्य पद्धति का अनुयायी बताया गया है और गगल भट्ट तथा वर्धमान के चमत्कारों का उल्लेख किया गया है। इसी में वर्धमान को भागवत की कथा कहने वाला बताया गया है।[5]

निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों की परम्परा तथा लक्षदास जी के विषय में कुछ प्रामाणिक वृत्त जानने की इच्छा से मैं वृन्दावन गया और सम्प्रदाय के वयोवृद्ध साधुओं से वार्ता की। उन्होंने बताया कि लक्षदास जी स्वामी हरिव्यास देव जी के शिष्य और उच्च कोटि के महात्मा थे। श्री ललिताचरण जी अधिकारी (बिहारी जी का बगीचा वृन्दावन) से लक्षदास जी के विषय में यह जनश्रुति प्राप्त हुई। 'लक्षदास जी स्वामी हरिव्यास देवाचार्य जी के शिष्य हुए। स्वामी हरिव्यास देव जी एक समय भ्रमण करते हुए प्रयागराज को जा रहे थे। उस समय मार्ग में लक्षदास जी उनसे मिले जो किसी योग्य गुरु की खोज में थे। लक्षदास को स्वामी जी के दर्शन एवं प्रवचनों से सन्तोष हुआ, अतः उन्होंने उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। तब हरिव्यास देव जी ने लक्षदास को एक लाख साधु, ब्राह्मण तथा अतिथियों को भोजन कराने का आदेश दिया। लक्षदास जी ने सभी को भोजन करा दिया तभी से उनका नाम लक्षपाकी या लाखापाकी पड़ा। हरिव्यास देव जी ने लक्षदास जी को, वहीं पर रह कर, राधा-कृष्ण की उपासना करने का आदेश दिया।'

डा० नारायणदत्त शर्मा ने अपनी थीसिस 'निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि' (टंकितप्रति) में पृ० १५१-१५२ पर साम्प्रदायिक मत से श्री हरिव्यास देव जी का जन्म स० १५२० वि० के आस-पास बताया है। इससे श्री हरिव्यास देव जी तथा लक्षदास जी का समसामयिक होना सिद्ध होता है।

---

[1] भक्तमाल भक्तचरितांक (गीता प्रेस) २००८, पृ० ६ छप्पय सख्या ८२।
[2] भक्तमाल-रूपकला जी की वार्तिक भक्ति सुधा बिन्दु स्वाद टीका, १९६६ वि० श्री भक्तमाल उपक्रमणिका, पृ० ३२।
[3] भक्त नामावली, ध्रुवदास (१९२८) दोहा संख्या २३।
[4] वही, टीका पृ० ३४-३५ (क्रम सख्या ३९ तथा ३१)।
[5] भक्त दाम गुण चित्रनी टीका—बालकराम। (यह टीका हिन्दी विद्यापीठ आगरा विश्व विद्यालय के हस्तलिखित ग्रन्थ विभाग में है

'श्रीधाम   में लाखापाकी को स्वामी हरिव्यासदेव जी का शिष्य बताया गया है और लाखापाकी की शिष्य परम्परा के कुछ नाम भी दिये गए हैं।[1] अधिकारी श्री व्रजवल्लभ शरण जी ने बताया कि निम्बार्क सम्प्रदाय के जागा (भाट) भी आचार्यों की परम्परा में लाखापाकी का नाम सुनाते है। ग्वालबाल कृत भक्तमाल (रचनाकाल सं० १८०६ वि०) में लाखापाकी को हरिव्यासदेव जी का शिष्य बताया गया है।[2]

कहा जाता है कि सूरदास वाली कुज वृदावन मे श्री हरिव्यासदेव जी तथा लक्षदास जी आदि सतो की समाधियाँ थी।—पूछताछ करने पर वयोवृद्ध लोगो से केवल यही ज्ञात हो सका कि सूरदास वाली कुज का वह स्थान—जहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय के साधुओ की समाधियाँ थी—लगभग १०० वर्ष पूर्व किसी जोगी को बेच दिया गया था। इस कुज मे हस्तलिखित ग्रन्थो का एक वृहत् सग्रह था। उस जोगी ने वे ग्रन्थ तो बैलगाड़ी मे भरकर यमुना जी मे प्रवाहित कर दिये और उन समाधियो को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसीलिए उस स्थान पर इस सम्बन्ध मे आज कुछ भी उपलब्ध नही है।

गुरु एवं ज्ञान

कृष्णरससागर मे लक्षदास जी ने कहा है कि उनके पिता परमानन्द को भगवान् ने गुरु के रूप मे दर्शन दिये। उन्होने अपना सर्वस्व त्याग कर 'हरि' के चरणों में मन लगा दिया।[3] यही बात 'भगत बिहार' मे सन्त चंददास ने भी कही है। आगे चल कर लक्षदास जी ने, सम्भवत', पिता के गुरु को ही अपना गुरु स्वीकार कर लिया और गुरु तथा भगवान् मे कोई भेद नही माना।[4] अत. उन्होने अपने गुरु को श्री रूपनरायन तथा सरूपनरायन नामों से सम्बोधित किया। यह भी सम्भव है कि इस नाम के कोई पृथक् सन्त रहे हो जिन्हे लक्षदास ने अपना गुरु मान लिया हो, किन्तु यह सुनिश्चित है कि उनके गुरु अपना सर्वस्व त्याग कर प्रेम-भक्ति के साथ बैरागी रूप मे वृन्दावन में रहते थे।[6] उनके गुरु ने उन्हे

---

१ श्री धाम क्षेत्र भाषा—वेष्टन संख्या ५३, क्रमसख्या ४५, प्राप्ति स्थान—श्री निकुज, प्रताप बाजार, वृन्दावन।

२ लफरा जान गोपाल परस सौभू धिन रामा।
रषीकेस वोयथ ब्रिमचारी परणामा।
बुधरदास भगवान् पुनसगभीर गोपालं।
ग्यान गोपाल सधीर मदन गोपाल क्रिपालं।
लाषापाषा सबदरत संग न रंगणी ग्यांनता।
हरव्यासदेव गुर भेष धिन द्वारपाल सिप सिधता।।—छप्पय सख्या २५७।

3 गुरु सरूप नारायन पायो। जिन सब तजि भजि हरि मनु ल्यायो।।
—कृष्णरससागर, पृ० ११

४ गुरु सरूप तिनको हरि भेटे। दै दरसन पातख तन मेटे।।
—भगत बिहार, पृ० २८८।

५ गुरु गोविन्द भेद कछु नाही। अगम कहो भागवत माही।।
पृ० ६६।

६ विषय स्वाद तजि प्रम भक्ति मन लसत विराग बसत वृन्दावन वही पृ० ११

'मोहन' नाम का मुक्ता (मन्त्र) दिया।[१] इसीलिये लक्षदास ने अपने आराध्य को 'मनमोहन' कहा क्योंकि यही नाम गोपियो को भी प्रिय था।[२] अपने गुरु श्री हरिव्यासदेव के मुँह से सुनी हुई कृष्णकथा के आधार पर ही लक्षदास ने 'कृष्ण चरित' की रचना की।[3] भगत विहार मे लक्षदास के विषय मे 'गावत कीरत कृष्ण मुख नाना चरित बिसाल' कहा गया है।[४] इसमे 'गावत' शब्द से ध्वनित होता है कि वे कृष्ण की कथा को विविध रूपों मे सन्तो को सुनाया करते थे। माघ के महीनों मे विशेष रूप से सत समागम होता था जिसमे लक्षदास जी कृष्णचरित तथा भागवत की कथा सुनाते थे।[५] नागरी प्रचारिणी सभा काशी के याज्ञिक सग्रह की हस्तलिखित पोथियो मे लक्षदास के कुछ पद तथा भजन मिले है जिनसे ज्ञात होता है कि वे सगीत के भी ज्ञाता थे और विभिन्न राग-रागनियो का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था।[६]

शिष्य परम्परा

लक्षदास जी की शिष्य परम्परा तीन रूपों में मिलती है— (१) गद्दी के अधिकारी शिष्य, (२) शिष्यत्व ग्रहण करने वाले शिष्य के वशधर, (३) 'श्रीधाम क्षेत्र भाषा' मे बताये गये शिष्य।

लक्षदास जी के बाद उनकी गुनीर की गद्दी की शिष्य परम्परा किस प्रकार चली इस सम्बन्ध मे अब कोई विवरण उपलब्ध नही है। इसके बारे मे जो कुछ ज्ञान हो सका है वह एक टूटी-फूटी शृंखला के रूप मे है। इसका समय निश्चित करना कठिन है। गुनीरवासियो का कहना है कि जब महात्मा लक्षदास जी की वीर्य परम्परा के लोग गद्दी को विधिवत् सँभालने मे असमर्थ सिद्ध हुए तो उनके किसी सुयोग्य शिष्य को, गाँव वालों ने, गद्दी का मालिक बना दिया और उसके बाद मे कुटिया का भार शिष्य जन्य परम्परा के हाथ मे चल रहा है। आज लक्षदास जी के वशधर नही है। आज यह निश्चित करना भी कठिन है कि उनके वशधर निस्सन्तान होने से या किसी अन्य कारण से, कब से नही रहे है। शिष्य जन्य परम्परा का पूरा विवरण भी गाँव वालो से प्राप्त नही हुआ क्योंकि लिखित प्रमाण के रूप में तो कुछ है ही नही। जनश्रुतियों के आधार पर जो विवरण उपलब्ध हो सका है वह तो १५० वर्ष से अधिक का नही है। इस प्रकार जो परम्परा उपलब्ध हुई उसे कैप्टेन शूरवीरसिह ने पचदूत मे इस प्रकार दिया है—[७]

---

१ श्री रूप नरायन कृपासिधु दीन्हो मैं पाये।
मुक्ता मोहन नाम सुपद अति सुभग सुहाये॥ —वही, पृ० ६५।

२ कियो लछ जन को मन भावो। मनमोहन कहि गोपिन गावो॥
—कृष्णरससागर, पृ० १५।

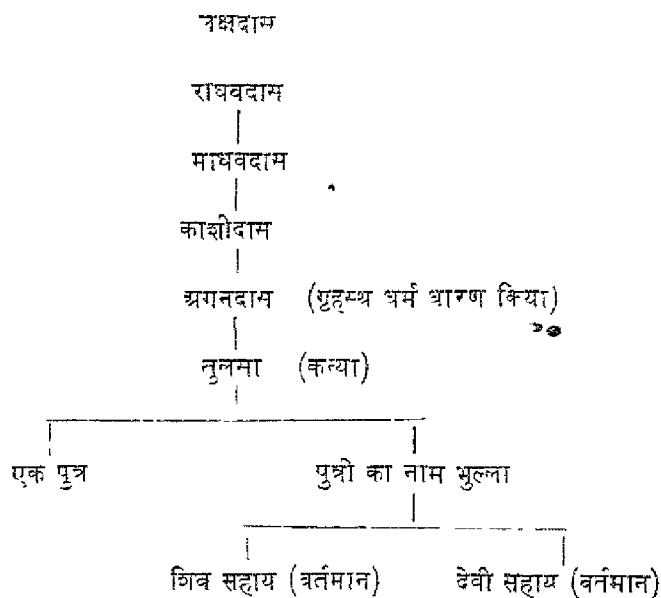
3 हो दयाल हरि नाम सुनावो। लक्षदास तेहि बल कछु गावो॥ वही, पृ० ११।

४ भगत बिहार (हस्तलिखित), पृ० २८८।

५ माघ कथा सबही सुनी कही लछी समुझाइ। दोहावली संख्या १६४।

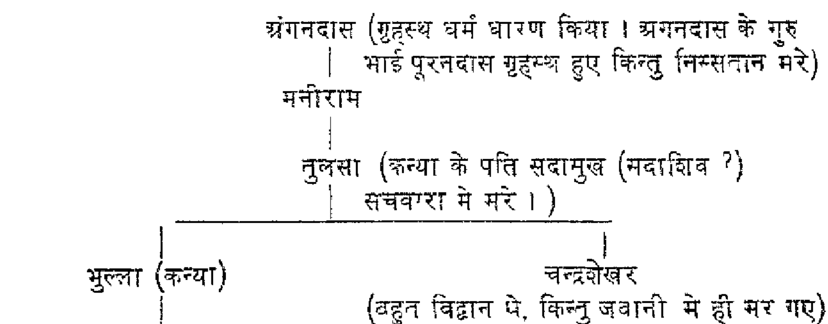
६ काशी नागरी प्रचारिणी सभा संग्रहालय बस्ता संख्या ४१, पोथी संख्या ८३४ तथा बस्ता संख्या ४२ पोथी संख्या २८४।

७ पचदूत वर्ष ६ अक १ महात्मा लक्षदास गोसाइ शीर्षक लेख



पंचदूत में प्रकाशित उपर्युक्त परम्परा क्रमबद्ध रूप मे उपलब्ध नहीं है क्योंकि लक्षदास के बाद की शृंखला का कोई, ऐतिहासिक प्रमाण नही है। यह शृंखला तो गाँव वालों से जनश्रुति के रूप में प्राप्त हुई है। इस शृंखला के बारे मे प्रामाणिक वृत्त जानने की जिज्ञासा से मैं जब गुनीर गया तो गाँव वालो ने लक्षदास जी के शिष्य भगत आसकरन के बारे मे चर्चा की और यह भी बताया कि उनके वंशधर सचवारा (इलाहाबाद) में रहते है। भगत जी के वंशजों का संक्षिप्त विवरण इसी लेख के प्रारम्भ मे दिया जा चुका है। आज भी भगत जी के वंशधर सचवारा, बंधुरी तथा सगरोही उर्फ आसकरनपुर में रहते है।

सचवारा के बाबू शारदा प्रसाद जी खरे तथा बाबू हरवंशी लाल जी ने मुझे बताया कि लक्षदास जी की गद्दी के अधिकारियों की प्राचीन परम्परा के विषय में तो उन्हें कुछ भी ज्ञात नही है, किन्तु अपने परिवार मे बाबा अगनदास के बाद की परम्परा को उन्होंने इस प्रकार सुना है—



शिव सहाय वर्तमान देवी सहाय वर्तमान

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है अमनदास के गुरुभाई का नाम पूरनदास था। पूरनदास के नाम से माफी थी। इनकी पत्नी का नाम सुविधिया था। इन्हे लोग गुराइन (गुरुआइन) दादी कहते थे। सुविधिया के नाम से भी माफी थी। वह पुराने सरकारी लेखा में अब भी देखने को मिल जाती है। सचवारा (इलाहाबाद) गाँव में भी सुविधिया के नाम से माफी थी। जमीदारी प्रथा की समाप्ति के पूर्व तक गुनीर की गद्दी के (लक्षदास जी की गद्दी के अधिकारी) लोग सचवारा से अपना सीधा लेने जाते रहे।

'श्रीधाम क्षेत्र भाषा' में जहाँ हरिव्यास देव जी के साढे बारह शिष्यो के नाम दिये गये है वही लक्षदास (लक्षपाकी) की शिष्य परम्परा का भी इस प्रकार वर्णन है—

लक्षिपाकितनुम् शिष्य गोपालदेवाश्रयः। तस्यशिष्य हरिभक्तरूप सदाप्रसादसेवकः (१) शैवादेवाय तत्सिष्य भक्तिनोईप्रमोदिका। राधादेवायततसिष्यो कृष्न भक्ति सदाश्रय. (२) तन्सिष्यो परमुराम नृपः द्वितीय परमानन्दय। शतशेई नादादित्य सवकर्मफलप्रदाः (३)[1]

हस्तलिखित ग्रथ की जिस प्रति मे शिष्य परम्परा का यह विवरण मिला है उसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध मे अन्यत्र कोई वृत्त अभी तक नही मिला है जिसके आधार पर उक्त कथन की प्रामाणिकता सिद्ध की जा सके।

---

[1] श्री धाम क्षेत्र भाषा—वेष्टन सख्या ५३ क्रम-सख्या ४५ स्थान-श्रीनिकुज प्रताप बाजार, वृन्दावन

अध्याय ३

लक्षदास जी की रचनाएँ

रचनाओं की उपलब्धि एवं उनके सम्बन्ध में सूचनाएँ

लक्षदास जी की रचनाओ के बारे मे तीन प्रकार से सूचना मिलती है—

(१) अद्यावधि उपलब्ध अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथ—कृष्णरससागर, भागवतपुराणसार, दोहावली तथा फुटकर पद।

(२) पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित रचनाएँ—उपर्युक्त अप्रकाशित साहित्य के कुछ अश तथा फुटकर रूप से प्राप्त पद।

(३) लक्षदास जी द्वारा लिखे गये ग्रंथो के बारे मे जनश्रुति—रामचरित काव्य तथा कृष्णायन।

प० देवीदत्त जी शुक्ल की प्रेरणा से कैप्टन शूरवीरसिंह ने लक्षदास की रचनाओ को प्राप्त करने के लिए गुनीर गाँव (जिला फतेहपुर हसवा) मे खोज कराई तब कृष्णरससागर, भागवतपुराणसार, दोहावली तथा फुटकर पद प्राप्त हुए।[1] यह रचनाएँ अभी तक अप्रकाशित हैं। कैप्टन शूरवीरसिंह ने इन्ही हस्तलिखित ग्रथो के कुछ महत्वपूर्ण एव रोचक स्थलो को अपने लेखो मे उद्धृत करके फतेहपुर से प्रकाशित अर्द्ध-शासकीय पत्र पंचदूत मे प्रकाशित किया।

'फुटकर पद' नाम से किसी ग्रंथ या संकलन के रूप मे लक्षदास जी रचित पद पृथक् से नही मिलते। ये दो रूपो मे उपलब्ध है—

(१) लक्षदास रचित कृष्णरससागर तथा भागवत पुराणसार मे सकलित पद।

(२) विभिन्न भक्तो के भगवद्भक्ति विषयक रचे हुए फुटकर पदों के साथ मे सकलित किये गए पद और कवित्त।

कवि लक्षदास रचित कृष्णरससागर मे २१ पद तथा भागवतपुराणसार मे २४ पद सकलित है। इनके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे पदों के उपलब्ध होने का सकेत मात्र है तथा हस्तलिखित पोथियो मे भी कतिपय पद प्राप्त हुए है। सक्षेप मे हम इन पर विचार करेंगे।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट (१९३२-३४) मे 'कवित्त सार' नाम के एक ग्रंथ के प्राप्त होने की सूचना दी गई।[2] उक्त ग्रथ का जो विवरण दिया गया है उससे यह स्पष्ट है कि क[illegible] विभिन्न भक्त कवियो के पदो का [illegible] ग्रथ है जिन भक्त

कवियो के पदो का सकलन इस ग्रथ मे किया गया है उनकी एक विस्तृत सूची भी दी गई है। इस सूची मे 'लक्षदास' नाम ५२वी सख्या पर दिया गया है। उनकी कविता का कोई उदाहरण नही दिया गया।

डा० शिवगोपाल मिश्र को भी फतेहपुर जनपद के हस्तलिखित ग्रथो से लक्षदास जी रचित दो पद प्राप्त हुए। ये ग्रथ भी विभिन्न भक्त कवियो की रचनाओ के सकलन है। डा० मिश्र ने स० १८३० की किसी हस्तलिखित प्रति से उपलब्ध एक पद को अन्तरवेदीय साहित्य मण्डल फतेहपुर के मुखपत्र 'अन्तरवेद' मे छापा है।[1] (वे स्वय इसके सम्पादक भी है)। मेरी फतेहपुर यात्रा के समय डा० मिश्र ने मोतीलाल नाम के किसी व्यक्ति की एक प्राचीन डायरी मुझे दिखाई जो स० १८२१ मे कैथी लिपि मे लिखी गई थी। इसमे कतिपय अन्य कवियो की रचनाओं के साथ उन्होंने लक्षदास रचित 'विष्णु पद' भी इसमे से पढकर सुनाया।[2]

लक्षदास जी रचित अन्य काव्यो की खोज करने के उद्देश्य से इन पक्तियो का लेखक विभिन्न पुस्तकालयो मे गया और वहाँ पर उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थ देखे तो नागरी प्रचारिणी सभा काशी के याज्ञिक सग्रह के हस्तलिखित ग्रन्थ विभाग की दो पोथियो मे लक्षदास रचित ९ कवित्त एव ६ पद प्राप्त हुए जो भाव, भाषा और वर्ण्य विषय मे लक्षदास जी की अन्य रचनाओ से साम्य रखते है।

"सगीत रागकल्पद्रुम" सगीत का एक वृहत्काय ग्रन्थ है जिसमे भक्त कवियो की बहुत-सी रचनाएँ सगीत की राग-रागिनियो की दृष्टि से सकलित की गई है। इस ग्रन्थ मे लक्ष्मणदास तथा लछनदास की छाप वाले ६८ पद सगृहीत मिलते है, जिनका वर्ण्य-विषय लक्षदास जी की रचनाओ से मिलता-जुलता है किन्तु वस्तुत ये हमारे आलोच्य कवि की रचनाओ से पृथक् है।

---

[1] अतरवेद, लोक साहित्य अक, २६-१-१९५९, पृ० १९।

[2] आजु विराजत है अति दोऊ सुन्दर जुगुल किसोर री।
अंग अग कोटि भय काम धुरि अटके नैन चकोर री।
बैठे सरस सुघन आसन पर परम सुघन पट छाहृ री।
किन्नरनि हँसनि लजावत हसन असन दीन्हे बाँह री।
बेनी रसिक रची निज कर गहि दै दै सुमन की पाँति री।
कुसुभी लता कनक गिर ऊपर रही मधुकर अस मातु री।
नखरूप अनूप मुट्ठक छवि मोर चन्द्र फहराति री।
भरि भरि रूप सिंध जल उमगे दंपति उर न समाति री।
तिरिया लटकनि पर पिय आनन्द है मोती लसत सुढार री।
मनोविपरीति विधि करत कँवल सों दविति उर न समाति री।
विहसनि हँसनि रदनि की सोभा पिय निरखति एहि भाँति री।
मनो चकोर परसि मदाकिनि दमकि दमकि दुरि दुरि जाति री।
पसरी मुख पर ससि मनि मुक्ता जगमगात अवतसु री।
एकहि रग अधर धर दोऊ गावति है कलि हंस री।
नगर कोउ रह जल को बन भल उरझत री।
बिहसति हँसनि नमत निनुआरन होत सबन मन मायरी।
अब मनोहर अति सुख सागर सलित गोकुल गाप विहार रा
सोरी मन मोहन चरन रेनू पर लछीदास बलिहार री

गुनीर गाँव के निवासियों का कहना है कि लक्षदास जी ने रामचरित काव्य तथा कृष्णायन दो ग्रन्थ और लिखे थे। ये दोनों ग्रन्थ अभी तक मुझे देखने को नहीं मिले।

उपर्युक्त समस्त सूचनाओं पर हम आगे विस्तार से विचार करेंगे।

रचनाओं की प्राप्ति के स्थान तथा स्रोतों की प्रामाणिकता

कृष्णरससागर, भागवतपुराणसार तथा दोहावली

लक्षदास जी रचित ये पुस्तकें फतेहपुर-हसवा के गुनीर गाँव में ही उपलब्ध हुईं। इन पंक्तियों का लेखक जब गुनीर गाँव गया तो पता चला कि उक्त गाँव में लक्षदास की कुटिया के नाम से प्रसिद्ध एक कुटिया आज भी जर्जर दशा में विद्यमान है। लक्षदास जी की गद्दी के अधिकारी लोग अभी तक इसके संरक्षण का प्रयत्न करते रहे हैं। लक्षदास जी रचित समस्त साहित्य पहले यहीं पर रखा रहता था, किन्तु जब उनकी गद्दी के अधिकारी लोग परदेश चले गये तब, अब से लगभग ५५ वर्ष पूर्व, कुटिया के पश्चिमी दालान के गिर जाने से वह बहुमूल्य साहित्य उसी में दब गया, उसे निकालने का उद्योग किसी ने भी नहीं किया।[1] कृष्णरससागर, भागवतपुराणसार तथा दोहावली के बच जाने का एकमात्र कारण यही था कि कुटिया के पुजारी (लक्षदास की कुटिया के अधिकारी) इन ग्रन्थों को ग्रामवासियों को सुनाया करते थे। अतः पुजारियों के परदेश चले जाने पर इन ग्रन्थों को पड़ोसी लोग अपने घर उठा ले गये। ये पड़ोसी लोग लक्षदास की शिष्य-परम्परा के परम हितैषी और मित्र थे। उन्होंने लक्षदास जी के बचे हुए उक्त ग्रन्थों के संरक्षण का भार अपने ऊपर ले लिया। यह वही ग्रन्थ है जो लक्षदास जी रचित कहे जाते हैं और इन्हीं के उपलब्ध होने की सूचना विभिन्न पत्रों में प्रकाशित की गई है।

'पंचदूत' में लक्षदास जी के विषय में प्रकाशित विवरण का विस्तृत इतिवृत्त जानने की इच्छा से इन पंक्तियों का लेखक जब कैप्टन शूरवीरसिंह जी से मिला तो उन्होंने बताया कि पुजारियों के परदेश चले जाने के बाद उनके पड़ोसी उक्त ग्रंथों को उठा ले गये किन्तु लक्षदास जी में श्रद्धा होने के कारण उनके रचित इस साहित्य को (कालान्तर में पढ़ने के लिये पन्नों के रूप में) विभिन्न परिवारों ने परस्पर बाँट लिया। पं० देवीदत्त शुक्ल के आदेश से जब कैप्टन शूरवीरसिंह ने गुनीर गाँव में खोज कराई तो ये इतस्ततः बँटे हुए पन्ने एकत्र किये गये और इनके सम्बन्ध में सूचनाएँ प्रकाशित की गईं। इस प्रकार इन बिखरे हुए पन्नों को पुनः पुस्तकों (पोथियों) के रूप में संकलित करके उनकी (पुस्तकों की) प्राप्ति की सूचना पंचदूत में छापी गई और ये ग्रंथ गुनीर गाँव के प्रधान ठा० रामशरण सिंह के पास रख दिये गए। ये प्रतियाँ आजकल कैप्टन शूरवीरसिंह के पास ही पहुँचा दी गई हैं।

फुटकर पद—लक्षदास जी के नाम से उपलब्ध समस्त पद दो स्थानों से प्राप्त हुए हैं—(१) कवि के निवास स्थान गुनीर ग्राम (फतेहपुर-हसवा) से, और (२) गोकुल (मथुरा) से।

गुनीर गाँव (जिला फतेहपुर-हसवा) कवि का जन्म स्थान था। कवि ने अपने जीवन

[1] पंचदूत वर्ष ६ अंक १

का अधिकांश समय इसी गाँव में व्यतीत किया था। अपनी रचनाओं को, सम्भवत, कवि ने यहीं पर लिखा था।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा में जो याज्ञिक संग्रह है वह पं० मयाशंकर याज्ञिक का था। श्री याज्ञिक गोकुल में वल्लभ सम्प्रदाय के मंदिर के अधिकारी थे। उन्होंने अपने आस-पास से प्रचुर मात्रा में हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह किया। श्री याज्ञिक की मृत्यु के बाद उनके पुत्र ने हस्तलिखित ग्रंथों का वह संग्रह काशी नागरी प्रचारिणी सभा को दे दिया। याज्ञिक संग्रह की दो पोथियों में लक्षदास के पद तथा कवित्त संकलित मिलते हैं जिनसे स्पष्ट रूप से यह प्रतीत होता है कि लक्षदास जी अच्छे गायक रहे होंगे जिनके नाम से बिखरे हुए कतिपय पद तथा कवित्त इन ग्रंथों में भी संगृहीत किये गये। अंतर्साक्ष्य एवं जनश्रुति से यह स्पष्ट है कि लक्षदास के गुरु वृंदावन में रहते थे। लक्षदास जी उनसे मिलने के लिए वृन्दावन जाते होंगे और भजन-कीर्तन के अतिरिक्त साधु-सत्संग में भी भाग लेते होंगे। इसी-लिये कवि के नाम से उपलब्ध पद इन स्थानों पर मिलते हैं।

रामचरित काव्य—लक्षदास जी के जीवन वृत्त और उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण जानने की इच्छा से मैं गुनीर गाँव को गया। गाँव वालों ने लक्षदास जी रचित अन्य ग्रन्थों की सूचना देने के साथ ही मुझे यह भी बताया कि लक्षदास जी ने 'राम-चरित काव्य' नाम का कोई ग्रंथ और लिखा था किन्तु इस काव्य ग्रंथ की कोई प्रति मुझे देखने को नहीं मिली। गुनीर गाँव के प्रधान ठा० रामशरणसिंह ने बताया कि यह ग्रंथ दोहा-चौपाई की शैली में लिखा गया था। इसे उनके रिश्ते के एक भाई (जो कि तहसीलदार थे) अपने पढ़ने के लिए ले गये। उन (तहसीलदार) की मृत्यु के बाद से उक्त ग्रंथ का कोई पता नहीं चलता। यह ग्रंथ आजकल उपलब्ध नहीं है।

कृष्णायन—कृष्णायन ग्रंथ भी रामचरित काव्य की भाँति अनुपलब्ध है। यह ग्रंथ भी लक्षदास जी की उच्चकोटि की काव्य-रचना कही जाती है। के० एम० मुंशी हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय के शोध पत्र 'भारतीय साहित्य'[1] में लक्षदास रचित 'कृष्णायन' ग्रंथ को उपलब्ध बताया गया है, किन्तु यह ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। 'कृष्णरस-सागर' तथा 'भागवतपुराणसार' की उपलब्ध प्रतियों में कृष्ण चरित्र का वर्णन देखकर और लक्षदास रचित 'कृष्णायन' ग्रंथ की प्रसिद्धि के कारण ही, सम्भवत, डा० सत्येन्द्र जी ने उनमें से किसी को भ्रमवश 'कृष्णायन' मान लिया, ऐसा प्रतीत होता है। गुनीरवासियों ने इन पंक्तियों के लेखक को बताया कि उन्होंने परम्परा से ऐसा सुना है कि लक्षदास जी की शिष्य-परम्परा के लोग इस ग्रंथ को मध्यप्रदेश ले गये तब से इसके सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता। अभी कुछ समय पूर्व पं० देवीदत्त जी शुक्ल ने मुझे बताया कि मंझनपुर तहसील जिला इलाहाबाद के किसी कायस्थ परिवार के यहाँ पर 'कृष्णायन' ग्रन्थ के होने की उन्हें (शुक्लजी को) सूचना मिली है। अतः उक्त ग्रंथ को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न अब भी जारी है। गाँव वालों के कहने से तथा अन्य प्राप्त सूचनाओं से यह पता चलता है कि 'कृष्णायन' ग्रंथ

तथा भागवतपुराणसार से पृथक एक भिन्न रचना है जो अभी तक

ग्रंथों की प्रामाणिकता

कृष्णरससागर एवं भागवतपुराणसार—लक्षदास जी के ये ग्रन्थ उनके निवास स्थान गुनीर गाँव से ही प्राप्त हुए है। कृष्णरससागर ग्रंथ में कवि ने आत्मपरिचय के संकेत दिये हैं। अपने निवास स्थान तथा पिता का परिचय देते हुए कवि ने लिखा है—'नग्र (नगर)' के निकट गुनीर शोभायमान है जहाँ गौतम राजाओं का 'विवेक रवि' चमक रहा है, उन्होंने यज्ञ करके बहुत से लोगों को 'वृत्ति' दी और ब्राह्मणों मे अध्वर्यु (जाति) को उठाया (बनाया)। उसी कुल मे तात परमानन्द हुए, जो सत्यवादी और शीलवान है। उन्हे सदैव 'हरि' नाम स्मरण ही प्रिय है। गुरु के स्वरूप मे 'नारायण' ने उन्हे दर्शन दिये। उन गुरु ने सब कुछ त्याग कर भगवान् के चरणों मे ही मन को लगाये रखा।[1] अन्य स्थलों पर (इसी ग्रन्थ मे) कवि ने अपने गुरु के पूर्ववर्ती आचार्यों की परम्परा बताते हुए उनके सम्प्रदाय की ओर भी संकेत किया है।[2]

कवि के उपर्युक्त संकेतों की पुष्टि संत चददास कृत 'भगतबिहार' ग्रन्थ में दिये गए विवरण से भी होती है। लक्षदास जी गुनीर गाँव के निवासी थे। उनके पिता का नाम परमानन्द था। परमानन्द को भगवान ने दर्शन दिये। इसी के आगे लक्षदास जी को भी भगवान् के दर्शन देने तथा गंगाजी को गुनीर गाँव वापस लाने आदि की कथाएँ दी गई है। इन्ही विवरणों के सम्बन्ध मे गुनीर गाँव मे अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं जो उपर्युक्त तथ्यों पर प्रकाश डालती है।[3]

लक्षदास जी के कृष्ण की 'कथा' कहने के सम्बन्ध मे अन्तर्साक्ष्य मे संकेत मिलते है।

(१) दोहावली मे कवि ने कहा है कि 'माघ कथा सबही सुनी कही लछी समुझाइ।'[4] इससे अनुमान होता है कि माघ के महीने में वे साधु, संतों को, विशेष रूप से कथा सुनाया करते थे।

इसी प्रकार कृष्णरससागर मे भी कृष्ण-कथा कहने के सम्बन्ध मे संकेत किये गये है—

(२) भगवान् कृष्ण की लीलाओं की जिस कथा को (शुकदेव से) सुनकर राजा परीक्षित को सुख हुआ था, उसे ही लक्षदास ने भाषा मे गाया है।[5]

(३) यदि पुस्तकों के सार का संग्रह चाहते हो तो भागवत की कुछ कथा कहूँ। हे प्रभु आप अपने सेवक को सुमति प्रदान करिये जिससे भगवान् कृष्ण के चरणो मे प्रेम जागृत हो।[6]

---

[1] इसी प्रबन्ध के अध्याय २ मे इस सम्बन्ध मे उदाहरण पोथी से दिये जा चुके है अतः अब केवल उनका संदर्भ ही दिया जा रहा है। —कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११।

[2] वही, पृ० ६५-६६।

[3] भगत बिहार (हस्तलिखित), पृ० २८८-२८९।

[4] दोहावली (हस्तलिखित) दोहा संख्या १६४।

[5] सुनि सुकमुनि नृप को सुख पायो। केलि कला हरि सुजस सुनायो।।
श्री लछदास भाषा से गाइ। हरि लीला संतन सुपदाइ।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११।

[6] पुस्तक सारु संग्रहो चहौ श्री कथा कछु कहौ
बाढे कृष्न चरन सों नेह श्री गुरु सुमति सेवकहि देहु —वही पृ० ९०

(४) मने भागवत की (बाल) लीला और विहार की कथा को क्रमानुसार नही कहा है फिर भी हे साधुओ, जिस प्रकार दही को मथ कर घी निकालते है उसी प्रकार सुखद विचार के साथ आप इसे श्रवण कीजिये ![1]

अतसाक्ष्य के उपर्युक्त सकेतों की पुष्टि भगत विहार मे चंददास के कथन 'गावत कीरत क्रत मुख नाना चरित विसाल'[2] मे भी होती है । उपर्युक्त विवेचन मे यह स्पष्ट है कि लक्षदास जी कृष्ण की कथा साधु-संतो को सुनाया करते थे । ऐसा प्रतीत होता है कि लक्षदास जी ने बाद मे इन्ही कथाओ को सर्वजन सुलभ करने के उद्देश्य से पुस्तक के रूप मे तैयार किया होगा । प्रारम्भ मे तो उन्होने (लक्षदास) अपने मनोनुकूल रुचिकर प्रसगो की कथा को सुविधानुसार लिखा होगा और बाद मे भक्तो की पसन्द तथा अपनी आवश्यकतानुसार उन्होने कृष्ण-कथा के शेष भागो को पूरा किया होगा ।

कृष्णरससागर इसी प्रकार लिखी गई कथाओ का सकलन प्रतीत होता है क्योकि उस काल मे भक्त कवि सूरदास तथा परमानन्ददास आदि ब्रजभाषा के वरेण्य कवियो की रचनाओ को भी सग्रह ग्रथ के रूप मे सुरक्षित रखकर उनके साहित्य को इकट्ठा करने की चेष्टा की गई थी । इसीलिए सूरसागर के अतिरिक्त कृष्णसागर, परमानन्दसागर तथा नन्द-सागर आदि संग्रहो का उस काल मे जन्म हुआ ।[3] अत. ऐसा अनुमान होता है कि कृष्णरस-सागर का प्रथम संकलन कवि के समय मे ही किया गया होगा जिसमे प्रारम्भ मे केवल भागवत की कथा का सक्षिप्त भावानुवाद तथा अन्य पुराणो पर आधारित कथाओ को ही सकलित किया गया होगा । क्योकि स्वय कवि ने इसी ओर सकेत किया है—

कथा भक्ति भागवत की ह्वो अरु और पुरान ।
मिलहि कृस्नरससागरहि सरिता मेरे जान ॥[4]

किन्तु अब 'कृष्णरससागर' की उपलब्ध प्रति में श्रीमद्भागवत पुराण का अनुवाद भाग मुख्य रूप से संकलित है । इस अनुवाद का आद्यन्त अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'भागवतपुराणसार' (अनुवाद) ग्रन्थ के प्रणयन में कवि ने एक अन्विति बनाये रखने की चेष्टा की है । इसमें कोई प्रक्षिप्त अश भी प्रतीत नही होता । इसके कथाक्रम मे एकात्मकता होते हुए भी केवल एक स्थान पर अध्यायो की क्रमागत सख्या मे अतर आ गया है । कवि लक्षदास रचित 'भागवतपुराणसार' में अध्याय १२ से अध्याय १५ तक की सख्या नही है; यद्यपि इसके पूर्वापर अध्याय मिलते है । इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है कि कृष्णरससागर की उपलब्ध प्रति मे पृष्ठो की संख्या क्रमानुसार ही दी गई है । इसे देखकर यह भी अनुमान होता है कि लक्षदास जी ने 'श्रीमद्भागवतपुराण' का अनुवाद बृहत्काय ग्रन्थ के रूप मे किया होगा जिसका संक्षिप्त संस्करण उनके (लक्षदास के) किसी भक्त शिष्य ने बाद मे कर दिया

---

[1] नहिन कथा हम क्रम कही है हरि केलि विहार ।
दधि मथि घृत ज्यो पीजिय साधुन सुखद विचार ॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३६ ।

[2] भगत विहार, (हस्तलिखित), पृ० २८९ ।

[3] सूर और उनका साहित्य, २०१५ वि० पृ० ३८ ।

[4] हस्तलिखित पृ० ७

होगा। अतः यह भी सभव है कि भागवतपुराण का वृहत्परिमाण वाला ग्रन्थ बाद मे लुप्त हो गया हो और यह 'भागवतपुराणसार' वाला सक्षिप्त सस्करण ही अब उपलब्ध हो रहा हो। कवि लक्षदास रचित 'भागवतपुराणसार' की उपलब्ध प्रति के नाम-शीर्षक मे जो 'सार' शब्द जुडा हुआ है उससे भी हमारे अनुमान की पुष्टि होती है।

'कृष्णरससागर' तथा 'भागवतपुराणसार' ग्रंथों में 'श्रीमद्भागवतपुराण' का अनुवाद भाग सकलित है। इन दोनो प्रतियो का मिलान करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये ग्रथ दो पृथक् नामो से सम्बोधित किये जाने पर भी मूलत एक-ही है। भिन्न नाम होने का कारण यह है कि दो पृथक् व्यक्तियों ने इन्हे सकलित किया है। इन प्रतियों को देखकर यह भी अनुमान होता है कि लक्षदास रचित साहित्य को नष्ट होने से बचाने के लिये उनके किन्ही भक्त शिष्यो ने कालान्तर मे (लक्षदास रचित अन्य छोटी-मोटी रचनाओ को भी) इन्ही दोनो ग्रन्थो मे (दो पृथक् नामो मे) संकलित कर दिया होगा।

कृष्णरससागर की उपलब्ध प्रति मे प्रतिलिपिकार तथा संकलनर्ता के विषय मे कोई भी सकेत या विवरण नही मिलता। फिर भी अनुमान है कि इस ग्रन्थ मे कवि लक्षदास की विभिन्न रचनाएँ सकलित की गई है। ध्यानपूर्वक देखने पर पता चलता है कि मजुमुक्तावली, सतनामस्तोत्र, बारह बन वर्णन, समस्तानन्दप्रदस्तोत्र, हरिहरनामावली, जुगलकिसोर लीला, कृष्ण की शोभा, वृन्दावनविहार वर्णन, रागों मे पद तथा दोहावली उनकी पृथक् रचनाएँ है जो या तो सम्प्रदाय ग्रन्थों पर आधारित है या कवि की मौलिक रचनाएँ है।

'भागवतपुराणसार' की प्रति का सकलन किसने किया यह तो पता नही चलता किन्तु उक्त ग्रन्थ की उपलब्ध प्रति सं० १८७२ की है जिसकी प्रतिलिपि लक्षदास जी के वशज शिवदीन ने की थी। यह ग्रन्थ के अन्त मे दी गई पुष्पिका से स्पष्ट है।[1]

जैसा कि हम ऊपर सकेत कर चुके है कृष्णरससागर तथा भागवतपुराणसार की उपलब्ध प्रतियो का मिलान करने पर इसका कुछ भाग तो बिलकुल एकसा ही मिलता है, कुछ में भिन्नता है। 'श्रीमद्भागवत पुराण' का अनुवाद दोनो ग्रन्थों मे एक ही है। कृष्णरस-सागर मे सकलित दोहावली के १४४ दोहो तथा भागवतपुराणसार मे दिये गये १६३ दोहों का क्रम बिलकुल एक-ही है। कृष्णरससागर मे रासलीला तीन बार और सुदामा चरित की कथा दो बार लिखी गई है। 'भ्रमरगीत तथा उद्धव' का प्रसग 'कृष्णरससागर' और 'भागवत-पुराणसार' की प्रतियो मे चार बार लिखा गया है। इन प्रसगो के वर्ण्य-विषय, भाव, भाषा और शैली मे पर्याप्त समानता है। भागवतपुराणसार वाली प्रति मे 'कृष्ण के बरवै' (उद्धव का प्रसग) तथा 'कृष्ण की लीला' तो बरवै छन्द मे लिखे गये है जो कवि की अपनी मौलिक शैली है। इनके अतिरिक्त कवि ने 'बारहमासा' भी लिखा है। भागवतपुराणसार की प्रति मे सकलित ये रचनाएँ कृष्णरससागर की प्रति में नही है। दोनो ग्रन्थो मे जो पद सकलित किये गये है वे सभी भिन्न-भिन्न है।

कृष्णरससागर तथा भागवतपुराणसार ग्रन्थो मे सकलित सभी रचनाएँ भाव, भाषा शैली और वर्ण्य विषय की दृष्टि से एक ही कवि की रची हुई प्रतीत होती हैं इन सभी में

कवि के लक्षदास नाम या उपनामो का प्रयोग हुआ है जिससे स्पष्ट है कि ये लक्षदास की ही रचनाएँ है।

प्रामाणिकता के निष्कर्ष

(१) कृष्णरससागर तथा भागवतपुराणसार की प्रतियाँ लक्षदास के निवासस्थान गुनीर गाँव से ही उपलब्ध हुई।

(२) इन ग्रन्थो मे आत्मपरिचय के जो सकेत मिलते है उनकी पुष्टि बहिर्साक्ष्य से भी होती है।

(३) कृष्णरससागर तथा भागवतपुराणसार मे दिया गया श्रीमद्भागवतपुराण का अनुवाद भाग बिलकुल एक-ही है। इसके अतिरिक्त दोहावली के दोहो का क्रम तथा वर्ण्य विषय दोनो प्रतियो मे एक-ही है। भागवतपुराणसार की प्रति मे ४९ दोहे अधिक दिये गये है।

(४) कृष्णरससागर तथा भागवतपुराणसार मे सकलित सारी रचनाओ के वर्ण्य विषय, भाव, भाषा, शैली मे समानता है। कवि के उपनामो की छाप भी सब में एक-सी है।

(५) भागवतपुराणसार ग्रंथ की प्रतिलिपि लक्षदास जी के वशज शिवदीन ने सवत् १८७२ में की थी जैसा कि ग्रन्थ की पुष्पिका मे स्पष्ट है।

दोहावली—लक्षदास जी रचित 'दोहावली' की पृथक् मे कोई प्रति उपलब्ध नही होती किन्तु जैसा ऊपर सकेत किया जा चुका है 'कृष्णरससागर' मे दोहावली के १४४ दोहे सकलित किये गये है और उसी क्रम मे भागवतपुराणसार की प्रति मे १९३ दोहे दिये गये हैं जिसमें कृष्णरससागर मे सकलित १४४ दोहे भी सम्मिलित है। कृष्णरससागर तथा भागवतपुराणसार (दोनो ग्रन्थो) मे दोहावली के वर्तमान सकलित रूप को देखकर यह अनुमान होता है कि दोहावली एक स्वतन्त्र ग्रन्थ रहा होगा किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस अमूल्य ग्रन्थ को भी नष्ट होने से बचाने के लिए ही लक्षदास के किन्ही शिष्यो ने उक्त ग्रन्थो मे संकलित कर दिया।

दोहावली में कवि के आत्मपरिचय, स्वभाव, सतसेवा, भक्ति-पद्धति, दैन्य तथा नीति आदि के वचन मिलते हैं जिनमे कवि के व्यक्तित्व का पता चलता है। कवि के दीर्घायु प्राप्त करने तथा वृद्धावस्था मे कष्ट पाने के सम्बन्ध मे एक दोहे मे सकेत मिलता है।[1] लक्षदास जी के वृद्धावस्था प्राप्त करने और उनकी भगवद्भक्ति आदि के विषय मे सत चंददास रचित ग्रन्थ 'भगत बिहार' में भी सकेत मिलता है।[2] इन्ही बातो मे सम्बन्धित जनश्रुतियाँ गुनीर गाँव मे आज भी प्रचलित है।[3] इस उपलब्ध विवरण के साम्य को देखकर यह स्पष्ट हो

[1] चरनपानि लोचन वचन बल बुधि छाडो साथ।
लछी जरा के जोर अब मोर येक ब्रजनाथ॥ —दोहावली, सख्या १८९।

[2] भये बिरध साधू नटवासी। सज्जन प्रीति सदा परगासी। आदि—
इस प्रसग का विस्तार से वर्णन अध्याय २ मे 'भगत बिहार' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

[3] अध्याय २ म कवि क म प्रचलित जनश्रुतियाँ शीर्षक के अन्तर्गत विस्तार से विचार किया जा चुका है

जाता है। लक्षदास जी ने दोहावली मे अपने जीवन के सम्बन्ध मे जो विवरण दिये है वे ठीक तो है ही साथ ही दोहावली को लक्षदास जी की ही रचना भी सिद्ध करते हैं।

फुटकर पद—लक्षदास जी रचित पदो का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ये लक्षदास जी की ही रचनाएँ है क्योकि उनमे से कुछ मे 'श्रीमनमोहन चरन रेनु पर लछीदास बलिहार' वाली पंक्ति की किसी न किसी रूप मे आवृत्ति की गई है। जिन पदो मे इस पंक्ति की आवृत्ति नही है उनका वर्ण्य विषय, भक्ति पद्धति, भाव एव भाषा लक्षदास जी की अन्य रचनाओ से मिलती-जुलती है। इन पदो मे लक्षदास के नाम या उपनामो का प्रयोग हुआ है। उपनाम के कई रूपो (लछ, लछि, लछी, लछदास, लक्षदास, लछीदास आदि) के मिलने का कारण कविता मे मात्राओ की संगति बिठाने के लिये या प्रतिलिपिकार के कारण हुआ प्रतीत होता है। इन पदो के वर्ण्य विषय आदि का विस्तार से विवेचन आगे किया जायगा।

लक्षदास जी रचित पदो के अतिरिक्त लक्ष्मणदास तथा लछनदास के ६८ पद 'संगीतरागकल्पद्रुम' मे संगृहीत है। शिवसिंहसरोज' मे भी लक्ष्मणदास,[1] लक्ष्मणशरणदास[2] तथ लछनदास[3] के पद कविता के नमूने के रूप मे दिये गये है। सरोजकार ने लक्ष्मणदास तथा लछनदास को एक ही व्यक्ति होने का अनुमान किया प्रतीत होता है। संगीतराग-कल्पद्रुम मे भी इन्हीं दोनो के नाम से उपलब्ध पद एक-ही व्यक्ति की रचना माने गये है क्योकि ग्रन्थ के अंत मे दी गई सूची मे दोनो नामो से उपलब्ध पदो की संख्या एक ही स्थान पर दी गई है।[4] इसलिये हमारा भी यह अनुमान है कि लक्ष्मणदास तथा लछनदास नाम के कोई पृथक् सन्त रहे होगे जो हमारे आलोच्य कवि लक्षदास से भिन्न हैं। वर्ण्य विषय मे यदाकदा समानता होते हुए भी भाषा के शब्द-प्रयोगो मे भिन्नता दिखाई देती है। लक्ष्मणदास तथा लछनदास के नाम से उपलब्ध पदो मे पंजाबी, राजस्थानी तथा अरबी-फारसी के शब्दो का चुनकर प्रयोग किया गया है। लक्षदास के पदो मे अवधी और ब्रजभाषा का अद्भुत सामंजस्य अवश्य है किन्तु अन्य भाषाओ के शब्दो का प्रयोग इतनी प्रचुरता मे नहीं मिलता। अत निश्चय ही संगीत राग कल्पद्रुम मे संकलित पद हमारे आलोच्य कवि लक्षदास रचित नही है, ऐसा हमारा अनुमान है।

कृष्णायन तथा रामचरितकाव्य—लक्षदास के निवास स्थान गुनीर गाँव मे आज भी कृष्णायन तथा रामचरितकाव्य ग्रंथो के लक्षदास प्रणीत होने की जनश्रुति मिलती है। गाँव वालो का कहना है कि लक्षदास ने कृष्णरससागर तथा भागवतपुराणसार ग्रंथो के अतिरिक्त कृष्ण चरित्र पर 'कृष्णायन' नाम का एक ग्रन्थ और लिखा था किन्तु वह आज उपलब्ध नहीं है। लक्षदास जी की शिष्य परम्परा के लोग उसे मध्य प्रदेश ले गये। आज यह कहना कठिन है कि यह ग्रन्थ मध्यप्रदेश कब और किसके द्वारा ले जाया गया फिर भी गाँव वालो ने

परम्परा से सुने हुए स्थानों के सम्बन्ध मे जो पते दिये उनके आधार पर इन पंक्तियों का लेखक उन स्थानो पर गया भी किन्तु इस ग्रन्थ के विषय मे कोई पता नही चला।

कृष्णायन ग्रथ के सम्बन्ध मे जनश्रुति का आग्रह देखकर यह अनुमान होता है कि लक्षदास जी ने कदाचित् इस ग्रथ का प्रणयन किया होगा। अन्तसक्षिय मे कई स्थानो पर इस बात का सकेत मिलता है कि लक्षदास सतो को भागवत की कथा सुनाया करते थे। तुलसीदास जब उनसे मिलने आए होगे तब उनमे परस्पर भगवद्‌भक्ति विषयक वार्ता हुई होगी और तभी लक्षदास ने अपने काव्य ग्रथ भी तुलसीदास को दिखाये होगे जिनसे तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' लिखने की प्रेरणा ली होगी।

'रामचरितकाव्य' ग्रथ आज उपलब्ध नही है इस सम्बन्ध मे पहले सकेत किया जा चुका है। लक्षदास की ये सभी रचनाएँ प्राय दोहा-चौपाई, पद, बरवै आदि छदो की शैली मे लिखी गई है जिन्हे देखकर हो सकता है कि, तुलसीदास ने भी अपने काव्य के लिए प्रयुक्त किया हो। इस सम्बन्ध मे द्रष्टव्य है कि लक्षदास आयु में तुलसीदास से ज्येष्ठ[1] थे और तुलसीदास की गुनीर यात्रा के समय तक उक्त समस्त ग्रंथो की रचना लक्षदास कर चुके होगे जिन्हे देखकर तुलसीदास ने अपनी काव्य रचना को विशेष रूप दिया हो।

कृष्णायन तथा रामचरित काव्य ग्रथो के अभी उपलब्ध न होने के कारण उनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे विस्तार से कुछ भी कहना असम्भव है।

निष्कर्ष—(१) कृष्णायन, कृष्णरससागर तथा भागवतपुराणसार से भिन्न एक स्वतन्त्र रचना है, ऐसा कहा जाता है।

(२) कृष्णायन तथा रामचरित काव्य तुलसीदास के रामचरितमानस से पूर्व लिखी गई रचनाएँ है। अनुमान है कि ये ग्रंथ रामचरितमानस के प्रेरणा स्रोत है।

लक्षदास की रचनाओं के उपजीव्य ग्रन्थ

संस्कृत साहित्य (काव्य) और पुराणो मे कृष्ण और राधा के चरित का जो विकास हुआ वह प्राकृत और अपभ्रंश काल के काव्यो की परम्पराओ का योग पाकर हिन्दी साहित्य को दाय के रूप मे प्राप्त हुआ। इन्ही पूर्ववर्ती परम्पराओ से प्रेरणा ग्रहण करके संस्कृत कवि जयदेव, सहजिया सम्प्रदाय के चण्डीदास, महाराष्ट्र के नामदेव, मैथिल कोकिल विद्यापति और गुजरात के नरसिंह मेहता ने भी राधाकृष्ण की विलासलीलाओं को अपने काव्य का माध्यम बनाकर कोमलकांत पदावली मे गाये जाने वाले रस प्रवण पदो या अभंगो के रूप मे प्रस्तुत किया। इधर चतु सम्प्रदाय के आचार्यो के इंगित पर भक्त कवियो ने भी काव्य रचना की और भक्तो की आराध्या राधा को भी काव्य मे समाविष्ट करके श्रीमद्भागवत का भाषानुवाद प्रस्तुत किया जिसमे जनता उन्हे अपना सुपरिचित जानकर अपनी चित्तवृत्तियो को उन्ही मे केन्द्रीभूत कर सके। लक्षदास जी की रचनाएँ भी इन्ही परम्पराओ की एक कड़ी है।

---

[1] दिसम्बर १९६० अक ३ म मेरा लेख अवधी के एक विस्मृत कवि भक्त पृ० १४०।

लक्षदास ने श्रीमद्भागवत की कथा का जो अनुवाद किया है उसका मुख्यत. आधार तो श्रीमद्भागवत ही है किन्तु विष्णुपुराण, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त्त तथा महाभारत मे वर्णित प्रसगो के अनुसार भी उन्होने कथाओ मे यत्किंचित् परिवर्तन किया है। श्रीमद्भागवत मे दी गई कथाओ के क्रम-निर्वाह मे कवि ने महाभारत के क्रम को प्रामाणिक माना है और उसे ही अपने काव्य मे ग्रहण किया है। जैमिनीयाश्वमेध मे दी गई कतिपय कथाओ-हसध्वज, मयूरध्वज तथा चन्द्रहास की कथाएँ—के भावानुवाद को लक्षदास ने अपनी रचना कृष्णरस-सागर मे यथावत् वर्णनात्मक ढग मे प्रस्तुत किया है।

श्रीमद्भागवत और लक्षदास जी की रचनाएँ

लक्षदास जी की रचनाओ मे कृष्णचरित का वर्णन तो श्रीमद्भागवत के आधार पर किया गया है किन्तु तत्कालीन अन्य कवियो की भांति उन्होने भी राधा को अपने काव्य मे प्रमुख स्थान देकर तथा कृष्ण की रासलीलाओ को प्राधान्य करके मधुरोपासना का द्वार उन्मुक्त किया है। लक्षदास जी रचित श्रीमदभागवत की कथा को देखकर सहसा ऐसा लगता है कि उन्होने श्रीमद्भागवत का अनुवाद किया है किन्तु वस्तुत ऐसा नही है क्योकि कवि ने अपने काव्य मे श्रीमद्भागवत का अनुवाद करने के सम्बन्ध मे कोई संकेत नही किया है। उन्होने कृष्ण-कथा को भागवत के अनुसार ही वर्णन करने की बात कही है। इस कथा को कहने मे उन्होने कपिलदेवहूति तथा शुकदेव-परीक्षित के सवाद का आधार दिया है। इसमे भी कपिलदेवहूति का सवाद केवल 'जडभरतोपाख्यान' के प्रसग मे पचम अध्याय मे आता है, शेष कथा को 'शुकदेव-परीक्षित सवाद' के रूप मे ही लिखा गया है। कृष्णरस-सागर के 'भागवतपुराण' अनुवाद मे यत्र-तत्र श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध मे उल्लेख आये हैं जिनसे निम्नलिखित बाते स्पष्ट होती है—

(१) कवि ने भागवत की कथा को व्यास, शुकदेव आदि के ढग पर कहने में अपनी असमर्थता प्रकट की है। भागवत मे तो सारी कथाएं विस्तार से कही गई है किन्तु कवि ने उन्हे उलटे-सीधे ढग से कहा है।

(२) कवि ने भागवत का अनुवाद नही किया। उसने कथा का आधार भागवत से ही लिया है।

(३) कथाएँ स्कन्ध तथा अध्यायपरक न होकर कथापरक है। इसीलिए बाललीला के बहुत से प्रसग 'हरि विहार लीला' के ही अन्तर्गत समाहित कर दिये गये है और कुछ प्रसग तो छूट ही गये है, जैसे—कालिय नाग मर्दन तथा पनघट प्रस्ताव आदि। भागवत की कथा के क्रम मे तो कालियनाग का प्रसग नही मिलता है किन्तु इसके विषय मे अन्यत्र कहा गया है। पनघट प्रस्ताव तथा दानलीला आदि के गर्हित प्रसगो को कवि ने बिलकुल ही छोड़ दिया है।

श्रीमद्भागवत का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीमद्भागवतकार ने युगो की कथा को अपने अचल मे समेट कर तथा धार्मिक, नीति और आध्यात्मिक तत्वो के निचय के साथ श्रीमद्भागवतार्णव मे उंडेल दिया है। इसी कारण विद्वानों को कहना पड़ा विद्यावतां भागवते परीक्षा' आचार्यों ने भी इसे महत्व दिया और के अतिरिक्त इसका भी आवश्यक घोषित किया और अपने सम्प्रदायों

के अनुकूल भागवत की टीकाएँ लिखी। श्रीमद्भागवत में सभी सम्प्रदायों में सामंजस्य स्थापित करके भक्ति के सिद्धान्तों को स्थिर किया गया है। इसमें वैराग्योत्पादक (निवृत्तिमूलक साधना पर आधारित) आख्यानों को प्रश्रय दिया गया है। लक्षदास के काव्य में प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक दोनों प्रकार की साधनाओं को प्रश्रय दिया गया है। लक्षदास ने अपनी रचनाओं में संसार के आकर्षक उपादानों और मायाजाल की दुरूहता को स्पष्ट करते हुए रागानुगा भक्ति को स्वीकार करने का संकेत किया है, इसीलिए राधा-कृष्ण की लीलाओं, भगवन्नाम जप और पतितोद्धार आदि प्रसंगों को आधार मानकर उन्होंने प्रेम लक्षणा भक्ति को प्रधानता दी है।

लक्षदास ने अपने काव्य की आधार भूमि तो भागवत को ही रखा है किन्तु उसमें यथास्थान परिवर्तन कर दिये हैं और प्रसंगों को रोचक तथा क्रमबद्ध बनाने के लिए कथा को एक नया रूप देने की चेष्टा की है। 'हरिविहारलीला' के अन्तर्गत कवि ने बालक कृष्ण की समस्त लीलाएं ली हैं जिनमें शिशुकाल से लेकर अक्रूर के साथ मथुरा गमन तक के चित्र हैं। इन प्रसंगों में कवि ने प्रवृत्तिमूलक साधना पर जोर देते हुए मनोरम प्रसंगों के वर्णन किये हैं। भगवान् कृष्ण गोपियों को मर्यादा की रक्षा तथा पतिव्रत धर्म के पालन करने का उपदेश देते हैं। उन्होंने प्रेम की अनन्यता में हारिल, मीन, चातक तथा पतिव्रता नारी को आदर्श माना है। लक्षदास ने अपने वर्णन श्रीमद्भागवत की भाँति शुष्क दार्शनिक तर्कों तथा कोरी मान्यताओं पर आधारित नहीं किये हैं और न कृष्ण के योगेश्वर एवं ब्रह्मत्व रूपों की प्रतिष्ठापना करने की चेष्टा की है। उन्होंने तो मानव कृष्ण की वे लीलाएँ ली हैं जिनमें भावों की गहराई है और है अन्तस् को छू लेने की अद्भुत शक्ति। कवि ने संयोग शृंगार के चित्र बड़ी रुचि से अंकित किये हैं किन्तु 'विरह-वर्णन' कहने में अपनी असमर्थता प्रकट की है क्योंकि वे तो सर्वैव अपने प्रभु का सामीप्य चाहते हैं, एक क्षण को भी उनकी दूरी की बात नहीं कहना चाहते। इसीलिए 'नित्य विहार लीला' तथा 'वृन्दावन विहार वर्णन' के द्वारा उन्होंने दम्पति केलि विलास का सम्यक्प्रकारेण वर्णन किया है।

भागवतकार ने 'रास पंचाध्यायी' में जार लक्षणाभक्ति को प्रधानता दी है किन्तु लक्षदास ने अपनी रचना 'रास पंचाध्यायी' को प्रेमलक्षणा भक्ति पर आधारित करके रासलीला के वर्णन में राधा-कृष्ण की विलास लीलाओं को प्रेमानुभूति के भावों से परिवेष्टित करके दिखाया है। लक्षदास ने स्वरचित 'रास पंचाध्यायी' में भागवत की अपेक्षा कतिपय मौलिक उद्भावनाएँ की हैं—(१) गोपियों में राधा को प्रमुख स्थान दिया है। राधा-कृष्ण विवाह तथा उनके विहार के चित्रण करने में कवि की चित्तवृत्ति खूब रमी है। दृष्टव्य है कि श्रीमद्भागवत में 'राधा' नाम की किसी गोपी का उल्लेख नहीं है। (२) रासलीला प्रकरण में राधा के मान करने पर कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं और लौटने पर पुनः रासलीला प्रारम्भ कर देते हैं। गोपियों में एक नई चेतना फैल जाती है। (श्रीमद्भागवत में कृष्ण के किसी विशिष्ट गोपी के साथ अंतर्हित होने का उल्लेख है किन्तु उसके गर्व करने पर वे उसे छोड़कर अन्तर्धान हो जाते हैं। वापस लौटने पर वे गोपियों को दार्शनिकता से पूरित एक व्याख्यान देते हैं।) कृष्णरससागर के भागवत अनुवाद में श्रीमद्भागवत के ये प्रसंग तद्रूप में ही ग्रहण नहीं किये गये

के ४७वें अध्याय मे गोपियो और उद्धव के बातचीत तथा भ्रमरगीत का वर्णन है जिसमे भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है उद्धव के उपदेश को सुनकर गोपियो पर कोई विरुद्ध प्रतिक्रिया नहीं होती। लक्षदास ने अपनी रचनाओं मे 'भ्रमरगीत' के प्रसग को चार बार पृथक्-पृथक् ढग मे लिखा है—(१) श्रीमद्भागवतपुराण अनुवाद मे भ्रमर गीत, (२) कृष्ण के बरवै (बरवै उधवा), (३) कृष्ण की लीला, (४) मगलोपासना के पद शीर्षकों के अतर्गत। इनमे कवि की सहृदयता और वाग्विदग्धता का सुन्दर नमूना मिलता है। कवि ने गोपियो के भक्ति प्रवाह के सामने उद्धव के निर्गुण के उपदेश और योग की क्रियाओ की प्रणाली को अनुपयोगी एव नीरस ठहराया है।

कृष्णरससागर मे रुक्मिणी विवाह, सुदामा चरित्र, जरासघ वध और कुरुक्षेत्र मे कृष्ण व्रजवासी समागम की कथाओ को कवि ने वर्णनात्मक ढग से लिखा है। ये सभी प्रसग पृथक् रूप से खण्ड-काव्यों के रूप मे भी गृहीत किये जा सकते है। इन प्रसगो मे भागवत की अपेक्षा अधिक रोचकता है और मन को आकर्षित करने की अद्भुत क्षमता।

महाभारत और कृष्णरससागर

कवि ने महाभारत के द्यूतपर्व मे वर्णित 'द्रौपदी चरित्र' की कथा को सक्षेप मे 'कृष्ण-रससागर मे लिखा है। महाभारत के 'द्यूतपर्व' मे धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन द्वारा आयोजित द्यूत-क्रीडा से सम्बन्धित पूरा उपाख्यान वर्णित है। इसमे सबसे अधिक मार्मिक प्रसग द्रौपदी का चेतावनी युक्त मार्मिक विलाप है। भरी सभा मे जब द्रौपदी को निर्वस्त्र किया जाता है तब वह भीष्मादि वयोवृद्ध धर्मज्ञो से न्याय की माग करती है किन्तु सतोषजनक उत्तर न पाने पर भगवान् कृष्ण का स्मरण करती है। वे उसकी लज्जा की रक्षा करते है। कृष्णरससागर मे लक्षदास ने इसी प्रसग को लिया है और शुद्ध भक्ति की दृष्टि से कृष्ण भगवान् द्वारा शरणागत की लज्जा की रक्षा करने का विशद वर्णन किया है।

लक्षदास ने महाभारत के कथा-क्रम को प्रामाणिक मानकर रुक्मिणी चरित्र, सुदामा चरित्र और जरासंघ वध की कथा को तदनुसार ही लिखा है।

जैमिनीयाश्वमेध और कृष्णरससागर

जैमिनीयाश्वमेध पर्व मे हंसध्वज, मयूरध्वज और चन्द्रहास की कथाएँ विस्तार से दी गई है। लक्षदास ने इन प्रसगो को वर्णनात्मक ढग से लिखा है किन्तु इन्हे जैमिनीयाश्वमेध पर्व मे दी गई कथा का भावानुवाद ही कह सकते है। कथाओ मे भी यथास्थान हेरफेर किया गया है (इसका विवरण आगे दिया जायगा) फिर भी उन्हे क्रमबद्ध और रोचक बनाये रखने की भरपूर चेष्टा की गई है। इन कथाओ को भी विशुद्ध भक्ति की दृष्टि से लिखा गया है। भगवान् अपने भक्तो की परीक्षा किस निर्ममता से लेते है, इन कथाओं से इसका अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है।

उपर्युक्त ग्रथों के अतिरिक्त नामदेव आदि निर्गुणिए भक्तो की 'मर्यादा' की परम्परा को भी लक्षदास ने ग्रहण किया है। लक्षदास ने 'रुक्मिणी चरित्र' को खण्ड काव्य के रूप में लिखा है जिसमे गृहस्थ धर्म का आदर्श दिया गया है। राधा तथा रुक्मिणी का 'स्वकीया' रूप मे विशद वर्णन नामदेव की से प्रभावित होकर लिखा गया है ऐसा प्रतीत होता है

ग्रथो का सक्षिप्त परिचय एव विषय प्रतिपादन

कृष्णरससागर—यह ग्रथ भक्त कवि लक्षदास प्रणीत १२१ पृष्ठो का काव्य है। ग्रथ के वर्तमान उपलब्ध रूप को देखकर तो सहसा यही प्रतीत होता है कि इसमे कवि ने कृष्ण चरित की कथा को विविध रूपो मे प्रस्तुत किया है किन्तु इसका अनुशीलन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि यह एक सकलन ग्रथ है जिसमे श्रीमद्भागवत पुराण का अनुवाद वाला भाग तथा अन्य पुराणो पर आधारित कथाएँ तो कवि के समय मे ही 'कृष्णरससागर' मे सकलित कर दी गई थी क्योकि उक्त ग्रथ मे कवि ने स्वयं कहा है—

कथा भक्ति भागवत की ह्वो अरु और पुरान।
मिलहि कृष्णरससागरहि सरिता मेरे जान॥[1]

ऐसा अनुमान होता है कि उसके बाद किसी व्यक्ति ने लक्षदास की कुछ अन्य रचनाओ को भी नष्ट होने से बचाने के लिए इसी ग्रथ मे सकलित कर दिया। नीचे की पक्तियो मे हमने 'अन्य रचनाओ का सकलन' शीर्षक के अन्तर्गत जिन रचनाओ के नाम दिये है वे ऐसी ही प्रतीत होती है, उन्हे सुरक्षित रखने के अभिप्राय मे ही, सम्भवत', लक्षदास जी के किसी रसिक भक्त ने 'कृष्णरससागर' के साथ जोड दिया। अनुमान होता है कि ये रचनाएँ या तो कभी स्वतन्त्र ग्रथो के रूप मे रही होगी जिनके मूल रूप नष्ट हो गये हो और उनका काव्य भाग कुछ पृष्ठो के रूप मे कही सुरक्षित रह गया हो अथवा भक्ति सम्बन्धी विभिन्न विषयो पर लक्षदास जी समय-समय पर जो फुटकर पद या स्तोत्र लिखा करते हो उनके प्रचलित रूपो को मौखिक परम्परा से एकत्र करके किसी ने इस ग्रथ मे सम्बद्ध कर दिया हो। यह सकलन किसने और कब किया इसका कोई विवरण आज उपलब्ध नही है। फिर भी ग्रथ के वर्तमान उपलब्ध रूप को हम अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित चार भागो मे विभाजित करते है—

१. श्रीमद्भागवतपुराण का अनुवाद

(क) श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध तक की कथाओ मे से ग्रहण किये गये प्रसंग-ध्रुव चरित्र, गजराज संकट मोचन, कपिल-देवहूति सवाद, जड़भरतोपाख्यान, अम्बरीष चरित, प्रह्लाद चरित्र।

(ख) दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध—मे कृष्ण की बाल लीलाएँ, सखाओ के साथ क्रीडा, गोवर्द्धन धारण तथा भ्रमरगीत तक के प्रसंग।

(ग) दशम स्कन्ध उत्तरार्ध—मे रुक्मिणी चरित्र, सुदामा चरित्र, जरासध वध, कुरुक्षेत्र मे व्रजवासी तथा कृष्ण समागम, मोहान्ध दीप, मुर्ख ज्ञान, संक्षिप्त सुदामा चरित्र (राग नट) की कथाएँ।

(घ) एकादश स्कन्ध— दत्तात्रेय-जदु संवाद।

२. अन्य पुराणों पर आधारित कथाएँ

द्रौपदी चरित्र, चन्द्रहास की कथा, हसध्वज की कथा, सुधन्वा-अर्जुन संग्राम, सुरथ-अर्जुन सग्राम, मयूरध्वज की कथा।

[1] (हस्तलिखित पृ० ७१

३ अन्य रचनाओं का सकलन

भक्तवत्सल भगवान् की स्तुति, मजुमुक्तावली, सतनाम स्तोत्र, बारह वन वर्णन, समस्तानन्दप्रद स्तोत्र, हरिहर नामावली, जुगलकिशोर लीला, वृन्दावन विहार वर्णन, पावन लीला, स्फुट पद ।

४ दोहावली

कृष्णरससागर और श्रीमद्भागवत के कथा रूपों की तुलना

श्रीमद्भागवत के भाषानुवाद मे कवि ने जो प्रसग लिये है उनकी कथा का आधार मूलतः तो श्रीमद्भागवत है किन्तु उसमे कही-कही अन्तर मिलता है जो कवि की मौलिकता तथा अन्य ग्रथो (पुराणो) से ग्रहीत प्रसगो के आधार पर कथा मे क्रमबद्धता एव रोचकता लाने के उद्देश्य से किया गया प्रतीत होता है । अतः कृष्णरससागर के इस अनुवाद भाग को हम श्रीमद्भागवत पुराण का अविकल अनुवाद नही कह सकते । इसकी कथा का यह रूप भावानुवाद अवश्य कहा जा सकता है । कवि के द्वारा अनूदित श्रीमद्भागवत पुराण के अनुवाद वाले भाग को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि कवि ने श्रीमद्भागवत की कथा को समय-समय पर अपनी सुविधानुसार खण्ड रूपो मे लिखा होगा और बाद मे इन्हे सकलित करके शेष भागो को पूरा किया होगा । कृष्णरससागर के वर्तमान उपलब्ध रूप मे भागवत की पहले, दूसरे तथा तीसरे स्कन्ध की कथाएँ नही है । हो सकता है कि ये कथाएँ भी लिखी गई हो और उनके लिखित पृष्ठो के नष्ट हो जाने के कारण उनका सकलन न किया जा सका हो ।

जैसा कि आगे की पक्तियो मे दिये गये विवरण से स्पष्ट होगा कि 'कृष्णरससागर' मे स्कन्धो की सख्या तथा उसमे वर्णित कथाओ का जो क्रम दिया गया है वह भागवत के अनुसार नही है, उसमे अन्तर है । भागवत के तृतीय स्कन्ध मे 'कपिलदेवहूति-सवाद' दिया गया है जिसमे विस्तार से तत्त्वज्ञान का उपदेश देकर भक्ति योग की महिमा का वर्णन किया गया है । लक्षदास जी ने भागवत के प्रसग को 'जडभरतोपाख्यान' के अन्तर्गत ग्रहण किया है और जड़भरत के जन्म तथा विप्रसुत रूप की कथा को कपिल-देवहूति के संवाद के रूप मे दिया है । वस्तुतः जड भरत की कथा भागवत के पचम स्कन्ध मे पृथक् रूप मे कही गई है ।

श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के अध्याय ८ से अध्याय १२ तक मे 'ध्रुव का चरित्र' विस्तार से दिया गया है किन्तु कृष्णरससागर के स्कन्ध ४ मे कवि ने बालक ध्रुव को माता सुरुचि के द्वारा फटकारे जाने से लेकर ध्रुव के भगवान् के दर्शन प्राप्त करने तक की कथा का ही प्रसंग लिया है ।

श्रीमद्भागवत के पचम स्कन्ध मे 'जड भरत की कथा' तो विस्तार (अध्याय ७ से अध्याय १४ तक) दी गई है, किन्तु कृष्णरससागर मे उससे कुछ अन्तर है । श्रीमद्भागवत के उपर्युक्त स्कन्ध के नवे अध्याय मे 'जडभरत' के प्रसग मे डाकुओ के किसी सरदार की कथा की ओर संकेत किया गया है जिसने पुत्र की कामना से प्रेरित होकर भद्रकाली को मनुष्य की बलि देने का निश्चय किया था उस सरदार ने जो पुरुष पशु बलि देने के लिए पकड़ मँगाया था वह दैववश उसके फदे मे से निकल कर भाग गया रात्रि के मे ढूढने

पर भी उसका न पाने पर सरदार व नौकर जडभरत को पशुवत् मानकर पकड लाये और स्नानादि कराकर देवी की बलि के लिए बैठा दिया। देवी ब्रह्म-तेज के इस अपमान को सहन न कर सकी और उसने प्रकट होकर अभिमंत्रित खड्ग से ही उन पापियो के सिर उडा दिये और अपने गणो सहित उनका गरम-गरम रक्त पान कर गई।[1] विष्णु पुराण के द्वितीय अंश के अध्याय १३ मे भी जडभरत के प्रसग मे पृषतराज के सेवको द्वारा उनको (जडभरत को) काली का बलि पशु बनाने का सकेत किया गया है। अत में काली के द्वारा राज सेवक का गला काटकर अपने पार्षदो के सहित उसके तीखे रुधिर का पान करने के विषय मे कहा गया है।[2] फिर भी कृष्णरससागर मे वर्णित 'जडभरत' की कथा का मूलाधार तो भागवत पुराण की कथा पर ही आधारित है और विष्णु पुराण मे दिये गये सकेत का प्रभाव भी इस प्रसग पर परिलक्षित होता है।

भागवत के सातवे स्कन्ध मे अध्याय ४ से अध्याय १० तक भक्त प्रह्लाद की कथा विस्तार से दी गई है किन्तु 'कृष्णरससागर' मे लक्षदास जी ने 'राग जैत श्री मारू' मे प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु के वार्तालाप से लेकर भगवान् नृसिंह के प्रकट होकर हिरण्यकशिपु को मारने तक के प्रसंग को भागवत की कथा के भावानुवाद के रूप मे प्रस्तुत किया है।

गजेन्द्र सकट मोचन की कथा को भागवत मे आठवे स्कन्ध के अध्याय २ से अध्याय ८ तक मे दिया गया है। लक्षदास ने इस प्रसग को 'कृष्णरससागर' मे स्कन्ध ५ मे दिया है।

राजा अम्बरीष की कथा भागवत के नवम स्कन्ध के अध्याय ४ तथा ५ मे दी गई है। कवि लक्षदास ने कृष्णरससागर मे इस कथा को ग्रथ के अन्त मे 'रागु जैत श्री' मे दिया है।

इसी प्रकार दशम स्कध (पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध) की कथाओं को भागवत मे वर्णित वृत्त के आधार पर ही भावानुवाद के रूप मे दिया गया है।

कृष्णरससागर मे 'द्रौपदी चरित्र' का जो प्रसंग लिखा गया है वह भागवत मे दिये गये 'द्रौपदी चरित्र' के वर्णन से भिन्न है। इसमे अभिमानी दुर्योधन के प्रति भीम की व्यग्योक्तियों से लेकर भगवान् कृष्ण द्वारा द्रौपदी की लाज बचाने के प्रसग का वर्णन है जो महाभारत के 'द्यूत पर्व' मे दिया गया है। इसके अतिरिक्त जो अन्य कथाएँ दी गई है वे जैमिनीयाश्वमेध पर्व पर आधारित है।

कवि की अन्य छोटी-मोटी रचनाएँ—भगवन्नाम स्तोत्र, स्थान माहात्म्य तथा लीला विहार आदि के वर्णनो से परिवेष्टित है जिनमे कृष्ण की भक्त वत्सलता, उनकी नित्य विहार लीला तथा मथुरा-वृन्दावन के स्थानों का महत्व प्रतिपादित किया गया है। फुटकर पदो मे कृष्ण की बाल-लीला होली, राधा-कृष्ण की शोभा तथा अपने दैन्य के प्रसग लिये गये है। ये प्रसग सम्प्रदाय की परम्परा पर आधारित होते हुए भी सर्वथा मौलिक कहे जा सकते है। इसके विषय मे विस्तार से आगे विचार किया जायगा।

कृष्णरससागर मे 'दोहावली' शीर्षक मे सकलित दोहो मे कवि के फुटकर विषयो पर आधारित १४४ दोहे मिलते है जिनमे संत एवं सत्सग महिमा, कुसग परित्याग, पौराणिक

---

[1] श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५ अध्याय ९

[2] विष्णुपुराण द्वितीय अंश अध्याय १३

कथाओं के संकेत प्रेम की अनन्यता में सरित मीन चातक पतिव्रता नारी आदि के उदाहरण राधा-कृष्ण की शोभा नीति पाखण्ड-खण्डन भगवन्नाम के महिमा तथा उसका स्मरण, आत्मपरिचय एवं दैन्य के विषयों को लेकर दोहे लिखे गये हैं। ये कवि की मौलिक प्रतिभा के परिचायक हैं।

कृष्णरससागर में संकलित श्रीमद्भागवतपुराण का अनुवाद

कृष्णरससागर के इस भाग में दी गई कथाओं को हम अपनी सुविधा के लिये ४ भागों में विभाजित करते हैं—

(क) श्रीमद्भागवत के नवम स्कंध तक की कथाओं में से ग्रहण किये गये प्रसंग।

(ख) दशम स्कन्ध पूर्वार्ध से कृष्ण-जन्म से लेकर भ्रमरगीत तक के प्रसंग।

(ग) दशम स्कन्ध उत्तरार्ध से प्रमुख प्रसंगों—रुक्मिणी चरित्र, सुदामा चरित्र, जरासंघ वध, कुरुक्षेत्र में व्रजवासी तथा कृष्ण समागम, मोहान्धदीप, सुधज्ञान।

(घ) एकादश स्कंध की 'दत्तात्रेय-जदु-संवाद' की कथा।

(क) श्रीमद्भागवत के नवम स्कंध तक की कथाओं में से ग्रहण किये गये प्रसंग

कृष्णरससागर के इस भाग में श्रीमद्भागवत के प्रथम दो स्कन्धों की कोई कथा नहीं दी गई है। आगे की पंक्तियों में हम कृष्णरससागर में दिये गये (अन्य कथाओं के) विवरण को, संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे।

कृष्णरससागर के स्कन्ध ४ में 'ध्रुव का चरित' दिया गया है[1] जिसमें ध्रुव के सुरुचि से तिरस्कृत होकर लौटने पर सुनीति के द्वारा उसको समझाने का प्रसंग लिया गया है तथा परम तत्व की प्राप्ति का उपदेश दिया गया है। तपस्या को जाते हुए ध्रुव से मार्ग में नारद जी की भेंट होती है जिनके आदेश से ध्रुव मथुरा में तप करते हैं और भगवान् के दर्शन प्राप्त करते हैं। यह सारी कथा श्रीमद्भागवत पर आधारित है।

पाँचवे स्कन्ध में कवि ने दो कथाएँ दी हैं—(१) गजराज संकट मोचन,[2] (२) जडभरतोपाख्यान।[3]

उत्तर दिशा में कमलों से विभूषित सरोवर में गजेन्द्र के विहार करने तथा उसके गर्व करने का प्रसंग दिया गया है। ग्राह से संतप्त गज भगवान की स्तुति करता है। भगवान् के चक्र से ग्राह का उद्धार होता है। ग्राह एवं गज शाप मुक्त होकर क्रमशः गंधर्व और विद्याधर रूप ग्रहण करके स्वर्ग को जाते हैं। यह कथा भागवत के अष्टम स्कन्ध (अध्याय २ से अध्याय ४ तक) में वर्णित प्रसंग के अनुसार है।

'जडभरतोपाख्यान' के प्रसंग में सर्व प्रथम कवि ने गुरुवंदना करके जीव के माया जाल में फँसने की विधियों का संक्षिप्त विवरण दिया है। बाद में उनसे बचने के उपाय तथा तत्व ज्ञान का उपदेश दिया है। कपिल-देवहूति संवाद के अन्तर्गत संतों के लक्षण तथा

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० १ तथा २।

[2] वही पृ० ३

[3] वही पृ० ५

भक्ति योग की महिमा का विवेचन किया गया है कपिल देवहूति संवाद भागवत के तृतीय स्कन्ध में दिया गया है।) देवहूति के प्रश्न के उत्तर में कपिल ने जड भरत के मृग जन्म तथा विप्रसुत रूप की कथा को संक्षेप में कहा है। (भागवत में यह कथा शुकदेव ने परीक्षित के प्रति कही है। उसमें इस प्रसंग में कपिल देवहूति का नाम नहीं आता है।)

जडभरत की इस कथा का मूलाधार तो भागवत से ही लिया गया है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने इस कथा में क्रमबद्धता लाने के उद्देश्य से कुछ परिवर्तन कर दिये हैं। रहूगण की पटरानी ने राजा को आरसी दिखाकर वृद्धावस्था के आ जाने की ओर संकेत किया। रहूगण को मन में ग्लानि हुई और वे पालकी में बैठकर गुरु-दीक्षा लेने चले। मार्ग में एक कहार के थक जाने पर उसके स्थान में जडभरत को लगा दिया गया। जडभरत पालकी को लेकर बडी तेजी से चलने लगे। (भागवत तथा अन्य पुराणों में उनके बहुत धीमे चलने का उल्लेख है।) रहूगण ने जडभरत का निरादर किया, तब उन्होंने राजा को ज्ञानोपदेश दिया। रहूगण उनसे क्षमा माँग कर चले गये तब जडभरत नदी तट पर अवधूत का जीवन व्यतीत करते हुए रहने लगे।

जडभरत और रहूगण के मिलने की कथा भागवत में बाद में दी गई है और देवी द्वारा जडभरत की रक्षा तथा उनके विप्रसुत रूप में खेतों की रखवाली का प्रसंग पहले दिया गया है, कवि ने इस क्रम को उलट दिया है और जडभरत तथा रहूगण के मिलने की कथा को पहले देकर बाद में देवी द्वारा जडभरत की रक्षा की कथा दी गई है।

एक देश के किरात राजा ने संतान प्राप्ति के अनेक प्रयत्न किये तब किसी सेवरा (अघोरी साधु) के परामर्श पर वह आधी रात्रि को वन में किसी बिना ब्याही गाय की बलि देने को देवी मंदिर में गया। गाय रस्सी तोडकर भाग गई। राजा के अनुचरों ने उसे बहुत ढूँढा किन्तु उसके न मिलने पर वे जडभरत को पशुवत् मानकर देवी की बलि देने के हेतु पकड़ लाये। जडभरत को स्नानादि कराकर देवी के सामने बिठाया गया किन्तु जब किरात राजा ने उनकी बलि करने के लिए हाथ में तलवार ली तभी देवी ने प्रकट होकर किरात राजा तथा उसके अनुचरों को मार डाला। देवी ने भरत मुनि से क्षमा माँगी।

(भागवत में यह कथा किसी डाकू सरदार के नाम पर कही गई है।)

कृष्णरससागर में अम्बरीष चरित की कथा तो भागवत के नवम स्कन्ध में वर्णित वृत्त के आधार पर ही दी गई है,[1] किन्तु कवि ने अम्बरीष के पास दुर्वासा ऋषि के आने का उद्देश्य इन्द्र को दिये गये वचनों की पूर्ति के कारण बताया है। नदी के जल में स्नान करने के लिए दुर्वासा ऋषि गये और छल करके उद्यापन के समय को टाल कर आये। (यह प्रसंग भागवत में नहीं है।) भागवत में दुर्वासा के किसी भी छिपे हुए मन्तव्य को प्रकट नहीं किया गया है जिससे दुर्वासा के स्नान करके देर से आने का कारण स्पष्ट हो सके। कवि ने यह प्रसंग कथा को अधिक स्पष्ट और रोचक बनाने के लिए ग्रहण किया है। यह कवि की मौलिक सूझ है।

कृष्णरससागर में प्रह्लाद चरित की कथा का प्रसंग हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद के संवाद के रूप में दिया गया है। हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को समझाता है किन्तु उसकी बात न मानने पर वह उसे (प्रह्लाद को) मार डालने के यत्न करता है जो निष्फल जाते हैं। अत

[1] कृष्ण हस्तलिखित पृ ११५

मे नृसिह के खम्भ से प्रकट होकर हिरण्यकशिपु के वध करने तक की कथा दी गई है। देवगण नृसिह भगवान् की जयजयकार करते है। कृष्णरससागर मे वर्णित यह प्रसग भागवत का भावानुवाद है।[1] प्रह्लाद की कथा श्रीमद्भागवत के सातवे स्कन्ध मे विस्तार से दी गई है।

(ख) दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध

'कृष्णरससागर' का यह भाग १८ अध्यायो मे विभक्त किया गया है जिसमे अध्याय १२ से अध्याय १५ तक की सख्या उपलब्ध नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये अध्याय या तो प्रतिलिपिकार ने किसी कारणवश नही किये या भूल से छूट गये। इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है कि प्रति के पृष्ठ तो क्रमानुसार है, किन्तु ये अध्याय नही है। अध्यायो के शीर्षक के अन्तर्गत कथा के प्रमुख प्रसगों का, सक्षेप मे, सकेत हम निम्नलिखित पंक्तियो मे करेंगे।

देवकी दर्शन—नवम स्कन्ध की समाप्ति पर शुकदेव-परीक्षित सवाद, राजा परीक्षित की कृष्ण चरित की कथा सुनाने की प्रार्थना, कवि का आत्मपरिचय, पृथ्वी का गाय के रूप मे ब्रह्मा जी से दुःख निवेदन, ब्रह्मा आदि देवताओ द्वारा विष्णु की स्तुति, भगवान् के द्वारा पृथ्वी को आश्वासन, देवताओ को यदुवंश मे तथा योगमाया को यशोदा के गर्भ में जन्म धारण करने का आदेश, वसुदेव-देवकी विवाह, आकाशवाणी सुनकर कस का भयभीत होना और देवकी को मारने का प्रयास, वसुदेव का नीति युक्त बाते कह कर समझाना और देवकी से उत्पन्न संतान उसे सौंपने का वचन देना, कस के द्वारा देवकी के छः पुत्रो की हत्या, भगवान् के आदेश से योगमाया का संकर्षण को रोहिणी के गर्भ में पहुँचाना, भगवान् का गर्भ मे प्रवेश और देवताओं द्वारा गर्भ-स्तुति, भगवान् श्रीकृष्ण का प्राकट्य, चतुर्भुज रूप मे दर्शन देकर तीसरा अवतार धारण करने के कारण बताना, गोकुल से योगमाया को लाने का आदेश।

हरिविहार लीला—इस प्रसग मे कृष्ण जन्म से लेकर वृदावन जाने, वन मे खेलने, ब्रह्मा मोह तथा यज्ञ पत्नियो को दर्शन देने तक की कथा कही गई है।

भगवान् कृष्ण का बालक रूप धारण करना, वसुदेव का कृष्ण को गोकुल ले जाना तथा योगमाया को अपने साथ वापस लाना, प्रातःकाल कन्या को कस को देना, कंस के हाथ से छूटकर योगमाया का आकाश मे जाना तथा भविष्यवाणी करना, कस का देवकी से क्षमा माँगना, कस का राक्षसो को बुलाकर दस दिन के भीतर उत्पन्न हुए सभी बालको को मार डालने का आदेश देना। गोकुल में भगवान् कृष्ण के जन्म पर महोत्सव, दधिकांदौ करना, यशोदा का आनन्द तथा मातृ हृदय की कल्पनाएँ। नंद का गोरस आदि लेकर कंस के पास गमन, नंद-वसुदेव की भेंट और वार्ता, शकट भजन और पूतना वध, यशोदा और नंद का प्रसन्न होना, कृष्ण का घुटुरुवो चलना और उनकी शोभा का वर्णन, गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम, कृष्ण तथा संकर्षण की बाल-लीलाएँ, कृष्ण की सखाओ के साथ माखन चोरी की लीला और गोपियों के उपालम्भ। ग्वाल-बालों का यशोदा को कृष्ण के मिट्टी खाने की सूचना देना, यशोदा के डराने-धमकाने पर कृष्ण का मना करना और मुँह खोलकर दिखाना, विराट रूप दर्शन, यशोदा का माया के प्रभाव से इस प्रसंग को स्वप्न समझना, यशोदा की

---

[1] वही पृ० १०५

कृष्ण का ताड़ना कृष्ण की शोभा का वर्णन कृष्ण का उत्पल बन्धन और उद्धार मणिग्रीव और नलकूबर के द्वारा स्तुति, कृष्ण का उपदेश, व्याकुल यशोदा का आना और कृष्ण के बन्धन छोड़ देना, कृष्ण और बलराम का सखाओं के सहित यमुना तट पर क्रीड़ा करना, दाँव न देने पर सखाओं के उपालम्भ, गोपों का ब्रज मे होने वाले उत्पातों से तग आकर नंद को अन्यत्र जाने का सुझाव, गोकुल मे वृंदावन गमन, कृष्ण का ग्वालों के साथ वन मे जाना और खेलना, यशोदा का चिंतित होकर ग्वालों को कृष्ण की देखभाल करने का आदेश, कृष्ण का माता की आज्ञाओं के पालन का वचन देना, वन मे कृष्ण की शोभा का वर्णन, ब्रह्माजी का मोह और उसका निवारण, ब्रह्माजी के द्वारा स्तुति, दावाग्नि से रक्षा का सकेत करना, प्रलम्ब, वत्सासुर, केशी और अरिष्ट आदि का बध का सकेत मात्र मे उल्लेख, यशोदा का पुत्र-प्रेम, कृष्ण का वन भ्रमण प्रेम वर्णन, कवि का हरि विहार लीला को क्रमानुसार न कहने को स्वीकार करना. गोचारण को जाते हुए कृष्ण को रोकने का गोपियों का सुझाव, राम और कृष्ण का हठपूर्वक जाना, गोपाष्टमी पूजन, कृष्ण के वन मे दूर जाने पर यशोदा की चिंता, वन मे कृष्ण का वंशी वादन और उसका प्रभाव, गोप कुमारियो का हेमन्त मे कृष्ण की पूजा करना और कात्यायनी व्रत रखना, यमुना की महिमा तथा यमुना मे स्नान का महत्व, (यह पृष्ठ दीमक का खाया हुआ है अत खण्डित पाठ ही उपलब्ध है), राम कृष्ण का जगल मे गौएँ चराने जाना, भूख लगने पर यज्ञ पाठी ब्राह्मणो के पास ग्वालो को भेजना ब्राह्मणो के अस्वीकार करने पर उनकी पत्नियों के पास भेजना, गोपियों का कृष्ण तथा ग्वालों को भोजन कराना, कृष्ण का उपदेश, पत्नियो के भाग्य की सराहना करके ब्राह्मणों का पश्चाताप करना।

गोवर्द्धन लीला—गौचारण से लौटने पर गोपियो का कृष्ण के प्रति प्रेम, कृष्ण का नंद से इन्द्र-पूजा का कारण पूछना और अंत मे गोवर्द्धन की पूजा करने की प्रेरणा देना, गोवर्द्धन परिक्रमा और पूजन, गोवर्द्धन का प्रकट होकर भोजन स्वीकार करना, इन्द्र-कोप और जल वृष्टि का वर्णन, अंत मे इन्द्र का मान मर्दन, इन्द्र द्वारा स्तुति।

पंचाध्यायी गोपिका गीत—रास लीला का प्रारम्भ, शरद ऋतु में रास, शरद रात्रि मे प्रकृति की शोभा का वर्णन, कदम्ब पर बैठे कृष्ण की शोभा का वर्णन, वंशी-वादन सुनकर गोपियों का अस्त-व्यस्त दशा मे कृष्ण के समीप दौड़ने की दशा का वर्णन, कृष्ण का गोपियो को उपदेश, गोपियो का अपने आने का औचित्य बताना, वन मे कृष्ण की सेवा, दम्पति रासलीला की शोभा का वर्णन, प्रिया के मान करने पर कृष्ण का अन्तर्धान होना, विरह-दशा मे गोपियों का कृष्ण के रूप धारण करना और उनकी लीलाओ का अनुकरण करना, वर्षा ऋतु आगमन, कृष्ण का गोपियो को उपदेश, रासलीला वर्णन, राधा की शोभा का वर्णन, नाम महिमा।

अक्रूर लीला—संक्षेप मे केशी वध की कथा, कस का अक्रूर को बुलाकर कृष्ण-बलराम को धनुष यज्ञ मे निमंत्रण के बहाने बुलाने का आदेश, अक्रूर प्रस्थान, अक्रूर और कृष्ण मिलन, कृष्ण-बलराम मथुरा गमन, गोप-गोपियो तथा यशोदा की दशा का वर्णन, अक्रूर का यमुना जल में स्नान, जल के भीतर तथा बाहर कृष्ण-बलराम के दर्शन, अक्रूर को उनके ब्रह्म रूप का ज्ञान होना और कृष्ण से क्षमा माँगना

रजक वध, कुबड़ी का प्रसग, माली के घर गमन, रगभूमि मे कृष्ण-बलराम का आगमन, कुबलयापीड़ वध, मुष्टिक-चाणूर तथा कंस वध, देवकी-वसुदेव उद्धार, कस की रानियो का विलाप, उग्रसेन का राज्याभिषेक, विदा के समय नद-गोपो की दशा का वर्णन तथा उनकी विदाई।

भ्रमरगीत—कस के अक्रूर को भेजने की कथा से लेकर गुरु के घर मे पढकर लौट आने तक की (सक्षिप्त) कथा, कृष्ण का उद्धव को व्रज भेजना, उद्धव का व्रज गमन, यशोदा से भेट, यशोदा का कृष्ण की बाल लीलाओ को स्मरण करना, गोपियो का आगमन तथा उनके उपालम्भ, उद्धव-गोपी सवाद उद्धव का निर्गुण की साधना और योगव्रत धारण करने का उपदेश, भ्रमर गीत प्रसग, उद्धव का वापस आना और कृष्ण को व्रजवासियो का दुःख सुनाना, कृष्ण का दुःखी होकर राधा को याद करना।

(ग) दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध)

कवि ने दशम स्कन्ध के उत्तरार्ध मे रुक्मिणी चरित्र,[1] सुदामा चरित्र[2] और जरासंध वध की कथा[3] और कुरुक्षेत्र मे कृष्ण-व्रजवासी समागम[4] के प्रसग लिखे हैं। इन प्रसगो मे मे सुदामाचरित्र की कथा को राग नट मे दुबारा (सक्षेप मे) लिखा गया है।[5] उपर्युक्त सभी कथाएँ भागवत मे दिये गये प्रसगो पर आधारित भावानुवाद के रूप मे प्रस्तुत की गई है। इनके अतिरिक्त 'मोहान्ध दीप' शीर्षक के अन्तर्गत ससार के मायाजाल मे फँसने के विविध उपादानो की ओर सकेत करते हुए नारी को माया रूप और आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बताया है। इसीमे उत्पन्न संतान और माया के विस्तार मे फँसकर मनुष्य के पथभ्रष्ट हो जाने के उदाहरण दिये गये हे और तृष्णा षड्रिपु तथा इन्द्रियो के आकर्षण की आलोचना की गई है। अत मे भगवद्भजन करने का उपदेश दिया गया है।[6]

'सुधज्ञान' शीर्षक के अन्तर्गत ज्ञान एव ब्रह्म के विषय मे विवेचन करते हुए विद्वानो एव मुनियो के विविध विचारो की ओर सकेत किया गया है।[7] माया से बचने के उपाय और सगुणोपासना के कारणो पर प्रकाश डालते हुए भक्ति तत्व का निरूपण किया गया है। 'मोहाध दीप' और 'सुध ज्ञान' के ये प्रसग भागवत के आधार पर ही लिखे गये है।

(घ) दत्तात्रेय-जदु सवाद की कथा[8]

कवि ने कृष्णरससागर मे वर्णित यह कथा श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध से ली है जिसमे ययाति वश के राजा जदु के वन में आखेट खेलने के लिए जाने पर एक अद्भुत

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५४।
[2] वही वही पृ० ६४।
[3] वही वही पृ० ६७।
[4] वही वही पृ० ८०।
[5] वही वही पृ० १०७।
[6] वही वही पृ० ८२।
[7] वही वही पृ० ८५
[8] वही वही पृ० ९०

पुरुष से भेट का वर्णन किया गया है। राजा उससे उसके तन-मन के सुखी होने का कारण पूछते हैं, तब वह अपने २४ गुरुओ का संक्षेप मे वर्णन करता है।

२ अन्य पुराणों पर आधारित कथाएँ

द्रौपदी चरित्र—श्रीमद्भागवत में भी द्रौपदी के विषय में कुछ प्रसंगो मे यथा-स्थान संकेत मिलता है। लक्षदास जी ने कृष्णरससागर मे[1] भागवत के वे प्रसग न लेकर महाभारत के द्यूत पर्व मे से इस कथा का आधार लिया है।[2]

दुर्योधन का भय निर्मित सभाभवन देखना और पग-पग पर भ्रम के कारण उपहास का पात्र बनना, भीम का दुर्योधन के प्रति व्यग्ययुक्त वचन कहना, शकुनि की मंत्रणा से छल के पासे बनाकर युधिष्ठिर को जुआ खेलने का आमंत्रण देना, युधिष्ठिर का धन, राज्य, भाइयो तथा द्रौपदी सहित अपने को भी हारना, दु:शासन का द्रौपदी को पकडकर सभा मे लाना और उसके वस्त्र खीचना, समस्त सभा से द्रौपदी का न्याय की मॉग करना, कृष्ण भगवान् की स्तुति करने पर द्रौपदी की लज्जा की रक्षा, द्रौपदी के वस्त्र के निरन्तर बढने पर दु:शासन का थक जाना, देवताओ द्वारा सुमन वृष्टि।

(आ) चन्द्रहास की कथा[3]—जैमिनीयाश्वमेध पर्व में हंसध्वज की कथा (अध्याय १७-२१) मयूरध्वज की कथा (अध्याय ४१-४६), और उसके बाद चन्द्रहास की कथा का विस्तार से (अध्याय ५०-६०) वर्णन है। कृष्णरससागर में पहले चन्द्रहास की कथा और बाद मे हंसध्वज तथा मयूरध्वज की कथाएँ दी गई हैं। कृष्णरससागर मे चन्द्रहास की कथा का मूलाधार तो जैमिनीयाश्वमेध पर्व ही है, किन्तु उसमे दो स्थलो पर मूल कथा से भिन्नता है। (१) (कृष्णरससागर मे दी गई कथा के अनुसार) श्राद्ध के भोजन के उपरान्त जब ब्राह्मण घर को जाने लगता है तब धृष्टबुद्धि, ब्राह्मण से उसके साथ आये हुए बालक (चन्द्रहास) को माँग लेता है। श्वपचों को पुनः बुलाकर डाट फटकार करता है और बालक (चन्द्रहास) को मार डालने की आज्ञा देता है। (जैमिनीयाश्वमेध मे यह प्रसग नही दिया गया है)। (२) चण्डिका मंदिर में चन्द्रहास के बदले मदन का वध हो जाने पर चन्द्रहास दुखी होता है और देवी मन्दिर मे अपना वध करने को उद्यत होता है तभी देवी प्रकट होकर मदन को जीवित कर देती है। जैमिनीयाश्वमेध पर्व मे देवी द्वारा धृष्टबुद्धि और मदन दोनो को जीवित कर देने की कथा का भी वर्णन है, किन्तु कृष्णरससागर मे केवल मदन को पुनः जीवित करने की ही कथा दी गई है।

(इ) हंसध्वज की कथा[4]—जैमिनीयाश्वमेध पर्व मे यह कथा विस्तार से (अध्याय १७-२१ तक मे) दी गई है। कृष्णरससागर मे दी गई कथा का मूलत: आधार जैमिनीयाश्वमेध पर्व ही है किन्तु कवि ने हंसध्वज के परामर्शदाता मन्त्री का नाम नही दिया है। सुधन्वा-अर्जुन संग्राम के बाद सुधन्वा के कटे हुए सिर को प्रयाग के जल मे डालने का आदेश गरुड

---

१ कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ६९।
२ महाभारत (गीताप्रेस) २०१२ वि० वर्ष १ सख्या ५।
३ हस्तलिखित पृ० ७१।
४ वही वही पृ० ७५

को दिया गया है किन्तु शकर जी के द्वारा उस सिर को अपनी माला में पिरोने के लिए वापस लाने की आज्ञा देने का वर्णन है। (जैमिनीयाश्वमेध मे यह कथा 'सुरथ के सिर' के सम्बन्ध मे ही दी गई है।) कथा के शेष प्रसग दोनों ग्रंथों मे परस्पर मिलते है। सुधन्वा-अर्जुन संग्राम तथा सुरथ-अर्जुन संग्राम चन्द्रहास की कथा के ही अग है। कृष्णरससागर मे उनका पृथक् अध्यायों में वर्णन किया गया है।

(ई) **मयूरध्वज की कथा**[१]—जैमिनीयाश्वमेध पर्व में राजा मयूरध्वज के अश्वमेध यज्ञ करने और युधिष्ठर के यज्ञाश्व को ताम्रध्वज द्वारा पकड़ लिये जाने के युद्ध का वर्णन है (अध्याय ४१-४४)। अंत में भगवान् कृष्ण और अर्जुन विप्र वेष में राजा मयूरध्वज की परीक्षा लेते हैं और मयूरध्वज के लोकोत्तर दान से प्रसन्न होकर अपने दर्शन देते हैं। यही सारी कथा, सक्षेप मे, कृष्णरससागर मे दी गई है।

(३) अन्य रचनाओं का सकलन

(क) **भक्तवत्सल भगवान् की स्तुति**[२]—भक्तवत्सल भगवान् के कार्यों की प्रशस्ति का वर्णन, आपत्काल मे गजराज का सकट से उद्धार करने, प्रह्लाद का दुःख दूर करने, द्रौपदी का कष्ट निवारण करने, ध्रुव की मनोकामना पूर्ण करने, पाण्डवों की रक्षा करने तथा सुदामा के दारिद्र्यभंजक रूप में कृष्ण भगवान् की स्तुति की गई है।

(ख) **मंजु मुक्तावली**[3]—भगवान् विष्णु के विचित्र अवतारो का स्मरण करना, बालक कृष्ण की लीलाओं, दुष्ट संहार, किशोर लीला, व्रज के लोगों की रक्षार्थ कार्य करना, गोपी-प्रेम, कंस वध, उग्रसेन व वसुदेव तथा देवकी को बंधनमुक्त करना, द्वारका-वास, दुष्ट सहार, विप्र को सुत प्रदान करना, पारिजात वृक्ष लाना, भौमासुर-जरासंध आदि का वध, उद्धव को उपदेश, सुदामा, ध्रुव, प्रह्लाद की सहायता, बंदी राजाओं की मुक्ति, द्रौपदी की लज्जा रक्षा, राजसूय यज्ञ मे सभी के चरण पखारना (प्रक्षालन), भीष्म की प्रतिज्ञा हेतु निज प्रण त्यागना, सुर-मुनियों द्वारा प्रशस्ति, अम्बरीष चरित्र, उद्धव, सनकादि तथा नारद की परम्परा में (लक्षदास जी का) गुरू से कृष्ण की यह कथा प्राप्त करने का उल्लेख, गुरू से 'मोहन मत्र' का प्राप्त करना। इस प्रकार कृष्ण-जीवन की आद्योपान्त कथा (संक्षिप्त कथा) का नाम ही 'गिरिधर गुनमाल' या 'मजु मुक्तावली' बताया गया है।

(ग) **सतनाम स्तोत्र**[४]—भगवान् कृष्ण के नामों के साथ कृष्ण की बाल-लीलाओं का स्मरण, राधा-माधव की शोभा एव नित्य विहार की शोभा का सुख, वृषभानुसुता के साथ कृष्ण की रूप शोभा का वर्णन, अंत मे गुरू के नाम का स्मरण या 'श्री' रूप मे नारायण की सेवा का स्मरण।

(घ) **बारहदल वर्णन**[५]—श्री गुरू के चरण कमलो की वंदना करते हुए गंगा तट पर

---

[१] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ८७।
[२] वही वही पृ० ९३।
[3] वही वही पृ० ९४।
[४] वही वही पृ० ९५
[५] वही वही पृ० ९६

स्नान करके सभी तीर्थों के फल लाभ की ओर सकेत, मथुरा की प्रशस्ति एव मथुरा माहात्म्य की कथा को लक्षदास ने साधुओ के मुख से सुना, प्रमुख वन-उपवन तथा घाटो के नामो की सूची, भगवान् के 'श्री विग्रह' के विभिन्न नामो की गणना, वृन्दावन की परिक्रमा का सकेत।

(ड) **समस्तानन्दप्रद स्तोत्र**[1]—विभिन्न नामो से भगवान् की स्तुति ससार के स्वप्नवत् भासने और देह की असारता की ओर सकेत, व्यर्थ के वाद-विवाद को छोडकर गोविन्द की कथा सुनने पर जोर।

(च) **हरिहर नामावली**[2]—विष्णु के अवतारी रूप राम और कृष्ण के विभिन्न नामो तथा शिव की स्तुति, भगवान कृष्ण के विभिन्न अवतारो की प्रशस्ति।

(छ) **जुगल किशोर लीला**[3]—बरसाना-नन्दगाँव मे राधा-कृष्ण की लीलाएँ, कृष्ण का वीणा-वादन सुनकर राधा की अस्त-व्यस्त दशा, मूर्च्छा, ब्रज से एक नारी का आना और उसे ठीक करना, (कवि का सकेत) कृष्ण स्वय ही दूती का रूप धारण करके आये, राधा के कान मे कृष्ण के व्याकुल होने की बात कहना, दम्पति-केलि विलास वर्णन, राधा-कृष्ण विवाह और उनकी शोभा का वर्णन, रास लीला रूप का वर्णन, नित्य विहार लीला, क्रीडा, भोजन, शयन, शृंगार-वर्णन, सखी भाव मे उपासना।

(ज) **वृन्दावन विहार वर्णन**[4]—राधा-कृष्ण की क्रीडा के निमित्त ऋतु सकेत, दम्पति, के शृंगार की सखियो द्वारा तैयारी, विविध सखियो द्वारा राधा-माधव की सेवा, भगवान् कृष्ण द्वारा राधा की आराधना करने के लिए सखियो को बताना, राधा-कृष्ण की शोभा का वर्णन, राधा के मान करने पर कृष्ण की विकलता का वर्णन, युगल स्वरूप की उपासना।

(झ) **पावन लीला**[5]—हरि नाम की महिमा, चार युगो मे हरि भक्ति के चार रूप, प्रह्लाद, ध्रुव और सुदामा के कष्ट निवारण की कथा का सकेत, द्रौपदी की लज्जा की रक्षा, अंबरीष के लिए दुर्वासा को त्रास, पाण्डवो के दुख का निवारण, शाक खाकर सभी को तृप्त करना, अजामिल उद्धार की कथा।

(ञ) **स्फुट पद**[6]—लक्षदास रचित जिन पदो का सकलन 'कृष्णरससागर' मे हुआ है वे विभिन्न विषयो एव प्रसंगो पर आधारित है। इससे यह अनुमान होता है कि ये फुटकर पद समय-समय पर लिखे गये होगे। इन पदो का सकलन 'कृष्णरससागर' मे कब और किसने किया यह कहना कठिन है क्योकि इस सम्बन्ध मे कोई भी विवरण उपलब्ध नही है।

पदों के वर्ण्यविषय का आधार—कृष्ण का नख-शिख वर्णन करते हुए उनके गोचारण का वर्णन, मन को प्रबुद्ध करने के लिये संसार के माया जाल के विभिन्न रूपो का दिग्दर्शन कराना,

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ९६।
[2] वही वही, पृ० ९७।
[3] वही वही, पृ० ९८।
[4] कृष्ण रस सागर (हस्तलिखित), पृ० १०१।
[5] वही वही पृ० ११६
[6] वही वही पृ० १०१ से प्रारम्भ

पतितोद्धारक तथा भक्तवत्सल भगवान् से कृपा-याचना, राधा-कृष्ण के लीला वपु का स्मरण, बाल तथा किशोर कृष्ण की लीलाओ और माखन चोरी के संकेत, कृष्ण तथा गुरु के चरण कमलो की वदना, कुब्जा पर कृपा, माली का आतिथ्य स्वीकार करना, धनुष भंग, कुवलयापीड वध, राज सभा मे भावनानुसार कृष्ण का रूप दर्शन, मल्ल युद्ध तथा कंस-वध, उग्रसेन-राज्याभिषेक, कालियदमन के बाद कृष्ण के वापस आने पर मगल मनाया जाना, रास लीला प्रकरण, भ्रमर गीत के पदो मे उद्धव-गोपी संवाद और गोपियो के उपालम्भ, उद्धव के उत्तर, उद्धव का वापस लौटकर व्रज वनिताओ के प्रेम की प्रशंसा करना, वर्षा ऋतु मे कृष्ण-विरह का उद्दीपन, वस्त्र हरण लीला, राधा-कृष्ण विवाह तथा दम्पति की शोभा, मगलाचार, दम्पति को भोजन कराना।

(४) **दोहावली**[1]—जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है दोहावली के दोहे फुटकर रूप मे समय-समय पर लिखे गये हैं। कृष्णरससागर मे 'दोहावली' शीर्षक के अन्तर्गत १४४ दोहे और भागवत पुराणसार मे 'दोहावली' शीर्षक के अन्तर्गत १६३ दोहे सकलित मिलते है। भागवतपुराणसार मे दिये गये १६३ दोहो मे कृष्णरससागर के १४४ दोहे भी सम्मिलित है। इन दोनो मे मिलने वाले दोहो की क्रमानुसार योजना बिलकुल एक ही है जो स्पष्ट रूप से 'दोहावली' के स्वतन्त्र ग्रथ होने का परिचय देती है। सम्भव है, उन्होने कुछ दोहे और भी लिखे हो जो आज उपलब्ध नही है।

दोहावली का वर्ण्य-विषय—इन दोहो मे क्रोध, हठ, कुसग तथा मद परित्याग, भक्ति, नीति, सत महिमा, गोपी-प्रेम की तीव्रता, मर्यादा, भक्तवत्सलता, राधा-कृष्ण की शोभा, कृष्ण नाम की महिमा, उनके रूप, स्नान का मन पर प्रभाव, मन परीक्षण की कसौटी, मन की मूढता तथा ससार की अनित्यता आदि के प्रसग हैं। प्रेम की अनन्यता में मीन, चातक, चकोर, हारिल को आदर्श मानकर कुछ दोहे लिखे गये है। कृष्ण की शरण मे जाने पर पतिव्रता नारी की भाँति निष्ठावान होना आवश्यक है। वे ब्राह्मण के प्रति आदर भाव को आवश्यक मानते थे। उन्होने भूत पूजा का विरोध किया, मुचकुद की कथा, पूतना वध, सत्राजित की मणि की कथा, अजामिल उद्धार आदि प्रसगो को आधार बनाते हुए मन को प्रबुद्ध करने के लिए कुछ सकेत किये गये है। हरिण की सगीत के प्रति अनन्य प्रीति को उन्होने बडे ही मार्मिक शब्दो मे चित्रित किया है। भक्त की सासारिक दशा मे निवृत्ति और आसक्ति का यह श्रेष्ठतम उदाहरण है। भगवान् के सगुण और निर्गुण रूपो में भेद, कबीर की भाँति नयन द्वार से पति का आगमन तथा भाग्य पर विश्वास करने के विषय मे भी लिखा गया है। 'नाश के समय विपरीत बुद्धि' कहकर राम का स्वर्ण मृग को मारने के लिए जाने का उदाहरण, आत्मकथन तथा दैन्य के विषय मे दोहे।

भागवतपुराणसार

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है 'भागव ' ग्रथ मे श्रीमद्भागवतपु राण का अनुवाद सार' रूप मे सकलित है और में

संकलित 'भागवतपुराण' का अनुवाद वस्तुत· एक ही है। यह दोनों की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है। अतः आगे की पंक्तियो में हमने भागवत पुराण के वर्ण्य-विषय और विषय प्रतिपादन का वर्णन पृथक् से नही किया है क्योंकि उसका विवरण हम 'कृष्णरससागर' ग्रथ के विषय-वस्तु का विवेचन करते समय दे चुके है। 'भागवतपुराणसार' की खण्डित प्रति ही उपलब्ध हुई है। यह स० १८७२ की प्रतिलिपि है। इस ग्रथ के ९६ पृष्ठ ही उपलब्ध है जिसमें अंतिम पृष्ठ तो ऐसे फट गये है कि उनमे से पदो को पढना कठिन हो गया है।

कृष्णरससागर मे सँकलित 'भागवतपुराणसार' अनुवाद मे कवि ने दोहे के स्थान पर कहीं-कही बरवै छंद भी प्रयुक्त किये हैं। अपनी अन्य रचनाओ में बरवै छन्दो का प्रयोग कवि ने स्वतन्त्र रूप में भी किया है—'बरवै उधवा के' तथा बरवै छन्दो में 'कृष्ण की लीला' से यह स्पष्ट है। इसी में कतिपय बरवै भागवत की कथा में प्रयुक्त किये गये है जिससे यह स्पष्ट होता है कि कवि के ये बरवै भागवत से भी पहले लिखे गये होगे। प्रारम्भ मे कवि ने 'बरवै कृष्ण के' लिखकर 'बरवै उधवा' शीर्षक के अन्तर्गत ४२ बरवै तथा 'बरवै कृष्ण की लीला' मे ७१ बरवै लिखे हैं।

'बरवै उधवा' का वर्ण्य-विषय—कृष्ण के मथुरा गमन के बाद गोपियो के दु.ख का बोध उस समय फट पडा जब उद्धव आए। उद्धव से गोपियो ने प्रश्नो की बौछार की तथा कृष्ण की लीलाओं और उनके व्यवहार की कसक को उन्होने उद्धव के सामने व्यक्त किया। कृष्ण ने उन्हें 'यज्ञ पशु' कर (बना) दिया है। गोपियाँ पूछती है कि कृष्ण के यहाँ (व्रज) से चले जाने का जितना दुःख हमे है, क्या उनको भी कुछ है ? तब तो कृष्ण माखनचोर थे पर अब चितचोर हो गए। वे कृष्ण की 'साहबी' की वृद्धि की कामना करती है। कृष्ण के नयन बाण से घायल हुई व्याकुल गोपी ने उद्धव से मार्मिक प्रश्न किये।

'कृष्ण की लीला' का वर्ण्य-विषय—कस ने निमन्त्रण के धोखे मे राम-कृष्ण को बुलाने का आदेश अक्रूर को दिया। अक्रूर का आज्ञा पाकर चल देना, हृदय मे प्रसन्नता, मार्ग मे सगुन होना, कृष्ण मिलन की आशंका, अपनी नीचता तथा कस-दूत होने के कारण, धरती पर कृष्ण के चरण-चिह्न देखकर धूल मे लोटने लगना, अपना परम सौभाग्य मानना, व्रज मे पहुँच कर अक्रूर का श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाइयो को गाय दुहने के स्थान पर देखना, कृष्ण-बलराम की शोभा का वर्णन, अक्रूर का भगवान् के चरणो मे लेटना, कृष्ण-बलराम का उन्हे सादर घर ले आना, आने का कारण पूछना, भोजन कराकर कृष्ण-बलराम का अक्रूर के पैर दाबना, अक्रूर का नन्द से मिलना, कृष्ण-बलराम को गोरस और छकड़ो के साथ मथुरा ले जाने की बात कहना, सारे गाँव का व्याकुल होना, प्रेमाधीन व्रजवासियों की विकलता, माता यशोदा के दुख से भरे वचन और कृष्ण की कोमलता का वर्णन, कृष्ण-बलराम का रथ में बैठकर चल देना, कृष्ण-विरह में गोपियों तथा माता यशोदा की छटपटाहट, मार्ग मे अक्रूर को भगवान् कृष्ण के ब्रह्म रूप का ज्ञान, कृष्ण का आगमन सुनकर मथुरा के नगर-वासियों का देखने आना, कुबडी से भेट, माली पर कृपा, धनुर्भंग, कुबलयापीड़ वध, कृष्ण का रंगभूमि गमन, कृष्ण और राम के विषय में नगर के नर-नारियो की बातचीत, उनके जीतने की कामना करना, कृष्ण का कंस वध करके सबको सुख देना।

को पति रूप मे मानने वाली गोपी के मन की दसाओ का बारह

महीनो मे वर्णन, प्रकृति का उद्दीपन रूप मे चित्रण, कृष्ण के रास-विलास का स्मरण, उनके लौटने की बाट देखना।

पद – कृष्ण का होली खेलना, राधा का मान भंग करने के लिए चतुर सखी का कृष्ण को व्रज भेजना, वन की शोभा, राधा का कृष्ण के समीप गमन, राधा की शोभा का वर्णन, भगवान् की कृपा से तरे जीव और व्यक्तियों की गणना, हरि-भक्ति बिना सभी व्यर्थ, प्रह्लाद-हिरण्यकशिपु सवाद, भगवान् की भक्तवत्सलता, बालक कृष्ण की शोभा का वर्णन, कृष्ण जन्म पर मगलोत्सव, भगवान् का भजन करने के लिए मन को आदेश, दम्पति की शोभा, गोपी द्वारा कृष्ण की वैजयन्ती माला वापस करना, कृष्ण के दर्शन मात्र से गोपी के मन की चोरी, भगवन्-चरण से प्रीति न करने वाले की भर्त्सना, मन को व्यर्थ ही इधर-उधर न भटकने देकर कृष्ण-चरणो से अनुराग करने का आदेश। भगवान् से अपनी शरण मे लेने की प्रार्थना, हरि से बड़ा हरि नाम।

सगुनोपासना के पद[1]—इस शीर्षक के अन्तर्गत १३ कवित्त मिलते है जिनमे मे एक कवित्त मे शरद रास के समय मुरली की ध्वनि सुनकर चलती हुई अस्त-व्यस्त गोपिका का भावपूर्ण चित्र अकित किया गया है। शेष कवित्तों में गोपी-उद्धव सवाद की वाग्विदग्धता के उदाहरण है। निर्गुण की अपेक्षा कृष्ण के सगुण रूप की उपासना करने के तर्क सगत प्रमाण दिये गये हैं।

अन्य उपलब्ध रचनाएँ—अंतरवेद मे जो पद प्रकाशित किया गया है[2] उसमें राधे-गोविन्द के चरणो का ध्यान करने के विषय में कहा गया है। सासारिक माया जाल से निवृत्ति पाने और भगवद्भजन करने के लिए मन को प्रबुद्ध किया गया है।

याज्ञिक संग्रह से उपलब्ध कवित्तो मे 'वन विहार वर्णन' मिलता है[3] जिसमे राधा कृष्ण को शोभा तथा वन मे पुष्प संचय करते समय राधा-कृष्ण के परिहासपूर्ण संवाद का वर्णन है। इनके अतिरिक्त दूसरी पोथी मे जो पद उपलब्ध है उनमे सगीत की उच्च साधना पर आधारित पद दिये गये है। इनमें पावस की शोभा तथा रास मे संगीत की तान का वर्णन है।[4]

मोतीलाल की डायरी से उपलब्ध पद को 'विष्णुपद' का शीर्षक दिया गया है जिसमे राधा-कृष्ण की (दम्पति रूप मे) शोभा का वर्णन किया गया है। राधा कृष्ण के धारण किये हुए आभूषणो के लिए कवि ने सुन्दर उत्प्रेक्षा एव उपमानो का प्रयोग किया है।

---

[1] पचदूत वर्ष ६, अक १, सन् १९५५ ई०।
[2] अंतर्वेद २६-१-१९५९ (लोकसाहित्य अंक) पृ० १९।
[3] याज्ञिक संग्रह वेष्टन स० ४१ पोथी सख्या ७३४।
[4] वही, वेष्टन स० ४२ पोथी स० २६४।

अध्याय ४

लक्षदास जी की चरित्र कल्पना

लक्षदास जी के चरित्रों का परम्परागत स्वरूप

पिछले अध्याय मे हमने विषय-प्रतिपादन की दृष्टि मे लक्षदास जी की रचनाओ तथा उनके उपजीव्य ग्रथों की सक्षिप्त तुलना की है जिससे पता चलता है कि लक्षदास जी ने कृष्ण से सम्बद्ध कथाओ का सूत्र मुख्यत: श्रीमद्भागवत से तथा कही-कही अन्य पुराणो तथा विविध सूत्रो से ग्रहण तो किया है किन्तु कृष्ण-कथा को प्रस्तुत करने का उनका अपना मौलिक ढग है। श्रीमद्भागवत मे भक्ति-तत्वों का प्रतिपादन बडी भावुकता, गीतात्मकता एव काव्योचित गुणो को प्रतिपादित करते हुए किया गया है। सभवत इसीलिए भक्ति-सम्प्रदायो मे श्रीमद्-भागवत की विशेष मान्यता है। हमारे आलोच्य कवि लक्षदास ने श्रीमद्भागवत के आधार पर कृष्ण के चरित्र का विकास किया किन्तु पात्रो के चरित्र-चित्रण मे उन्होने अपना मौलिक ढग अपनाया। उनके काव्य मे उन्ही पात्रो का चरित्र दर्शाया गया है जिनका वर्णन श्रीमद्-भागवत तथा अन्य पुराणो मे मिलता है। उन्होने किसी नये पात्र की उद्‌भावना नही की। भागवत मे गोपियो का वर्णन भी शास्त्रीय ढग का है जिसमे राधा का कोई उल्लेख नही है परन्तु गोपियो और ग्वालो के प्रेम की चर्चा का विस्तार है। कवि लक्षदास ने राधा की उद्‌भावना का सूत्र निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्पराओ मे ग्रहण किया है क्योंकि भागवत मे राधा का कोई उल्लेख नही मिलता।

लक्षदास जी के काव्य का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके काव्य के नायक कृष्ण और नायिका राधा है। अन्य सभी पात्रो—नन्द, यशोदा, देवकी, वसुदेव, गोपियाँ, बलराम, ग्वाल-बाल तथा रुक्मिणी आदि—का चरित्र विकास राधा-कृष्ण के सम्बन्ध, मे ही विकसित किया गया है। कवि लक्षदास ने राधा और कृष्ण का चरित्र मानवीय गुणो से विभूषित करते हुए अकित किया है। उनमे भागवतकार की भाँति कृष्ण के परमपुरुषत्व रूप को सिद्ध करने की चेष्टा नही की गई फिर भी कतिपय प्रसगो मे यथास्थान कृष्ण के ब्रह्म का अवतार होने के सकेत अवश्य किए गये है जिनसे यह आभास मिलता है कि राधा और कृष्ण प्रकृति और पुरुष के ही रूप हैं। उनकी 'नित्य केलि' का केन्द्र वृन्दावन है। गोपाल कृष्ण की क्रीड़ाओं तथा राधा-कृष्ण की विलास लीलाओं के वर्णनो में कवि की चित्तवृत्ति खूब रमी है। इन वर्णनो में कवि की तल्लीनता और भावात्मकता के दर्शन होते है जिनमें कृष्ण के मानवीय रूप को इतनी स्वाभाविकता से कहा गया है कि उनका (कृष्ण का) अतिप्राकृत रूप दब-सा गया है

संस्कृत साहित्य के प्रारम्भिक युग मे कृष्ण को महामानव के रूप मे और बाद मे विष्णु और वासुदेव से सम्बद्ध करके भगवान् के रूप मे स्वीकार किया गया।[1] प्राकृत साहित्य मे भी कृष्ण को महामानव के रूप मे अंकित किया गया किन्तु अपभ्रंश साहित्य की उपलब्ध रचनाओं से स्पष्ट है कि कृष्ण के ब्रह्म रूप की स्थापना प्रारम्भ हो चुकी थी।[2] 'प्राकृतपैंगलम्' के संकलनकाल तक राधा और कृष्ण के मधुर भाव की उपासना पर्याप्त प्रचलित होने लगी थी जिसकी छाया चण्डीदास और विद्यापति के काव्य मे होती हुई परवर्ती कवियो को दाय के रूप मे प्राप्त हुई। हमारे आलोच्य कवि—लक्षदास की रचनाओ मे भी राधा और कृष्ण को मानवीय रूप मे अंकित करते हुए उनके लीलापुरुषोत्तम रूप की ओर भी संकेत किया गया है। उनकी अन्य रचनाओ मे कृष्ण, विष्णु, राम और शिव मे समन्वय स्थापित करने की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

जयदेव के 'गीत गोविन्द' में राधा के प्रेम का क्रमिक विकास नही मिलता, केवल राधा-कृष्ण के संयोग और वियोग की दशाओं के चित्र मिलते है। इनमे राधा-कृष्ण की विलास-लीलाओं का वर्णन शृंगारिक भावनाओ के आधार पर किया गया है जिसमे नायक-नायिकाओ की सभी चेष्टाएँ—मान, अनुनय, विनय आदि—सम्मिलित है। बौद्ध वाममार्गियो की परम्पराओ मे प्रभावित होने के कारण चण्डीदास ने राधा को परकीया रूप मे ही अंकित किया। यह राधा प्रेम की साक्षात् प्रतिमा है जिसमे भक्ति-भावना अधिक है और विलासिता कम। चण्डीदास की राधा मे आत्मसमर्पण की पूर्ण भावना है, वह कृष्ण-वियोग मे व्याकुल हो जाती है अतः उसके लिए 'मान' की कल्पना करना उचित नही है। विद्यापति ने भी जयदेव की शृंगारी पद्धति के अनुरूप राधा का वर्णन परकीया रूप में ही ग्रहण किया। उन्होंने राधा-कृष्ण के संयोग और वियोग के चित्र प्रस्तुत करके उनके आंतरिक एव बाह्य सौन्दर्य का चरम विकास दिखाया है।

हमारे आलोच्य कवि लक्षदास निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे अतः उन्होंने सम्प्रदाय की परम्पराओं के अनुसार युगलोपासना को स्वीकार किया और अपने समय से पूर्व की प्रचलित परम्पराओ के दोषो का परिष्कार करते हुए राधा को स्वकीया रूप मे ही

---

१ इसी प्रबंध के प्रथम अध्याय में हम इसकी संक्षिप्त रूपरेखा दे चुके है।

२ (क) अम्हणिओ, सन्देसडो तारय कन्ह कहिज्ज।
जग दालिद्दिहि डुब्बिउ बलि बंधणह मुहिज्ज॥

—प्रबन्ध चिंतामणि।

(ख) जिणि कंस विणासिअ कित्ति पयासिअ
मुट्ठि अरिट्ठ विणासकरे गिरि हत्थ धरे
जमलज्जुण भंजिय पय भर गंजिय
कालिय कुल संहार करे, जस भुवण भरे
चाणूर विहंडिअ णिय कुल मंडिअ
राहा मुख मधु पान करे जिमि भमर वरे
सो तुम तुम णरायण णरायण विप्प परायण
चित्तह चिंतिय देउ वरा भयभीअ हरा

अंकित किया। इस प्रकार कवि ने राधा-कृष्ण के स्वरूप को शील, सौन्दर्य और साधना-समन्वित रूप मे (जनता के सामने) इस ढग से रखा कि उसको मानवीय रूप मे मानने पर भी उसमे आध्यात्मिक भावनाओ की प्रचुरता हो गई।

महाराष्ट्र के सत नामदेव ने राधा के परकीया रूप को सामाजिक दृष्टि से अनुपयुक्त एव अग्राह्य मानने के कारण रुक्मिणी को गौरवान्वित किया और समाज के मर्यादा धर्म की रक्षा का मार्ग निर्दिष्ट किया। संत नामदेव की इस भावना का प्रभाव लक्षदास जी पर भी दिखाई देता है। उन्होंने 'रुक्मिणी-विवाह' का प्रसंग विस्तार से लिखा है जो कि एक स्वतन्त्र खण्डकाव्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। लक्षदास जी ने राधा-कृष्ण का भी विवाह कराकर राधा को स्वकीया माना है। इस प्रकार उन्होने समाज के सामने स्वकीयत्व का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत किया है।

लक्षदास जी की मौलिकता—भागवतकार ने कृष्ण का अवतार चतुर्व्यूह रूप मे अंकित किया है और उन्हींके साथ प्राय: बलदेव का भी संयोग दिखाया है। लक्षदास जी ने बलदेव के देवत्व को कहीं भी स्पष्ट नहीं किया। उन्हे कृष्ण के बडे भाई, शुभचिन्तक और सखा के रूप में ही दिखाया है।

भागवतकार ने यशोदा के चरित्र-चित्रण में कृष्ण की अलौकिकता का भार इस प्रकार डाल दिया है कि उसमे यशोदा का व्यक्तित्व दब गया है जिसके कारण उसका वात्सल्य पूर्ण रूप से निखर नहीं सका। उसमे यशोदा के चरित्र का इतना मनोवैज्ञानिक विस्तार नहीं है जितना लक्षदास ने किया है। कवि ने यशोदा तथा गोपियों के चरित्र के वे मार्मिक प्रसग लिये है जो जन-मन के अधिक समीप है। कृष्ण-बलराम के प्रति यशोदा के प्रेम-व्यवहार का मनोवैज्ञानिक ढंग से विस्तार किया गया है। कृष्ण की संहार लीलाओं के समय यशोदा के मातृ-हृदय की विकलता और पुत्र की मगल कामना की भावना पदे-पदे कृष्ण के लौकिक रूप की ओर इंगित करती है।

भागवतकार ने वसुदेव-देवकी को कृष्ण के व्यक्तित्व-विकास तथा ब्रह्मरूप की प्रतिष्ठा पुष्टि के साधन-रूप मे ही अपनाया है किन्तु लक्षदास ने उन्हे आदर्श गृहस्थ के रूप में अंकित करके यावज्जीवन अपने कर्त्तव्य कर्मो के निर्वाह मे निरत दिखाया है। मुनियों के द्वारा कृष्ण के ब्रह्मरूप का ज्ञान कराने और समझाने पर भी वसुदेव यज्ञ करते है और धार्मिक कार्यो के प्रति अपनी निष्ठा प्रकट करते है।

सस्कृत ग्रंथों में राधा के सम्बन्ध मे संकेत किये गये है किन्तु राधा-कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना और उनकी प्रेमलीलाओ का मिश्रण निम्बार्क सम्प्रदाय तथा ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के द्वारा मुख्य रूप से हुआ है। डा० भण्डारकर ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के समस्त उत्तरखण्ड को निम्बार्क सम्प्रदाय वालों द्वारा प्रक्षिप्त मानते हैं।[1] राधा के वर्तमान रूप का विकास अधिकतर ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के आधार पर ही हुआ है जिसमे राधा का वर्णन राजैश्वर्यपूर्ण ढग से किया गया है[2] और राधा-कृष्ण का चरित्र अस्वाभाविक और अशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है।

---

[1] वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजस सिस्टम्स, पृ० ६२।

[2] कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय १५ राधा-कृष्ण प्रथम मिलन तथा परिचय अध्याय २७ रास प्रसग अध्याय ५६ से ६८ तक ९२ से ९८ और ११६ से १२७ तक में मिलता है

विद्वानो ने इसी कारण इस पुराण की आलोचना की है। हमारे आलोच्य कवि लक्षदास ने परम्परा से प्राप्त राधा-कृष्ण के चरित्र को ग्रहण तो किया किन्तु सामाजिक मर्यादा के कट्टर पक्षपाती होने के कारण उन्होने राधा-कृष्ण के चरित्र वर्णन मे सामाजिक शिष्टता और मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रखा और सामाजिक एकता तथा नैतिकता को आघात पहुँचाने वाले गर्हित तथा अशिष्ट प्रसंगो को अपनी रचनाओ में कोई स्थान नही दिया। शरद्-रात्रि मे कृष्ण के वेणुवादन से प्रभावित हुई गोपियाँ जब उनके (कृष्ण) समीप पहुँचती है तो वे उन्हे (गोपियों को इस प्रकार रात्रि मे और निर्जन वन मे न आने के लिए समझाते है तथा पतिव्रत धर्म का पालन करने की सलाह देते है। इस बात को सुनकर प्रगल्भा गोपियाँ भी अपने आने का औचित्य बताती हुई कृष्ण को ही अपना वास्तविक पति स्वीकारती है।[१]

भागवत मे गोपियो के वर्णन मे स्वाभाविकता नही है क्योंकि भागवतकार ने उनमे अतिप्राकृत तत्व का अत्यधिक आरोप कर दिया है। गोपियों को अपने पूर्व-जन्म की स्मृति है अतः वे इस जीवन मे (गोपी रूप मे) भगवान् कृष्ण के दर्शनो को लालायित हैं। लक्षदास जी ने गोपियो का चित्रण पूर्णत मानवीय आधार पर किया है। ये गोपियाँ व्रज की भोली भाली सरल ग्रामीण नारियाँ है जिनमे अपने उद्‌गारों को व्यक्त करने मे किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट नही है। 'भ्रमरगीत' प्रसग मे उद्धव के उपदेश (कृष्ण-सन्देश) से गोपियो को सान्त्वना मिल जाती है किन्तु लक्षदास की गोपियाँ उद्धव के कथन को समझने मे अपनी असमर्थता प्रकट करती हुई कृष्ण की बाल-लीलाओं की याद करती हैं और सगुणोपासना की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती हैं।

उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त, राधा-कृष्ण की बिहार-लीलाओ के कतिपय प्रसंगो से सम्बद्ध कुछ पात्र और हैं - यथा – व्रजवासी, अक्रूर, उद्धव, कंस, कुब्जा आदि—जिनके चरित्र का विकास कृष्ण के व्यक्तित्व प्रस्फुटन एवं उनकी अलौकिकता को और भी प्रांजल बनाने के उद्देश्य से किया गया है। सुदामा, प्रह्लाद और अम्बरीष की कथाओं को भागवत के तथा द्रौपदी की कथा को महाभारत के आधार पर लिखा गया है जिसमे कृष्ण को जगन्नियता, परब्रह्म, अविनाशी और भक्तवत्सल बताया गया है। कवि ने महाभारत में वर्णित कथा-क्रम को प्रामाणिक माना है और उसी के अनुसार 'रुक्मिणी चरित्र' वर्णन पहले और 'जरासध वध' का प्रसग उसके बाद मे लिखा है। हंसध्वज, चन्द्रहास और मयूरध्वज की कथाओ में कृष्ण के ब्रह्मत्व को प्रतिष्ठित करने के संकेत किए गये है जो 'जैमिनीयाश्वमेध' की परम्पराओ के अनुसार ही है। इनके अतिरिक्त अन्य स्तोत्रो और लीला-वर्णनो मे राधाकृष्ण की निकुंज-केलि तथा पावनलीला की कथा सरल एव भावपूर्ण शब्दों मे कही गई है।

लक्षदास जी के कृष्ण—लक्षदास के काव्य का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो

---

१ देह ग्रेह पति पुत्र सो नेह न कहिये काह।
तुम साचे वै देषियतु वादर कैसी छाय॥
× × ×
ह्रिय फाटहु तिन तियन के पति जिनके हित और।
अषियन बसौ सुन्दर
र (हस्तलिखित पृ० ३९

जाता है कि कवि ने कृष्ण कथा को श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणो मे ग्रहण अवश्य किया है किन्तु वर्ण्य-विषय को प्रस्तुत करने का उनका ढग अपना है। उनकी समस्त रचनाओ के नायक कृष्ण है और राधा उनकी प्रेयसी तथा स्वकीया नायिका है। इसप्रकार कवि ने काव्य का सम्पूर्ण कथानक कृष्ण के व्यक्तित्व मे इसप्रकार ग्रथित किया है कि अन्य पात्र पूर्णतया उन्ही पर निर्भर है। इसमे एक विशेषता यह है कि विभिन्न पात्रो के व्यक्तित्व ऐसी तरह सुनियोजित है कि उनकी स्वतन्त्र सत्ता काव्य की एकरूपता को भी बनाये रखती है।

लक्षदास जी के काव्य मे कृष्ण के चरित्र का विकास तीन रूपो मे हुआ है—व्रज लीला, मथुरालीला और द्वारकालीला। कृष्ण चरित्र के इन वर्णनो मे, कही-कहीं ऊपर से, विशृखलता-सी दिखाई देती है, परन्तु ऐसा है नही। वस्तुतः कथा का एकसूत्र निरतर चलता रहता है। इस प्रकार कवि द्वारा वर्णित इन प्रसगो मे भी एकरूपता दिखाई देती है। कृष्ण शैशवकाल मे लीला कौतुक मे ही भिन्न-भिन्न राक्षसो का सहार करके पृथ्वी का भार उतार कर सतप्त जनता को शान्ति प्रदान करने के लिए अपने पूर्वकथित प्रण का निर्वाह करते हुए दिखाई देते है। उनकी यही लीला द्वारकापुरी तक के कार्यो में अभिव्यजित होती है जब वे जरासध का वध कराते हुए चित्रित किये गये है।

दशम स्कंध पूर्वार्द्ध की ब्रजलीलाओं में कवि ने कृष्ण का क्रमिक विकास दिखाया है। मथुरा और द्वारका की लीलाओ मे भी कृष्ण केउज्ज्वल चरित्र और उनके प्रति प्रेम को ही अकित किया गया है। व्रज मे यशोदा को दिखाया गया अच्युत अविनाशी ब्रह्म का अलौकिक रूप जो लीलाभाव से आत्मीय भाव मे साकार हुआ था, मथुरा और द्वारका मे क्रमश और भी अधिक महिमामडित होता गया है, फिर भी कवि की चित्त-वृत्ति कृष्ण के ब्रजवासी रूप मे नही हट सकी है और उसने एकान्त तन्मयता से 'निकुज विहार लीला' का वर्णन किया है।

लक्षदास जी की रचनाओ में भी भागवत की ही भॉति श्रीकृष्ण प्रधान पात्र है। भागवतकार ने कृष्णावतार को चतुर्व्यूह रूप मे लेकर कृष्ण के परम पुरुषत्व को सिद्ध करने की चेष्टा की है। लक्षदास जी ने कृष्ण चरित्र का विकास तो श्रीमद्भागवत के ढग पर ही किया है और यथास्थान उनके ब्रह्म का तथा लीला पुरुषोत्तम रूप का स्मरण किया है किन्तु वह इतना रच-पच गया है कि हम उसके तादात्म्य मे एक विशिष्ट आनन्द की ही अनुभूति करते हैं। श्रीमद्भागवत के ऐतिहासिक प्रसंगो तथा अन्य विवरणो की ऊहापोह मे श्रीकृष्ण कही-कही हमारी दृष्टि से बिलकुल ओझल हो जाते है किन्तु लक्षदास जी ने कृष्ण-चरित्र का विकास इसप्रकार प्रस्तुत किया है कि कृष्ण की रूपसुधा अमृतकण बरसाती हुई सदैव कवि की दृष्टि के सामने ही रहती है। उनके काव्य मे कृष्ण की शोभा का वर्णन स्थान-स्थान पर स्पष्ट रूप से इगित मिलता है। कवि की दृष्टि में जीवन का लाभ भगवान् कृष्ण के सान्निध्य तथा रूपसुधा पान से ही है।

श्रीमद्भागवत के कृष्ण गोपियो को दार्शनिकता से भरे हुए उपदेश देते है जिसके कारण कृष्ण के नैसर्गिक चरित्र विकास का अभाव हो जाता है किन्तु लक्षदास की रचनाओ मे गोपिया और नन्द-यशोदा के बीच पलकर खेलते हुए कृष्ण का वह

रूप मिलता है जो हमारे गृहस्थ जीवन का ही एक अंग है। उसमें लेशमात्र भी दार्शनिकता नहीं है। कवि ने, यद्यपि, कृष्ण के अतुल्य (अलौकिकता) की ओर यथास्थान संकेत किया है, किन्तु उसमें कृष्ण की मानवीयता तथा उनकी बालसुलभ चेष्टाओं के स्वाभाविक विकास में अन्तर नहीं आने पाया है। भक्तों की चरित कथाओं—ध्रुव चरित, द्रौपदी चरित, सुदामा चरित, अम्बरीष चरित, प्रह्लाद चरित, हंसध्वज, चन्द्रहास तथा मयूरध्वज आदि के चरित्र—में दिये गये विवरण से यह स्पष्ट है कि कवि ने कृष्ण को जगन्नियता, परब्रह्म, अविनाशी और भक्तवत्सल बनाया है। लक्षदास जी की रचनाओं में कृष्ण के इसी विविध रूप व्यक्तित्व का जो विवेचन किया गया है, हम उसे ही संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे।

गोकुल में नंदनंदन कृष्ण के प्रकट होते ही आनन्द छा जाता है, नंद-यशोदा की प्रसन्नता का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहता। कृष्ण को स्नान कराया गया। विप्रों ने जाति कर्म कराये।[1] नंद ने बछड़ो के साथ असंख्य गायें साधु और विप्रों को दान दीं। विप्रों ने वेद-पाठ करते हुए आशीर्वाद दिया।[2] बंदी, मागध और सूत जनों को उचित दान और 'पहरावा' दिया गया। यशोदा ने गोपियों को नखशिख पहरावा दिया और दास-दासियों को मनवांछित धन दिया।[3] भादों भर 'दधिकांदो' हुआ, देवता और साधु प्रसन्न हुए।[4]

कुछ बड़े होने पर कृष्ण नंद के आंगन में घुटनों के सहारे चलने लगते हैं। उनकी शोभा का एक चित्र देखिये—'कृष्ण की नाक में लटकनिया शोभायमान है, मुख में दो दाँत हैं जो मन को अच्छे लगते हैं, कानों में कुण्डल, कण्ठ में मोतियों की कठुलिया' शोभित हैं जिसे देखकर करोड़ों कामदेव मोहित हो जाते हैं। कृष्ण के हाथों में सोने की चूड़ियाँ शोभायमान हैं। उन्हें जो भी देखता है 'ठगा' सा रह जाता है। कटि में तनिकसी किंकिनी 'राजती' है जिससे 'रुनझुन रुनझुन' की आवाज निकलती है। पैरों में मणि जटित पैजनियाँ हैं जिसको देखने मात्र में ही दृष्टि मोहित हो जाती है। (पैरों के) नख की शोभा अरुण-श्वेत वर्ण की है, (हमारे) दृग चकोर उसे चन्द्रिका की भाँति देखकर सुख पाते हैं। जब कृष्ण घुटनों चलने लगते हैं तब यशोदा और नंद के सारे पुण्य फलीभूत होते हुए दिखाई देते हैं।[5]

---

[1] सादर सुत सुगध अन्हवायो। जातिकर्म विप्रन करवायो॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० १५।

[2] तरुनी बछरन सहित दुधारी। रहित कलंक सुसील सुधारी।
साधु विप्र ते रहसत लेही। पढि पढि वेद आसिषा देही॥
गनिन जाहि ते अगनित गाही।
—वही, पृ० १५।

[3] बंदी मागध सूत जे आये। उचित दान दीन्हे पहिराये॥
गोपी गन गावहि पिक बानी। पहराई नपसिष महरानी॥
नंद महर सब कुल पहिरायौ। मनवांछित धकरिनि धन पायो॥
—वही, पृ० १५।

[4] भरि भादो दधिकिंदो करै। सुर सिहाइ सब साधुन भरै॥ —वही, पृ० १५।

[5] लटकनिया नथुनिया सोहाइ। द्वै दतिया देखत मन भाइ॥
कानन दुरैतुरै गज मोती दुन्हहि मिले छबि की छवि होती।
कठ कठुलिया मोतिन हारा मोहे जोहत कोटिन्ह मारा

धीरे-धीरे कृष्ण बड़े होते हैं और चलना सीखते हैं। वे गिरते-पड़ते चलते हैं और सँभलते हुए भी गिर जाते है। इस सुख को कहते हुए क्या 'विरचि' भी पार पा सकते है ? जब कृष्ण यशोदा की अँगुली पकड कर दौड़ते है तो उस सुख का वर्णन केवल शारदा ही कर सकती है। यशोदा पुराने आभूषणो को न्योछावर करके नये आभूषण तथा वस्त्र पहनाती है। इस प्रकार 'नंद की धनिया' इस 'धन' से धनी हो रही है।[1]

कृष्ण और बडे होने पर अपने समवयस्क सखाओ के साथ 'खोरि' में खेलने लगते हैं। कृष्ण (की शोभा) को देखकर ब्रजवासियों के तन पुलकित होते हैं। 'खोरि' मे खेलते हुए कृष्ण को जो भी देख पाता है वह बडे उत्साह से 'अंक' लगाता है। भवन-भवन से ब्रजनारियाँ आती हैं जो 'करताल' से 'गोपाल' को नचाती है। वे जो कुछ कहती है, कृष्ण वैसे ही करते हैं।[2] कवि ने कृष्ण की इसी प्रकार की विविध बाललीलाओ को अंकित किया है। कृष्ण के अपनी छाया को देखकर भागने, भोजन करने, माँ से प्रेमपूर्वक बातें करने तथा बलराम के साथ अपने आगन मे गाय के बछडो की पूँछ पकड कर दौड़ने आदि के लीला सुख का वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है।[3]

लक्षदास जी ने कृष्ण के रूप सौन्दर्य एव उनके अग-प्रत्यंगो का कई स्थानों पर विविधता से वर्णन किया है जो कवि के भाव-जगत की अंतर्दृष्टि का परिचायक है। कृष्ण की चपल चेष्टायें माता-पिता के वात्सल्य का आलम्बन तो हैं ही, उनके मनोहारी रूप ने गोप-गोपियो को भी आकर्षित किया। लक्षदास ने 'माखन लीला' के प्रसंगों में कृष्ण का वह रूप भी लिया है जो गोपियो के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु और उनके प्रेम का मूलाधार हुआ। इसमें कृष्ण की सुदरता, चपलता, छल, चतुराई तथा कौतुकपूर्ण चेष्टाओ का उद्घाटन इतनी स्वाभाविकता मे हुआ है कि हम इन शब्द-चित्रों को कवि की सफल अभिव्यक्ति कह सकते हैं। 'माखन चोरी' का एक उदाहरण देखिये—'एक ग्वालिनी के सूने घर मे कृष्ण अपने

चुरवा करन कनक कै सोहै। सो ठगि रहे जाहि तन जोहै ।।
तनक कनक किंकिन कटिराजे। सुनु सुनु रुनझुन रुनझुन बाजे ।।
पांयन पैजनिया मनि जटी। निरषत लक्ष दृष्टि सब लटी ।।
नष चद्रिका अरुन छबि सेता। दृग चकोर ह्वै द्वै सुष लेता ।।
जानु पानि ह्वै घुटुरुन चलै। जसोमति नंद सुक्रत फल फलै ।।

—वही, पृ० १६।

[1] गिरत परत पुनि गिरत समारत। का बिरंचि एहि सुष कहि पारत ।।
गहि जैसोमति अंगुरी जब धावही। ते सुष सारद सो कहि आवही ।।
भूषन आनि नये पुनि धरै। वै उतारि नेछावरि करै ।।
कटि पहिराय पाटकी तनीया। एहि धन धनी नद की धनिया ।।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १६।

[2] वैस समान सपन संग कुलकै। निरषि निरषि ब्रज जन तनु पुलकै ।।
षेलत षोरि जो देषन पावै। ले उछाह सो अंक लगावै।
भवन भवन ते भामिनि आवै। दे रताल गोपाल नचावै ।।
जो कछु कहही करहि हरि असै।

—वही पृ० १८

[3] वही पृ० १८

दलबल सहित माखन चुराने की ताक में छिप गये और गोरस का भाजन सीके पर से उतार लिया। (कवि के शब्दों में) कृष्ण माखन को इस प्रकार ढूंढ लेते हैं जिस प्रकार सत मुख को त्याग कर 'सार' को ग्रहण कर लेता है। किन्तु जैसे ही उन्हें ग्वालिनी के आने का आभास हुआ, वे सभी स्थान स्थान पर भयभीत होकर छिप गये। कृष्ण अंधकार को देखकर जहाँ छिपने की चेष्टा करते वहीं उनकी तन-द्युति से प्रकाश हो जाता था, छिप-कर दही खाते समय भी वे द्वार की ओर देखते जाते थे और सखाओं से 'सैनों' (सकेतों) से बातें करते जाते थे[1] कि यदि यहाँ पर ग्वालिनी ने देख लिया तो यशोदा से कहकर फिर बँधवा देगी। इसी समय 'लाडले कन्हाई' ने हँसते हुए ग्वालिनी के आने की सूचना दी और एक ही साथ घर से निकल भागने की योजना बनाई। घर के द्वार पर छिपी हुई ग्वालिनी (घर के भीतर की) सब बातें सुन रही थी। ग्वालिनी के (घर के भीतर) आते ही कृष्ण भाग कर चल दिये तभी गोपी ने उन्हें पकड़ लिया। मुनि यत्न करने और ध्यानावस्थित होने पर भी जिसे नहीं पहचान पाते हैं वे बड़ी सरलता से गोपी के हाथ आ गये। भयभीत होकर उन्होंने छिपे हुए अन्य सखाओं को बता दिया और ग्वालिनी से स्वयं को मुक्त कर देने की प्रार्थना की।[2] 'अब न तजों तुम्हें माखनचोर' कहती हुई ग्वालिनी कृष्ण को पकड़कर 'नंद भवन' के निकट ले गई और द्वार पर खड़ी हुई यशोदा जी से कृष्ण की 'माखन चोरी' तथा 'दूध, दही, घृत के भाजन फोड़ने' की शिकायत की। कृष्ण के नयनाश्रुपूरित मुख को देख कर यशोदा को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने कृष्ण के प्रति गोपी के निर्मम व्यवहार की आलोचना की।[3]

---

[1] सूने भवन पैठि छिपी नीके। बचो न गोरस भाजन सीके ।।
माखन ढूंढि लेत हरि जैसे। तजि सुप सत सारु गहे जैसे ।।
जानि ग्वालिनी ग्रह जब आइ। ठौर ठौर डरि रहे छपाइ ।।
जह जह दुरैं देखि अंधियारी। तह नाशन तन तह उजियारी ।।
कटि किंकिनि पट पीत छुपावैं। तौ किरनि कल चहु दिसि धावैं ।।
तकहि द्वार तन दुरि दधि खात। सखन कहत सपन सों बात ।।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १९।

[2] हिया ग्वालिनी देषन पैहे। कहि जसुमति सों फेरि बधै है ।।
हसत कहा लाडिले कन्हाइ। देषहु वीर ग्वालिन है आइ ।।

+ + +

येक साथ चलिहै मिलि भागी। ग्वालिनि सुनैं द्वार घर लागी ।।
चले भागि जब भामिनि आई। आगर भुजा धरे तेहि पाई ।।

+ + +

जेहि मुनि जतन न ध्यान न चीन्हे। ते ग्वालिनि करके कपि कीन्हे ।।

+ + +

छपे जे सषा देषावत वाहै। डरि तिन वोर कोर दृग चाहै ।।
डरपि ग्वालि सौं करहि निहोरौं। बधैहि मातु तो चहिए छोरौं ।।

वही पृ० २०

[3] वही पृ० २०

एक बार कृष्ण के साथी ग्वालों ने माता यशोदा से कृष्ण के मिट्टी खाने की शिकायत की। यशोदा ने लाल की बाँह 'गहकर' उससे मिट्टी खाने का कारण पूछा। कृष्ण ने मना किया। सखाओं ने कहा—'इसके मुख में ढेली है।' यशोदा ने दाहिने हाथ में साँटी लेकर कृष्ण से मिट्टी उगलने को कहा। कृष्ण के दृग 'अंसुअन्ह' से भरि आए। वे 'मुख से न बोलकर सीस डुलाते हुए मना करने लगे।' कवि ने कितनी भावपूर्ण स्वाभाविक व्यंजना की है। लक्षदास कृष्ण की उस शोभा का वर्णन करने में असमर्थ है और उस रूप-छवि पर 'सरस सरद जलजात' वारता (न्योछावर करता) है। कृष्ण ने बड़ा साहस बटोर कर यशोदा को अपने मिट्टी न खाने की बात फिर से बताई और तुतलाते हुए 'ऊहा' की। यशोदा ने साँटी दिखाकर कृष्ण को डराया, तब कृष्ण ने हँसकर अपना मुँह खोल कर दिखाया। यशोदा ने उस मुख में तीन लोक, सात समुद्र, गिरि-वन, स्वयं तथा कृष्ण को देखा। उसे 'निरख कर' महरि को 'हवाला' न रहा। यशोदा भयभीत हो गई। उसे मतिभ्रम हो गया—यह माया है अथवा मोह? वह अपने मन में विविध प्रकार के प्रश्न करने लगी। कृष्ण ने पुन अपना बालरूप दिखाया। यशोदा के मन में 'पुत्र-प्रेम' उमड पडा। उसने कृष्ण को अंक में भर लिया और सब सुधि भूल गई। यशोदा उपर्युक्त सारी घटना को स्वप्न समझ कर हृदय में प्रसन्न हुई।[1]

'दधि मथान' करते समय समस्त व्रजनारियाँ कृष्ण का गुण-गान करती है और उपालम्भ के 'मिस' उन्हे देखने आती है। सभी ने 'भोजन और भवन' छोड दिया है। उनके 'तन, मन और नयनों में' मोहन ही छा गया है।[2] इसके अनन्तर कवि ने कृष्ण की शोभा का

---

[1] अबही लाल मृत्तिका खाई। ग्वाल बाल जसुदाहि सुनाई॥
जसुमति गही लाल की बाहो। पुछे महरि लाल कहै नाही॥
लागी अधर सो कर पर हेली। सपा कहै मुप मे है ढेली॥
जसुमति कही उगिलु धो माटी। डारै हाथ दाहिनी साटी॥
असुअन्ह भरि द्रिग बदनल दवावै। मुप बोले नहि सीस डोलावै॥
रूप सो मोपै कहो न जाता। वारौ सरस सरद जल जाता॥
लाल कहै जननी सुनु बैना। मैया माटी पाई मै ना॥
ऊहा करत बोलत तुतुराना। कहा कहौ जेहि का डेराता॥
नहि माटी मेरे मुप माही। जे लावत ते जानत नाही॥
माटी सो जसुमति डेरवावै। विहसि लाल नव वदन देपावै॥
देषे सात समुद्र गिरवर बन। तीन लोक देपी डरपी मन॥
मुप भीतर आपुन औ लाला। निरषत महरि न रहौ हवाला॥
कहै नाथ देषति हौ सपनौ। माया किधौ मोह है अपनौ॥
+ + +
लाल विहसि पुनि वदन देपावो। फिरि सुत प्रेम महरि मन धावो॥
लियौ अंक भरि सुध सब भूली। सपनो समुझि महरि उर फूली॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० २०।

[2] दधि मथान करत गुन गावैं। दिज बोरहन मिसि देषन आवैं।
घरिक पौरि पेलत राग डोलै। छाडे धाम धाजे जइ बोलै।
भोजन भवन सबन बिसरावो। तन मन नयनन मोहन छावो॥

वही पृ० २१

बहुत ही मनोहारी वर्णन किया है। यमलार्जुन निपात के बाद मणिग्रीव और नलकूबर के दिव्य देह प्राप्त करके कृष्ण भगवान् की स्तुति करने के प्रसंग में कवि ने कृष्ण के 'ब्रह्म' का अवतार होने की ओर संकेत किया है।[1]

कृष्ण सुबल और सुदामा के साथ खेलते है और बिना दाँव दिये जब घर जाने लगते है तो सखा उन्हें उपालम्भ देते हुए कहते है कि वे अब कृष्ण को अपने साथ नही खिलाएँगे। वे लोग कृष्ण को गाय-विप्र की दुहाई करने (सौगन्ध खाने) पर ही जाने की अनुमति देने को तैयार है।[2] तब कृष्ण सरल स्वभाव से उत्तर देते हैं कि 'यदि हम तुम्हारा दाँव नहीं देंगे तो तुम्हारे साथ खेलने कैसे आएँगे।'[3] इसप्रकार कृष्ण के गोपाल रूप की इन लीलाओं में लालदास ने कृष्ण के मानवीय रूप का प्रस्फुटन बडी विशदता से किया है। कृष्ण का सखाओं के साथ खेलने जाना, उनके साथ बैठकर वन में भोजन करना, सखाओं द्वारा खिझाए जाने पर भी उन्ही के साथ खेलने की उत्सुकता, वन में सखाओं द्वारा श्रीकृष्ण का शृंगार करने तथा वन-विहार आदि के विविध प्रसंगों के द्वारा कवि ने कृष्ण के सरल और स्वाभाविक चित्र अंकित किये है।

जिस प्रकार कृष्ण की शैशव काल की रूप माधुरी पर गोपियाँ मोहित थी उसी प्रकार गोचारण से लौटते हुए कृष्ण की रूप-छवि का पान करने के लिए व्रजवनिताएँ लालायित रहती थी।[4] वेणुवादन करते हुए कृष्ण जब सायंकाल घर आते तो गोपियाँ आत्मविभोर होकर तन की सुधि बिसार देतीं। वे कृष्ण को पाकर उसी प्रकार संतुष्ट हो जाती जैसे तड़पती हुई मछली जल को पाकर प्राणवान हो उठती है।[5] इस प्रकार गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम उस अनन्य भाव को पहुँच जाता है जब वे कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए उद्विग्न हो उठती है। उनमें कृष्ण के दर्शन मात्र से ही 'मनसिज ताप' बढ़ने लगता है। वे कृष्ण-प्रेम का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए 'लोक लाज' और मर्यादा के बन्धन तोड़ने का भी साहस करती है।[6]

---

१ कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० २०।

२ सुबल कह्यो सुनु मोहन भैया। मेरो दाउ नही तुम दीया॥
जो बिन दाउ दिये घर जैहौ। भैया साथ न खेलन पैहौ॥
गाइ विप्र की करौ दुहाई। तो हम मोहन तुम्हे पठाई॥

—वही, पृ० २२।

3 जो नहि दाउ तिहारो देहै। तो कैसे संग खेलन ऐहै॥

—वही, पृ० २३।

४ व्रज बनिता तन सुधि बिसराये। हेरहि नयन मन हरि मग लाये।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३२।

५ वेनु अधर धरि जब हरि गावहिं। सब सुनि सुनि तन सुधि बिसरावहि।
+ + +
सुन्दर स्याम सांझ घर आवहि। तलफत मीन-नीर जनु पावहि॥

— वही, पृ० ३२।

६ कामिनि निरखि किसोर कन्हाई। तन मन मनसिज ताप बढ़ाई।
येक ध्यान धरि अंक लगावहि। यक लाज तजि देषन धावहि॥

—वही पृ० ३२

लक्षदास के कृष्ण चरित वर्णन में एक उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होंने अष्टछाप के कवियो की भाँति बालक कृष्ण से सम्बन्धित अनेक आनुषगिक प्रसगो—कनछेदन, अन्नप्राशन, नामकरण, पनघट प्रस्ताव आदि—को अपनी कथा का प्रतिपाद्य नही बनाया क्योंकि उन्होंने अपने आराध्य कृष्ण और रसिकेश्वरी राधा की 'निकुज लीला' की भूमिका के लिये ही कृष्ण राधा की कथा का विकास किया है।

लक्षदास ने रासलीला प्रकरण मे गोपियो के लौकिक प्रेम (परकीया भाव) का तिरस्कार कृष्ण के द्वारा कराया है। कृष्ण के प्रति प्रेम का वास्तविक स्वरूप निर्देशित करने के लिए गोपियाँ सासारिक नातो को बादल की छाँह के सदृश बताती है। कृष्ण से तो उनका सनातन नाता (आत्मा-परमात्मा रूप मे) है। उनके नेत्रों मे तो सुन्दर नन्दकिशोर समाया हुआ है।[1] इसके अनन्तर कवि ने रासलीला का वर्णन किया है तथा राधा-कृष्ण की शोभा तथा रास का सुन्दर रूपक खींचा है जिसे देखकर 'मदन विलास' भी मोहित हो गया।[2] कृष्ण के सान्निध्य से गोपियाँ रासलीला मे परम शांति एव सुख अनुभव करती है। वे कृष्ण को अपना सर्वस्व मानकर उनके साथ हास-विलास की विविध क्रीडाएँ करती है किन्तु कृष्ण गोपियो को कभी यह अनुभव नही होने देते कि उनके (गोपियो के) वश मे हैं। गोपियो के प्रेम की परीक्षा और प्रिया का मान मर्दन करने के लिए कृष्ण अन्तर्धान हो जाते है।[3] गोपियाँ कृष्ण की विविध क्रीडाओ एवं लीलाओं की स्मृति करती हुई उनका अनुकरण करती है और यमुना तट पर जाती है। कृष्ण वही प्रकट होकर गोपियो को उपदेश देते है और पुन: रास प्रारम्भ हो जाता है। कृष्ण 'एकोऽहं बहुस्याम्' के रूप मे रास करते है।[4] इस प्रकार लक्षदास ने रासबिहारी कृष्ण को 'मर्यादा धर्म का प्रतिपालक' प्रतिपादित किया है।

जिस समय अक्रूर कृष्ण-बलराम को धनुष यज्ञ के लिए निमत्रित करने जाते है, तब कृष्ण प्रेमपूर्वक अपने हाथो से उनके 'पाँय' पखारते है और भली प्रकार उनका आतिथ्य सत्कार करते है। ब्रह्मरूप कृष्ण सर्वज्ञ है। वे अक्रूर से कुशल मगल पूछते है और अक्रूर के वृन्दावन आने का कारण भी स्वय ही बता देते है।[5] कृष्ण-बलराम ने सेवको को बुलाकर दूध, दही

---

[1] देह गेह पति पुत्र सो नेह न कहिये नाह।
तुम सात्रे वैं देपियतु बादर कैसी छाह॥
+ + +
हिय फाटहु तिन तियन के पति जिनके हित और।
लछदास अंपियन बसो सुन्दर नन्दकिसोर॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३९।

[2] ब्रज बनिता बनि मडली दमनि बिहरनि रास।
ससि सरोज घन दामिनी मोही मदन बिलास॥ —वही, पृ० ४०।

[3] जानि मानिनी हरि छरे देषन को अनुराग॥

वही पृ० ४०

[4] राजत प्रति गोपी गोपाला कनक नील मनि बिच बिच माला

और घी की गाडी भरकर मथुरा चलने का तयारा करने को कहा।[1] थोडी ही देर में सारे ब्रज मे कृष्ण के मथुरा जाने की खबर फैल गई। ब्रजवासी व्याकुल हो गये। उन्हे अपनी देह की सुधि न रही। वे रुदन करते हुए छाती पीटने लगे। सब सीस धुन कर लम्बी 'उसास' लेने लगे और परस्पर कहने लगे कि अक्रूर के पैरो पडकर उसे समझाओ। इस प्रकार समस्त ब्रजवासी कृष्ण को मथुरा न भेजने देने के बारे मे विविध प्रकार के तर्क-वितर्क करने लगे। कृष्ण के मथुरा जाने की बात सुनकर यशोदा,[2] गोपियाँ तथा गाये व्याकुल हो गई।[3] कवि ने इन ब्रजवासियो के दुख का वर्णन करने में असमर्थता प्रकट की है। (उसके शब्दो मे) इस विरह का वर्णन तो वही कवि कर सकता है जिसका कुलिश (वज्र) का सा हृदय हो।[4] वस्तुत लक्षदास जी निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे अत. उन्होने सयोग की लीलाओ के वर्णन मे तो अत्यधिक रुचि प्रदर्शित की है किन्तु विप्रलम्भ के वर्णन करने मे असमर्थता प्रकट की है, फिर भी उन्होने कुछ न कुछ विरह-वर्णन किया ही है।

सुफल्कसुत ने रथ हाँका। दोनो भाइयो ने ब्रजवासियो से (कुशल मंगल की) बात पूछी और ब्रज की ओर देखकर मुसकराये। कृष्ण ने ब्रजवासियो को 'अवधि की आशा' देकर जीने के लिये छोड दिया।[5] मथुरा जाते समय मार्ग में अक्रूर के हृदय मे उत्पन्न हुए संशय को समाप्त करने के लिए कृष्ण ने दर्शन देकर उन्हे (अक्रूर को) अपनी माया से परिचित कराया। इस प्रकार कवि ने कृष्ण का गौरवान्वित रूप प्रदर्शित किया है। मथुरा प्रवेश के समय कृष्ण द्वारा रजक का उद्धार तथा पुरवासियो का हरि आगमन की बात सुनकर उन्हे देखने आना उनके महिमामय रूप के द्योतक है। कृष्ण बलराम की रूप-छवि पर ब्रज की नारियाँ मुग्ध हो गई। वे कच कुच और वचन' भी नही सँभाल पाती है।[6] कृष्ण के द्वारा कुब्जी को त्रिभुवन सुन्दरी नारी का रूप प्रदान करना, माली के घर कृष्ण का आतिथ्य तथा नर-नारियो का आकर कृष्ण-चरण की वंदना करना आदि प्रसगो के द्वारा कवि ने कृष्ण के महत्व

आये अतिथि उचित है जैसो। राम कृस्न कीन्हौ सब तैसो ॥
+ + +
तबहीं कुशल अंकुरहि बूझे। बालक से जेहि त्रिभुवन सूझे ॥
+ + +
तुम हमही को देपन आये। बहुत मया करि ममा पठाये ॥ —वही, पृ० ४६।

1 चितै परस्पर दोनो भाइ। कहौ सेवक सौ फेर दोहाइ ॥
सब भरि भाजन दूध जमावहु। दूध दही घृत गाडी भरावहु ॥ —वही, पृ० ४६।

2 जसुमति दशा कहौ केहि भाती। तलफत सोचत बीती राती ॥
कहै नन्द सौ हम तुम जाइ। मेरे प्रान अधार कन्हाइ ॥ —वही, पृ० ४६।

3 येक कहै मोहन क्यों जैहै। कैसे कुज केलि बिसरैहे ॥
सुनत पडी राभै सब गैया। जे पाली है कुवर कन्हैया ॥
—वही, पृ० ४७।

4 जो कवि करी कुलिशको हिया। ब्रज को विरह सो वरने भिया ॥ —वही पृ० ४७

5 हाक्यो रथ सुफलक सुत जाइ। पूछत बात चले दोउ भाइ ॥
ब्रज तन फिरि चितवत मुसक्याइ। अवध आस जे चले जियाइ ॥ —वही, पृ० ४७।

6 लखै जो मोहन मूरति मार। रहै न कच कुच वचन सम्भार ॥
ग्वाल मडली सग दाउ भाइ बन गोर सावर कन्हाइ —वही पृ० ४८

एवं उनकी गरिमा का निदर्शन किया है।[1] मुष्टिक चाणूर और कंस वध के बाद देवकी-वसुदेव की बेडियाँ काटने, राजा उग्रसेन को बंधन मुक्त करके राज्य देने तथा रुदन करती हुई कंस की रानियों को सान्त्वना देने आदि घटनाओं मे कृष्ण का महिमामय व्यक्तित्व और भी निखरता हुआ दिखाई देता है।

मथुरा मे आकर कृष्ण बहुत कठोर हो गए। उन्होने नन्द को बहुत भेट दी और कहा—'तुमने मेरी बहुत सेवा की। माता यशोदा से मेरी पालागन कहना। वे मेरे प्रति पुत्रवत् स्नेह रखते हुए मुझमे रहे। तुम और यशोदा ही मेरी सच्चे पिता-माता हो, वसुदेव-देवकी से तो जन्म का ही नाता है।'[2] कृष्ण ने ग्वाल बालो को भी विदा किया। ग्वालो ने कृष्ण से व्रजभूमि लौटने के लिये बहुत चिरौरी की किन्तु सब व्यर्थ। उन्होने कृष्ण के ममत्व को जागृत करने वाले समस्त प्रसगो की याद दिलाई किन्तु माखन से कोमल मन वाले कृष्ण मथुरा आते ही कठोर हो गये।[3] इस बात से ग्वालो को बहुत दुख हुआ। अन्तत कृष्ण मथुरा में ही रह गये और लौटकर वृन्दावन नही गये।

वृन्दावन की सुधि आने पर कृष्ण ने उद्धव को अपने ही पट और आभूषण पहनाकर वृन्दावन भेजा।[4] उद्धव ने वृन्दावन जाकर गोपियो, ग्वालों और नन्द-यशोदा की दशा को देखा और समझा। वे लौटकर कृष्ण के पास आये। उन्होने व्रजवासियो के आंतरिक दु.ख का बडे ही मार्मिक शब्दो मे वर्णन किया जिसे सुनकर कृष्ण 'मगन' हो गये। वे गोपियो के साथ की गई 'कुंज-केलि' को स्मरण करके बहुत ही व्याकुल हुए। इस समय कृष्ण ने द्वारका की अपेक्षा व्रज के जीवन को श्रेयस्कर समझा। कृष्ण व्रजवासियो की याद करके दुखी हुए और उन्होने उद्धव से राधा के प्रेम के बारे मे भी पूछा।[5] इसी प्रसग मे 'भ्रमर गीत' लिखकर

---

[1] वही, पृ० ४८।

[2] भैंटें बहुत नन्द कहं दीन्ही। कह्यो बहुत सेवा तुम कीन्ही ॥
पालागन जसुमति सो कहिवो। तात नात समुझत सुध रहिवो ॥
तुम जसुमति साचे पितु मातु। वसुदेव देवै जन्महि को नातु ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५०

[3] ग्वाल मडली पुनि चलि आइ। कहै घरहि चलु कुवर कन्हाइ ॥
राभती ह्वैहै तेरी गैया। छाडो भवन जसोमति मैया ॥
मग मे ठाढी ह्वैहै ऐसे। चलत कान्ह तुम छाडी जैसे ॥
गैया फेरन हम न पठये है। वन मे पेलत ना डरपैहै ॥
कहा जाइ करिहै व्रज भैया। तुव आगे चलु कुवर कन्हैया ॥
कोमल भाषण से मन तोर। मथुरहि आवत भये कठोर ॥ —वही, पृ० ५०।

[4] हरि ऊधो का व्रजहि पठाये। निज पट सब भूषन पहिराये ॥
—वही, पृ० ५०।

[5] सुनि स्याम मगन ह्वै गये। सुधि करत विकल अति भये ॥
स्वै केलि कुज सुधि आई। जहं गोपिन सग वनाई ॥
+ + +
हमै यह संपदा न भावै। ऊधौ जब व्रज की सुधि आवै ॥
+ + +
तुम देखी राधावर गोरी। कैसे जियत प्रीति नहि थोरी ॥
—वही पृ० ५४

कवि ने कृष्ण के प्रति व्रजवासियों के प्रेम और उनकी महत्ता का मुक्त हृदय से वर्णन किया है।[1]

कालयवन वध के उपरांत कृष्ण द्वारका चले गये। कवि ने द्वारकावासी कृष्ण के वैभव का वर्णन किया है और 'रुक्मिणी चरित्र' की कथा को भी विस्तार से कहा है जिसमें भगवान कृष्ण के भक्तवत्सल रूप, दाम्पत्य प्रेम एवं विहार का विशद वर्णन है।[2] इसके अतिरिक्त सुदामा के दारिद्र्य भजन की कथा, द्रौपदी चरित्र, चन्द्रहास प्रसंग, हसध्वज कीर्तन तथा मयूरध्वज की कथा के वर्णनों में भी कवि ने कृष्ण के भक्तवत्सल रूप का वर्णन किया है किन्तु उनमें वह रस नहीं आ सका है जो व्रज की लीलाओं के वर्णन में है क्योंकि यहाँ पर वर्णित महिमामण्डित कृष्ण गोप के रूप में गाय चराने वाले बालक नहीं है अपितु कुशल राजनीतिज्ञ एव महान् व्यक्ति के रूप में चित्रित किये गये है। इन प्रसगों में कवि ने विभिन्न स्थानों पर कृष्ण के ब्रह्मरूप की ओर भी संकेत किया है।

प्रभास क्षेत्र (कुरुक्षेत्र) में नन्द, यशोदा, राधा तथा अन्य व्रजवासियों की कृष्ण से भेंट होती है। सभी लोग कृष्ण के प्रति प्रेम भाव प्रकट करते हैं और उन्हें व्रजवास के सुख को स्मरण कराते हुए पुनः व्रज चलने को कहते है। कवि ने राधा-कृष्ण के पुनर्मिलन[3] और दम्पति केलि-विलास में कृष्ण के मधुर रूप को पुनः व्यक्त किया है।[4]

इस प्रकार कवि ने अपनी रचनाओं में अगम अगोचर ब्रह्म के कृष्ण रूप में लीला वपु धारण करने की कथा के आधार पर कृष्ण के चरित्र का विकास किया है। लोकरजक रूप में कृष्ण जहाँ व्रजवासियों के सर्वस्व है वहीं वे व्रजवासियों पर आई हुई आपत्ति के निवारण हेतु राक्षसों का सहार और भक्तों की रक्षा करते हुए दिखाये गये है। कवि ने कृष्ण के इस मर्यादा

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १११-११२।
[2] वही, पृ० ५४ से ६४ तक।
[3] ....छिपि नन्दलाल मिलन तहँ आये ॥
जहँ राधा ललिता सब सखी। कृस्न कुवर हग कोरन लखी ॥
विहसत कान्ह रसिक तह आये। लखि भये दम्पति मन भाये ॥
तन मन नयन मिलन की घाते। हसि हसि करै पाछिली बाते ॥
स्याम गौर सुन्दर सिर मोरा। लखि ओऊ ससि दुवो चकोरा ॥
+ + +
...........................रुकुमिनि कहे भये मन भाये ॥
हमहुँ श्री राधा देपरावौ। जिनके मिलन इतो रसु पावौ ॥
कबहुक वै उनके घर आवै। कबहुक वै उन्है मिलन सिधावै ॥
—वही, पृ० ८१।
[4] मदन गोपाल आइगे तहाँ। विकल कुवर श्री राधा जहाँ ॥
पोछि पीत पट कृस्न उठाई। अधर सुधा दै कुवर जी पाई ॥
हिलिमिलि बैठे जुगलकिशोर। थकित रुकमिनी नयन चकोर ॥
राधा मैं हरि हरि मै राधा। जुग जुग जुगल मिलन नहि बाधा ॥
हरि लीला गोपीगन गावै। हसित सनेह देह बिसरावै
—वही पृ० ८२२।

रूप को इस प्रकार ग्रहण किया है कि वह उनके लीला रूप का किसी भी प्रकार विरूप नही करता प्रत्युत उसमे सहायक ही होता है। व्रजवासियो—नन्द, यशोदा और ग्वाल आदि—को कृष्ण की 'असुर सहारन और भक्त उधारन' लीलाएँ सामान्य बाल चेष्टाएँ लगती हैं। वे देव-कृपा से इन सकटो के टलने की कल्पना करते हुए दिखाये गये है किन्तु उलूखल बन्धन, यमलार्जुन उद्धार, ब्रह्मा द्वारा बाल वत्स हरण, गोवर्द्धन धारण, द्रौपदी चरित्र, प्रह्लाद चरित्र, हंसध्वज तथा मयूरध्वज आदि की कथाओ मे कृष्ण के ब्रह्मत्व के प्रति स्पष्ट संकेत किये गये है। इसप्रकार कृष्ण चरित के चित्रण मे कवि ने निरंतर सुखद व्यामोह के काव्यमय वातावरण को बनाये रखने की सफल चेष्टा की है।

बलराम

लक्षदास के काव्य मे बलराम की बाललीलाओं का वर्णन भी कृष्ण की बाललीलाओ (वृन्दावन लीलाओ) के साथ ही किया गया है। कवि की रचनाओं मे रुक्मिणी चरित्र वर्णन तथा प्रभास क्षेत्र प्रसंग मे भी बलराम के विषय मे सकेत किया गया है किन्तु अन्य कथाओ मे उनका कोई उल्लेख नही मिलता। कृष्ण की मधुर लीलाओ, सुदामा चरित्र तथा महाभारत के आधार पर ग्रहण किये गये अन्य प्रसगों (कथाओं) मे भी बलराम के विषय मे कोई सकेत नही किया गया। इससे स्पष्ट है कि कवि ने कृष्ण-कथा से सम्बद्ध रखते हुए भी बलराम के चरित्र-विकास मे विशेष अभिरुचि नही ली है। बलराम का स्वरूप तथा चरित्र-विकास कृष्ण के अलौकिक रूप का प्रतिपादन करने तथा उनकी बाल-लीलाओं को गरिमामय बनाने मे सहायक हुआ है।

कथाक्रम मे लक्षदास ने संकर्षण को देवकी का सातवाँ पुत्र बताया है और माया के प्रभाव से उनको रोहिणी के गर्भ मे भेजने का भी संकेत किया है।[1] इसके बाद शिशु बलराम का कोई वर्णन नही मिलता किन्तु कृष्ण की बाललीलाओ के प्रसग मे बलराम की क्रीडाओ का वर्णन मिलता है।

जब कृष्ण भोजन करते है तभी माता यशोदा से अनुरागपूर्वक बाते भी करते है। (तभी) हँसते हुए संकर्षण आये। इधर हरि भोजन करना छोडकर भाग आये। लक्षदास ने राम कृष्ण के आंगन मे खेलने का वर्णन किया है। वे दोनो बछडों की पूँछ पकडकर आनन्द में भरे हुए इधर-ऊधर दौडते हैं। माता यशोदा उनके पीछे भागती फिरती है।[2]

---

[1] सतये संकरषन उर आये। माया रोहिनी गर्भ पठाये।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १३।

[2] भोजन करन लाल जब लागे। जननी सो बतिया अनुरागे।।
हँसत हँसत सकर्षन आये। इत हरि भोजन तजि उठि धाये।।

+ + +

बछरन की पूछें कर धरै। धावत इत उत आनद भरै।।
कहूँ गिरत कहूँ उठत संभारत। करते बछरा पछि न टारत
कहूँ राम कहूँ कुंवर कन्हाई धावत फिरत जसोमति माई वही पृ० १८

हरि और बलराम बछड़ो के साथ-साथ इस प्रकार खेलते हैं मानो 'अमित मित उदधि' से 'रूप की तरंगे' उत्पन्न हो रही हो ।[1]

क्रीडामग्न कृष्ण और बलराम किसी की भी बात नही सुनते, माता रोहिणी के बार-बार बुलाने पर भी वे सखाओ का साथ छोड कर नही आते, न उनके पुकारने पर किसी भी प्रकार का उत्तर ही देते है ।[2]

लक्षदास जी ने बलराम और कृष्ण की क्रीडाओ के वर्णन करने मे आगे चलकर एक अतर कर दिया । बलराम बड़े भाई तथा सखाओ में ज्येष्ठ होने के कारण सबसे अधिक जिम्मेदार ठहराये गये । कृष्ण तथा अन्य सखाओ की बात पर यशोदा विश्वास नही करती लेकिन जिस बात को बलदाऊ कहते हैं यशोदा उसे मान लेती है ।[3] इस प्रकार कवि ने कृष्ण तथा बलराम को बाललीलाओं तथा गोचारण लीलाओं मे सहचर बताया है । वन मे अनेक राक्षसो का संहार करते समय बलराम कृष्ण के सहयोगी हैं । वत्सासुर और धेनुक वध तो स्वयं बलराम ने ही किया था ।

बलराम आज्ञाकारी, मिष्ठभाषी, सरल, अभ्यागत के स्वागत मे निपुण तथा अत्यन्त व्यवहारकुशल है । जब कस के निर्देशन पर अक्रूर बलराम और कृष्ण को 'लेवने मिस' बुलाने आते है तब कृष्ण तो उन्हे हृदय मे लगा लेते है फिर बलराम उनसे कुशल पूछते हैं और बाँह पकड़कर अपने 'मन्दिर' मे ले जाते है । वे लोग सुफलकसुत को पलका पर बिठाते है । नाथ (कृष्ण) अपने हाथ मे अक्रूर के पैर पखारते हैं । दोनो भाई 'प्रेम मे मगन' होकर परस्पर झगड़ते है । लक्षदास, प्रभु की प्रभुता का वर्णन करना कठिन है ।[4]

राम और कृष्ण ब्रजवासियों को अत्यधिक प्रिय है । वे उनके 'बिछोह' की कल्पना मात्र मे ही शकित हो उठते हैं । वे उन दोनों को किसी भी दशा मे मथुरा भेजने को राजी नही है । उनकी इच्छा है कि 'राम-कृष्ण ब्रज मे विहार करते हुए ही कस वध करे । यदि

---

[1] येहि बिधि बछरन साथ मिलि खेलत हरि बल सग ।
मनहुं अमित मित उदधि ते उपजत रूप तरंग ।।
—कृष्णरुक्मसागर (हस्तलिखित) पृ० १९ ।

[2] जाहि रोहिनी लालु बोलाये । सखन सहित राते नहि आये ।
बहु विधि तनय बोलाये दोउ क्रीडा सहित न बोलहि कोउ ।।
वही, पृ० २२ ।

[3] नही द्रुम चढ़ न जमुन नहाई । जब ते तै मोहि सौह देवाई ।
तजि सग दूरि जात नहि काऊ । बूझौ श्रीदामा सुबल बलदाऊ ।। —वही, पृ० २६ ।

[4] सुन्दर बर गहि भुजा उठाइ । कान्ह अक्रूर लियो उर लाइ ।
+ + +
पूछि कुसल बलि लियो बाह । ले आये निज मन्दिर माह ।
सुफलकसुतहि पलका बैठारे । नाथ हाथ निज पाइ पखारे ।।
झगरत पाइ पखारत प्रेम मगन दोउ भाइ ।
प्रभु प्रभुता बरनि न जाइ
—वही पृ० ४६

राम और कृष्ण का मथुरा जाना न टल सके तो वे (ब्रजवासी) सभी मिलकर ब्रजपति से इस बात को कहें और वहीं पर (मथुरा में) रहें।'[1]

प्रातःकाल होते ही सारे ब्रज में राम-कृष्ण के मथुरा जाने की सूचना फैल गई। 'जाते हुए बलराम और कृष्ण को ब्रजनारियों ने अपने द्वार पर खड़े होकर देखा। वे पत्थर में लिखित पुतली की भाँति देखती रह गईं। वे 'हरि हरि' कहती हुई प्रकम्पित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। तभी राम और कृष्ण ने माता यशोदा को प्रणाम किया और रथ में बैठ गये।'[2]

राम और कृष्ण के मथुरा में पहुँचने पर नगर की नारियाँ उनकी रूप-छवि को निरखती हैं और 'काम को भी मोहित करने वाले मोहन की छवि को देखकर अपने कच, कुच और वचन को सँभालने में असमर्थ हो जाती हैं। दोनों भाई ग्वाल-मण्डली के साथ शोभायमान हैं जिनमें बलराम गौर वर्ण के और कन्हाई श्याम वर्ण के हैं।'[3]

रंगभूमि में बलराम और कृष्ण के वीर दर्प को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने तदनुकूल वातावरण उपस्थित किया है। 'रंगभूमि में बहुत से मंच बने हुए हैं जिनमें से एक मंच पर ब्रज जन को बिठाया गया है। इसी समय राम और कृष्ण दोनों भाइयों को बुलाया गया। सखाओं को साथ लेकर वे दोनों नृप के द्वार पर आये। इसी समय महावत ने कुबलयापीड को ललकारा और राम-कृष्ण से अनेक प्रकार की बातें कहीं। गोपाल ने कटि में पीत पट कस लिया। उनके सिर पर पगिया और उर पर वनमाला सुशोभित थी। उन दोनों वीरों ने क्षण भर तो कुबलयापीड को खिलाया फिर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया और उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये। उनके शरीर में कहीं-कहीं श्रोणित कण शोभित हो रहे थे, ऐसा प्रतीत होता था मानो हरि ने दो वीर रूप धारण किये हैं।'[4]

---

[1] येक कहे ब्रजपति सो कहिये। मथुरा जाइ सबनि मिलि रहिये ॥
राम कृष्ण ब्रज करहि बिहारा। करौ कंस बध अजु हमारा ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४६

[2] द्वार द्वार सब देषहि ठाढी। पाहन कढी पुतरी सी काढी ॥
हरि हरि कहै हहरै थरथरै। व्याकुल विरह भूमि पसि परे ॥
जसुमति मैया को सिर नाइ। राम कृष्न बैठे रथ जाइ ॥ —वही, पृ० ४७।

[3] लखै जो मोहन मूरति मार। रहे न कच कुच बचन सभार ॥
ग्वाल मण्डली सँग दोउ भाइ। बल गोरे सांवरे कन्हाइ ॥ —वही, पृ० ४८।

[4] रंगभूमि बहु मंच सवारे। ब्रज जन एक मंच बैठारे ॥
× × ×
रामकृस्न दोउ भाइ बोलाये। सहित सषन नृप द्वारे आये ॥
× × ×
पीलवान हाथी ललकारौ। धावौ गज पहार सो भारौ ॥
कस्यो पीत पट कटि गोपाला। बाधि पाग सिर उर बनमाला ॥
छिनक कुवलयापीड पेलाये। हाथ कुंजर के हाँर लाये ॥
धरि हाथी को धरनि से डार्यो। दोउ वीर लिये दंत उपार्यो ॥
कहु कहु सोनित कन तन सोहै। वीर रूप कै हरि जनु दो है ॥
वही पृ० ४८-४९

जब राम और कृष्ण रंगभूमि मे पहुँचे तब मल्लो ने कृष्ण को सुनाकर कहा कि राजा ने तुम्हारी कीर्ति सुनी है। राजाज्ञा है कि राम और मुष्टिक तथा कृष्ण और चाण्डूल का मल्लयुद्ध होगा। इस पर उन्होंने (राम-कृष्ण) उत्तर दिया कि राजा को अपने समीप जानकर बडी बाते न कहो और हमारे लिए हम जैसे बालको को ही लाओ। अंत में संकर्षण और मुष्टिक का मल्लयुद्ध हुआ जिसमे संकर्षण ने हठ करके मुष्टिक को मार डाला। इस प्रकार युद्धरत दोनो भाइयो ने रंगभूमि मे मल्लों का संहार किया, लक्षदास उनकी शरण है। सबने अपनी भावना के अनुरूप ही उनको (राम और कृष्ण) देखा।'[1]

लक्षदास ने 'रुक्मिणी चरित्र' के प्रसंग मे बलराम को कृष्ण की सहायता करते हुए दिखाया है। जब कृष्ण ब्राह्मण के साथ कुंदनपुर पहुँचते है तभी बलराम ससैन्य वहाँ पर पहुँच कर कृष्ण की सहायता करते है।[2]

'कुरुक्षेत्र मे कृष्ण, व्रजवासी समागम के प्रसंग' में कवि ने बलराम और कृष्ण को अलौकिक पुरुष कहकर उनके ब्रह्मत्व की ओर संकेत किया है। उनके इस भेद को वेद भी नही जानते।[3] फिर भी राम और कृष्ण समस्त व्रजवासियों---यशोदा, गोपी, ग्वाल, देवकी, वसुदेव आदि---से (लौकिक पुरुषों की भाँति) बड़े प्रेम से मिले और उन्हें हृदय से लगा लिया।[4]

इसप्रकार लक्षदास जी ने कृष्ण चरित्र के पूर्ण विकास के लिए बलराम जी को भी अपना इष्टदेव माना है। वे भी भव-भार उतारने के लिये कृष्ण के साथ ही पृथ्वी पर अवतरित हुए और उन्होने असुर-वध करने मे कृष्ण को सहयोग दिया।

नंद

असुरो के द्वारा पृथ्वी पर किये गये अत्याचारो की बाते सुनकर विरंचि द्रवीभूत हुए और पृथ्वी तथा अन्य देवताओं को साथ लेकर वे भगवान् विष्णु के पास गये। भगवान् ने

---

[1] मल्लन्ह कान्हहि कहा पचारी। राजा कीरति सुनी तुम्हारी।।
मुष्टिक राम कान्ह चाण्डूल। भिरिये भूपति आजु हजूर।
भूप निकट जनि पाप बखानहु। हमको हमसे बालक आनहु।।
× × ×
संकरषन मुष्टिक हठिमारो।' '' ''.......
लछदास सरन मल दली रंगभूमि द्वौ भाइ।
जाकी जैसी भावना सो तम देषे आइ।।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४९।

[2] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५७-५८

[3] श्री हरि संकर्षण वसुदेवा। वेद न जानत जिनके भेवा।।

—वही, पृ० ८०।

[4] श्री जसुमति गोपिका समाजु। गोप ग्वालन संग व्रजराजु।।
देपन देवै वसुदेव सिधाये। हिलिमिलि प्रेम सहित उर लाये।।
मिले कृस्न हलधर दोउ भाइ। सो सुप दसा बरनि नहि जाइ।।

वही पृ० ८१

सभी देवताओं को पृथ्वी पर जन्म धारण करने का आदेश दिया और स्वयं पृथ्वी का भार उतारने की कामना प्रकट की। उन्होंने माया को नंद की रानी यशोदा के गर्भ से जन्म धारण करने की आज्ञा दी। कवि ने नंद के वैभव और उनके घर कृष्ण के पालित होने की पृष्ठभूमि का संकेत यहीं पर दिया है। लक्षदास जी ने नंद को सम्पन्न और सम्भ्रान्त 'महर' बताते हुए घोषों का नायक कहा है। कवि ने नंद को व्रजवासी अहीरों की ओर से राज्यकरदाता तथा कंस की आज्ञाओं का पालन कराने वाले उत्तरदायी अधिकारी के रूप में चित्रित किया है।

भगवान् कृष्ण ने गोकुल में उत्पन्न हुई माया को लाने तथा स्वयं को गोकुल पहुँचाने के लिए, वसुदेव को आदेश दिया। वसुदेव कृष्ण को नंद भवन (गोकुल) पहुँचाकर बालिका को अपने साथ वापस लाये। कथानक की इस पृष्ठभूमि से नंद के वैभव और भगवान् के लीला विधान दोनों का एक साथ ही संकेतात्मक परिचय मिलता है।

कृष्ण-कथा के उत्तरोत्तर विकास से यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण के नंद-गृह में जन्म धारण करने पर जो प्रसन्नता यशोदा को हुई वैसी ही नंद को भी। कृष्ण के प्रकट होने के बाद में 'नंद-गृह में विशेष उत्सव होने लगे। नंद के आनंद की तो कोई सीमा ही नहीं रही, उनको अनिर्वचनीय सुख प्राप्त हुआ। व्रज में सर्वत्र सजावट की गई। साधु और विप्रों ने वेद मंत्रों का पाठ करके आशीर्वाद दिया। नंद ने उन्हें दो लाख गायें दान दीं। बन्दी, मागध और सूत गनों को उचित दान और पहरावा दिया गया। हर्षोन्मित नंद के पास जो भी गया उसे मनवांछित धन तथा वस्तुएँ प्राप्त हुई। इसप्रकार दासों की कोई अभिलाषा शेष न रही और, लक्षदास, सभी की इच्छाएँ पूरी हुई।'[१]

संतान न होने के दुःख में नंद-यशोदा का सारा जीवन बीत गया। बड़े भाग्य से वृद्धावस्था में पुत्र का मुख देखने को मिला किन्तु कंस की दुर्बुद्धि के कारण भी प्रत्येक क्षण वे भयभीत रहने लगे। वसुदेव ने भी नंद को कंस की कुमति तथा उत्पातों से सावधान रहने का संकेत किया। मथुरा से घर वापस आने पर उन्हें पूतना के 'कृत्य' का पता चला और 'विघ्न' के टल जाने की सूचना पाकर वे प्रसन्न हुए और बहुत प्रकार से दान देकर उन्होंने मंगल कार्य किये।[२] इस प्रकार अपने पुत्र कृष्ण की मंगलकामना और सुरक्षा के लिए

---

[१] मोतिन चौक हेम के कलशा। ध्वज पताक तोरन घर लगा॥
सुवरन शृंग रूप पुर जोरे। ताप पीठ वर बसन पटोरे॥
मनि मोतिन की माला ग्रीवा। देत नंद सुकृतिन्ह की सींवा॥
तरुनी बछरन सहित दुधारी। रहित कलंक सुसील सुधारी॥
साधु विप्र ते रहसन लेहीं। पढ़ि पढ़ि वेद आसिषा देहीं॥
गनि न जाहि ते अगनित गाही। सषा व्यास द्वै लाष सुनाहीं॥
बंदी मागध सूत जे आये। उचित दान दीन्हें पहिराये॥
+ + +
नंद महर सब कुल पहिरायो। मनवांछित धकरिनि धन पायो॥
रहीं दासन के आस न दूजी। इक्ष्या लछ सबन की पूजी॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १५।

[२] नंद सुनी अचरिज की बाता। परो विघन लोक गुर ताता॥
+ + +
हरिषि नंद दीन्हे बहु दाना मंगल कीन्हे हने निसाना —वही पृ० १७

नंद और यशोदा समान रूप से इच्छुक रहते है और विघ्न टल जाने पर हर्षोन्मित्त होकर दान करते है।

नंद अपने पुत्रों (राम और कृष्ण) के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार रखते है। वे अपने दोनो पुत्रो के साथ भोजन करते है। उन्हे उनकी लीलाएं बहुत पसंद है। वे राम और कृष्ण को अपना सर्वस्व मानते है।[1]

जब कृष्ण और बलराम बड़े हो जाते है तब वे वन मे गाय चराने जाना चाहते हैं। नंद जी कृष्ण को बुलाकर समझाते है कि उनकी तथा यशोदा की राय मे उन्हे अभी वन मे नही जाना चाहिए क्योंकि वन मे दूर जाने पर उन्हे डर लगेगा और बड़े हो जाने पर तो वे गाये चराने भी जा सकते हैं। इस पर दोनो भाइयो ने गौचारण के लिए वन मे जाने का हठ किया। तब नंद जी ने एक विप्र को वह शुभ दिवस बताने के लिए बुलाया जब से उन्हे वन मे गायें चराने के लिए जाने दिया जाय।[2]

जिस समय गोर्वधन पूजा के लिए नंद जी विविध प्रकार से तैयारी करते है तब कृष्ण इस सारे कृत्य का कारण जानना चाहते है। नंद जी बहुत ही सरल शब्दो मे समझाते हैं कि वे इन्द्र-यज्ञ कर रहे है। मेघ-मालाएं इन्द्र के वश मे है। इस पूजा से संतुष्ट होकर सुरपति जल वृष्टि करेंगे तब कानन के तृण और वृक्ष हरित हो उठेंगे जो हमारी गायो का खाद्य होगा। इस पर कृष्ण ने इन्द्र-यज्ञ का विरोध किया और गोवर्धन पूजा के कारणो पर (विस्तार से) प्रकाश डाला।[3] अंत में नंद जी ने कृष्ण की इस बात को मान लिया और समस्त ब्रजवासी विविध प्रकार के पकवान और व्यंजन लेकर मंगलगान करते हुए चले।

---

[1] ये सुनी नंद घोष की रीती। अनु अनन्य कान्ह सो प्रीती ॥
\+ \+ \+
कान्है व्रत कान्है उपवासा। मन मे कान्ह कान्ह की आसा ॥
येहि विधि कान्ह निरत सब भये। कर्म अकर्म भूलि सब गये ॥
—कृष्णरससागर, (हस्तलिखित), पृ० २३।

[2] बोलि नंद लीन्हे बनवारी। सुन है कहा कहति महतारी ॥
अबै जात बन दूर डरैहै। बड़े होतु पुनि गाइ चरैहै ॥
पुनि दोउ भाय कहन हठि लागे। गोधन चरावन को अनुरागे ॥
नंद वचन सुनि आयसु दीन्हो। बोलि विप्र दिन सोधन लीन्हो ॥
\+ \+ \+
नीकि घरी दिन कहहु गोसाइ।
—वही, पृ० २७।

[3] तात क्रिपा करि हमहि सुनेहो। करि यह क्रिपा कहा फलु पैहो ॥
इन्द्र जज्ञ कीजत है लाला। है जिनके वस मेघनि माला ॥
सुरपति जो निज पूजा पैहै। तौ घन घेरि नीर बरसैहै ॥
ताते तृन कानन हरि ऐहै। वृत्ति हमारी गाय सचु पैहै ॥
सुरपति मख सुनि मोहन मापे। होहि अनंनि वचन अस भाषे ॥
\+ × ×
पूजहु विप्र गाइ गोवर्धन मानहु तात हमारो या मन
वही पृ० ३३

इससे स्पष्ट है कि नदजी इतने ज्ञानवान और विवेकी हैं कि सत्य बात को जानकर उसका पालन स्वय करते हैं और अपने परिजनो से भी उसका अनुगमन कराते हैं।

नद बहुत ही विनय-सम्पन्न, अभ्यागत प्रेमी और सरल है। अक्रूर के आगमन की बात सुनकर नंद जी स्वय अक्रूर से मिलते है और आनदपूर्ण ढग से बाते करते हैं। अत मे वे अक्रूर को विनय-पूर्वक विदा करते है।[1]

अपने पुत्रो के प्रति नद का ममत्व उस समय अधिक स्पष्ट रूप मे दिखाई देता है जब वे अनेक अहीर, ग्वाल और गोपो को साथ लेकर मथुरा जाते है जिससे वे अपने बालको की कुशलता को अपने नेत्रो से देख सके। नगर परिभ्रमण तथा धनुर्भग करके कृष्ण नद जी के समीप आते है और उनकी गोद मे सो जाते है।[2]

कस वध के उपरान्त नद ने कृष्ण और बलराम से वापस चलने को कहा किन्तु कृष्ण ने नद को बहुत-सी भेटे दी और उनसे कहा—'तुमने मेरी बहुत सेवा की। यशोदा से मेरा पालागन कहना। तुम और यशोदा ही मेरे सच्चे पिता-माता हो, वसुदेव-देवकी से तो जन्म होने भर का ही नाता है।' इस बात से नंद को बहुत दु:ख हुआ। वे व्रज वापस लौट आये। कवि ने नद के हृदय की पीडा को शब्दो मे व्यक्त करने मे असमर्थता प्रकट की है।[3]

कृष्ण का संदेश लेकर जब उद्धव व्रज मे आये तो उनको नंद और यशोदा मिले। कवि ने कृष्ण को उनका 'धन और प्राण' कहा है। उन्हे कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ भी नही दिखाई देता। वे दोनो प्रेम मे भरकर कृष्ण की कुशलता का समाचार पूछते है[4] और कृष्ण की बाल लीलाओं के विविध प्रसगो को स्मरण करके उनके विरह मे दुखी होते है।

'कुरुक्षेत्र व्रजवासी कृष्ण समागम' प्रसग मे नद जी के बारे मे अन्तिम सकेत मिलता है जहाँ द्वारका और व्रज का समस्त समाज परस्पर मिलता है। नंद जी के साथ व्रजवासी और यशोदा के साथ गोपियों का समाज वसुदेव और देवकी से प्रेमपूर्वक मिलता है।[5] कुरुक्षेत्र के

---

[1] मीले नंद आनद भरी पुछही बात।
× + +
नद बीदा अकुर बीनौ करी कीन्ह ॥ —भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ९० ।

[2] हसत हंसत हरि आये तहा। सकटा रोपि नंद रहो जहाँ॥
कीन्हो ऊदन क्षीर बियारी। नंद गोद सोये बनवारी॥
—कृष्णरससागर, पृ० ४८ ।

[3] भैटैं बहुत नन्द कह दीन्ही। कह्यौ बहुत सेवा तुम कीन्ही॥
पालागन जसुमति सो कहिबो। तात नात समुझत सुख रहिबो॥
तुम जसुमति साचे पितु मातु। बसुदेव देवे जन्महि को नातु॥
+ + +
सोचत नदादिक व्रज आये। सो सो विरह जात नहि गाये॥
—वही, पृ० ५०।

[4] मिले नंद औ जसुमति मैया। जिनके है धन प्रान कन्हैया॥
भरी प्रेम कुशल दोउ बूझै। तजि मोहन और ना सूझै॥ —वही, पृ० ५०।

[5] नंदादिक आये व्रजवासी। जिन कीन्हे प्रेम बसि अभिनासी।
श्री जसुमति गोपिका समाजु। गोप ग्वालन संग व्रजराजु॥
देखत देवै बसुदेव सिधाये। हिलिमिलि प्रेम सहित उर लाये॥
वही पृ० ८१

इस प्रसंग में कवि ने गोप-ग्वाल, गोपिकाओं तथा यशोदा का जिस तन्मयता से चित्रित किया है उतनी तत्परता उसने नंद जी के लिए नहीं दिखाई। नंद जी का प्रकृत रूप अन्य पात्रों के भार से दब-सा गया है जिसके कारण कवि उसे स्पष्ट रूप से निखार नहीं सका।

यशोदा

यशोदा नंद की पत्नी और कृष्ण की माता है। उसका मातृत्व सरलता, शुचिता और स्नेहशील स्वभाव के क्रोड में परिपालित है। उसका वात्सल्य भारतीय रमणी की भावनाओं का जीता-जागता प्रतीक है। कृष्ण जन्म पर आनन्दोत्सव होता है। 'महराने' में आनंद बधाये बजते हैं वेद-ध्वनि को सुनकर व्रज की नारियाँ मंगल गान करती हैं। सर्वत्र सजावट की जाती है और उल्लास में भरे हुए गोपी-ग्वाल 'दधिकादौं' करते हैं। नंद और यशोदा बंदी जन तथा दास-दासियों को मुक्तहस्त से दान करते हैं।[1] कृष्ण जैसे पुत्र को पाकर माता आनंदातिरेक से नाच उठती है। वह अपने लाल के मुख को बार-बार चूमती है और नजर बचाने के लिए 'राई लौंन' उतारती है। वह स्वयं तुतलाकर कृष्ण को बातें करने को प्रेरित करती है। यशोदा का तन मन व्याकुल हो जाता है। उसका हृदय तथा प्राण 'उमगने' लगते हैं।[2] माता यशोदा प्रातःकाल सुत-वदन निहारती है। उस रूप-छवि पर कोटि कलानिधि और मंजु कंज की उपमाएँ वारी जा सकती हैं। कृष्ण की झपकती हुई पलकों तथा अल्प दसनों (दाँतों) को देखकर वह अपना अंचल 'वारती है।'[3]

---

[1] आनंद बधाइ आजु बाजै महराने। इत दधी माह उत घन घहराने॥
मुनी वेद धुनी पुनी गावैं ब्रजनारी। राजत ध्वजा पताका अजीर बीहारी॥
सकल मंगल मुल भयो भरु भादौं। नाचैं गोप ग्वाल मील्गि करैं दधिकादौं॥
व्रज जन बंदीजन नंद पहीराये। मन के भावते फल दासी दास पाये॥
महादानी लछी दीनु गावे जसु तेरौ। बाँह गही कीजे मनमोहन को चेरो॥
—भगवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ६१।

नंद महर सब कुल पहिरायो। मन बाछित घकरिनि धन पायो॥
रही दासन के आस न दूजी। इछ्या लछ सबन की पूजी॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १५।

[2] निरषत सुत सुष कहो न आवै। पैंचत जसुमनि प्रेम बढ़ावै॥
उघदैं झुपदैं दृष्टि बरावै। वारि वारि अंचल उर लावै॥
सुष गोरिया सुष चूमैं माई। वारैं सोन लौंन मिलि राई॥
मोद भरी लै गोद निहारै। हसं हसावै लालु उलारै॥
बात कहावैं कहि तुतुराता। तनु लावै तब मनु अकुलाता॥
देषत नैन व्याकुलित काना। बोलत उर तैं उमगत प्राना॥
कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १५-१६।

[3] माता जसोदा प्रातही सुत बदन नीहारै।
कोटि कलानीधी कंज मंजु उपमा गही डारै॥
उघरी उघरी पल झपकी जात मन माह बीचारैं॥
मनहु मधुप नीकसे चहै नीरज दल टारै॥
अलप दसन बीहन लसे नयो अंचल वार
कमल कोमल सदामीनी कवी को कही पार म पृ० ६२

वृद्धावस्था में यशोदा को पुत्र का मुख देखने को मिला। मन की अभिलाषा के पूरा होने पर भावनाएँ हिलोरें लेने लगीं। वह अपने प्यारे पुत्र का विविध प्रकार के नये आभूषणों तथा वस्त्रों से शृंगार करने लगीं। मन में अनेक कल्पनाएँ जागरित हो उठीं। वह पुत्र के विवाहोपरान्त दुलहिन को अपने समीप बिठाकर बातें करने आदि के विविध मनोरथ भी करने लगीं। पुत्र और पुत्रवधू को एक ही थाल में भोजन कराने तथा उन्हें एक ही सेज पर सुलाकर उनकी शोभा देखने की सुखद कल्पना यशोदा को मातृत्व की सरलता के उस शुचि आसन पर बिठा देती है जिसके मन में सुखों की ऊहापोह में उलझाए रखने की अद्भुत क्षमता होती है।[1]

कृष्ण-जन्मोत्सव के बाद से तो 'मंगल गान' के लिए व्रजयुवतियों को निमंत्रित किया जाने लगा। कार्य की अधिकता के कारण यशोदा ने अपने पुत्र को 'शकट' की छाँह में लिटा दिया और स्वयं 'सुमंगल कार्यों' में उलझ गईं। रोते हुए कृष्ण ने अपने पैर चलाये जिससे गोरस के कुम्भ आँगन में गिर पड़े। यशोदा छाती धुनती हुई आई और इस 'करवर' से बचाने के लिए 'विधना' को धन्यवाद दिया और अपने 'लाल' को गोदी में ले लिया। इस अनिष्ट के निवारण हेतु 'महरि' ने व्रज में बधाई फेरी। एक दिन यशोदा ने कृष्ण को 'पय-पान' कराते समय उनके (कृष्ण के) मुख में 'सकल लोक' देखे।[2] कृष्ण के अति लौकिक व्यक्तित्व को देखकर भी अपने पुत्र कृष्ण के प्रति माता यशोदा का ममत्व न तो कम ही हुआ और न उसने कृष्ण के ब्रह्मत्व रूप की ही कल्पना की। कृष्ण के प्राकृत कार्यों तथा मानवीय चरित्र को देखकर सरल मति यशोदा के स्नेहशील हृदय में अपने पुत्र के प्रति विविध प्रकार की शंकाएँ घर करती रहीं और वह अनिष्ट-आशंका के निवारण के लिए प्रयत्नशील रहने लगी।

---

[1] भूषन आनि नये पुनि धरै। वै उतारि नेछावरि करै॥
कटि पहिराय पाटकीतनीया। एहि धन धनी नंद की धनिया॥
करै मनोरथ बड़े ह्वै आवै। बवा ब्याह की बात चलावै॥
चढ़ो चौडोल बीयाहन जाउ। संगी लै गावै मोहन नाउ॥
\+ \+ \+
एक थार भोजन करवैहौं। एक सेज द्वौ लाल सोवैहौं॥
हौं देखिहौं सोभा दोउ मुष की। करिहौं प्रान वारने यहि मुष की॥
लछदास महरानी करत मनोरथ लाष। —कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० १६।

[2] नेवतिसवै व्रजवधू बोलाई। मंगल करत नंद ग्रह आई॥
सुत पौढ़ाय सकट की छाहीं। उरझी आप सुमंगल माहीं॥
\+ \+ \+ \+
रोवत गोडिया लाल चलाई। सौधी सकट सो उलटि अडाई॥
\+ \+ \+ \+
छाती धुनति जसोमति आई। विधना करवर बड़ी बचाई॥
गोद लाइ लालहि लै आई। फेरि महरि व्रज करै बधाई॥
एक दवस प प्यावत दूध सकल लोक सुत के मुष पेषे

कृष्ण के द्वारा पूतना के 'प्राण हरण' की बात सुनते ही यशोदा 'सीस' धुनती हुई भागी आई और राक्षसी के सीने पर कृष्ण को खेलते हुए देखा। यशोदा ने इस अनिष्ट निवारण के लिए न्योछावर की और दान दिया।[१] इसी कारण यशोदा ने नंद के परामर्श से कृष्ण के सभी संस्कार वेद-विधि से पूरे कराये जिसमे भविष्य मे इस प्रकार कोई और दुर्घटना न हो जाय। कृष्ण को पालने मे झुलाने का शुभ समय भी पण्डितो के परामर्श के बाद ही निश्चित किया गया।[२]

जब कृष्ण चलने लायक हो जाते है तब वह उन्हे अँगुली पकडकर चलना और 'तुतरे वचन' कहकर बोलना सिखाती है।[३] जब कृष्ण कुछ बडे होते है और आँगन मे खेलते है तब यशोदा उनकी 'बाँह' पकड लेती है और 'मनभावते' भोजन कराती है। भोजन करते समय कृष्ण माता यशोदा से अनुरागपूर्वक बातें करते है।[४]

सखाओ के साथ माखन चोरी करते हुए कृष्ण को पकड़ कर ग्वालिनी यशोदा के पास ले गई और उन्हे उपालम्भ दिये। यशोदा ने रुष्ट होकर ग्वालिनी को फटकारा कि कृष्ण चोरी करना क्या जाने? वह तो अभी छोटा है, सखा जहाँ भी ले जाते है वह उसे ही अपना घर समझ कर उनके साथ चला जाता है। तुम्हारे कठोर वचनो को सुनकर उसके नेत्रो मे आँसू आ गये है। ऐसी भी क्या निठुराई?[५] तुम्हारी ऐसी कितनी हानि हो गई है जिसके कारण तुमने यह हाय हल्ला मचा दिया है। भगवान् की दया से मेरे ही घर मे गोरस की क्या कमी है? यदि तुम चाहो तो 'दस-पाँच माट' तुम ले लो किन्तु मेरे लाल को 'अलग'

---

[१] सीस धुनत जसुमति उठि धाई। रकसिनि उर खेलत सुखसाई।।
देषन गोप वधू सब धाय। लालहि लियो अंक मे लाय।।
जसुमति लियो विपुल धन आना। कियो निछावर दीन्हेनि दाना।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० १७।

[२] रहसत जसुमति विप्र बोलाये। सुदिन पूछि पलना हलराये।। —वही, पृ० १७।

[३] टेकि अगुरिया चलन सिषावै। वचन तुतरे कहै कहावै।।
—वही, पृ० १०२।

[४] पेलत मातु बाह धरि लीन्हे। मन भावत लै भोजन दीन्हे।।
भोजन करत लाल जब लागे। जननी सो बतिया अनुरागे।। —वही, पृ० १८।

[५] देषी द्वार जसोमति ठाढी। भरी सुत नेह नदी उर बाढी।।
आगे पडे लालु लै कीन्हे। बहुत महरि का वोरहन दीन्हे।।
+ + +
डर जुत कछुक लाल जब दीषे। षीझि महरि नयन करि तीषे।।
ग्वाली तुम्है कैसे कहि आवो। ए का जानै भौन परावो।।
+ + +
जहाँ जात लै सषा सयाने। लाल तहै अपने घरु जाने।।
+ + +
अब तुम वचन कठोर सुनाये। सुनत लाल लोचन भरि आये।।
+ + +
केतिक हानि गोरस की माई आ लगि दम न किए कन्हाई

वही पृ० २०

(ध्यान) मन लगाओ।[1] इतना ही नहीं, ग्वालिनी के अधिक तर्क-वितर्क का उत्तर यशोदा केवल इस बात पर समाप्त कर देती है 'लागु कथँ पग्धाम गे मैं चलन सिपयो काली।'[2] इस प्रकार यशोदा के मन में कृष्ण के लिए घोर पक्षपात है किन्तु यह उसकी दुःशीलता का परिचायक नहीं है। कृष्ण के अति प्राकृत कार्यों को देख-सुनकर भी उसका सरल मातृत्व अक्षुण्ण रहता है।

कृष्ण के द्वारा मिट्टी खाये जाने की शिकायत यशोदा तक पहुँचती है। यशोदा कृष्ण से मिट्टी उगलने के लिए कहती है। कृष्ण के नेत्रों में आँसू देखकर वह 'माँटी' गिरा देती है लेकिन फिर डराकर उन्हें मुख दिखाने को कहती है। कृष्ण मुँह खोलकर माता यशोदा को अपने विराट रूप की एक झाँकी दिखा देते हैं। कृष्ण जब अपनी माया को समेट लेते हैं तब माता यशोदा इस अति प्राकृत लीला को स्वप्न मात्र मानकर हृदय में प्रसन्न होती है और स्नेहातुर होकर पुत्र को अपने अंक में भर लेती है।[3]

कृष्ण की चंचलता और चपलता से परेशान होकर भी वह उनकी क्रीडाओं को मन ही मन चाहती है क्योंकि अनेक 'करबर' को देखकर उसका मन अब अनिष्ट की आशंका मात्र में ही भयभीत हो जाता है। एक दिन कृष्ण ने अपने घर में दही फैला दिया। यशोदा उन्हें मारने दौड़ी किन्तु कृष्ण पकड़ में नहीं आये। जो (कृष्ण) जगत को मायावश (करके) नचाते हैं उन्होंने यशोदा को अधिक परेशान देखकर स्वयं को बँधवा लिया। यशोदा ने ऊखल से बाँधा। वे उसे (ऊखल) लेकर यमलार्जुन के बीच में होकर निकले और उनका उद्धार किया। यशोदा ने वृक्ष गिरने की बात सुनी तो व्याकुल होकर भागी आई। उसने कृष्ण के बंधन छोड़कर मंगल बाजे बजवाये और द्विज-देवताओं की मनौती की।[4]

---

[1] नव निधि मेरे धाम बहुत गोरस विधि दीन्हे।
तुम्हैं माट दस पाँच लेहु चाहत जो लीन्हे॥
नरक करन क्यों पाइहौ जो सीके धरहु उठाइ॥
छगन मगन या लाल कहु कत अलग लगावहु आइ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०४।

[2] वही पृ० १०४।

[3] अबही लाल मृत्तिका पाई। ग्वाल बाल जसुदाहि सुनाई॥
जसुमति गही लाल की बाही। पूछै महरि लाल कहै नाही॥
जसुमति कही उगिलु धौं माटी। डारै हाथ दाहिनी साटी॥
+ + +
माँटी मो जसुमति देखावै। बिहँसि लाल तब वदन देपावै॥
देपे सात समुद्र गिरवर बन। तीन लोक देपी डरपी मन॥
मुप भीतर आपुन औ लाला। निरपत रहो न महरि हवाला॥
कहै नाथ देपति हौं सपनौ। माया किधौं मोह है अपनौ॥
विधि यह लीला कौं निअपारा। रही न जसुमति देह सभारा॥
+ + +
लियो अंक भरि सुधि सब भूली। सपनौ समुझि महरि उर फूली॥
—वही, पृ० २१।

[4] एक दिवस हरि घर रवि डारौ मारि गरन धाइ सुत प्यारौ
आइ अजिर गन फटत हरि भाग नंद रानी डारति संग लाग

यशोदा बहुत ही कुशल और व्यावहारिक माता है। रोहिणी के बुलाने पर जब कृष्ण नही आते तब बाल मनोविज्ञान की पण्डिता यशोदा कृष्ण को बुलाने जाती है और उन्हे नन्द के भोजन करने के समय के आगमन की सूचना देती है। वह कहती है—'तुमने सुबह ही तो 'कलेवा' किया था पर अब तो देखो कितना दिन चढ आया है। तुम अभी तक धूल-धूसरित ही घूम रहे हो और ये सारे सखा स्नान, भोजनादि से निवृत्त होकर शृंगार कर आये है तुम भी घर चलो, मैं तुम्हारे भी कपड़े ठीक कर दूँ फिर तुम भी सखाओ मे 'ठाकुर जैसे' दिखाई दोगे। जो बालक पहले आयगा वही 'ठाकुर का पूत' कहलायगा और जो पहले घर पहुँच जायगा उसी के 'बबा भूप और माई है।'[1] इस प्रकार यशोदा अपने पुत्र को 'मन भावती' बाते सुना-सुनाकर तथा अन्य बालको के प्रति स्पर्द्धा भाव जगाकर घर आने को कहती है।

नन्द और यशोदा की स्वीकृति के बाद से राम-कृष्ण वन मे गायें चराने के लिए जाने तो लगे किन्तु यशोदा का चितातुर मन उन्हे अकेले भेजने को राजी न हुआ। महरि का मन 'कृपण के दान' तथा 'रत्नाकर' के तन और प्राण की भाँति शकाग्रस्त ही रहा। उसने कृष्ण मे गोचारण से लौटने का समय पूछा और उनके अनिष्ट निवारण के लिए (उसने) 'राई लौन' उतारे। अन्त मे 'सुदिन' पूछकर व्रज के बालको तथा बछडो के साथ कृष्ण को गोचारण के लिये वन जाने की स्वीकृति मिल गई। यशोदा ने उनके खाने के लिए भोजन बाँध दिया और सखाओं को उनकी सुरक्षादि के सम्बन्ध मे सभी आवश्यक आदेश दे

लखि जननी सम आपु बधायो। जिन माया बस जगत नचायौ ॥
तेहि बाँधे बोखरि सो लाइ। निकसे जमलार्जुन बिच आइ ॥
आकुल विकल जसोमति आइ। लिये अक मुख चूमि कन्हाइ ॥
बर्धन छोरि बधाव बजाये। व्रजमानि द्विज देव मनाये ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० २२।

[1] जाय रोहिनी लालु बोलाये। सखन सहित राखे नहिं आये ॥
बहु विधि तनय बोलाये दोउ। क्रीडा सहित न बोलहि कोउ ॥
फिरि नदरानि आनि सुनायौ। भोजन समय नंद को आयो ॥
गइ बडभागीनी जसोमति तहा। बाल गोपाल खेलते जहा ॥
सुधा वचन बोली मृदु बानी। आवहु लाल जननि सुखदानी ॥
प्रातहि लाल कलेवा खायो। देखहु देवस कीतो चढि आयो ॥
तुम पै रहत धूरि लपटाये। ये सब सखा सिगार बनाये ॥
सब अन्हाइ भोजन करि आये। शीशन बेनी केश गुथाये ॥
तुम्हौ भवन आवहु सुत प्यारे। नीके भूषन करौ तुम्हारे ॥
किये सिगार विराजहु असे। सकल सखन मे ठाकुर जैसे ॥
बाल गोपाल प्रथम जो आवै। सो ठाकुर को पूत कहावै ॥
जो प्रथमे घर पहुँचे जाइ तासो बबा भूप है माइ
वही पृ० २२

दिये। माता ने राम-कृष्ण को भी समझाया। अन्त मे माता को विश्वास दिलाने के लिए उसकी सौगंध खाकर तथा इसके नन्दों का पालन करने का आश्वासन देकर कृष्ण वन को गये।[1]

कृष्ण के वन से लौटने पर यशोदा ने उन्हे सीने मे लगाया और अनेक मनोरथ किये। स्नान तथा भोजनादि से निवृत्त होकर कृष्ण ने माता को वन की कथा सुनाई। यशोदा ने कृष्ण को अपना प्राणधन बताया और उन पर 'बलिहार' गई।[2]

जब यशोदा ने अक्रूर के साथ राम और कृष्ण के मथुरा जाने की बात सुनी तो उसका सरल हृदय शंकित हो उठा। वह खीझ कर कहने लगी कि मै कृष्ण को अपने हृदय से लगाकर कही भाग जाऊँगी। वह करुण विलाप करती हुई कहती है कि 'कृष्ण मुझ अंधी के लकुट और रंक की निधि है। कंस ने उन्हे चालाकी से बुलाया है। मै अपना सारा धन और सर्वस्व (गोधन) छोडने को तैयार हूँ लेकिन कृष्ण को मत जाने दो। वह मेरे बिना मथुरा मे कैसे रहेगा? उसे तनिक सी भी 'घाम' लग जाती है तब तो उसका मुख कुम्हला जाता है। अब प्रात काल उठकर कृष्ण को कौन कलेवा देगा? और मेरी तरह उसे मातृ-हृदय का प्यार कौन देगा?'[3] इतने रोने-चिल्लाने पर भी जब कृष्ण और राम के रुकने का कोई ढग

---

[1] भयौ महरि मनु किपिल को दानु। ज्यौ रन कातर को तनु प्रान ॥
हरषे लाल चरावन जैहै। कहै बहुरि फिरि कब घर जैहै ॥
फिरि फिरि राई लौन उतारै। महरि महासुख तन न सभारै ॥
सुदिन पूछि ब्रजबाल बोलाये। बछरू ले बन कान्ह सिधाये ॥
महरि मधुर भोजन सग दीन्हे। दधि बधन करि मगल कीन्हे ॥
पूजु लकुट लै देव मनावै। कर निहोर सब सखा सिखावै ॥
+ + +
तात जहा बन होइ घनेरो। नहि जैयो जह होइ अध्यरो ॥
प्यारे न नीर तीर पै पीजै। गहरे नीर पाउ नहि दीजै ॥
+ + +
मैया तैं जो कही सो करिहौ। तेरी सौह कहहि नहि डेरिहौ ॥
करि प्रनाम हरि हसत सिधारे। महरि प्रेम कुच द्रोग भरि आये ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० २४।

[2] लाल उठाए गोद कै लीन्हे। महरि मनोरथ कोटिन कीन्हे ॥
का देउ भोजन का पहिराऊ। कौन सी सेज लाल पौढाऊ ॥
+ + +
चुपरि फुलेल लाल अन्हवाये। दिव्य दियो भोजन मन भाये ॥
पुनि सुत साद पनौहन लागी। जिन कह मुनि मन बसत विरागी ॥
पुलकि पुलकि तन पौछन लाई। मनमोहन वन कथा सुनाई ॥
+ + +
हौं बलि गई जसोमति माइ। तुम मेरे धन प्रान कन्हाइ ॥
—वही, पृ० २६।

[3] अली जसोमति की दसा बरनी नही जाइ।
सु जैहौ क मा । र र गाइ

नहीं दिखाई दिया तो उसने अक्रूर को क्रूर बताया क्योंकि उसी ने व्रज का सारा सुख हर लिया' है। उसने राम और कृष्ण को सामाजिक शिष्टता एवं व्यवहार की बातें समझाई और कहा कि सदा बाबा (नन्द) के साथ ही रहना और राजा से कोई कठोर बातें मत कहना।[1]

कंसवध के बाद कृष्ण वृंदावन नहीं लौटे। कुछ दिन बाद उन्होंने उद्धव को अपना प्रतिनिधि बनाकर ब्रजवासियों के समीप भेजा। नंद और यशोदा की भाव-प्रवणता का एक नमूना देखिये। वे उद्धव से कृष्ण की कुशल पूछते हैं केवल कृष्ण का ही स्मरण करते हैं। उन्हें कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखाई देता। नन्द जी तो कृष्ण की कुशल पूछकर ही चुप रह गये किन्तु यशोदा के मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे। उसने उद्धव से प्रश्नों की झड़ी लगादी। अब कृष्ण को प्रातःकाल कलेवा कौन कराता होगा? खेल से लौटने के बाद 'माँ' कहकर वे किसके 'अंक में लिपटते होंगे? गोचारण से लौटकर सन्ध्या समय किसे सुख देते होंगे? कृष्ण यहाँ से तो कंस-वध के लिये ही गये थे, अब तो कोई काम शेष नहीं रहा। उन्हें व्रज से वापस ले आओ और हम मृतवत् लोगों को सुधापान कराओ।[2]

+ +

मोही अवगी कै लकुट रंकलीधी लाल।
तीन्हही चहत है कंस कीन्ह कै चाल॥
सब धन गोधन दीजी दीजीअ प्रान।
कान्हइ जान न दीजीअ हहइ सयान॥
कैसे कै मोही बिनु रहीहही मधुबन जाइ।
ये तनक लागत घाम जो मुख कुम्हिलाइ॥
प्रातही उठत कलेउ मागहीं देइ।
चूमी चाटी नैनन्ह भरी यह मुख लेइ॥ —भागवतपुराण (हस्तलिखित) पृ० ९०।

[1] है यह क्रूर कहे अक्रूरा। जिन व्रज हरा सकल सुख पूरा॥
यहि भाँ विधि काहे को जाये। सुख समूह हरि आनि बसाये॥
जसुमति दशा बरनिक नहि आवै। मुख चूमै परि पाय सिखावै॥
कछु कठोर नृप सो जनि कह्यौ। सदा बबा के लागे रह्यौ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४७।

[2] हरि ऊधौ को व्रजहि पठाये। निज पट सब भूषन पहिराये॥
मिले नंद औ जसुमति मैया। जिनके है धन प्रान कन्हैया॥
भरी प्रेम कुसल दोउ बूझै। तजि मोहन और कछू ना सूझै॥

+ + +

केहि प्रात कलेवा दीजै। बिना कान्ह अंक केहि लीजै॥
कब खेलत ते हरि ऐहै। माँ कहत अंक लपटै है॥
कब धौं गाय चरावन जैहै। आवत संध्या सुख दैहै॥

+ + +

ऊधौ है घर घरै खेलौना कब आइहै खेलिहै छौना
मुरली यह प्रान पियारी सोउ गोपाल सौंवे बिसारी

अंत मे 'कुरुक्षेत्र मे कृष्ण व्रजवासी समागम' प्रसग मे यशोदा नद जी के साथ दिखाई देती है। उसे अपने पुत्रो से मिलकर अपार सुख होता है। उसके प्रेमाश्रु बहने लगते है। वह कृष्ण के मुख को देखकर बार-बार अपने 'अंक' मे भर लेती है।[1]

कुरुक्षेत्र मे वसुदेव के यज्ञ की समाप्ति के बाद कृष्ण समस्त व्रजवासी समुदाय को विदा करते है। सभी लोग कृष्ण से ब्रज चलने का आग्रह करते है किन्तु यशोदा अपने मन की बातो को कहने मे असमर्थ हो जाती है और अपने प्यारे लाल को बार-बार गोद मे बिठाती है।[2]

इस प्रकार हमे यशोदा के स्नेहसिक्त हृदय, सरल, शान्त स्वभाव और मातृत्व का सम्यक् परिचय मिलता है। वह हिन्दू गृहस्थ माता है जिसका पुत्र-प्रेम अपनी सीमा ओर मर्यादा मे बंधा हुआ है। वह हमारे जीवन के अति निकट है।

राधा

लक्षदासजी के काव्य की प्रधान नायिका राधा है। कवि ने राधा का वर्णन, सूर की भाँति, बाल्यकाल के परिचय मे प्रारम्भ नही किया है। हमे राधा का स्वरूप दर्शन रास-विलास मे होता है। रास मण्डल मे राधा-कृष्ण की शोभा अद्वितीय है। 'राधा के गोरे शरीर पर नील वसन है। वह मृगलोचनी विधु बदन किशोरी है और प्रियतम के वामांग मे रहती है। वह कोक-कला प्रवीण तथा पति-प्यारी है। बिहारी 'थेइ थेइ' रटते हुए नृत्य करते है। गौर-श्याम तन के नील-पीत पट परस्पर दोनो के हृदय से लिपट गये है।[3] उनके इस रास-विलास मे सखियाँ भी योग देती है और विविध प्रकार के वाद्य बजाती हैं। सगीत की इस मधुर ध्वनि के साथ नागरी नृत्य करती है। लाल (कृष्ण) रीझकर मुक्तावली वारते है। श्याम-गौर जोड़ी के भूषन-बसन जगमगाते है। लक्षदास, राधा कुँवरि और मोहन नवलकिशोर है।[4]

\+ \+ \+

जेहि काज गए सो कीन्हौ। बधी कस सबही सुप दीन्हौ।।
अब लालहि ले ब्रज आवौ। मृतकहि जनु अब सुधा पिआवौ।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५१।

[1] मिलै कृष्न हलधर दोउ भाई। सो सुष दशा बरनि नहि जाई।।
मिली अंचल बारे महरानी। भीजै तनै नयन कै पानी।।
निरषे बदनु अंक पुनि भरे। सुत पर लछि निछावरि करै।। —वही, पृ० ८१।

[2] पुनि पुनि गोद लेइ नदरानी। जाकी कीरति बेद बषानी।।
—वही, पृ० ८२।

[3] नील वसन राधा तन गोरी। म्रग लोचनी बिधु बदन किशोरी।।
पीय के अंस बाहुधरी लटकती। रीझि माथ सुप अगुल पटकती।।
कोक कला प्रवीन अति प्यारी। नाचत थेइ थेइ रटत बिहारी।
नील पीत पट गौर स्याम तन। लटपाटाइ उररहे दोउ जन।।
—वही, पृ० ४१।

[4] गति संगीत लेत नागरि चलि। रीझि लाल वारत मुक्तावलि।।
भूषन वसन जोरी गौर
लक्षदास राधा कुवर मोहन वही पृ० ४२

कवि लक्षदास ने राधा की शोभा का वर्णन करते हुए सखियों के वाद्यों की झंकार के मध्य विविध प्रकार के रास-नृत्य का वर्णन किया है। इस अवसर पर कृष्णराधा के साथ विविध प्रकार से विहार करते है, 'थेइ थेइ' करते हुए डोलते है और मुकुट सिर 'नवाते' हुए 'तार तोरते' है।[1] कवि ने कृष्ण और राधा को पुरुष-प्रकृति कहा है और उन्हे अगम-अगोचर बताया है। ' ' इस प्रकार राधा-श्याम व्रज मे विहार करते है। उनकी शोभा-घनदामिनी सदृश है। इस रूप-छवि पर सौ रति-काम न्योछावर किये जा सकते है।[2]

लक्षदास जी ने राधा को सर्वत्र स्वकीया के रूप मे चित्रित किया है। यह उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार ही किया है। रास प्रसंग मे कवि ने राधा-कृष्ण का विवाह कराया है। मण्डप छाकर राधा-मोहन का 'भुजजोरन' (पाणिग्रहण) संस्कार हुआ।[3] इस घटना से सभी वन्य जन्तु एव सुरगण हर्षित हुए। सखियों के आनद का तो वारापार ही नही रहा। सभी सखियाँ अत्यन्त व्याकुल होकर दृढव्रत के साथ ध्यान करती है और राधा-मोहन के विवाह के रहस्य को गाती है।[4]

कवि लक्षदास ने शरद्-रात्रि मे राधा-कृष्ण के रास का कई रूपो मे वर्णन किया है। श्याम के मुख-सिधु मे सखियाँ सजल घटा चपला सी खेलती है। वे सभी श्याम के मुख को इस प्रकार देखती है जैसे एक सर (तालाब) मे अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई देते है। रास मण्डल मे श्याम-श्यामा तो घन राशि की भाति दिखाई देते है और समस्त पार्षद उडगन की भाति। श्याम तो सिधु सदृश है जिनमे गोपी-गण लहरो की भाँति है। ' ' 'मृदग संगीत की ध्वनि सुनकर देवता हर्षित हुए और सुमन वृष्टि करने लगे। लक्षदास नील और पीत वसन घन दामिनी से दिखाई दिये। व्रज वनिताओं की मण्डली मे दम्पति ने रास विहार किया। 'ससि सरोज घन दामिनी' ने 'मदन विलास' को भी मोहित किया।[5] इस प्रकार की रास

---

[1] कृष्णरससागर, (हस्तलिखित), पृ० ४२।

[2] पुरुष प्रकृति जेहि वेद बखानें। अगम अगोचर कोउ नहि जानें ॥

+ + +

एहि विधि व्रज विहार वर वीहरत राधा स्याम।
लक्षदास घन दामिनी वारीअा सौ रति काम ॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४३।

[3] पानी ग्रहन भुज जोरन राधा मोहन। —वही, पृ० ११७।

[4] अति व्याकुल सखिया सब दृढव्रत ध्यावही।
राधा मोहन ब्याह रहस मिलि गावही ॥ —वही, पृ० ११६।

[5] मिलि मुख सिंधु नाह सग खेलै। सजल घटा चपलासी पेलै ॥
सबै स्याम मुख देखहि अैसे। बहु प्रतीबिबु गेक सर जैसे ॥
मंडल मध्य स्याम स्यामा घन। सखि पारसद रसीक जस उडगन।
स्याम सिंधु गोपी गन लहरी। सोभा सलील उमगी बन छहरी ॥
सुरसी हरपै बरसे सुमन सुनि मृदग सगीत।
लछ मनहु घन दामिनी वसन नील अरु पीत ॥
व्रज वनिता वनि मडली दंपति विहरत रास।
ससि सरोज घन दामिनी मोह्यो मदन विलास ॥

वही पृ० ४०

विलास की विविध क्रीडाएँ भक्तो और रसिको के मन को आनन्द देने वाली हैं इसी प्रसग में कवि ने मानिनी (राधा) के मान को भग करने के लिए कृष्ण के अतर्धान होने का भी सकेत किया है।[1] इस प्रकार कवि ने राधा के विरह की मानसिक स्थिति को भी बताया है जो निम्बार्क सम्प्रदाय की 'निकुज लीला' से सम्पुष्ट विप्रलम्भ का एक नमूना है।

कवि ने राधा-कृष्ण का प्रथम मिलन 'वट सकेत' पर बनाया है। बालिका राधा की किसी भी लीला का वर्णन कवि ने नही किया। किशोरी राधा की लीलाएँ बरसाना और नदगाँव के वनो से प्रारम्भ होती है जहाँ कृष्ण गाये चराने जाते है। कृष्ण का वेणु-वादन आकर्षण का केन्द्रीभूत स्थल है। राधा अपनी सखियो के साथ वहाँ आती है। उसका मन कृष्ण की रूप-छवि में अटक गया है। वह अपने तन-मन की सुधि भी भूल जाती है। यह चातक और घन की सी दशा है। इस दशा मे वह मूर्च्छित हो जाती है और कुजो की ओर देखती है। सखियाँ उसे बरसाने ले जाती है। कीर्ति राधा की ऐसी दशा सुनकर व्याकुल होती है और राधा को स्वस्थ करने के प्रबन्ध किये जाते है। तभी नदगाँव से एक नारी (वेष बदले हुए श्रीकृष्ण) आती है जो राधा की व्यथा को जानने का दावा करती है। उसने राधा के समीप जाकर उसके कान मे कहा—'तुमने कानन मे जिस साँवले को देखा था उसे मै तुम्हे दिखाऊँगी। वह भी तुम्हारे बिना व्याकुल है। तुम दुखी मत हो।' इस प्रकार 'दम्पति केलि विलास' की प्रेम-रस-कथा प्रारम्भ होती है।[2]

राधा-कृष्ण की इस प्रेम-रस-कथा को और भी अधिक पुष्ट और स्थायी करने मे सभी सखियाँ योग देती है। सखियाँ राधा के हृदय की गाँठ को पहचान गई है। अत. वे उसको कृष्ण से मिलाने मे सहायता करती है। राधा की मूर्च्छा तथा व्याकुलता को दूर करने के लिए झाड-फूँक करती है, राई लौन उतारती है।[3] राधा की ऐसी दशा देख कर कीर्ति

---

[1] एहि विधि मन तन सुष भरी पलि सो पाइ सोहाग।
जानि मानीनी हरि छपे देषन कौ अनुराग ॥ —कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० ४०

[2] हे गोरी गोरी कहि गावै। मुनि स्यामा मन मोद बढावै ॥
रहसि रहसि बासुरी बजावे। श्री स्यामा सषियन सग आवे ॥
देषे कान्ह नयन की कोर। मनु चित अटकि रहो वोहि ओर ॥
तन की सुधि न रही तन मन की। उपमा कछु चात्रिक घन की ॥
उरझी परी तन मन न सभारै। उठि कुजन की वोर निहारै।
सषिया बरसाने गहि ल्याई। सुनत दशा कीरति उठि धाई ॥

\+ \+ \+

तेहि अवसर नदगाउ ते आई व्रज वर नारि।
जनि डेरपहु यहि विथा की हौ हौ जाननि हारि ॥
कानन लागि कहो सावरे देषावौ तोहि।
वोऊ तुम बिन विकल है तुम व्याकुल जनि होहु ॥
स्वय दूतिका रूप धरि हरि आये तेहि पास।
लछ प्रेम रस कथा यहि दंपति केलि विलास ॥

—वही, पृ० ६८।

[3] लै सखियाँ आई बरसानै। प्रेम बानि की पीर को जानै ॥
झार फूक उपचार विचारै। पुनि पुनि राई लौन उतारै।

—वही पृ० ६८

उसकी सब सखियो को बुलाती है और जिस प्रकार से वह ठीक हो सके, वही करने का आदेश देती है।

सखियो के साथ राधा वन के उस भाग मे जाती है जहाँ कृष्ण गोचारण करते है। राधा छिप-छिप कर कृष्ण को कुजो मे देखती है। तभी हरि गायो को वापस करने के लिए गये। उन्होने लौटते समय 'कोटि विधु ते उजियारे बदन' की वृषभानु दुलारी को देखा। कृष्ण ने हँसकर उनका परिचय पूछा और कहा—'तुम बरबस मेरे मन को मोहती हो।' मेघावती ने उन दोनो को 'गुणरूप निधान' बताकर उनके 'नील-पीत अचल के छोरों' मे ग्रथि बाध दी और जुगलकिशोर से 'नित्य विहार केलि' करने की प्रार्थना की।[1] दुलहिन राधा और दुलहा मोहन की शोभा को देखकर सखिया मन मे बहुत प्रसन्न हुई। इसके बाद कवि ने रास विलास लीला का वर्णन किया है।

रास लीला वर्णन मे कवि ने राधा और कृष्ण के पारस्परिक मिलन तथा तदुत्पन्न सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया है। कवि के शब्दो मे—रास करते हुए राधा-कृष्ण की शोभा को कहना असम्भव है क्योकि 'रसना के नैन नही' और 'नैनो के पास रसना नहीं' तब फिर इस रूप-सुधा का वर्णन कैसे हो ?[2] यह तो तुलसीदास के शब्दो मे 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' वाली दशा उत्पन्न हो गई है। दोनो के पारस्परिक मिलन से जो रूप-तरगे उठती हैं उनमे दोनो की रूप छवि प्रतिबिम्बित होती है। जिस प्रकार चन्द्रमा मे किरणे और सुमन मे सुवास निहित है, रवि एव दीप मे प्रकाश विद्यमान है, बिना गोलक के दोनो नेत्रो की स्थिति सम्भव नही, जैसे विद्वानो के सार्थक वचन पीयूष-सा रस और माधुर्य प्रदान करते है उसी प्रकार प्रभु मे उनकी प्रभुता विद्यमान कही जाती है। राधा मनमोहन एक प्राण दो रूप दिखाई देते है जिस प्रकार ध्वनि से राग-रागिनी विद्यमान है, प्राणवान देह शोभा-युक्त लगती है उसी प्रकार (ऐसा प्रतीत होता है कि) प्रीति और स्नेह एकाकार रूप मे प्रकट हुए है। जिस प्रकार मेघ-घटा मे दामिनी शोभा पाती है उसी प्रकार प्रिय कृष्ण और कामिनी राधा का सम्मिलन हुआ। जिस प्रकार बट से बीज और बीज से बट की उत्पत्ति हुई है उसी प्रकार 'युगल नागर नट' का मिलन हुआ।[3] इस प्रकार विविध विलास, करने

---

[1] हरि देषी वृषभानु दुलारी। बदन कोटिविधु ते उजियारी ॥
हसी पूछी मोहन तुम कोही। बरबस मेरे मन को मोही ॥
मेघावती कही लगि काना। तुम दोउ गुन रूप निधाना ॥
नील पीत गहि अंचल छोर। दई ग्रथि सषि जुगलकिसोर ॥
+ + +
मेघावती व्याह विधि कीन्ही। प्रेम प्रीति रस भावरी दीन्ही ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ९९।

[2] रसना नैनहि नैननहि रसना। कहा कहौ है विधि मम बसना।
रोम रोम रसना दृग देत। तब यह छवि बरनत अति हेत ॥
—वही, पृ० ९९।

[3] उनमें वै उनमे लस दोउ। मजल तरग ज्यो देषीत दोउ ॥
किरनि चद ज्यो सुमन सुवास ज्यो कहियत रवि दीप प्रकास
जो कहियत जुग गोलक नन सहित अर्थ जैसे बुध बन

हुए रस की राशि दोनों (राधा-कृष्ण) ही हास्य करते हैं। इस सुख को सुकृत सम्पन्न ललितादि सी दासियाँ ही देख सकती है।[1] इसके उपरांत श्यामा-श्याम के भोजन, शयन तथा सुरति-सुख का वर्णन किया गया है।[2]

लक्षदास ने राधा को परम सुन्दरी और कृष्ण की भी अधिष्ठात्री देवी बताया है। कवि कहता है कि राधा के बिना 'रास रस' का आनन्द व्यर्थ है। राधा का रूप कृष्ण के हृदय मे बसा हुआ है। इसीलिए कृष्ण को प्राप्त करने वाले जिज्ञासु को राधा की उपासना करनी चाहिए। जो लोग केवल कृष्ण के गुण न गाकर, उसे राधा का कहकर गाते है वही राधा की गति को जानते है और राधा रस (माधुर्य भाव) को भी जानते है।[3] एक बार राधा ने मान किया। कृष्ण जल से निकली हुई मीन की भाँति व्याकुल हो गये। उन्हे बिलकुल चैन नही रहा। भोग, भूषन और वसन' (वस्त्र) की सुधि त्यागकर वे ही राधा राधा की रट लगाने लगे। उनकी मुरली मे भी राधा का मृदु यश-गान होता है। इस दशा को देखकर देवताओं के दृग भर आते है और रोम-रोम पुलकित हो उठता है।[4]

बसत, फाग, भूलना तथा हिडोलना के पदों मे कवि ने राधा के चरित्र की ओर कोई सकेत नही किया है। इनमे केवल राधा-कृष्ण के विहार तथा उनकी शोभा का ही वर्णन है।[5]

कवि ने दोहावली मे राधा से सम्बन्धित २० दोहो मे राधा-कृष्ण की शोभा, राधा

जो पयुप रस माधुर ताई। जो कहियत प्रभु औ प्रभुताई।।
धुनि मह राग रागिनी जैसे। श्री राधा मनमोहन जैसे।।
सोभा सहित प्रान जो देह। मानहु प्रगट प्रीति मिलि नेह।।
जैसे मेघ घटा लसै दामिनि। तैसे मिलन कान्ह पिय कामिनि।।
वट ते बीज बीज ते भो वट। तैसे मिलन जुगल नागर नट।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ९९।

[1] विविध विलास करत दोउ हसत लसत रस रासी।
वर सुकृती सुप देप ही ललितादिक सी दासी।।
—वही, पृ० १००।

[2] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १००।

[3] श्री राधा की मया रास रसु। राधा रूप बसत मेरे असु।।
मै राधा की कृपा विहारी। राधा दासी रास अधिकारी।।
जो अनन्य सेवत श्री राधा। मन कर्म वचन भजन नहि बाधा।।
केवल मेरौ ना मन भावै। श्री राधा को कहि गुन गावै।।
जो राधा गति जाने सो राधा रसु जान।। —वही, पृ० १०१।

[4] एक समै मानिनि भै राधा। मोहन मन मनसिज कृत बाधा।।
व्याकुल भये मीन ज्यों बिनु जल। लुठत उठत धरनी पर नहि कल।।
हा राधा राधा टेरत सन। सुधि न भोग भूषन बसन।।
मुरली मृदु राधा जस गावत। पुलकि रोम सुर दृग भरि आवत।।
—वही, पृ० १०२।

[5] कृष्ण रससागर (हस्तलिखित) पृ० १११ से ११५ तक।
हस्तलिखित पृ० ९१ से ९५ तक

के मान करने पर कृष्ण की व्याकुलता और उनका राधा को मनाना आदि का वर्णन किया गया है जिनसे यह स्पष्ट है कि कवि की इष्टाराध्या राधा कृष्ण की सर्वस्व है।[1]

लौकिक लीला में कवि ने राधा-कृष्ण के विरह का वर्णन नहीं किया और जहाँ कहीं है भी तो थोड़ा-सा संकेत मात्र। इसका कारण यह है कि राधा-कृष्ण का यह मिलन शाश्वत सत्य है। उनके विरह की कल्पना करने का कोई पुष्ट आधार भी तो चाहिए। रासलीला प्रकरण में मानिनी नायिका के गर्व को नष्ट करने के लिए ही कृष्ण के विरह की मानसिक स्थिति की कल्पना की गई है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी प्रसंगों में राधा कृष्ण की अनन्य संगिनी है।

ब्रज में उद्धव के जाने का कवि ने विस्तार से वर्णन किया है किन्तु राधा के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा। जब उद्धव वृन्दावन से लौटकर वहाँ की सारी दशा कृष्ण को सुनाते हैं तब कृष्ण द्वारका के सुखों को निस्सार बताकर ब्रज के जीवन को याद करते हैं। कृष्ण राधा के प्रेम की गहराई को जानते हैं तभी तो वे बड़े आत्मविश्वास के साथ कहते हैं—'राधा स्मरण करके मेरा सान्निध्य उसी प्रकार चाहती है जैसे जल को मीन और घन को चातक। तुमने सुन्दरी राधा को देखा है उसके हृदय में अपार प्रेम है वह कैसे जीवित रहती है ?'[2]

'कुरुक्षेत्र कृष्ण व्रजवासी समागम' प्रसंग में राधा हमें फिर दिखाई देती है। कृष्ण राधा से मिलने को आतुर रहते हैं। रुक्मिणी भी प्रेमस्वरूपा राधा को देखने की इच्छा प्रकट करती है। अन्त में जब समस्त व्रजवासी कृष्ण से विदा होने लगे तो सभी ने अपने हृदय की बात कही। तभी वृषभानु पुत्री राधा ने लम्बी साँसें लेकर शपथपूर्वक कहा कि अब हम तुमसे कभी भी मान नहीं करेंगे, आप ब्रज को लौट चलिए। विरह-व्याकुल हृदय

---

1 शिव विरंचि सनकादि मुष सेष्हु देषे जे न।
तिन मन मोहन वस किये राधे आधे नैन।।६८।। दोहावली
राधा दामिनि स्याम घनु हरि छाया तुम देह।
सोह रावरी लाड़ली पति चातकु तुम मेह।।१३७।।
तेरे रूसत स्याम को बीसरि जात तनु प्रान।
जैसे पति आधीन सौं प्यारी कैसे मान।।१३८।।
प्यारी तेरो बदन बिधु मेरे नैन चकोर।
सब सिष रस की रास में रिस धौ कौने ठौर।।१३९।।
लछी कान्ह के नयन सषी मेरे मन को फंद।
देषे सषी उलटी भई हौं चकोर वे चन्द।।१४४।।
पिया देषे निज नैन में तिय देषे पिय नैन।
लछी मनावनिहार के विसरि गये मुष बैन।।१४२।।

2 हमें यह संपदा न भावै। ऊधो जब ब्रज की सुधि आवै।
कहिए कहा देषि तुम आए। उन भोग भवन बिसराए।।
मेरो नाम रटन है ऐसो। जल मीन चात्रिक घन जैसो।।
तुम देषी राधावर गोरी। कैसे जियत प्रीति नहि थोरी।।
हस्तलिखित पृ० ५४

राधा के दुःख की चरम दशा का यह मार्मिक स्थल है जब उसकी वाणी मूक हो गई और इन गिने चुने शब्दों में ही उसने अपने मानसिक परिताप को व्यक्त करने की चेष्टा की ?[१]

लक्षदास जी ने राधा का सजीव चित्र अंकित किया है। उन्होंने राधा-कृष्ण के संयोग-सुख की लीलाओं के वर्णन में विशेष अभिरुचि दिखाई है फिर भी दो-एक स्थलों पर विरहजनित दुःख की ओर भी कवि ने संकेत किया है। इन सभी प्रसंगों में राधा का उत्तरोत्तर विकास हुआ है जिससे उसकी महत्ता, उसका स्वकीया भाव और उसके स्वभाव की गम्भीरता प्रत्यक्ष दर्शित होती है।

गोपियां

गोपियों का चित्रण करने में लक्षदास जी ने ब्रज की दो प्रकार की नारियों को ग्रहण किया है (१) वे किशोर कुमारियाँ एवं नवोढाएँ हैं जो कृष्ण के प्रति प्रेमिका भाव रखती हैं, (२) वे सखियां हैं जो परिचारिका या दूती के रूप में राधा-कृष्ण की लीलाओं में सहयोग देती हैं।

कृष्ण-जन्म की सूचना पाकर गोपियों में आनन्द की लहर फैल जाती है। वे 'सकल श्रृंगार' करके, हाथों में थाल लेकर मंगलाचार करती हुई चल देती हैं। उनके 'सुन्दर सुघर गायन' को देव वनिताएँ कान देकर सुनती हैं।[२]

कवि ने सामान्यतः कृष्ण की शोभा को निरखकर ब्रजनारियों के उन्हें (कृष्ण को) अंक लगाने और करताल देकर नाचने का वर्णन किया है। कृष्ण ब्रजनारियों के कथनानुसार कार्य करते हैं, वे विविध विलास करती हैं और लालविहारी अपने रस में व्यस्त हो जाते हैं।[३] गोपियों को कृष्ण की लीलाएँ बहुत ही पसंद हैं। वे किसी बहाने से कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करके अपने मन को तृप्त करना चाहती हैं किन्तु इन गोपियों में सूर की गोपियों की भाँति ऐन्द्रिय सुख की कामना की गंध भी नहीं है। वे मातृत्व सुख की पोषिका हैं और तदनुसार आचरण करती हुई कृष्ण की माखन चोरी आदि की लीलाओं को निरपेक्ष भाव से देखती हैं। एक उदाहरण देखिए—एक गोपी के घर में कृष्ण सखाओं के साथ चोरी करने गये। गोपिका ने कृष्ण का हाथ पकड़ लिया। कृष्ण के मुख में माखन कण लगा हुआ था उन्होंने अपने तन और नयन को छिपाया। यह देखकर ग्वालिनी को हँसी आगई। भयभीत कृष्ण ने उससे 'निहोरा' किया और स्वयं को माता के पास न ले जाकर छोड़ देने की प्रार्थना की। फिर भी ग्वालिनी कृष्ण

---

[१] स्वासा करिहि सौंह ब्रषभानु। तुम सौं हम करिहै नहि मानु ॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ८२।

[२] लिये थार कर सकल सिंगारा। चली करत जय मंगल चारा ॥
सुन्दर सुघर करहिं सब गाना। सुनैं देव वनिता दै काना ॥

—वही, पृ० १५।

[३] खेलत खोरि जो देखन पावै। लै उछाह सौं अंक लगावै ॥
भवन भवन ते भामिनि आवै। दै करताल गोपाल नचावै ॥
जो कछु कहहिं करहि हरि ऐसे। ब्रह्म देव इन्द्रिन संग जैसे ॥
विविध विलास करहिं ब्रजनारी। भै अपने रस लाल विहारी ॥

—वही पृ० १८

को यशोदा के पास ले गई और ग्वाल बालों के साथ कृष्ण के माखन चोरी करने और दूध दही घृत के भाजन फोड़ने की शिकायत की। इस प्रकार कृष्ण की यशोदा के सामने बहुत करके अनेक उपालम्भ दिये।[1] यशोदा ने भी उनके उपालम्भों का उत्तर दिया। गोपियों ने बालक कृष्ण की अद्भुत लीलाओं—शकट भंजन, पूतना बध, तृणावर्त बध आदि की ओर संकेत करते हुए प्रश्न किया कि जब कृष्ण ने ये कार्य किये तब केतिक नन्द कुमारु'[2] गोपियों की इस वाग्विदग्धता और मुग्ध वाणी में नागरता नहीं है, सरलता, निश्छलता और ग्रामीणता है।

कृष्ण के कुशल-क्षेम को जानने के लिए गोपियाँ भी यशोदा की ही भाँति चिंतित रहती है। इसीलिए वे यशोदा को बार-बार समझाती हैं कि जो हम सबका आधार है और जिसे देखकर हम सब जीते है उसे 'नैन ओट' मत कीजिये। हे महारानी! तुम अपने मन मे समझ कर देखलो। पता नहीं तुम्हारे क्या सुकृत उदय हुए कि अवस्था ढलने पर भी श्याम जैसा पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। इस पर भी तुम उसे वन भेजना चाहती हो। चाहे तुम्हें गोधन तथा अन्य धन छोड़ने पड़े किन्तु कृष्ण को घर पर ही रखो।[3]

यशोदा कृष्ण बलराम को वन में गाय चराने के लिए जाने की आज्ञा देती है। गोपियाँ अपने द्वार पर खड़ी होकर वन से उनके वापस आने की प्रतीक्षा करती हैं और वनवासी खग-मृगों के भाग्य की प्रशंसा करती हैं क्योंकि कृष्ण का वेणु वादन सभी को प्रभावित और मुग्ध करने वाला है।[4] सायंकाल कृष्ण के वन से लौटने पर गोपियाँ उन्हें

---

१ मुष मापन कन येक देखावैं। हमैं ग्वाली तन नयन छपावैं।
+ + +
डरपि ग्वालि सो करहि निहोरी। बधैहि मातु तौ चहिए छोरी॥
+ + +
आगे पडे लाजु लै कीन्हे। बहुत महरि का बोरहन दीन्हे॥
+ + +
दूध, दही, घृत भाजन फोरै। लिये न फिरत सखा सब थोरे॥
गोवाल जो संग गोपालहि पावै। आपु खाहि पुनि इन्हहि लगावै॥
कान्हहि महरि सिषावतु दीजै। मैं बलि पर घर हानि न कीजै॥
—कृष्णरसनागर (हस्तलिखित), पृ० २०।

२ तब न सिषो पग धरन चरन जब सकट गिराई।
सिसु जाने पुतना हुती पय प्यावन आई॥
तुम्हौ अंक ना लै सकी हौ मोहन पर बलिहार।
त्रिनावर्त बधु जब कियो तब केतिक नन्द कुमार॥
—वही, पृ० १०५।

३ कहहि सकल मिलि महरि सिराइय। कहु न कान्हहि नेकु पठाइय॥
जो अधार जेहि देषैं जीजै। नैन वोट तेहि महरि न कीजै॥
मन मे समुझि देषु महरानी। कौन सुकृत फल स्याम सयानी॥
बैस गये यैसो सुत पायो। चाहति कान्हहि बनैं पठायो।
गोधन औ धन घर को भाइ। दारन करी घर राषि कन्हाइ॥
—वही, पृ० २६।

४ (क) द्वार द्वार सब ग्वालिनिहारैं। बिसरे भवन नयन जलु ढारैं॥
कब रजनी यह दवस सराइह रजना मुख सुख आनि दषाइह

(कृष्ण को) टक लगाती हैं, कोई लाजतजि उन्हें देखने को दौड पड़ती है। ये व्रजवासी गोपियाँ हरि मुख दर्शन को ही मुख मानती है और सासारिक मुखों को दुःख।[1] इस विवरण से स्पष्ट है कि गोपियों मे कृष्ण के प्रति उत्कट प्रेम है। उनके इस प्रेम मे तीव्रता, दृढता और हृदय की सरलता है क्योकि जिन कुमारी गोपियों के मन मे केवल हरि-प्रेम है वे हेमत मे नियमपूर्वक यमुना जल में स्नान करके कात्यायनी देवी की पूजा करती है और अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए उससे प्रार्थना करती है।[2]

वस्त्रहरण लीला के प्रसग मे कवि ने गोपियो की उस अवस्था का चित्र अकित किया है जब कुमारी गोपियाँ कृष्ण के प्रति प्रेम भाव रखते हुए भी उसके निर्वाह मे कठिनाई अनुभव करती हैं। कृष्ण-प्रेम का व्रत लेने वाली समवयस्का समस्त गोपियो ने लज्जा त्याग कर दृढ व्रत का पालन किया। जब कृष्ण ने जल मे निपट नग्न होकर स्नान करने वाली गोपियो को बाहर आकर अपने वस्त्र लेने की आज्ञा दी तब उन्होंने बहु भाँति 'तन प्राण समर्पण' की बातें कही।[3]

शरद-रात्रि के रास वर्णन मे कवि ने मुरली का प्रभाव तथा गोपियो की कृष्ण-मिलन की आतुरता का जीता-जागता चित्र खींचा है। उसने गोपियों को 'पावस की नदी' तथा हरि को 'सागर' कहकर उनकी मिलनोत्कठा का वर्णन किया है।[4] कवि ने गोपियों के परकीया

मानहु चित्र पुतरिया परी। लागी गनै इउ पल घरी॥
यहि आसा करि रापै प्राना। साझ आइहै अथवत माना॥
हिलिमिलि कान्ह कथा सब कहही। गोधन आवन मारग चहही॥
+ + +
मोहन बन बांसुरी बजाइ। जनु गोपिन मोहनी लगाइ॥
हिलिमिलि गोपी हरि गुन गावहि। हरषि हरषि हरि रूप सुनावहि॥
सपी स्याम गावति है तरु तर। धन्य जन्तु तिनके बन ही घरु॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० २७-२८।

(ख) व्रजवनिता तन सुधि बिसराये। हेरहि नयन मन हरि मग लाये॥
जब लगि स्याम साझ घर आवहि। जुग भरि भामिनि जाम बितावहि॥
सपी धन्य पग मृग यहि कानन। द्रिग भरि पिवहि रूप हरि आनन॥
बेनु अधर धरि जब हरि गावहि। सब सुनि सुनि तन सुधि बिसरावहि॥

—वही, पृ० ३२।

[1] बजबासिन सुष हरि मुष देषे। और सकल सुष दुष सम लेषै॥

—वही, पृ० ३३।

[2] जिन जिन गोप कुमारिकन मन केवल हरि प्रेम।
मारग रितु हेमत ते गहे सो उठ करि नेम॥
एक बैस मति एक रति भजन कृस्न पद आस।
लछदास तिनने किये मज्जन व्रत उपवास॥

—वही, पृ० २८।

[3] तुरा तन प्रान समर्पन कीअस बहु भातिन्ह।

—वही, पृ० ११६।

[4] जिन जिन स्रवन परी कल तानै। तिनहि मनो आई सपी आनै॥
सुनत सुमुष हरषित सब धाई पावश नदी सिन्धु की नाई

भाव को समाप्त करने और अलौकिक वातावरण में पुष्टि देने के लिए एक गोपी की कथा दी है जिसमें उसके पति ने उसे कृष्ण के समीप जाने से रोक दिया। गोपी ने पुनः अनुनय-विनय की, किन्तु सब व्यर्थ। इससे गोपी को बहुत दुःख हुआ, उसने अपने (लौकिक) पति से कहा 'इस देह पर आपका स्वामित्व है। अब आप इसे 'हेम' से मढाकर रखें। लक्षदास, मैं अब सभी को त्याग उनसे (हरि से) जाकर मिलती हूँ। ऐसा कहकर उसने हरि की मूर्ति का हृदय में स्मरण किया और (जीवात्मा) परमात्मा में लीन हो गई जैसे पानी में पानी मिल जाता है।[1]

शरद् रात्रि में रास करने की अभिलाषिणी प्रेमातुर गोपियों को कृष्ण घर लौट जाने की सलाह देते हैं और परमेश्वर की पूजा की भाँति ही पति-पूजा करने का उपदेश देते हैं किन्तु गोपियाँ कृष्ण-प्रेम की तुलना में सुत, माता और पिता आदि सभी सम्बन्धियों के नाते को झूठा बताकर कृष्ण को ही सच्चा पति और साईं कहती हैं।[2] इस प्रसंग में गोपियों की भावप्रवणता, कोमलता और सच्चे प्रेम का पता चलता है।

रास प्रारम्भ करने के लिए सखियों सहित कृष्ण का समस्त समाज एकत्र हो जाता है तभी ललितादि सखियाँ राधा-कृष्ण का शृंगार करती हैं[3] और विविध वाद्यों से सुसज्जित होकर रास प्रारम्भ होता है।[4] इस रास रस को पूर्णता तक पहुँचाने के लिये सखियाँ राधा-

---

एकनि एक नैन दियो अन्जन। एक चली तजि पति मनरंजन॥
एकन तजी दुहावत गैया। एक देत तज्यो भोजन सैया॥
येक ठही गोदहु ते सुत डारे। उलटे पट भूषन न सुधारे॥
+ + +
गोपी गन पावस नदी *गोको कह्यो न प्रेम।
उमगि मिली हरि सागरहि नागर वर पद छेम॥ —कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० ३७।

[1] कन्त आपनी देह यह राखहु हेम मढाइ।
लक्ष सबहि तजि हरिहि मैं अबही मिलती हौ जाइ॥
यह कहि हरि मूरति उर आनी। जैसे गयो पानी मिलि पानी॥
—वही, पृ० ३७।

[2] सुतपति झूठे ग्रह तजि आई। तुम साचे पति सदा गोसाई।
देह ग्रेह पति पुत्र लो नेह न कहिये ताह।
तुम साचे वै देपियतु बादर कैसी छाह॥ —वही, पृ० ३९।

[3] लिये बिसाषा वसन विविध कर। चुनि चुनि पहिरावत चन्द्राकर॥
चम्पकलता आभरन लीन्हे। बासती सुगध सुघ दीन्हे॥
मधुरा मधुसीश्री सेवासन। अजन मनु रजनी प्रेमापन॥
पान प्रभावती रुची रचि बीरी। प्रेमा पानी करती विधि सीरी॥
चंदकला लिये चंदन बदन। सुपदा हास विलास हरष मन॥
चवर चातुरी रुचिरा माला। रचिनी चौसरा नैन बिसाला॥
गावती गर्वविका सरस सुर। विना वीन मृदग ताल कर॥
नवसत स्याम किये श्री स्यामा। असन सुगध पान अभिरामा॥
—वही, पृ० १०१।

[4] वही पृ० ४२

कृष्ण का विवाह करा देता है[1] कवि नक्षदास इस नित्य विहार लीला को अपना सर्वस्व मानते हैं।[2] जुगल किशोर लीला प्रसंग में राधा-कृष्ण की लीलाओं को उद्दीप्त करने के लिये सखियाँ दोनों का परस्पर मिलन कराती हैं। मेघावती तथा ललितादि सखियाँ इस कार्य में विशेष योग देती हैं।[3]

भ्रमरगीत प्रसंग में नक्षदास जी ने गोपियों की विरह व्याकुलता तथा कृष्ण के प्रति निश्छल प्रेम का अच्छा दिग्दर्शन किया है।[4] उद्धव के व्रजागमन की सूचना पाकर गोपियों को हर्ष होता है। वे उद्धव को आसन पर बिठाकर मण्डलाकार रूप में बैठ जाती हैं और अपने कृष्ण की कुशलता जानने के उद्देश्य से प्रश्नों की झड़ी-सी लगा देती हैं। गोपियों के इन प्रश्नों का व्यंग भी उनकी सरलता और ग्रामीणता का परिचय देता है। गोपियों का कहना है कि कृष्ण अब 'गोपीपति' के स्थान पर 'कुब्जा-कंत' कहलाने लगे। वे कंस को मारकर राजा हुए हैं, उन्हें छत्र तथा सिंहासन मिल गया है, भला अब वे ग्वाल कैसे कहला सकते हैं? कृष्ण के राजा होने से सभी उनके (कृष्ण के) सामने सिर झुकाते हैं। हम अहीर ग्वालिनों की अपेक्षा उन्हें अब निपुण नारियाँ मिल गई हैं।[5]

उद्धव ने योग का संदेश तथा निर्गुणोपासना की विधि गोपियों को समझाई किन्तु ये बातें गोपियों के गले नहीं उतरती हैं। गोपियों के विचार में यह उपदेश उनके लिए अधिक हितकर हो सकता है जिनका मन मोहन ने नहीं हर लिया है।[6] उनके तन-मन में तो कृष्ण

---

[1] नील पीत गहि अंचल छोर। दई ग्रंथि सपी जुगलकिशोर ॥
+ + +
मेघावती ब्याह विधि कीन्ही। प्रेम प्रीति रस भावरी दीन्ही ॥
ललितादिग मिलि मंगल गाए। रंग महल दम्पति चलि आए ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ९९।

[2] येही वीथी सरस वीआहु राम रस कीन्हेउ ।
रसीक अनन्य सेवकन्ही सब सुप दीन्हेउ ॥ —वही, पृ० ११७।

[3] वही, पृ० ९८ से १०० तक।
सखियाँ ललिता आदि प्रवीना। गही ताल मृदंग सुवीना।
+ + +
बिलसत रास विलास सरसाली। प्रति गोपी बिच बनमाली ॥
कुंडल कलित कीट बिराजै। कटि तट नील पीत पट राजै ॥
—वही, पृ० ११०-१११।

[4] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५० से ५४ तक, ११० से ११३ तक।
भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ८९-९०।

[5] गोपी पति नाम न भावै। अब कुब्जा कंत कहावै ॥
अब कंस मारि भे राजा। हैं छत्र सिंघासन छाजा ॥
अब कैसे ग्वाल कहावत। हौ भूप सबै सिरु नावत ॥
उह नारी निपुन तेइ नारी। हम गोउ अहीर ग्वारी ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५१।

[6] उपदेस होत हित ताके। मोहन मन हरे न जाके ॥
वही पृ० ५२

की लीलाओं की विविध शोभाएँ समाई हुई हैं। इसीलिए विरह व्याकुल गोपियाँ पागल-सी होकर आज भी कुंजों में, कदम्ब, गोचारण स्थान तथा यमुना पुलिन पर कृष्ण की विविध लीलाओं को स्मरण करती हुई घूम रही हैं।[1] वे कृष्ण की माखन चोरी, दही खाने तथा खरिक में गाय दुहने के कार्यकलापों की कथाएँ कहते हुए 'कान्ह कान्ह' कहकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। इस दशा को देखकर किसका हृदय न पसीज उठेगा ? पश्चात्ताप करते हुए उद्धव सोचने लगे कि गोपियों के हृदय की इस दशा को श्याम नहीं जानते अन्यथा वे इतने कठोर होकर मधुपुरी में न रह जाते।[2] गोपियों ने उद्धव से कहा कि कृष्ण को हमारी सब दशा सुनाना। अब तो उन्हें (मोहन को) वापस आकर 'कुंज केलि कलोल' तथा 'रास रस' करना चाहिये।[3] अन्त में उद्धव ने हरि चरणों का स्मरण किया और वे नेत्रों में अश्रु जल भर कर तथा ब्रज के लोगों की भेंटें लेकर चले। उद्धव ने कृष्ण के समीप जाकर ब्रजनारियों के प्रेम की प्रशंसा की।[4]

'कृष्णरससागर' में दिये गये 'भ्रमरगीत' के अन्तर्गत लछदास जी ने जो बारहमासा लिखा है वह अपूर्ण है उसमें आषाढ़, सावन और भादों में गोपी के हृदय की दशा का वर्णन किया गया है[5] किन्तु 'भागवतपुराणसार' में दिये गये 'बारहमासे' में १२ महीनों में विरहिणी गोपी के हृदय की दशाओं का अच्छा चित्रण किया गया है।[6]

गोपियों के सम्बन्ध में अन्तिम विवरण 'कुरुक्षेत्र कृष्ण ब्रजवासी समागम' प्रसंग में मिलता है जहाँ पर कृष्ण, राधा और ललितादि सखियों से मिलते हैं और उनमें परस्पर प्रेमालाप होता है। द्वारका के रनिवास ने इन गोपियों के प्रेम की प्रशंसा सुन रखी थी। गोपियों के इस प्रेम को जीवित रूप में उन्होंने यहाँ पर देखा। कृष्ण छिप-छिप कर इनसे मिलते थे।[7]

---

1 स्याम विरह मदिरा की माती। डोलत एक एक रंग राती।।
— कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ५३

2 यह कहत प्रेम मद भरी। कहीं कान्ह-कान्ह छिति परी।।
देखि दसा ऊधो पछिताने। यह मनो स्याम नहिं जाने।।
इनहिं छोड़ि मधुपुरी गए। कोमल कठोर अति भए।।
—वही, पृ० ५३

3 तुम हरि सेवक उपकारी। कहियो सब दसा हमारी।।
प्रभु पूरनता समुझाइ। बिना नीर मीन कह जाइ।।
+ + +
कुंज केलि कलोल मोहन रास रस पुनि कीजिये।। —वही, पृ० ११२

4 लै चले भेंट सदेस ऊधो नयन वर्षत वारि हो।
पाइ परि परि कही प्रभु सो धन्य ब्रज की नारि हो।।
—वही, पृ० ११२

5 कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११२

6 भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ६१।

7 नैन मन ब्रज बधू बतावत रसिक लाल तह तहं दुरि आवै
हस्तलिखित पृ० ८१

लक्षदास जी ने सखियों के साथ में राधा-कृष्ण के वसन्त फाग तथा हिंडोलना का सजीव वर्णन किया है जिसमें सखियाँ, राधा-कृष्ण की शोभा तथा उनकी रस-केलि की प्रशंसक और सहायक हैं।[१]

इसप्रकार कवि ने गोपियों के शांत, सरल, ग्रामीण रूप का प्रदर्शन करके बालक कृष्ण के प्रति उनके उत्कट प्रेम को विविध रूपों में दिखाया है। वे राधा-कृष्ण की रस केलि में सहायक हैं। कृष्ण के प्रति--उनका स्वकीया भाव है। वे उन्हें ही सच्चा पति स्वीकारती हैं।

रुक्मिणी

कवि लक्षदास ने रुक्मिणी की कथा सरल, मर्मस्पर्शी एवं रोचक शब्दों में कही है और उसकी मनोव्यथा का सजीव चित्र उपस्थित किया है। कवि ने रुक्मिणी चरित्र को भी 'नित्य विहार केलि' का ही अंग मानकर उसका वर्णन किया है।[२]

कुंदनपुर के राजा भीष्म की एकमात्र दुहिता रुक्मिणी का पत्र लेकर ब्राह्मण द्वारका जाता है और कृष्ण को रुक्मिणी की दशा बहुत ही मार्मिक शब्दों में सुनाता है जिसे सुनकर कृष्ण के नेत्रों में भी आँसू छलक आये। वे 'पीत वसन' से नयन पोंछने लगे और ब्राह्मण से धैर्यपूर्वक सारा वृत्त सुनाने को कहा। विप्र ने कृष्ण से सारी बातें इस प्रकार कहीं मानो विप्र की रसना में 'रुक्मिणी का वास' हो गया हो।[३]

लक्षदास जी ने रुक्मिणी के पत्र में कई स्थानों पर यह संकेत किया है कि कृष्ण भगवान् हैं और रुक्मिणी उनकी अनन्य संगिनी है। लौकिक दशा में तो वे दोनों पृथक् दिखाई देते हैं किन्तु अनंत वे दोनों एक ही हैं। रुक्मिणी कृष्ण को सर्वज्ञ, संकट मोचन, अशरण-शरण, अनाथों के नाथ आदि नामों के साथ स्मरण करती हुई[४] अपनी कष्ट-गाथा

---

[१] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११२ से ११५ तक।
भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ९१ से ९३ तक।
नागरी प्रचारिणी सभा काशी, याज्ञिक संग्रह की—
(क) पोथी संख्या ७३४ वेष्टन संख्या ४१, पृ० ३५
(ख) पोथी संख्या ७३४ वेष्टन संख्या ४२ पृ० ४७-४८

[२] कही भागवत करम कथा द्वारावती विलास।
नित्य विहारी केलि कै भरे हरिजस प्रकास॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५४

[३] हुती दसा जेहि राजकुमारी। समुझि विप्र द्रिग वर्षहि वारी॥
पीत वसन हरि पोछहिं नयना। धीरज धरहु कहहु द्विज बैना॥
+ + +
विप्र बचन हरि सो कहै ऐसे। रसना बसी रुक्मिणी जैसे॥
—वही, पृ० ५५

[४] स्वस्ति श्री स्वामी सब लायक। संकटमोचन भक्त सहायक।
असरन सरन अनाथनि नाथा। चरन तुम्हारे नावनि माथा॥
चक्र पानि गरुडासन स्वामी। कहा लिखौं प्रभु अंतरजामी॥
सदा सेवकनि को परनामा। प्रभु कल्पद्रुम पूरन कामा।
वही पृ० ५५

निवेदित करती है और इस पत्र को ही अपनी जन्मपत्रिका कहती है साथ ही वह जन्म जन्म हरि चेरी होने की घोषणा भी करती है। नगरवासी भी रुक्मिणी के कृष्ण चरण रत रहने की कामना करते हैं। साधु लोग रुक्मिणी और कृष्ण के 'संयोग' का आशीर्वाद देते हैं जिससे रुक्मिणी को कृष्ण के 'विरद' पर भरोसा हो जाता है।[1]

कवि ने रुक्मिणी को विनय सम्पन्न, सखी के वचन पर विश्वास करने वाली भगवद्भक्त और सरल शील स्वभाव की लौकिक नारी के रूप में चित्रित किया है।[2] रुक्मिणी नरपुंगव कृष्ण को केहरी मानकर अपनी रक्षा के लिए आमंत्रित करती है। उसे दुःख है कि काग हंसिनी को ले जाना चाहता है, श्वान केहरि के भाग को हर लेने को इच्छुक है, जिस प्रकार निंदक के मुख में श्रुति की दुर्दशा होती है, व्याध के हृदय में दया कहाँ? तब फिर क्षमा और क्रोध का सहनिर्वाह कैसे सम्भव है? वह विविध प्रकार से भगवान् की भक्त-वत्सलता तथा आर्त्तनाद पर सहायता करने की प्रवृत्ति की याद दिलाती है और उनके (कृष्ण के) विलम्ब से आने पर 'दासी की दशा को सुनकर पछताने' का संकेत करती है। रुक्मिणी इस निश्चय के साथ अपना दिल खोलकर रख देती है—'प्रभु यदि मैं इस देह को त्याग कर मर जाऊँगी तो भी पुनः जन्म धारण करने पर तुम्हारा ही वरण करूँगी।[3] अन्त में वह शर्म त्याग कर अपने हरण का उपाय पत्र में लिख देती है।[4]

शिव मंदिर में जाकर रुक्मिणी वेद-विधि से पूजा करती है और शंकर और गौरी से कृष्ण को पति रूप में पाने की प्रार्थना करती है। वह गौरी-गणेश को 'मनसा' स्मरण

---

[1] है यह जन्मपत्रिका मेरी। रुकुमिनी जन्म जन्म हरि चेरी ॥
अजहु विप्र बुध सब यह कहै। रुकुमिनी कृष्न चरन रत रहै ॥
नग्र लोग सब यहै मनावैं। रुकुमिनि कृष्न व्याह मिलि गावैं ॥
साधु लोग आसिष दे कहै। मोहि विरद भरोसो अहै ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५६

[2] जदपि हौं नहि दासी लायक। तुम समर्थ प्रभु दीन सहायक ॥
+ + +
दासी के वदन भल मानो। मातुल कंस नृपति रिपु जानो ॥
राधा कथा कहत प्रथ्वीतल। पाये जूठे सेबरी के फल ॥
बधि रावन प्रभु सिया लै आये। मोते सतत गीत सुनाये ॥
नाथ मोहु जो तब व्रत-कीन्हौ। संजम नेम दान कछु कीन्हौ ॥
सुनिये विनती अधम उधारन। तुम्हरे चरन कमल के कारन ॥ —वही पृ० ५६

[3] प्रभु जो चाहे हंसनी कागु। स्वान हरै केहरि का भाग ॥
प्रभु निंदक के मुख श्रुति जैसे। व्याधहि हृदय दया कहौ कैसे ॥
कैसे छमा क्रोध को साथा। लीपी ढिठाई छमि है नाथा ॥
सदा सेवकी चरनन कीहौ। नाथ असुर नहि आवत जीहौ ॥
दासी दसा सुनत पछितैहौ। यह सुनि नाथ बेलंब जो लैहौ ॥
प्रभु जो यहै देह तजि मरिहौ। और देह धरि तुमही वरिहौ ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५६

[4] जेहि विधि प्रभु को दरसन पैहौ। सरम छाडि सो मरम सुनैहौ ॥
—वही, पृ० ५७

करके अपने कार्य की सिद्धि के याचना करती है[1] ठीक उसीप्रकार जैसे रामचन्द्र जी को वर-रूप में प्राप्त करने के लिए सीताजी ने की थी।

'रुक्मिणी-कृष्ण' की बिहार लीलाओं का वर्णन करने में कवि ने रुक्मिणी की सरलता और हृदय की पवित्रता का दिग्दर्शन कराया है। एक दिन कृष्ण ने विनोदवश रुक्मिणी से कहा—'तुमने मेरा वरण करके भूल की क्योंकि यावज्जीवन हम ग्वाल-अहीर रहे। हम न नृप है न कुलीन, हमारे तो मित्र भी दीन हैं। तुमने बन्दीजनों से बढ़ाचढ़ाकर की गई मेरी प्रशंसा सुनी। इसी से तुम 'बहक' गई। बन्दीजनों का तो स्वभाव ही सरसों को सुमेरु बताने का होता है। अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है। तुम सोच समझ कर शिशुपाल को वरो और रानी होकर सुख भोग करो।' रुक्मिणी ने कृष्ण की इन बातों को विनोद नहीं समझा, वह अस्तव्यस्त होकर मूर्च्छित हो गई।[2] रुक्मिणी की ऐसी दशा देखकर हरि को उसकी प्रीति-रीति का विश्वास हुआ। उन्होंने कहा—'मैंने तो 'सुख हाँसी' की थी।' जब रुक्मिणी ने यह समझ लिया कि यह तो हरि का केवल विनोद मात्र था तो उसने सर्वसमर्थ, सर्वव्यापक, निराकार, सर्वज्ञ और आदिकर्त्ता ब्रह्म के रूप में कृष्ण की कीर्ति का वर्णन किया। रुक्मिणी ने स्वयं को 'रमा' कह कर सदा कृष्ण-चरणों में लवलीन होने की बात कही।[3] कवि ने रुक्मिणी को कृष्ण की प्रेमिका नहीं, बल्कि भारतीय पतिव्रता नारी के रूप में चित्रित किया है जिसके लिए पति ही परमेश्वर होता है। रुक्मिणी कहती है—'नर, सुर पन्नग' सभी 'नट के नाच' में भ्रमित है। इस संसार में कृष्ण ही सत्य है, शेष सब मिथ्या।[4]

कवि ने गर्भिणी रुक्मिणी की शारीरिक एवं मानसिक दशा का अच्छा वर्णन किया है। कृष्ण रुक्मिणी से मिट्टी खाने का कारण पूछते है और अपनी कामना सफल करने के लिए कहते है। वे रुक्मिणी से ही इस बात (गर्भ धारण करने) की पुष्टि करने के लिए सौगन्ध दिलाकर पूछते है। रुक्मिणी ने भारतीय नारी की मर्यादा के अनुकूल हँसकर अपना मुँह छिपा लिया। कृष्ण वस्तुस्थिति समझ गये।[5]

---

[1] पंच सुधा मजनु करवावो। गौरी गनेस संभु हनवावो॥
धूप दीप नैवेदि करी सब। पूजा वेद विहित जैसे जब॥
अछत बेल पत्र बहु फूल। सकल सुगंधनि सहित दुकूल॥
संकर गौरि हरन जम सूल। सहित गनेस होहु अनुकूल॥
तुमही मैं पुनि सदा मनावौ। संकर गौरि कृस्न बरु पावौ॥
गौरि गनेस कहो मनसा हर। कुंवरि प्रसाद सिधि तेरे कर॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५८।

[2] कृष्णरससागर, (हस्तलिखित), पृ० ६०।

[3] तुम जो कहो हौ स्रुमति हीना। रमा सदा चरनन लौ लीना॥
—वही, पृ० ६१।

[4] चरन तुम्हारे पर सब वारौ। हौ चरनन तन सदा विहारौ॥
नर सुरपन्नग सब नटु नाचु। सब मिथ्या प्रभु तुम ही साचु॥
प्रभु अब यह प्रसाद मोहि दीजै। निजु चरनन की दासी कीजै॥
—वही, पृ० ६१।

[5] लरिकाई हम माटी पाई। जसुमहि त्रिभुवन छवि देखराई।
तुम काई अब करहु कामना सफल हमारा

कवि ने रुक्मिणी के मातृत्व का भी सुन्दर तथा सम्यक रीति से चित्रण किया है। जब प्रद्युम्न शम्बर-वध करके रति को साथ लेकर द्वारका वापस आये तब रुक्मिणी के नेत्रों में हर्ष-शोकाश्रु भर आये और कुचों से प्रेम-पय बहने लगा। इसी समय नारद जी ने आकर प्रद्युम्न और रति की सारी कथा सुनाई। रुक्मिणी का मातृत्व साकार रूप में प्रकट हो गया। उसने अपने अंचल से प्रद्युम्न का मुख पोंछा और उसे हृदय से लगाकर पयपान कराया। इससे रुक्मिणी की सरलता, निश्छलता और मातृत्व भावना की महत्ता प्रकट होती है। उसने अर्घ्य, आरती तथा मंगलाचार करके जन्म-छठी तथा विवाहादि के संस्कार सम्पन्न किये और विप्रों को विविध प्रकार से दक्षिणा दी।[1]

कुरुक्षेत्र 'कृष्ण व्रजवासी समागम' प्रसंग में भी कवि ने रुक्मिणी की सरलता का परिचय दिया है। वह राधा की प्रीति का रहस्य समझने में असमर्थ है। इसीलिए वह कृष्ण से राधा को दिखाने की प्रार्थना करती है। कभी रुक्मिणी राधा के स्थान पर मिलने जाती हैं और कभी राधा रुक्मिणी के। इस पारस्परिक प्रेम-भाव से दोनों की आन्तरिक भावनाओं के सम्मिलन का भाव प्रकट होता है।[2] अन्त में रुक्मिणी तथा सत्यभामा आदि आठों रानियों ने कृष्ण एवं राधा का शृंगार किया। रुक्मिणी के चकोर नयन युगलकिशोर की शोभा को देखते ही रह गये। राधा में हरि और हरि में राधा प्रतिबिंबित हुई। यह 'युगल मिलन' युगों का है, इसमें कोई बाधा नहीं पड़ सकती।[3]

भारतीय गृहस्थ नारी के समस्त गुणों का प्रतिनिधित्व करने वाली भक्ति-भावना-समन्वित एवं विनयशील-सम्पन्न रुक्मिणी का चरित्र कवि ने मर्यादा की सीमा में अंकित

\+ \+ \+

प्रभु दृष्टी निज माहि दिखाई। बिहसि रुकुमनी बदन दुराई॥
रुकुमनि सुन्दर चतुर सुजाना॥ –

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ६२

1 रुकुमिनि हरष सोच भरि आयो। रोवतु करत निजु सपन सुनायो॥

\+ \+ \+

दोऊ सोच सकुचे कोउ हरै। रुकमिनि कुचन प्रेम पै बरषै॥
तेहि औसर नारद मुनि आये। रुकुमिनि कृस्नहि भेद सुनाये॥

\+ \+ \+

मुख पोछि अंचल उर लावै। जननी जानि सुत पान करावै॥
अरघ आरती मंगल चारा। छठी बार हो सब ब्योहारा॥
जोगा जन्म ब्याह की कीन्ही। बिप्रन बिबिधि दछिना दीन्ही॥

—वही पृ० ६८।

2 हमहु श्रीराधा दिखरावौ। जिनके मिले इतो रसु पावौ॥
कबहुक वे उनके घर आवे। कबहुक वे उन्हे मिलन सिधावै॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ८१

3 अष्ट नारि रुकुमिनि सतिभामा। किये शृंगार दोऊ श्री स्यामा॥

\+ \+ \+

निरखि रहे जुगलकिशोर किन रुकमिनी नयन चकोर
राधा में हरि हरि में राधा जुग जुग मिलन नहीं बाधा वही पृ० ८२

किया है। रुक्मिणी का यह आदर्श रूप कृष्ण तथा राधा के चरित्र पर और भी प्रकाश डालता हुआ भारतीय रमणी के हृदय की विशालता और उदारता का सफल परिचायक है।

वसुदेव-देवकी

वसुदेव-देवकी कृष्ण के वास्तविक पिता-माता हैं। कंस ने उन्हें कारागृह में बन्द कर दिया क्योंकि आकाशवाणी से कंस को ज्ञात हुआ कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न आठवाँ बालक उसका (कंस) काल होगा। कंस ने देवकी का वध करना चाहा। वसुदेव ने नीतियुक्त वचन सुनाकर कंस को समझाया और देवकी से उत्पन्न संतान कंस को देने का वायदा किया।[1] इस प्रकार वसुदेव के विवेक और समयोचित विचार ने देवकी की प्राण-रक्षा की।

वसुदेव प्रतिज्ञापालक, नीतिज्ञ, विवेकी और ज्ञानी भक्त हैं। वे अपने दिए हुए वचन के अनुसार देवकी की प्रथम संतान कंस के हाथ में दे देते हैं किन्तु कंस उस संतान को वापस कर देता है। वसुदेव बालक को लेकर घर वापस आते हैं, नारियाँ मंगल गान करती हैं तो वसुदेव कंस के वचनों पर अविश्वास करके मंगल कार्य करने से रोकते हैं।[2] यह वसुदेव की बुद्धिमत्ता एवं उनके विवेक का प्रमाण है।

भगवान् विष्णु वसुदेव-देवकी को कारागार में ही चतुर्भुज रूप में दर्शन देते हैं। उनके दर्शन करके भीत (वसुदेव-देवकी) अभीत हो गए। भगवान् ने वसुदेव-देवकी से कहा—'तुम लोगों ने मेरे लिये लगकर तप किया है इसलिए मैं यह जन्म तुम्हारे यहाँ पर ही लूँगा। भगवान् ने अपने पिछले अवतारों का विवरण देते हुए वसुदेव से गोकुल में उत्पन्न 'माया' को लाने को कहा।[3]

वसुदेव बालक कृष्ण को गोकुल ले गये और उन्हें यशोदा के समीप लिटाकर सद्य प्रसूता बालिका को लेकर मथुरा वापस लौटे। प्रातःकाल यह कन्या भी कंस को दे दी गई। कंस उसे मारने को उद्यत हुआ किन्तु वह उसके हाथ से छूट कर अष्टभुज रूप धारण करती आकाश में चली गई। उसने आकाशवाणी से कंस को प्रबुद्ध किया—'बहिन के पुत्रों के हत्यारे कंस तेरा काल प्रकट हो गया है।' इस सूचना से कंस भयभीत हुआ, उसने वसुदेव-देवकी से अपने कृत्य की क्षमा माँगी। इस विवरण से स्पष्ट है कि वसुदेव अपने वचनों का

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १२।

[2] लै बालक वसुदेव घर आये। रहसत नारिन मंगल गाये॥
वसुदेव कहो मंगल ना कीजै। कहा कंस के बचन प्रतीजै॥

—वही, पृ० १३

[3] वसुदेव देवकी सों कह्यो तुम मोहि लगि तप कीन।
जननी पितु यह जन्म मैं आइ तुम्हारे लीन॥
प्रथम गर्भ वावन भयो बलिजन जस के कार।
रामचन्द्र भुव भार हरि तीजो यह अवतार॥
माया प्रगटी गोकुला सो लावहु यहि काज।
वेगि व्रजहि ल आहु पिस मरो रापद समाज

—वही, पृ० १३-१४

पालन करने वाले और क्षमा प्रदान करने वाले हैं। कंस के इस कृत्य को वे भाग्यचक्र ही मानते हैं।[1]

वसुदेव ज्ञानी, विचारक और सच्चे मित्र हैं। जब नंद मथुरा आते हैं तब वे (वसुदेव) उन्हें बालकों के प्रति कंस की दुष्टतापूर्ण भावनाओं तथा भावी अनिष्ट की आशंकाओं से सावधान रहने और शीघ्र ही गोकुल वापस जाने का परामर्श देते हैं।[2]

इसके अतिरिक्त 'रुक्मिणी चरित्र' प्रसंग में वसुदेव-देवकी के दर्शन होते हैं। जब कृष्ण रुक्मिणी को लेकर घर जाते हैं तब देवकी का मातृत्व सहज ही जागृत हो जाता है। वह हर्षित होकर 'आरती' लेती है और दुलहिन को निरखकर 'निहारिन' करती हुई अर्घ्य देकर भवन में ले आती है।[3] कवि ने यहाँ पर देवकी को साधारण हिन्दू महिला के रूप में अंकित किया है जिसका हृदय वधू के आगमन पर प्रफुल्लित हो उठता है।

रुक्मिणी के पुत्र जन्म पर वसुदेव-देवकी का हृदय पौत्र-सुख दर्शन की लालसा से प्रमुदित हो जाता है। वसुदेव जी ज्योतिषियों से पूछकर 'जाति कर्म विधि' करते हैं। अंत में जब शम्बर वध करके प्रद्युम्न रति के साथ वापस आते हैं तब भी वसुदेव-देवकी के हर्ष की कोई सीमा नहीं रहती।

'कुरुक्षेत्र में कृष्ण ब्रजवासी समागम' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने वसुदेव-देवकी को भी कृष्ण-बलराम तथा द्वारका के समस्त समाज के साथ कुरुक्षेत्र जाने का वर्णन किया है।[4] यहाँ पर वसुदेव एक यज्ञ करने का विचार करते हैं और विप्रों से इस सम्बन्ध में परामर्श करते हैं।[5] जब मुनिगण कृष्ण के दर्शनार्थ आते हैं तब वसुदेव के यज्ञ करने के संकल्प को सुनकर उनकी सरलता तथा कृष्ण के प्रति 'पुत्र भाव' के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हैं। वसुदेव बिना हरि महिमा को जाने हुए मुक्ति प्राप्त करने के यत्न मुनियों से पूछते हैं।[6]

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४४।

[2] वसुदेव कही नंद सों ताता। महाघोर कछु है उतपाता ॥
गवहि निध कैं वेगि सिधावहु। कंस कुमति है नेक मन लावहु ॥

—वही, पृ० १७

[3] हरषि देवकी आरति लीन्ही। दुलहिन निरखि निहारिनि कीन्ही ॥
\+ \+ \+
अर्घ देत भवनहि लै आई। सब सुख सपनि नै दो माई ॥

—वही, पृ० ५६

[4] वही, पृ० ८०

[5] वसुदेव के मन यह आनो। विप्रन पूछ जज्ञ तह ठानो ॥

—वही, पृ० ८१

[6] मंजन भोजन विविधि कराये। वसुदेव पाइ परि वचन सुनाये ॥
उरिन देवतन होइए कैसे। देव मुक्ति पाइ पुनि जैसे ॥
माया मगन भवन सुत दारा। कैसे होन्हि रिपै भव पारा ॥
\+ \+ \+
वसुदेव हरि महिमा बिन जाने मुनिन समुझि जनन बपाने ।

वही पृ० ८२

अंत मे वसुदेव वेद विहित यज्ञ करते है और विनीत होकर द्विजो को दान तथा व्रजवासियो को धेनु, भूमि, गज, बाजि, अमूल्य पहरावे तथा भूषण देते है।[1]

लक्षदास जी ने वसुदेव-देवकी को आदर्श गृहस्थ के रूप मे चित्रित किया है। कृष्ण को गोकुल ले जाने के समय से लेकर कृष्ण-रुक्मिणी परिणय तथा शम्बर वध के बाद प्रद्युम्न-रति के वापस लौटने के प्रसगो मे कवि ने वसुदेव-देवकी को पूर्णत लौकिक दम्पति के रूप मे चित्रित किया है। कुरुक्षेत्र मे वसुदेव के यज्ञ कराने के विचार पर मुनियो के द्वारा व्यक्त किये गये संकेत इस बात की पूर्णतया पुष्टि करते है।

---

[1] वसुदेव वेद-विहित मख कीन्हो। दान विनीत द्विजन्ह कह दीन्हो।
+ + +
ह प्रगन व्रज जन पहिराय भूषन वसन अमाल सुहाय

कवि लक्षदास का काव्य सौष्ठव

लक्षदास जी की रचनाएँ—फुटकर पदों तथा कवित्तों के रूप में मिलने वाली रचनाओं के अतिरिक्त लक्षदास जी के दो ग्रंथ ही हस्तलिखित पोथियों के रूप में मिलते हैं—कृष्णरस-सागर तथा भागवतपुराणसार। इन्हीं दोनों ग्रंथों में हमारे आलोच्य कवि की अन्य रचनाएँ भी संकलित मिलती हैं। (अध्याय ३ में इनका विवरण दिया जा चुका है।) इनमें कृष्ण-जन्म के पूर्व की परिस्थिति से लेकर द्वारकावास तक की कथा उपलब्ध होती है जिसे कवि ने भागवत और जैमिनीयाश्वमेध पर्व के आधार पर लिखा है और महाभारत के आधार पर भी यत्र-तत्र कुछ प्रसंग ग्रहण किये हैं। इनमें से कृष्ण से सम्बन्धित कथा तो प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखी गई है और अन्य कथाएँ खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य तथा गेय पदों के रूप में मिलती हैं। इन रचनाओं का श्रेणी-विभाजन करना कठिन-सा है क्योंकि इनमें दिये गये कथानक, विषय वस्तु तथा शैली के तत्व खण्डकाव्य, चरित काव्य, कथा और मंगल काव्य आदि के तत्वों को समान रूप से स्पर्श करते हुए चलते हैं, फिर भी हमने अपनी सुविधा के लिये, इनका वर्गीकरण कर दिया है। कवि-रचित उपलब्ध समस्त रचनाएँ इन शीर्षकों के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं :

(१) **प्रबंध काव्य** – भागवतपुराणसार— जिसमें कृष्ण-जीवन से सम्बद्ध कथाएँ मिलती हैं।

(२) **खण्ड काव्य** – (क) **चरित काव्य** —(१) ध्रुव चरित्र, (२) अम्बरीष चरित्र, (३) प्रह्लाद चरित्र, (४) सुदामा चरित्र, (५) द्रौपदी चरित्र।

(ख) **कथा, उपाख्यान और ज्ञानवार्ता** – (१) गजराज संकट मोचन, (२) जरासंध वध की कथा, (३) चन्द्रहास की कथा, (४) हंसध्वज की कथा (५) मयूरध्वज की कथा, (६) जड़ भरतोपाख्यान, (७) दत्तात्रेय यदु संवाद, (८) मोहांध दीप, (९) सुख ज्ञान।

(ग) **मंगल काव्य**— (१) रुक्मिणी चरित्र, (२) जुगलकिशोर लीला (३) गेय पदों में राधा-कृष्ण विवाह वर्णन।

(३) **मुक्तक रचनाएँ**—(क) **स्तोत्र एवं स्तुति काव्य**—(१) भक्तवत्सल भगवान की स्तुति, (२) मंजुमुक्तावली, (३) रत्ननाम स्तोत्र, (४) [illegible] स्तोत्र, (५) हरिहर नामावली, (६) पावन लीला, (७) विनय के पद।

(ख) **शृंगार काव्य एवं भावनापरक गीतिकाव्य**— (१) वृन्दावन विहार वर्णन (२) बरवै छन्दों में कृष्ण की लीला, (३) उद्धव के बरवै, (४) वन विहार, (५) वसन्त-फाग और हिंडोलना के पद, (६) भ्रमरगीत, (७) बारहमासा, (८) सगुणोपासना के कवित्त, (९) दोहावली के भक्ति भावना-परक दोहे (१० नीतिपरक दोहे (११) आत्म प्रबोध दैन्य और

पाखण्ड खण्डन आदि के दोहे (१२) बारह वन वर्णन (१३) कृष्ण के बाल-लीलाओं में सम्बन्धित गेय पद।

प्रबंध काव्य का स्वरूप— प्रबन्ध काव्य के दो भेद माने जाते है—प्रबन्ध और मुक्तक। क्रमबद्ध वर्णन से सम्बद्ध कथासूत्र का अनवरत निर्वाह प्रबन्ध काव्य कहलाता है। विषय के परिमाण के आधार पर प्रबन्ध काव्य के दो भेद किये गये है—(१) महाकाव्य और (२) खण्डकाव्य।

महाकाव्य प्रबन्ध काव्य का मुख्य रूप है। काव्य के विविध रूपों मे महाकाव्य का स्थान सबसे ऊंचा है। महाकाव्य व्यक्तिपरक न होकर सामाजिक जीवन के विविध अंगो पर प्रकाश डालता है। उसमे जातीय जीवन के चित्र प्रस्तुत किये जाते है। महाकाव्य मे इतिहासप्रसिद्ध कथानक के आधार पर किसी लब्ध-प्रतिष्ठ महान् व्यक्ति का चरित्र—एक व्यक्ति विशेष के रूप मे नहीं अपितु समाज या जाति के प्रतिनिधि के रूप मे—अंकित किया जाता है जिसमे उसके जीवन का सर्वांगीण चित्र होता है। देश और काल-भेद से महाकाव्य की परिभाषा तथा उसके स्वरूप मे निरन्तर परिवर्तन होता रहा है अतः साहित्याचार्यों के द्वारा निश्चित किये गये इसके मानदण्ड स्थिर नही रह सके फिर भी महाकाव्य के आन्तरिक सामान्य तत्वों और उसकी बाह्य विशेषताओं के आधार पर जो लक्षण निश्चित किये गये है उनको दृष्टि मे रखते हुए हम भारतीय साहित्याचार्यों के मत का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेंगे।

भामह— भामह ने अपने ग्रथ 'काव्यालंकार' में महाकाव्य को सर्गबद्ध, बड़े आकार का, उत्कृष्ट शब्द चयन और अप्रस्तुत विधान, महान चरित्रों पर आश्रित कथा तथा नाटक की संधियों और कार्यावस्थाओं के निर्वाह से युक्त होना चाहिए, ऐसा माना है। भामह महाकाव्य मे व्याख्या की अधिकता को उचित नहीं मानते। इसीलिये उन्होंने ग्राम्य शब्दों के प्रचुर प्रयोग से युक्त, अनलंकृत, सर्गबद्धता रहित और महान् नायक से रहित लोक गाथाओं को महाकाव्य नहीं कहा।[1] भामह ने यह परिभाषा सम्भवतः रामायण और महाभारत की पद्धति पर लिखे गये अन्य महाकाव्यों को देखकर निश्चित की होगी। दुर्भाग्य है कि ये ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है। भामह की इस परिभाषा मे महाकाव्य के प्रधान तत्वों की ओर ही सकेत है, उसके वाह्य लक्षणों की ओर नहीं।

दण्डी— काव्यादर्श मे दण्डी ने भामह के द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के सभी नियमों को अपनी परिभाषा मे समाविष्ट करके उसके स्थूल नियमों को और भी स्पष्ट करने की चेष्टा की है।[2] इस प्रकार दण्डी ने अलंकृति और चमत्कार को महाकाव्य का प्रधान लक्ष्य

---

[1] सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालंकारं सदाश्रयम्॥
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्।
पञ्चभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्॥

—काव्यालंकार १।१९,२१

[2] सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥ १४

बना दिया और महान् चरित्र के स्थान पर चतुरोदात्त नायक शब्द का प्रयोग करके चमत्कार और रसानुभूति को प्रधानता दी जिसका यह फल हुआ कि परवर्ती काल के दरबारी कवियों ने अर्थ और काम को प्रधानता देकर महाकाव्य लिखने प्रारम्भ किये, इसलिए महाभारत और रामायण कवियों के आदर्श महाकाव्य न रहे बल्कि आलंकारिक ग्रंथों के प्रणयन की प्रचुरता होने लगी। दण्डी के काव्यादर्श ने परवर्ती कवियों को इतना प्रभावित किया कि बाद के महाकाव्य दण्डी के द्वारा निर्धारित लक्षणों पर ही रचे गए प्रतीत होते हैं।[1]

रुद्रट —भामह और दण्डी के समय में जो परम्परा संस्कृत महाकाव्यों के माध्यम से प्रकट हुई थी वह प्राकृत और अपभ्रंश के महाकाव्यों के समय तक पूर्णतः बदलने लगी अतः रुद्रट ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के निर्दिष्ट मार्ग को स्वीकारते हुए अपने ग्रंथ काव्यालंकार में महाकाव्य की एक नई परिभाषा निश्चित की।[2] उन्होंने नायक और प्रतिनायक का वर्णन करके उनके पारस्परिक युद्ध और अंत में नायक की विजय को महत्व देने की बात कही है, उसमें इन कथाओं में अवान्तर कथाओं का होना भी एक आवश्यक लक्षण बताया है। अन्य

इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्तनायकम् ॥१५॥
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनैः ।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः ॥१६॥
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि ॥१७॥
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम् ।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः ॥१८॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम् ।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलङ्कृति ॥१९॥

—काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद ।

[1] हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास — डा० शम्भूनाथसिंह, १९५६, पृ० ८० ।

[2] सन्ति द्विधा प्रबन्धा काव्यकथाख्यायिकादयः काव्ये ।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि ॥२॥
तत्रोत्पाद्या येषां शरीरमुत्पादयेत्कविः सकलम् ।
कल्पितयुक्तोत्पत्तिं नायकमपि कुत्रचित्कुर्यात् ॥३॥
पञ्जरमितिहासादिप्रसिद्धमखिलं तदेकदेशं वा ।
परिपूरयेत्स्ववाचा यत्र कविस्ते त्वनुत्पाद्या ॥४॥
तत्र महान्तो येषु च विततेष्वभिधीयते चतुर्वर्गः ।
सर्वे रसाः क्रियन्ते काव्यस्थानानि सर्वाणि ॥५॥
ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात् ।
असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकरसयुक्ताः ॥६॥
तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये ।
कुर्वीत तदनु तस्यां नायकवंशप्रशंसां च ॥७॥
तत्र त्रिवर्गसक्तं समिद्धशक्तित्रयं च सर्वगुणम् ।
रक्तसमस्तप्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत्

बात उन्होंने दण्डी के समान ही रखी। रुद्रट ने महाकाव्य की परिभाषा का क्षेत्र व्यापक बनाया और उसमें युग जीवन के विविध रूपों और घटनाओं का विस्तार से विवेचन किया जिसका परिणाम यह हुआ कि दरबारी कवियों को, इस परिभाषा की मान्यता स्वीकारने पर, इस शैली में काव्य रचना करना कठिन हो गया। रुद्रट ने महाकाव्य को केवल अलंकृत महाकाव्य ही नहीं माना और न उसकी रूढ़ियाँ ही स्थिर कीं। उन्होंने तो महाकाव्य के चार प्रधान लक्षण माने—महदुद्देश्य, महच्चरित्र, महती घटना और समग्र जीवन का रसात्मक चित्रण। इतना ही नहीं उन्होंने महाकाव्य में अलौकिक और अतिप्राकृत तत्वों का समावेश करते समय मानव की सीमित शक्ति को ध्यान में रखने की सलाह दी है और मानव की शक्ति से परे होने वाले असम्भव कार्यों को उसमें सम्मिलित न करने को कहा है। ऐसे असम्भवप्राय कार्यों को यदि कराना ही हो तो देवतादि की सहायता से कराना चाहिए।[1]

हेमचन्द्र—प्रसिद्ध कवि एवं वैयाकरण आचार्य हेमचन्द्र ने १२वीं शताब्दी में अपने ग्रंथ 'काव्यानुशासनम्' में महाकाव्य की एक नई परिभाषा दी[2] जो प्रायः दण्डी के द्वारा

विधिवत्परिपालयतः सकलं राष्ट्रं च राजवृत्तं च।
तस्य कदाचिद्दूतेन शरदादि वर्णयेत्समयम् ॥९॥
स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादि साधयिष्यतस्तस्य।
कुल्यादिस्खलनं प्रतिपक्षं वर्णयेद्गुणिनम् ॥१०॥
स्वचरात्तद्दूताद्वा कुतोऽपि वा शृण्वतोऽरिकार्याणि।
कुर्वीत सदसि राज्ञः क्षोभं क्रोधेद्धचित्तगिराम् ॥११॥
संमन्त्र्य समं सचिवैर्निश्चित्य च दण्डसाध्यतां शत्रोः।
न दापयेत्प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेन्मुखरम् ॥१२॥
अथ नायकप्रयाणे नागरिकाक्षोभजनपदाद्रिनदीः।
अटवीकाननसरसीमरुजलधिद्वीपभुवनानि ॥१३॥
स्कन्धावारनिवेशं क्रीडां यूनां यथायथं तेषु।
रव्यस्तमयं सन्ध्यां सतमसमथोदयं शशिनः ॥१४॥
रजनीं च तत्र यूनां समाजसङ्गीतपानशृङ्गारान्।
इति वर्णयेत्प्रसङ्गात्कथां च भूयो निबध्नीयात् ॥१५॥
प्रतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखममृष्यमाणमायान्तम्।
अभिदध्यात्कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वापि ॥१६॥
योद्धव्यं प्रातरिति प्रबन्धमधुपानि निशि कलत्रेभ्यः।
स्वप्ने विस्रम्भकमान्सन्देशान्दापयेत्सुभटान् ॥१७॥
सन्नह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यमानयोरुभयोः।
कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायकस्यान्ते ॥१८॥
सर्गाभिधानि चास्मिन्नवान्तरप्रकरणानि कुर्वीत।
सन्धीनपि संश्लिष्टांस्तेषामन्योन्यं सम्बन्धात् ॥१९॥

—काव्यालंकार, षोडशोऽध्याय।

[1] वही, अध्याय १६, श्लोक ३७, ३८।

[2] पद्यं प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नान्त्यवृत्तसर्गाश्वाससन्ध्यवस्कन्धकबन्धं सत्सन्धिशब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्।

काव्यानुशासन आठवाँ अध्याय

निर्दिष्ट लक्षणों पर ही आधारित है। आचार्य हेमचन्द्र ने दण्डी की परिभाषा को कुछ और व्यापक रूप दिया और लक्षणों का विभाजन करके रसानुरूप सदर्भ, अर्थानुरूप छन्द और समस्त लोकरंजकता आदि को भी आवश्यक माना, किन्तु विचारणीय है कि ये महाकाव्य के नहीं, काव्यमात्र के लक्षण है। उन्होंने भी रुद्रट की भाँति जीवन के व्यापक अनुभवों और युग के सम्पूर्ण चित्र को भी महाकाव्य में समाविष्ट करने का निर्देश किया है। यद्यपि वे संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा से अधिक प्रभावित थे किन्तु उन्होंने प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्य भाषाओं में भी महाकाव्य का होना स्वीकार किया। उनके समय में प्राकृत और अपभ्रंश के कुछ महाकाव्य भी प्रसिद्ध हो चुके थे। उन्होंने महाकाव्य के सर्गों के निर्धारण में बताया है कि संस्कृत में सर्गबन्ध, प्राकृत में आश्वासकबंध अपभ्रंश में सन्धिबंध और ग्राम्यापभ्रंश में अवस्कंधक बन्ध कहलाते है। उन्होंने प्रत्येक सर्ग में आद्यन्त एक ही छन्द, कहीं-कहीं छंद को बदलने तथा सर्गों में भिन्न-भिन्न छंदों के प्रयुक्त किये जाने की रूढि को स्वीकार किया है।

विश्वनाथ कविराज— विश्वनाथ कविराज ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का समाहार करके और दण्डी के 'काव्यादर्श' को आदर्श मानकर महाकाव्य के सम्बन्ध में मान्यताएँ निश्चित की[1] जिसके अनुसार उन्होंने संस्कृत के प्रख्यात तथा प्राकृत-अपभ्रंश के सामान्यतः उपलब्ध महाकाव्यों का स्वरूप निर्धारित किया। वस्तुतः विश्वनाथ कविराज ने महाकाव्य की परिभाषा निश्चित करने में कोई मौलिक मान्यता प्रस्तुत नहीं की बल्कि दण्डी के बताये गये नियमों का बाह्य स्वरूप निर्धारण ही किया और महाकाव्य में आठ सर्गों का होना आवश्यक माना। इसीप्रकार विश्वनाथ ने छंद के प्रयोग के सम्बन्ध में भी अपना मत

---

[1] सर्गबन्धो महाकाव्य तत्रैको नायकः सुरः ॥३१५॥
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ॥३१६॥
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः ॥३१७॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ॥३१८॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥३१९॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ॥३२०॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥३२१॥
संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ॥३२२॥
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ॥३२३॥
वर्णनीया यथायोगं अमी इह
कवेर्वृत्तस्य वा नाना म्य वा ३२४

प्रस्तुत किया । दण्डी ने महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग और सर्ग के अंत में उसे बदल कर भिन्न छंद का प्रयोग करने की बात कही थी ।[1] किन्तु विश्वनाथ ने महाकाव्य में नाना छंद वाले सर्ग का अस्तित्व भी स्वीकार किया । विश्वनाथ कविराज की महाकाव्य सम्बन्धी मान्यताएं महाकाव्य की रूढ़ियों और उसके बाह्य रूपों से अधिक सम्बद्ध है, उसके मूल तत्वों पर इनका कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता ।

वस्तुतः हिन्दी के साहित्य शास्त्र का विकास प्राकृत-अपभ्रंश की परम्परा में हुआ है जिसका मूलस्रोत संस्कृत का साहित्य शास्त्र है । अतः काव्य के रूपों की व्याख्या करते समय संस्कृत के अलंकार शास्त्र तथा प्राकृत-अपभ्रंश के उपलब्ध काव्यों के परम्परागत विकास को ध्यान में रखना चाहिए । यहाँ पर यह कह देने में कोई अतिशयोक्ति न माननी चाहिये कि रुद्रट ने महाकाव्य की जो परिभाषा निश्चित की है वह इतनी व्यापक है कि उसमें महाकाव्य के प्रमुख तथा अनिवार्य लक्षणों का सम्यक् निर्देश है ।

पाश्चात्य और भारतीय आलंकारिकों ने महाकाव्य के जो बाह्य लक्षण निर्धारित किये हैं उनमें प्रायः समानता है फिर भी देश-काल-भेद से इनके स्वरूप में अन्तर होता रहा है । भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के जो लक्षण निर्दिष्ट किये हैं वे सभी शैलियों के महाकाव्यों में निश्चित और अनिवार्य रूप में पाये जाते हैं । संक्षेप में वे इस प्रकार है —

(१) नायक आदर्श और महान होना चाहिए । दशरूपककार ने उसे धीरोदात्त नायक कहा है और वे उसमें महासात्विकता, अतिगंभीरता, क्षमा, आत्मश्लाघा न होना, स्थिरता, अहंकार को छिपाना और दृढ़व्रत गुणों का समावेश उचित मानते हैं ।[2] रुद्रट ने नायक को द्विजकुलोत्पन्न, सर्वगुणसम्पन्न महान, वीर और विजिगीषु, शक्तिमान, नीतिज्ञ और कुशल राजा बताया है ।[3]

नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञका ॥३२५॥
प्राकृतैर्निर्मिते तस्मिन्सर्गा आश्वाससंज्ञका ।
छन्दसा स्कन्धकेनैतत्क्वचिद्गलितकैरपि ॥३२६॥
अपभ्रंश निबद्धेऽस्मिन्सर्गाः कुडवकाभिधाः ।
तथापभ्रंशयोग्यानि च्छन्दांसि विविधान्यपि ॥३२७॥
भाषाविभाषानियमात्काव्यं सर्गसमुत्थितम् ।
एकार्थप्रवणैः पद्यैः सन्धिसामग्र्यवर्जितम् ॥३२८॥

—साहित्यदर्पण, षष्ठ परिच्छेद ।

[1] सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजनम् ॥

—काव्यादर्श, १।१९,

[2] महासत्वोऽति गम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरोनिगूढाहंकारो धीरोदात्तः दृढव्रतः ॥

—दशरूपक-२

[3] तत्र त्रिवर्गसक्त ... च सर्वगुणम्
रक्त विजिगीषु नायक यस्येन्

(२) भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य का महान उद्देश्य चतुर्वर्गफल की प्राप्ति कहा है।

(३) कुछ भारतीय आचार्य वीर, शृंगार और शान्त रसों में से किसी एक रस को प्रधान और अन्य रसों के गौण रूप के प्रयोग की बात कहते है किन्तु रुद्रट ने सब रसों का होना आवश्यक माना, उनमें से चाहे जो रस प्रधान हो।

(४) किसी इतिहास प्रसिद्ध घटना पर कथानक का आश्रित होना जो नाटक, कथा और गीति-काव्य के अनेक तत्वों के सम्मिश्रण का प्रतिफल होता है।

(५) महाकाव्य मे जीवन के विविध और समग्र रूप का चित्रण होता है किन्तु रुद्रट ने इसमे प्रसगानुसार अवान्तर कथाओं का होना भी स्वीकार किया है जिनमें पुराण और कथा-आख्यायिका के भी तत्व होते है।

इनके अतिरिक्त महाकाव्य के अन्य अस्थायी लक्षण भी है जो सभी महाकाव्यों मे प्राप्त नही होते जैसे-- महाकाव्य मे आठ सर्ग हो और प्रत्येक सर्ग मे एक ही छद हो जो अन्त मे बदल जाय, भिन्न सर्गों मे भिन्न छन्द हों, काव्यारम्भ मे मंगलाचरण, आत्मनिवेदन, कुछ निश्चित वस्तुओं और व्यापारो आदि का वर्णन। किन्हीं किन्हीं महाकाव्यो मे इनमे से कुछ लक्षण रूपान्तर मे उपस्थित होते है और किसी-किसी मे इनमे से कई बिलकुल नही होते।

आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने 'जायसी ग्रथावली' मे पद्मावत की 'प्रबंध-कल्पना' का विवेचन करते हुए प्रबंध काव्य के लिये निम्नलिखित तत्व आवश्यक माने है[1]---

(१) घटनाओं का आदर्श परिणाम या स्वाभाविक गति।

(२) मानव जीवन का पूर्ण दृश्य---(क) घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला और स्वाभाविक क्रम का ठीक-ठीक निर्वाह। (ख) नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसगों का समावेश।

(३) परिस्थिति के अनुकूल पात्रों तथा घटनाओं का भावानुसार वर्णन होना।

(४) महत्कार्य - सम्बन्ध निर्वाह, कथा प्रवाह और विराम स्थल।

भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के जो आवश्यक तत्व माने है, आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने भी प्रबन्ध काव्य के लिये उन्हीं तत्वों को प्रकारान्तर मे स्वीकार किया है। आचार्यों के द्वारा निर्दिष्ट इस स्वरूप को मानदण्ड मान लेने पर हम महाकाव्य के चार प्रमुख तत्व मानते है जिनमें अन्य अवान्तर लक्षण भी समाहित हो जाते है। ये लक्षण मुख्यत वही है जो रुद्रट ने अपने ग्रंथ काव्यालकार मे बताये है---महदुद्देश्य, महच्चरित्र महती घटना और समग्र जीवन का रसात्मक चित्रण। इन मान्यताओं के आधार पर हम लक्षदास रचित ग्रथ श्रीमद्भागवतपुराणसार की परीक्षा करेंगे।

विविधवत्परिपालयन सकल राज्य च राजवृत्त च।
तस्य कदाचिदुपन शरदादि वर्णयेत्समयम्॥
१६ ८ ६

[1] जायसी ग्रथावली २००० वि० काशी पृ० ६६ से प्रारम्भ

श्रीमदभागवतपुराणसार की प्रबन्ध कल्पना

महदुद्देश्य— प्राचीनकाल से ही महाभारत और रामायण भारतीय काव्य के प्रेरणा स्रोत रहे है किन्तु परवर्तीकाल मे श्रीमद्भागवत ने भी महाभारत और रामायण की भांति लोकप्रियता प्राप्त की। इसमे पौराणिक आख्यानो, इतिहास तथा कथा को ऐसा काव्यात्मक रूप दिया गया कि भाषा, छद, शैली और कथा की एकात्मक अन्विति की दृष्टि से यह महत्व-पूर्ण साहित्यिक रचना सिद्ध हुई जिसके फलस्वरूप इसने भी परवर्ती भारतीय जीवन और साहित्य को दूर तक प्रभावित किया। भागवतकार ने श्रीमद्भागवत की रचना कृष्ण के ब्रह्मत्व रूप की प्रतिष्ठा तथा भक्तितत्व के मूलाधारो का प्रतिपादन करने के लिए की थी जिसमे वह पूर्णतः सफल हुआ है। हिन्दी साहित्य के मध्ययुग (भक्तिकाल) मे जब भक्ति की पयस्विनी समस्त भारत से आताडित-विलोडित हो रही थी तब श्रीमद्भागवत के भाषानुवाद और कवियो की मौलिक प्रतिभा से कृष्ण के जीवन तथा चरित्र को ऐसा रूप दिया गया कि कृष्ण उनके इष्ट देवता और लोक-रक्षक रूप मे पूजनीय प्रतिपादित हुए। लक्षदास जी के समय मे समाज मे अव्यवस्था थी, धर्म के रूपो की विविधता के कारण समाज मे मर्यादा का अभाव होता जा रहा था। लक्षदास जी ने श्रीमद्भागवत का अनुवाद करते समय अपने युग की सामाजिक समस्याओ का निराकरण करने और धर्मबल की विजय, भक्तितत्व के मूलाधारो का समन्वयात्मक रूप तथा आदर्श समाज की स्थापना का उद्देश्य अपने सामने रखा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होने श्रीमद्भागवत, महाभारत तथा जैमिनीयाश्वमेध आदि ग्रथो से प्रेरणा ग्रहण की है और उनकी अनुभूति की गहराई को अपने समय की परि-स्थितियो के अनुरूप बनाकर काव्य मे प्रस्तुत किया है।

महच्चरित्र—भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के नायक को धीरोदात्त आदर्श चरित्र का व्यक्ति होना आवश्यक माना है। वस्तुतः पौराणिक परम्परा का काव्य होने के कारण कृष्ण का चरित्र इतना महत्वपूर्ण और सुनियोजित है कि उनकी महानता और चरित्र निर्माण के लिए कल्पना को विशेष प्रश्रय देने की आवश्यकता ही नही है। कवि लक्षदास ने कृष्ण के जीवन चरित्र का विकास इसप्रकार किया है कि वे लौकिक लीलाएं करते हुए भी अतिप्राकृत रूप मे दिखाई देते है। इसप्रकार कवि ने कृष्ण को युग प्रतिनिधि व्यक्ति माना है और कंस तथा अन्य असुरो का सहार करके महत्कार्य की पूर्ति मे निरत दिखाया है। लक्षदास जी ने कृष्ण के लोकरजक, लोकरक्षक और भक्तवत्सल रूप मे सम्बद्ध अवान्तर कथाओ को भी इन्ही के साथ संकलित किया है जिससे उसके महदुद्देश्य की सिद्धि और महत्कार्य की पूर्ति का लक्ष्य उपलब्ध हुआ प्रतीत होता है।

महती घटना—भारतीय मान्यता के अनुसार महाकाव्य का कथानक न बहुत बडा होना चाहिए, न बहुत छोटा बल्कि उसे सर्गबद्ध होना चाहिए जिससे नाटक की सधियो की योजना के द्वारा कथानक सुसगठित और सुनियोजित रूप मे प्रस्तुत किया जा सके। यह कथानक किसी महती घटना पर आधारित होना चाहिए जिसमे अप्रधान घटनाओ का प्रवाह प्रधान घटना की ओर ही हो जिसमे नायक के चरित्र की उदात्तता और भी अधिक विकसित की जा सके रुद्रट ने तो ० मे कथाओ का होना भी स्वीकार किया है

भागवतकार ने श्रीमद्भागवत में कृष्ण के चरित्र का विस्तार तो किया है किन्तु अवान्तर कथाओं, दार्शनिक विवेचनों तथा वर्णनों की ऊहापोह में कथा का क्रम विशृंखल-सा दिखाई देता है। हमारे आलोच्य कवि ने कृष्ण-जन्म के पूर्व की घटनाओं तथा परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराते हुए उनके मथुरा प्रवास तथा द्वारका तक की दशा का जीता-जागता वर्णन किया है। लक्षदास जी ने बालक कृष्ण की मनोहारी विहार-लीलाओं का वर्णन करते हुए उनके किशोर जीवन के प्रसंग लिये हैं जिनमें संयोग और विप्रलंभ का सुन्दर वर्णन मिलता है। यही लीला-भाव आगे चलकर मर्यादा भाव में पर्यवसित हो जाता है जबकि कृष्ण असुरों का संहार करके भूमि का भार उतारते हुए दिखाये गये हैं। कवि ने समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करने के लिए कृष्ण के द्वारा गोपियों को पतिव्रत धर्म का पालन कराने पर जोर दिया है और वसुदेव-देवकी को एक आदर्श गृहस्थ के रूप में अंकित किया है। श्रीमद्-भागवत पुराण के इस अनुवाद में कृष्ण के लोकरंजक रूप का अधिक विस्तार से वर्णन है जिसमें मानव कृष्ण की बालसुलभ चेष्टाएँ और राधा-कृष्ण की रस-केलि का वर्णन है। पाठक के हृदय में कृष्ण भगवान् के प्रति आदर और प्रेम जागृत हो उसके लिए कृष्ण-कथा से सम्बद्ध चन्द्रहास, हंसध्वज तथा मयूरध्वज आदि की कथाएँ दी गई हैं जिनसे कृष्ण के ईश्वरत्व को प्रतिपादित करने में सहायता मिलती है। इस ग्रंथ में नाटक की संधियों का विकास विधिवत् नहीं हो सका है क्योंकि कवि ने कृष्ण की कथा को सर्गबद्ध नहीं किया। उसने कथानक को एक सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध रूप देने की चेष्टा अवश्य की है सम्भवतः इसी आधार की पूर्ति के हेतु उसने कथानक को अध्यायों में विभाजित किया है।

इस ग्रंथ में कवि ने असुर संहार की लीलाओं को दो रूपों में प्रस्तुत किया है—(१) कृष्ण ने स्वयं असुरों का संहार किया जैसे—पूतना, अघासुर कंस आदि, (२) अन्य लोगों की सहायता से असुर संहार किया जैसे—मुष्टिक आदि का वध बलराम के द्वारा और जरासंध का वध भीम के द्वारा। कवि ने नायक की विजय तो विधिवत् दिखाई है, किन्तु प्रतिनायक के वैभव, बल और उत्कर्ष की महत्ता का सम्यक् प्रकाशन नहीं किया जिसके कारण नायक के कार्य की गरिमा का 'फलागम' उतना महत्त्वपूर्ण नहीं दिखाई देता जैसा सर्वविधि सम्पन्न रावण के पराभव पर राम की विजय का वर्णन रामचरितमानस में किया गया है।

समग्र जीवन का रसात्मक चित्रण—भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में वस्तु-व्यापार वर्णन पर बहुत अधिक जोर दिया है। इसलिए महाकाव्य के स्वरूप निर्देशन के समय कवि का मानस क्षितिज वस्तुतः इतना व्यापक और विशाल होना चाहिए कि युग और समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उसकी रचना का वर्ण्य-विषय महत्कार्य का केन्द्रबिन्दु हो जिसमें मानव तथा प्रकृति और मानव तथा समाज के पारस्परिक सम्बन्धों के साथ विविध विषयों का समावेश हो जाने से समाज की समसामयिक दशाओं का विधिवत् प्रतिनिधित्व हो सके।

हमारे आलोच्य कवि ने प्रकृति और समाज के विभिन्न कार्य-व्यापारों का वर्णन करके कृष्ण चरित्र का सांगोपांग वर्णन किया है। उसने कृष्ण चरित्र की विविध परिस्थितियाँ, कृष्ण की बाललीला का लोकरंजक रूप, गोपिकाओं तथा ग्वालबालों के प्रति किशोर कृष्ण का प्रेम व्यवहार, राधा कृष्ण के मिलन विवाह तथा वियोग का जीता-जागता चित्रण रुक्मिणी का पूर्वराग तथा युद्धोपरान्त उसका हरण करके उससे विवाह करना और आश्

गृहस्थ धर्म का पालन आदि—के द्वारा कृष्ण-कथा का सुसघटित कथानक प्रस्तुत किया है। इस प्रसग मे कवि ने कृष्ण के स्वर्गलोक प्रयाण तक की कथा को ग्रहण नही किया है, बल्कि द्वारकावासी कृष्ण के क्रियाकलापो तक ही कथा को सीमित रखा है।

भारतीय आचार्यो ने महाकाव्य मे रस का होना आवश्यक माना है और कुछ आचार्य कहते है कि उसमे वीर, शृ गार और शान्त मे से कोई एक रस प्रधान होना चाहिए, किन्तु अन्य रस भी गौण रूप मे होने चाहिए। लक्षदास जी की इस रचना मे मुख्यत शृ गार रस का प्रयोग हुआ है किन्तु करुण, वीर और शान्त रस भी यथास्थान प्रयोग मे लाये गये है। कवि की यह रचना दोहा-चौपाई छद मे ही लिखी गई है जो इस कथा के लिए सर्वोचित छद है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि लक्षदास की कृति 'श्रीमद्भागवतपुराणसार' मे वह चिरंतन जीवनी शक्ति है जो महाकाव्य का प्राण हुआ करती है, फिर भी यह ग्रथ महा-काव्य की गरिमा तक नही पहुँच पाता और प्रबन्ध काव्य की कोटि मे ही आता है। महाकाव्य के तत्वो के आधार पर हमने जो विवेचन किया है उससे यह स्पष्ट है कि यह ग्रथ महाकाव्य तो नही है, किन्तु महाकाव्य के पर्याप्त लक्षणो की पूर्ति अवश्य करता है। कवि की यह रचना 'श्रीमद्भागवतपुराणसार' के अनुवाद नाम से आज उपलब्ध है। हो सकता है कि कवि ने इसके कथानक का विकास सर्गबद्ध रूप मे भी किया हो जिसका मूलरूप अब नही मिलता और उसी का 'सार' (सक्षिप्त सस्करण) आज उपलब्ध है। इस ग्रथ के सर्गबद्ध रूप मे उपलब्ध न होने पर भी कवि ने इसके कथानक को व्यवस्थित और क्रमबद्ध रूप मे प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। भागवतकार ने श्रीमद्भागवत मे कृष्ण के जिस ब्रह्मत्व रूप की प्रतिष्ठा के लिए कथासूत्र के ततुओ को आबद्ध करने मे अपना कौशल प्रदर्शित किया है, लक्षदास जी ने उसी कथा को मानवीय स्तर पर लाकर उसका साधारणीकरण कर दिया है और कृष्ण के ब्रह्मत्व के प्रति यथास्थान सकेत भर कर दिये है। कृष्ण के प्रति भक्तिभाव जागृत करने के लिए उसने महाभारत और जैमिनीयाश्वमेध पर्व की कथाओ को ग्रहण करके इसी ग्रथ के प्रसग मे सम्बद्ध कर दिया है।

लक्षदास जी के 'श्रीमद्भागवतपुराणसार' मे दिये गये सौन्दर्यानुभूति के वर्णन, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सामाजिक दशा के सक्षिप्त विवेचन की एक झाँकी हम आगे की पक्तियो मे प्रस्तुत कर रहे है।

सौन्दर्यानुभूति के वर्णन—लक्षदास जी ने अवस्था और परिस्थिति के भेद से मानव शरीर के सौन्दर्य वर्णन का प्रधान केन्द्र कृष्ण और राधा को बनाया है। उनके विविध रूप-वर्णन के द्वारा कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और उत्कृष्ट सौन्दर्यानुभूति का परिचय दिया है।

देवकी के गर्भ से जन्म धारण करने के पूर्व कृष्ण ने चतुर्भुज रूप मे अपनी माता को दर्शन दिये। उनके चारो हाथो मे आयुध है। मणिगण से जटित मुकुट सिर पर शोभित है। प्रसन्न वदन की शोभा पर शत मदन भी मोहित होते है। उनके करुणायत लोचन है। वे पीत पट पहने है। उन्होने 'भीत' को 'अभीत' कर दिया है और 'कर पल्लव' मे जडाऊ मुद्रिका धारण की है उनकी भुजाएँ देती है चारु नासिका है सभार

कर कहने पर भी कवि अपने मन में सावधान नहीं रह पाता। लाल के भाल पर लगे तिलक की शोभा देखकर उस पर तिल तिल करके सारी उपमाएँ वारी जा सकती हैं। कानों में कुण्डल झलकते हैं। अलके कुंचित हैं। नयनों का निरख कर पलके 'बिसर' जाती हैं। उर पर 'वनमाला' और 'गिवौरीकेश' के समान त्रिभुवन में कोई और उपमा नहीं है। कटि में 'किंकिनी' और पगों में नूपुर लसते हैं। यह शोभा लक्षदास के उर में बसती है।'[1] इसीप्रकार शैशव से लेकर सखाओं के साथ वन में खेलने के लिए जाने के समय तक की अवस्था में कृष्ण की शोभा को कवि ने विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। कवि ने कृष्ण के रूप सौन्दर्य एवं उनके अंग-प्रत्यंगों का कई स्थानों पर विविधता से वर्णन किया है जो कवि के भाव जगत की अन्तर्दृष्टि का परिचायक तो है ही, इससे कृष्ण के रूप-प्रभाव-व्यंजना की ओर कवि का विशेष आग्रह प्रतीत होता है। इनमें कोमल और आकर्षक तत्व के प्रभावपूर्ण वर्णनाधिक्य के कारण कंस आदि असुरों के वध के समय भी कृष्ण के वीर और पराक्रमी रूप का सम्यक् प्रकारेण प्रकाशन नहीं हो पाया।

नारी के सौन्दर्य निरूपण के लिए कवि ने गोपियों की शालीनता और उनके अप्रतिम सौंदर्य का सुन्दर चित्रण किया है। पति की कामना से व्रत करती हुई गोपकुमारियाँ यमुना में स्नान करती हैं। कवि ने उनकी शोभा का वर्णन किया है—वे छवि की खानि शरीर पर 'धौत वसन' पहने हैं। वे प्रेम पूरित हृदय से कृष्ण का सुयश गान करती हैं और परस्पर 'बाहुतर जोरि कर रहस' बनाती हैं। उनका बदन मयंक-सा है, नैन मृग शावक जैसे हैं, नासिका शुक जैसी है, बैन पिक बैनी हैं।... वे भृकुटी के निकट तिलक बनाती हैं जो ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव चाप चढ़ाना चाहता है। केश राशि 'पाटी' सी लसती है (जिसे देखकर यह अनुमान होता है कि विधाता ने) मन से कान के जाने को मार्ग कर दिया है।... पीठ पर सुमनों से युक्त वेणी लसती है जो पति के चढ़ने को 'चारु नसैनी' है। मस्तक पर मोती ऐसे लगते हैं जैसे 'अधर पानप' पर 'गुण कलस।'....(गोपी के) हृदय में जाने के लिए (विधाता ने) मुख को प्रियतम का मार्ग बनाया है और उसमें रसना के पावड़े डाले हैं।'[2] कवि ने रासलीला प्रकरण में कृष्ण के साथ रास करती हुई गोपियों की

---

[1] रूप चतुर्भुज दर्शन दीन्हो। आयुध चारि चहू कर लीन्हो॥
मनि गन जटित मुकुट सिर सोहै। विगसित बदन मदन सतमोहै॥
करुनायत लोचन पट पीता। हुते भीत ते भये अभीता॥
कर पल्लव मुद्रिका जराऊ। जो छवि कहू दीप ना काऊ॥
अभय दानि भुज नासा चारा। रहो न मन कवि कहत सभारा॥
तिलु तिलु करि उपमा सब वारौं। लाल भाल जब तिलक निहारौं॥
कुंडल झलकनि कुँचित अलकें। निरपत नयननिबिसरी पलकें॥
उरवन माल सो केश रिपौरी। उपमा त्रिभुवन सम नहि औरी॥
कटि किंकिनी लसत पग नूपुर। बसै सो रूप लक्ष जन के उर॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १३

[2] करि मज्जन जमुना के तीरा। धौत बसन छवि खानि सरीरा॥
गावत सुजस प्रेम भरि आवहि जोरि बाहुतर रहस बनावहि

रूप सुधा की प्रशस्ति गाई है प्रत्येक गोपी के साथ में गोपाल राजते हैं जैसे कनक नीलमणि के बीच-बीच में माला। उनकी वदनावली विधु कमल के समान विराजती है और मुकुट छवि पर 'कलित कवरी' छाजती है। ..तरुणी के तिरछे लोचन खंजन और मीन के मान का मोचन करने वाले हैं। भृकुटी के मध्य भाग पर लगे हुए तिलक की छवि जोहने पर मदन का 'सर' और 'चाप' क्रुद्ध होकर हटकता है। अधर के निकट नासिका में मोती लसता है जैसे मंगल और यश देने के लिए शशि में शुक्र स्थित होता है। मधुप रूप में कामदेव अधर में रस भरता है। श्वास लेते समय वह अति लोल झलकती है जैसे 'अवबीच' में पानी की छवि छलकती है। (दशन) 'बिज्जु' में शुक ठग गया है, जब कामिनी मुसकाती है तब (उसके) मुख की शोभा कमल वृंद पर दामिनी सी 'लसती' है। उसके चंचल अंचल पर 'उरज भार' भरा है। उसकी गति 'सोभावर दुरद (द्विरद) के मान को भी हरती है।'[1]

कवि ने गोपियों के शारीरिक सौंदर्य और रासलीला के आनन्द को परस्पर ऐसा घुला-मिला दिया है कि उन्हें एक दूसरे से अलग कर देने पर वर्णन विकलांग-सा हो जायगा। राधा-कृष्ण विहार के संयोग सुख में भी कवि ने अपनी वृत्तियों के रमने का परिचय दिया है। 'केहरि कटि पर विविध रंग के बसन हैं। चपल अंग (की छवि) घन दामिनी' की द्युति को हरने वाले हैं। ब्रजनारियों के मध्य में 'जुगलविहारी' शोभायमान हैं। दोनों नागर लटक-लटक कर नाचते हैं। (इसे देखकर) सेवा-भाव जगने और रस सागर के 'उमगने' की भावनाएँ जाग्रत होती हैं। राधा के गोरे तन पर नील बसन है। वह विधु वदन किशोरी और

वदन मयंक अगज छवि नैनो। सुक नासा सुन्दरि पिक बैनी ॥

+ + +

भृकुटी निकट लगी तिलक बनावन। चहत काम जनु चाप चढ़ावन ॥
लसत केस पाटी सी सलहीं। कर दिवो जनु मन मारग कंन हीं ॥

+ + +

पीठिन लसै सुमन जुत बेंदी। चक्के को पतो पीतु चारु निसैनी ॥
सुभ नासा मोती लसत अस। अगर पानप जस गुन कराम जस ॥

+ + +

हिय आने कह प्रीतम प्यारे। सुर मग रमना पाउडे डारे ॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० २८-२९।

[1] राजत प्रति गोपी गोपाला। कनक नील मनि बिच बिच माला ॥
वदनावलि विधु कमल विराजैं। कबरी कलित मुकुट छवि छाजैं ॥
मनहु मर्यापत्र वारिज सभी। रपि अवनम प्रीती कीन्ही नमी ॥
तरुनी तिरछी राजत लोचन। खंजन मीन मान को मोचन ॥
भ्रकुटी भाल तिलक छवि जोहै। हटकत मदन चाप सर कोहै ॥
अधर निकट नासा मोती लस। ससी सह सुक्र ज्यों मंगल जस ॥
भरत काम मधुप अधर रस। + +
स्वास लेत लोल अधिक झलके। जनु अब बीच पानी छवि छलके ॥

+ + +

मुख सोभा मुसकात जब कामिनि। कमल व्रद कोसन्ह लसै दामिनी ॥
चंचल अंचल उरज भार भर। गती सोभा वर दुरद मानहर ॥

— कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ४१।

मृग लोचन है गौर-श्याम तन पर नील-पीत पट सुशोभित है दोनों जन लटपटाय उर हो रहे हैं। दोनों हिल मिल कर नाचते हैं।[1] सखियाँ इस महारास में शृंगार और सुरति सुख का योग देकर आनन्द की श्रीवृद्धि कर देती है।

इस रूप सौन्दर्य में कृष्ण का वेणु वादन भी प्रकृति में तीव्र संवेदनशीलता उत्पन्न करके गोपियों तथा चर-अचर को मोहित करता है। कवि ने सरस संगीत के साथ राधा-कृष्ण के रास विहार का सुन्दर वर्णन किया है जो निम्बार्क सम्प्रदाय की उपासना विधि के अनुसार है। कवि लक्षदास के काव्य में रूप और रस की सौन्दर्यानुभूति रागमुखी होकर बह निकली है।

प्राकृतिक सौन्दर्य – कवि ने वर्षा ऋतु का वर्णन केवल परम्परा के पालन के ही लिये किया है। प्रथम बार वर्षा का वर्णन 'गोवर्द्धन लीला' के प्रसंग में भय का उद्दीपन प्रदर्शित करने के लिए किया गया है। पुरंदर प्रेरित मेघों की प्रलय वर्षा, उनचास पवन का चलना, दामिनि का दमकना और वृक्ष निपात के वर्णन के द्वारा कवि ने सजीव चित्र उपस्थित किया है।[2] रासलीला प्रकरण में भी कवि ने वर्षा का वर्णन किया है किन्तु वह अत्यल्प है। संयोग और वियोग दोनों में ही शरद् रात्रि का वर्णन रति भावों के उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है। संयोग के अवसर पर वृन्दावन के वन, कुसुम, रसाल, फल, ताल और नदी आदि प्रकृति के सभी उपादान सरसता की वृष्टि करके मन में उत्साह पैदा करते हैं। इनमें चन्द्रमा की शोभा तथा व्रजवनिताओं के रास को कवि ने कई बार विविध रूपों में प्रस्तुत किया है।[3] विरह के समय में इस शरद् ऋतु से गोपियों को इतना परहेज हो जाता

---

[1] कटि केहरि वर वसन विविधो रंग। घन दामिनी दुति हरन चपल अंग॥
सोभावारी मनहर व्रजनारी। मध्य विराजत जुगुल बिहारी॥
नटकि नटकि नाचत दोउ नागर। नाजि सेवा उमगे रस सागर॥
नील वसन राधा तन गोरी। मृग लोचनी विधु वदन किशोरी॥
\+ + + +
नीरज पीत पट गौर स्याम तन। लटपटाइ उर रहे दोउ जन॥
हिलिमिलि नाचत बल्लभवामा॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४१।

[2] गरजे महा प्रबल बल भरे। प्रलय काल लखि हग जन डरे॥
चल पवन उनचासहु धायक। अदिति तनय सुरराज सहायक॥
धाये मेघ पुरन्दर प्रेरे। रिस में भरे जाइ ब्रज घेरे॥
घुमरी घटा चहू दिसि कारी। जिन दीठि सब भये दुखारी॥
दमकै दसों दिसा में दामिनि। सो लखि डरी सकल व्रजकामिनि॥
लागे करन गगन घन घोर। जल औ पवन अगिन से जोर॥
पारिध शब्द बहुत विधि करै। मुनत उछाह हिये के हरै॥
डोलत पवन झुंड नाहि बारन। मनो चहत गिरराज उपारन॥
को बरने गति पवन अपार। टूटै वृक्ष महाविकरार॥

– कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३४।

[3] कर गहि सत पूरन दिसि प्राची मंदिन कारता कुल कानन राची
वन उडगन अति श्याम सोहावो राह मध्य जमुना जल न्हावो

है कि वे उसके न आने को ही अधिक सुखकर मानती है।[१] कृष्ण के विविध विधि रास विलास की याद करके वे बहुत दुखी होती है। उस दुःख से उद्भूत पीडा को वे कहाँ तक सुनावे।[२] विरह की इसी दशा को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने 'बारहमासा' लिखा है।[३]

उपर्युक्त विवरण से कवि के प्रकृति निरीक्षण का परिचय अवश्य मिलता है किन्तु कवि ने उसका उपयोग अपनी भावना और कल्पना को सजग और मूर्त्त करने मे ही किया है। इसीलिए प्रकृति चित्रण की विविधता के दर्शन उसके काव्य मे नही होते।

सामाजिक दशा— लक्षदास जी ने अपने समय के समाज की दशा का चित्रण तो काव्य भर मे कही नही किया किन्तु कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित वर्णनो मे बालक के सस्कार, वेद विधि से पूजा, मगल कार्य, दधिकादौ आदि उत्सव तथा कृष्ण-बलराम के भोजनादि की विविध लीलाओ को संक्षेप मे लिखा है।

कृष्ण जन्म के बाद उनके (कृष्ण) जात कर्म सस्कार कराये जाते है। सखियो के मगलचार, विप्रो के द्वारा किये गये वेद विहित पाठ तथा गोदान आदि शुभ कार्यों के होने का सक्षेप मे वर्णन किया गया है। कवि ने कृष्ण के अनिष्ट की आशका तथा असुरो से उसकी रक्षा करने के निमित्त यशोदा के द्वारा कराये गये मगल कार्य एव पूजा पाठ की ओर सकेत किया है।[४]

रासलीला प्रकरण मे कवि ने राधा-कृष्ण के विवाह का वर्णन किया है।[५] सखियो से परिसेवित एव उनके द्वारा आयोजित इस विवाह मे किसी भारी भीडभाड या विवाहादि की रीति रस्मो का विवरण कवि ने नही दिया है क्योकि यह विवाह समाज की मर्यादा विधि के अनुकूल नही है। इसका महत्व अधिकतर आध्यात्मिक है जिसके कारण यह भक्तो की साधना-उपासना का केन्द्रीभूत अग है।

लक्षदास जी ने कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का वर्णन हिन्दू गृहस्थ परिवार की रीत्यनुसार किया है। रुक्मिणी के पूर्वानुराग को बहुत ही रोचक विधि से बताकर उसके स्वकीया भाव, द्वार पर आये हुए वर-वधू की आरती करके अर्घ्य देने, हर्षातिरेक मे नाचने-

---

उडपति सग प्रकासित उडगन। सुछ सुळ सोभित ब्रदाबन।
फेलि चली ससि किरनि चहूँदिसि।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ३६।

(ख) वही पृ० ११०।

[१] जमुना औरै अनि कीजै। रितु सरद न आवन दीजै॥

—वही, पृ० ५०।

[२] मिलि रास रस सुख दीन्हो। हिलमिलि बिलास बन कीन्हो॥
निजु कर सिगार बनावै। अलि कह लगि तुमहि सुनावै॥

-- वही, पृ० ५२।

[३] भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ६१।
कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११०-११२।

[४] हस्तलिखित पृ० १५ १ २१ २७

[५] वही पृ० ४ ८८ ६६ ११

गाने तथा बन्दी मागध और सूत जनों को दान देने आदि का विवरण संक्षेप में दिया गया है इसी प्रकार प्रद्युम्न और रति के विवाह प्रसंग का भी वर्णन किया गया है।

खण्ड काव्य—भारतीय आचार्यों ने प्रकारान्तर से जो बातें कही हैं उनमें स्पष्ट है कि महाकाव्य की रचना का कोई न कोई महान् उद्देश्य होना चाहिये जिसका लक्ष्य चतुर्वर्गफल—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—की प्राप्ति हो। दण्डी, रुद्रट और हेमचन्द्र ने सभी पुरुषार्थों को लक्ष्य माना है किन्तु विश्वनाथ ने किसी एक को। रुद्रट ने तो स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि लघु प्रबंध काव्य (खण्ड काव्य) में कोई एक पुरुषार्थ लक्ष्य होता है और महाकाव्य का उद्देश्य सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति है।[1] इससे स्पष्ट है कि खण्ड काव्य में कथा का सर्वांगीण विवरण नहीं होता जीवन के किसी एक पहलू अथवा किसी एक घटना को लक्ष्य करके लिखा जाता है।[2] इसीलिए इसमें प्रासंगिक कथाओं अथवा घटनाओं के लिए गुंजायश नहीं होती। खण्ड-काव्य का आकार महाकाव्य की भांति विशाल नहीं होता फिर भी वह अपने में पूर्ण होता है।

खण्डकाव्य और चरित काव्य—जिस प्रकार खण्ड काव्य में जीवन के किसी एक पहलू या घटना को लेकर कथानक चलता है उसी प्रकार चरित काव्य में पौराणिक और निजन्धरी व्यक्तियों के जीवन चरित को लेकर चरित काव्यों की रचना शुरू हुई।[3] ऐतिहासिक शैली में लिखा गया पहला काव्य 'बुद्ध चरित' है और समसामयिक राजाओं और महान् व्यक्तियों के जीवन को लेकर लिखा गया ग्रन्थ बाण का 'हर्ष चरित' है। लेकिन इस प्रकार के काव्य आगे चलकर अधिक सफल नहीं हो सके क्योंकि इनमें कल्पना और संभावना पर आधारित घटनाओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन होता था। प्राकृत और अपभ्रंश में इस प्रकार के अनेक चरित काव्य लिखे गये जिनमें से कुछ का नाम पुराण है किन्तु वे भी चरित काव्य ही हैं उनमें पौराणिक और चरित नामक काव्य का भेद करना ही गलत है।[4] उदाहरण के लिए स्वयम्भू के 'रिट्ठणेमिचरिउ' का नाम हरिवंशपुराण भी है और पुष्पदंत का महापुराण 'त्रिषष्ठिपुरिसगुणालंकार' भी कहलाता है। अपभ्रंश के इन चरितकाव्यों में प्रबंधात्मकता है

---

[1] 'चतुर्वर्गफलायत्तं चतुरोदात्त नायकं'

—दण्डी-काव्यादर्श १।१५।

'चतुर्वर्गफलोपायत्वम्' .. .

—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, आठवाँ अध्याय।

'चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।'

—विश्वनाथ-साहित्य दर्पण, ६।३१८।

'तत्र महान्तो येषु च वितत्ष्वभिधीयते चतुर्वर्ग।

+ + +

'ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्'।।

—रुद्रट-काव्यालंकार १६।५-६।

[2] खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।

—विश्वनाथ-साहित्यदर्पण, ६।३२९।

[3] हिन्दी का स्वरूप विकास डा० शम्भुनाथसिंह १९५६ ई० पृ० ४७३

[4] वही पृ० ४७४

और विभिन्न तीर्थंकरों तथा अन्य महापुरुषों के जीवन चरित के वर्णन हैं जिनमें महान् उपदेश और श्रेयस्कर अनुशासन की बातें लिखी गई हैं। हिन्दी में 'कथा' और 'चरित' के नाम से लिखे गये सभी काव्य अपभ्रंश के चरित काव्यों की परम्परा से आते हैं। इन चरित काव्यों में कथा-आख्यायिका तथा धर्मकथा आदि के लक्षणों का भी समन्वय हुआ है किन्तु इनमें अपभ्रंश के चरित काव्यों की सी कथानक रूढ़ियाँ, साहसिक कार्य और रोमांचक तत्वों का प्रभाव उपलब्ध नहीं होता क्योंकि हिन्दी में 'चरित काव्य' के नाम से जो काव्य मिलते हैं उनका प्रेरणा स्रोत महाभारत, रामायण तथा श्रीमद्भागवत है जो ब्राह्मण धर्म के मूलाधार ग्रंथ हैं और इनकी कथा का आधार इन पौराणिक कथाओं में से ही ग्रहण किया गया है जिसमें चरित नायक के जीवन के किसी एक पहलू या घटना को लेकर काव्य लिखा गया है। अतः यह खण्ड काव्य की कोटि में भी आता है और चरित काव्य की श्रेणी में भी। हमने लक्षदासजी की कतिपय रचनाओं को 'चरित काव्य' के अन्तर्गत मुख्यतः इसलिए रखा क्योंकि इनमें चरित वर्णन की प्रधानता है और काव्यात्मकता या वर्णनात्मकता की ओर कम (या नहीं के बराबर) ध्यान गया है। जिस प्रकार 'णेमिणाहचरिउ' आद्यन्त रड्डा छन्द में लिखा गया है उसी प्रकार हमारे आलोच्य कवि ने भी 'चरित' शीर्षक से लिखे गये अपने काव्य प्रायः दोहा-चौपाई छंद में ही लिखे हैं।

चरित काव्य—हिन्दी में चरित काव्य लिखने की परम्परा का श्रीगणेश पौराणिक शैली के आख्यान काव्यों की पद्धति पर हुआ। चरित काव्य के मध्यकालीन रूप का आरम्भ और विकास प्राकृत-अपभ्रंश के 'चरित काव्यों' में दिखाई पड़ता है किन्तु अपभ्रंश में पौराणिक और चरित काव्य का भेद करना ही गलत है क्योंकि उसमें सभी काव्य पौराणिक भी हैं और चरित काव्य भी। वस्तुतः अपभ्रंश साहित्य में पुराण, चरित और कथा तीनों परस्पर इतने घुलमिल गये हैं कि इन सबको एक सम्मिलित नाम 'चरित' दे दिया गया। पुराण नाम से प्रचलित अधिकांश अपभ्रंश ग्रंथ काव्य ही माने जाने चाहिए, पुराण नहीं।[1] हिन्दी में चरित काव्य को कथा कहने की प्रणाली बहुत बाद तक चलती रही। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' 'चरित' तो है ही, कथा भी है। उन्होंने इसे कई बार कथा कहा है।[2] ब्रजभाषा के विकास के प्रारम्भिक दिनों में जैन पौराणिक चरित काव्यों की शैली पर प्रद्युम्न चरित (सं० १४११), हरिचंद पुराण (सं० १४५३) तथा प्रह्लाद चरित (१५ वीं शती का अन्त) लिखे गये। इनमें 'हरिचन्द पुराण' एक चरित काव्य है जिसमें हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा को प्रस्तुत किया गया है। इन चरित काव्यों की शैली की सबसे बड़ी विशेषता उनमें कथानक रूढ़ियों के प्रयोग की है। इन कथानक रूढ़ियों का प्रभाव हिन्दी के परवर्ती काव्यों—पद्मावत, रामचरितमानस आदि—में भी दिखाई देता है।[3] इसी कारण रामचरितमानस को भी बहुत से लोग पुराण शैली का काव्य मानते हैं।[4] इस विवरण से स्पष्ट है कि चरित

---

[1] हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—डा० शम्भूनाथसिंह, १९५६, पृ० १७४-७५।

[2] हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, १९५२, पृ० ५२।

[3] सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—डा० शिवप्रसाद सिंह, १९५८, पृ० ३१६

[4] वही पृ० १९

काव्य की अत्यंत शिथिल परिभाषा थी जिसकी परिधि में किसी भी कथाबद्ध इतिवृत्तात्मक काव्य को रखा जा सकता है।

लक्षदास जी ने भी इसी परम्परा के अन्तर्गत पौराणिक शैली के चरित काव्य लिखे जिनका कथानक श्रीमद्भागवतपुराण से ग्रहण किया गया है। द्रौपदी चरित' में आर्त्त की लज्जा की रक्षा के हेतु भगवान् की भक्तवत्सलता का प्रसंग महाभारत के आधार पर लिखा गया। इनमें कतिपय चरित्रों की कथा को रोचक और क्रमबद्ध रूप देने के लिए कवि ने कथाक्रम में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन कर दिया है या कुछ नया अंश जोड़ दिया है।[1] 'ध्रुव-चरित्र' के प्रसंग में कवि ने ध्रुव की कथा के द्वारा भक्त की मनोभिलाषा तथा सर्वतिम समर्पण भाव पर जोर दिया है। प्रभु की सेवा करने वाले को भोग और सम्पत्ति की कामना नहीं करनी चाहिए क्योंकि शरीर अनित्य है और भोग 'छाहीं' के सदृश है। कवि ने ध्रुव के मुख से कहलाया है कि सांसारिक माया जाल को छोड़कर भगवान् का भजन दास्यभाव से करना चाहिये और तन, सम्पत्ति तथा घर सभी कुछ उनके अर्पण करना चाहिए।[2] कवि ने ये कथन कथा के प्रसंग में अवश्य कहलाये हैं किन्तु इनमें कवि की स्वयं की अनुभूति भी विद्यमान प्रतीत होती है क्योंकि 'ध्रुव चरित' के अन्त में कवि ने इसी बात को पुनः दुहराया है। 'लक्षदास जो लोग तिय, सुत जननी, तात सभी का त्याग देते हैं उन दासों से दीनबन्धु हरि अपना सम्बन्ध मानते हैं। इसी क्रम में बुद्धि, बल वित्त और परिवार के न होने पर भी, लक्षदास, मोहन नंदकुमार ध्रुव के पक्ष में हुए।'[3] 'अम्बरीष चरित' की कथा के द्वारा कवि ने निष्ठापूर्वक भगवद्-भजन एवं व्रत-उपासना आदि करने की ओर संकेत किया है। साधु, श्रुति और देवता कहते हैं कि जो लोग सन्तों से द्रोह करते हैं (वे इसी प्रकार नीचा देखते हैं जैसे) रवि के ऊपर धूल फेंकने से वह फिरकर फेंकने वाले के ही मुख पर आ पड़ती है। अन्त में कवि ने भगवान् के मुख से कहलाया है कि यदि सन्त मेरे रिपु को मारें तो मैं भी उसे सौ-बार मारूँगा। मुनि सुनो, मैं सन्त-विरोधी को पार नहीं रखता

---

[1] इसी प्रबन्ध के अध्याय ३ में इस सम्बन्ध में विचार किया जा चुका है।

[2] तनु अनित्य सतत है नाहीं। तातें भोग सब की छाहीं ॥
बर नर जन्म विषै रस खोव। हग जुग अबु सोद बिनु सोवै ॥

+ + +

सुख सम्पति जाचत प्रभु पाइ। सत्रु डारि जड ज्यौं रिपु पाइ ॥

+ + +

. . .. दास भाव भजि तजि जग फंदन।
प्रभु तुम सों करि प्रेम निरन्तर। तुम्हें समर्पण तन सम्पति घर ॥

—कृष्णरसमसागर (हस्तलिखित), पृ० ३।

[3] लक्षदास जेहि सबु तजे तिय सुत जननी तात।
दीनन सो मानत सदा दीन बन्धु हरि नात ॥
नहिन बाइ क्रम बुधि बल बित्त नहीं परिवार।
लक्ष पद ध्रुव के भये मोहन नंद कुमार

कृष्णरसमसागर हस्तलिखित पृ० ३

है।[1] कवि ने सुदामा चरित्र की कथा को दो बार कहा है। एक बार दोहा चौपाई की शैली में और दूसरी बार 'रागनट' में मुक्तक काव्य के रूप में। सुदामा चरित्र, प्रह्लाद चरित्र तथा द्रौपदी चरित्र में भक्तों के संकट काटकर उनको सुख देने की कथा दी गई है। इनमें भक्त के संकट निवारण के हेतु भक्त के द्वारा भगवन्नाम जप, स्मरण, कीर्त्तन आदि विधियों की ओर संकेत किया गया है। भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तों की लाज बचाने के लिए सदैव तत्पर दिखाये गये है।

कथा, आख्यान और ज्ञानवार्ता

संस्कृत के लक्षणकारों में कथा की परिभाषा या रूपस्थिरता के सम्बन्ध में मतैक्य नही है। भामह ने गद्य-पद्य की मिली जुली शैली में लिखी गई कथाओं के आधार पर उनके लक्षण और प्रकार निश्चित किये। वस्तुतः कथा में छंद भेद, अध्यायों का विभाजन तथा भाषा का बंधन नहीं होता। कथा स्वयं नायक के द्वारा न कही जाकर दो व्यक्तियों की बात-चीत की पद्धति पर कहलाई जाती है। उन्होंने कथा को आख्यायिका से भिन्न माना है और सुन्दर गद्य में लिखी सरस कहानी वाली रचना को आख्यायिका कहा है।[2] दण्डी ने भामह के इन नियमों तथा इस प्रकार के श्रेणी विभाजन को अनुचित बताया।[3] रुद्रट के समय में संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में कथाएँ लिखी जाती थी किन्तु उसका विचार था कि संस्कृत कथा गद्य में ही लिखी जाय।[4] इसके विपरीत हेमचन्द्र ने संस्कृतेतर भाषाओं में कथा-आख्यायिकाएँ पद्यबद्ध रूप में लिखा जाना स्वीकार किया[5] किन्तु विश्वनाथ ने दण्डी का अनुमोदन करते हुए संस्कृत की कथा-आख्यायिका को मूलतः गद्य कृति माना जिसमें कभी-कभी छंदों का भी प्रयोग होता था।[6] आज प्राकृत का उपलब्ध कथा साहित्य पद्यबद्ध कथाओं के रूप में मिलता है जिसमें शास्त्रीय महाकाव्य और कथा-आख्यायिका दोनों की विशेषताओं का सम्मिश्रण हुआ है।[7] प्राकृत में चरित काव्य के अतिरिक्त जो पद्यबद्ध कथाकाव्य लिखा गया वह रोमांचक कथाओं पर आधारित है। इसलिये हिन्दी में जो प्रेमाख्यान काव्य मिलता है

---

[1] द्रोह जो संतन सों करै कहत साधु श्रुति सुरी।
जो रवि सन्मुख डारि देइ फिरि परै तासु मुख धूरि॥
+ + +
मम रिपु रापै संत सों ये राखो सौ बार।
संत विरोधी सुनहु मुनि मैं नहि राखो पार॥

—वही, पृ० ११६।

[2] काव्यालंकार—भामह, १।२५-२८।

[3] काव्यादर्श—दण्डी, १।२३-२८।

[4] काव्यालंकार—रुद्रट, १६।२०-२३।

[5] 'धीरशान्त नायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा'

—काव्यानुशासन-हेमचन्द्र, अध्याय ८।

[6] 'कथायां सरसंवस्तु गद्यैरेवविनिर्मित'

—साहित्यदर्पण विश्वनाथ १ २६

[7] हिंदी ... का स्वरूप विकास डा० शम्भूनाथसिंह १६ ६ पृ० १६७

वह इसी परम्परा की एक कड़ी है उस पर सूफी प्रेमाख्यान काव्य का प्रभाव ढूँढना उचित नहीं है। प्राकृत और अपभ्रंश का अप्रकाशित साहित्य प्रकाश में आने के बाद से यह स्वीकार किया जाने लगा है कि हिन्दू प्रेमाख्यानकों का प्रारम्भ मुसलमानी सम्पर्क से पूर्व का ही है। अतः ब्रजभाषा में जो प्रेमाख्यान काव्य मिलते है उन पर हिन्दू प्रेमाख्यानकों का प्रभाव मानना चाहिए।[1]

अपभ्रंश में पौराणिक शैली के जो काव्य ग्रंथ मिलते है, 'कथा' नाम होने पर भी वे महाकाव्य ही है, जैसे 'भविसयत्तकहा' कथात्मक होते हुए भी महाकाव्य ही है, कथा नहीं। संस्कृत-प्राकृत का कथा-आख्यायिका वाला काव्यरूप अपभ्रंश में नहीं के बराबर है। शुद्ध कथा के रूप में जो रचनाएँ प्राप्त हैं वे धर्म-कथायें है, काव्य नहीं।[2]

'वार्त्ता' या 'वात' को कहानी की एक श्रेणी कहा जाता है। संस्कृत में पचतन्त्र और हितोपदेश की कथाओं में संकेतात्मक शैली में ज्ञान तथा अनुभव की बातें कही गई है। राजस्थानी भाषा में 'वात' साहित्य ऐतिहासिक व्यक्तियों पर भी लिखा गया है जो गद्य-पद्य दोनों रूपों में उपलब्ध होता है। गुजराती भाषा में बहुत से आख्यान काव्यों का नाम 'वार्ता' मिलता है। अधिकांश अपभ्रंश काव्यों में कथाओं का प्रारम्भ या विकास दो व्यक्तियों के प्रश्नोत्तर या संवाद रूप में हुआ है जो भामह के 'काव्यालंकार' में निर्दिष्ट कथा के लक्षणों पर आधारित हैं। रामायण महाभारत और बृहत्कथा में कथा को विकसित करने में इसी शैली का प्रयोग हुआ है। हिन्दी में पृथ्वीराजरासो, पद्मावत और रामचरितमानस में प्रश्नोत्तर और संवाद के रूप में कथा कहने की इसी परम्परा का रूप अपनाया गया है।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में मधुमालती (१५५० वि०) के कवि चतुर्भुजदास ने प्रेम कथा को 'वात' ही कहा है। यह 'वात' न केवल पद्यबद्ध ही होती थी बल्कि गेय भी होती थी और छन्दोबद्ध लोककथाओं-विजयमल लोरिक, चन्दा आदि-को तरह गाई भी जाती थीं।[3] लक्ष्मणसेन पद्मावती कथा छिताई वार्ता और मधुमालती तीनों हिन्दू प्रेमाख्यान परम्परा के आख्यान काव्य है जिनमे प्रेम कथाएँ दी गई है।

हमारे आलोच्य कवि लक्षदास जी की रचनाओं में जो कथाएँ पद्यबद्ध रूप में दी गई है वे खण्डकाव्य भी है और कथा भी क्योंकि इन कथाओं का मूलाधार तो श्रीमद्भागवत और जैमिनीयाश्वमेध पर्व है और वे 'कथा' के गुणों से युक्त है। वैसे भक्तों के चरित्र का वर्णन करते हुए कवि ने उनकी भक्ति तथा भगवान् के प्रति अटूट श्रद्धा का दिग्दर्शन कराने के उद्देश्य से ही कथासूत्र को विकसित किया है। हम इन्हे 'धर्म कथा' भी कह सकते है। गजराज सकट मोचन प्रसग में योवन मदमत्त गजराज के अहंकार का विनाश करके उसके उद्धार की कथा दी गई है। इस प्रसग के प्रणयन का उद्देश्य कवि के इस कथन से स्पष्ट दिखाई देता है—'नदलाल का स्मरण करने से 'जन्महीन, कुल, बरन' के पामर पशु तक तर

---

[1] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय डा० दीनदयाल गुप्त, २००४ वि०, पृ० २०।
[2] हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास डा० शम्भूनाथसिंह १९५६ ई० पृ० १७५।
[3] सूर पूर्व [illegible] और उसका साहित्य डा० [illegible] १९५८ ई० पृ० २२४

जाते हैं ।[1] कवि की कल्पना है कि भक्तों के संकट का निवारण करने के हेतु भगवान् ने जरासंध को छल से जानकर भी अपने भक्त भीम को विजय का यश प्रदान किया ।[2] चन्द्रहास,[3] हंसध्वज[4] और मयूरध्वज[5] की कथाओं में राजाओं के जीवन का संक्षिप्त चित्रण तथा उनकी भक्ति की परीक्षा को बहुत ही प्रभावपूर्ण ढंग से कहा गया है ।

'जड भरतोपाख्यान' तथा उसी के अन्तर्गत 'कपिल-देवहूति-संवाद'[6] और 'दत्तात्रेय-यदु-संवाद'[7] में पौराणिक परम्परा की शैली के आख्यान लिये गये हैं जिनमें जड़भरत और रहूगण, कपिल और देवहूति तथा दत्तात्रेय और यदु की बातचीत के द्वारा 'ज्ञान वार्ताएँ' दी गई हैं और सांसारिक दशाओं का दिग्दर्शन कराते हुए माया जाल से निवृत्ति के उपाय बताये गये हैं । साथ ही संतों की महिमा तथा भक्ति योग की महत्ता का विवेचन किया गया है । 'मोहतम दीप'[8] शीर्षक के अन्तर्गत नारी के माया रूप, तृष्णा, षड्रिपु और इन्द्रियों के आकर्षण की विविध प्रकार से आलोचना करके भगवद्भजन करने का उपदेश दिया गया है । 'सुभ ज्ञान'[9] में माया से बचने के उपाय और सगुणोपासना के कारण बताते हुए भक्ति पद्धति का तत्त्व निरूपण किया गया है ।[10]

मंगल काव्य—हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती और बंगला आदि भाषाओं में मंगल काव्य का अर्थ 'विवाह काव्य' ही है । आचार्य हेमचन्द्र के 'त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित' में ऋषभदेव और सुमंगला के विवाह का वर्णन है ।[11] ब्रजभाषा में मंगलकाव्य की परम्परा पृथ्वीराजरासो के 'विजयमंगल' काव्य से होती हुई आई । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विजय मंगल को रासो से पृथक् काव्य माना है जो कि बाद में रासो से जोड़ दिया गया ।[12] कुछ भी हो, मंगलकाव्य की परम्परा हिन्दी में बहुत प्राचीन काल से है । विष्णुदास (सं०

---

1 लक्षदास पामर पतन जिन सुमिरे नर लाल ।
जन्महीन कुल बरन ते तारे दीन दयाल ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५ ।

2 लक्षदास संकट हरन बिरद प्रगट हरि कीन्ह ।
जीति जरासुत नाथ बल जे जसु भीमहि दीन्ह ॥
—वही, पृ० ६६ ।

3 वही पृ० ७६ ।

4 वही पृ० ७५ ।

5 वही, पृ० ८३ ।

6 कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५ ।

7 वही वही पृ० ६० ।

8 वही वही पृ० ८२ ।

9 वही वही पृ० ८५ ।

10 इस प्रसंग का विस्तृत विवेचन अध्याय ८ में किया जायगा ।

11 त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ... ७६

12 हिन्दी साहित्य का आदिकाल — हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १०३

१८९४ वि०) रचित रुक्मिणी मंगल, मीराबाई रचित नरसी जी का माहेरा' आदि काव्य इसी परम्परा की एक कड़ी है। वस्तुतः मंगलकाव्यों के प्रणयन की यह परम्परा लोकगीतों के रूप में हमारी भाषाओं में तो प्राचीनकाल से है ही किन्तु साहित्य में इनका लिखित रूप भी उपलब्ध साहित्य के प्रकाश में आने पर ही हुआ है। हो सकता है कि इसीप्रकार के अनेक मंगलकाव्य अभी हस्तलिखित पोथियों के रूप में दबे पड़े हों या नष्ट कवलित भी हो गये हों किन्तु उनकी पृष्ठभूमि में जो परम्परा तैयार हुई है उसे देखकर हम गर्वोन्नत मस्तक कर लेते हैं।

लक्षदासजी के काव्यों में 'रुक्मिणी चरित्र लीला' मंगल काव्य की परम्परा में आता है। यह एक खण्ड काव्य है किन्तु हमने इसे मंगलकाव्य की परम्परा में इसलिये रखा क्योंकि इसकी कथा का प्रारम्भ रुक्मिणी के पूर्वराग, आन्तरिक द्वन्द्व तथा कृष्ण के पास विप्र भेजकर अपने दुख की सूचना पहुँचाने से होता है। अन्त में कवि ने प्रद्युम्न और रति के विवाह की कथा को भी इसी में सम्मिलित कर दिया है। अन्य मंगलकाव्यों की अपेक्षा 'रुक्मिणी चरित्र लीला' में कवि ने कुछ भिन्नता रखी है। इसने हिन्दुओं के आदर्श गृहस्थ की परम्पराओं की मर्यादा की सीमा का भी चित्रण करते हुए तद्वत् रूढ़ियों का निर्वाह कराया है। 'युगलकिशोर लीला' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने राधा कृष्ण के शृंगार विवाह तथा रसकेलि का वर्णन किया है, इन प्रसंगों के वर्णन में कवि की भावुकता सहस्रमुखी हो उठी है। 'लक्षदास, इन दोनों की शोभा को नेत्र भर कर देख। (विधि का विधान ही कुछ ऐसा है कि) रसना के नेत्र नहीं और नेत्रों के रसना नहीं, तब क्या किया जाय विधि की इस करामात पर कोई वश नहीं (विवशता) है। यदि रोम-रोम को रसना और दृग मिले होते तो इस शोभा का वर्णन 'अति हेतु से' सम्भव हो सकता था।'[1] 'राधा-कृष्ण की शोभा इसी प्रकार है जैसे जल में तरंग, चन्द्र में किरणें, सुमन में सुवास, रवि में प्रकाश, गोलक में नेत्र, बुध-बैन में अर्थ, पीयूष रस में मधुरता तथा ध्वनि में राग और रागिनी।'[2]

लक्षदास जी ने जो गेय पद लिखे हैं उनमें भी वेदिका के नीचे राधा-कृष्ण के विवाह और उनके रास-विलास का भावपूर्ण वर्णन किया है। व्योम में बाजे बजते हैं सुर सुमन बरसाते हैं। कुंज की लता और द्रुम के पत्ते-पत्ते फूले हुए हैं मानो मदन मधुकर युवतियों को पान देता है। शुकी और कोकिला सरस स्वर में गान करती हैं तथा सुख पूर्वक नृत्य

---

१ लछ अछी भरि भरी जुग जोऊ ॥
रसना नैनहि नैनन्हि रसना। कहा कहौं है विधि मम बसना ॥
रोम-रोम रसना दृग दैन। तब यह छवि बरनन अति हेन ॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ९९।

२ .... ।सजल तरंग ज्यौं देषती दोऊ ॥
किरनि चंद ज्यो सुमन सुवास। ज्यो कहियत रवि दीप प्रकास ॥
जो कहियत जुग गोलक नैन। सहित अर्थ जैसे बुध बैन ॥
जो पयूष रस माधुर ताई। औ कहियत प्रभु जो प्रभुताई ॥
धुनि महं राग रागिनी जैसे श्रीराधा मनमोहन तैसे
हस्तलिखित पृ० ९९

करती हुई सखियां हर्षित होती है। "अभिराम गौर-स्याम" दुलहिन और दुलहा बने हुए हैं। अपने नेत्र सफल हो जाने से सब सखियां (प्रसन्नता से) फूल गई है।[१]

मुक्तक काव्य—मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद्य स्वतंत्र रूप में किसी भाव या भावों की अभिव्यक्ति करता हुआ भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता सूचित करता है। साहित्यदर्पणकार ने "पद्य" और "मुक्तक" का लक्षण "छन्दोबद्ध पद पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्" बताया है।[२] आचार्य आनन्दवर्धन रसास्वाद की दृष्टि से "मुक्तक" रचनाओं को प्रबंध काव्य की भांति ही महत्वपूर्ण मानते हैं।[३] कुछ अन्य आचार्यों के विचार से प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा मुक्तक काव्य में रस-योजना के पृथक्-पृथक् तत्व इतने अधिक शक्तिशाली हुआ करते हैं कि एक में ही अन्य का समाक्षेप हो जाया करता है और रस का आप्लावन प्रारम्भ हो जाता है। आचार्य अभिनव गुप्त ने मुक्तक की जो निरुक्ति बनाई है[४] उसमे मुक्तक के स्वरूप की सुन्दर झांकी दिखाई देती है।

रसाभिव्यंजन के लिये विद्वानों ने मुक्तक काव्य को अधिक उपयुक्त मानते हुए उसके दो भेद माने हैं—(१) पाठ्य और (२) गेय। जिन मुक्तक कविताओं के पढ़ लेने पर ही आनन्द की प्राप्ति हो जाती है उन्हे "पाठ्य मुक्तक" कहते हैं। पाठ्य मुक्तक दो रूपों में उपलब्ध होता है—रसमय और सूक्ति। हृदय में रस या भाव का उद्रेक करने वाले मुक्तक "रसमय" कहलाते है, जैसे-सूर, तुलसी और मीरा आदि भक्तों के पद। गिने चुने शब्दों में सार की बात कह कर चमत्कार प्रदर्शित करना "सूक्ति मुक्तक" के अन्तर्गत आता है, जैसे-बिहारी, रहीम और वृन्द के दोहे, गिरिधर की कुंडलियाँ और दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियां। इन दोनों ही प्रकार के मुक्तक पद तथा दोहे लक्षदास जी की रचनाओं में भी मिलते हैं। (इनका विस्तृत विवरण आगे दिया गया है।)

---

[१] बिदित वेदिका मंडलु राजही दपती।
पहिराई जयमाल परसपर हरषही।
बाजत बाजन व्योम सुनत सुर बरषही।
फूले कुंज लता द्रुम पातीन्ह पातीन्ह।
पान देत जनु मधुकर मदन बरातीन्ह।
सारस सुकी कोकिला अली रस गावही।
नाचत सखी मीठर सुख हरष बढ़ावही॥
+ + +
गौर स्याम अभिराम दुलहीआ दुलहु।
भये नेम सब सफल सखी सब फुलहु॥

—वही, पृ० ११७।

[२] साहित्य दर्पण—६।३१४,

[३] "मुक्तकेषु प्रबन्धेष्विव रसबन्धाभिनिवेशिन. कवयो दृश्यन्ते"—

—ध्वन्यालोक लोचन, तृतीय उद्योत।

[४] मुक्तकमन्येनालिंगित तस्य सज्ञाया कन्। तेन स्वतंत्रतया परिसमाप्तनिराकाङ्क्षार्थमपि प्रबन्धमध्यवर्तिन मुक्तकमित्युच्यते—

—वही- तृतीय उद्योत

गीतो के रूप मे जिस मुक्तक की रचना होती है उसे गेयमुक्तक या प्रगीत या गीति काव्य कहते है। गीतिकाव्य की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का कथन है कि "मन मे जब एक वेगवान अनुभव का उदय होता है तब कवि उसे गीति-काव्य मे प्रकाशित किये बिना नही रह सकते,[1] इसीलिये गीति शैली हृदय की कोमल भावनाओं को व्यक्त करने के लिये नितान्त उपयुक्त मानी गई है क्योंकि गीत लय की मधुर रागिनी के पर्यक मे हिलकोरें लेता हुआ चलता है। इसी कारण, प्राचीन काल मे, गीतो की रचना शृ गार, करुण और शान्त रसो के अभिनिवेश मे की गई। डा० गुलाबराय ने "प्रगीत" के तत्व (लक्षण) सक्षेप मे इस प्रकार बताए है—सगीतात्मकता और उसके अनुकूल सरस प्रवाहमयी कोमल कान्त पदावली, निजी रागात्मकता (जो प्राय) आत्मनिवेदन के रूप मे प्रकट होती है सक्षिप्तता और भाव की एकता। यह काव्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा अधिक अन्त. प्रेरित (स्पौन्टेनियस) होता है। इसी कारण इसमें कला के होते हुए भी कृत्रिमता का अभाव रहता है। सस्कृत मे कालिदास का "मेघदूत" तथा जयदेव का "गीत गोविन्द' गीति काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण है। हिन्दी के आधुनिक कवियो मे प्रसाद, पत तथा महादेवी के गीत गेय मुक्तक की परम्परा मे आते है।

स्तोत्र एवं स्तुति काव्य—सृष्टि के आदिकाल मे जब प्रथम मानव ने अपने नेत्र उन्मीलित कर प्रकृति के प्रागण मे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, जलद, विभूति सम्पन्न वसुधा आदि का अवलोकन किया होगा तो उसके आश्चर्य और कुतूहल का ठिकाना न रहा होगा। प्रकृति के भयावह रूप, उपल-वृष्टि, वृक्ष-निपात आदि विविध उपकरणों ने उसमे भय का सचार किया। उसकी आवश्यकताओ ने सुरसा का सा मुँह फैलाकर अनेक समस्याए पैदा की तब मानव को अपने ससीमत्व और अपनी लघुता का भान हुआ। उसने मौन होकर प्रकृति के प्रभा-उषा, मरुत, गिरि, सूर्य सिंधु, चन्द्र, जलद आदि-मे मागलिक भावना की अवतारणा करके उनमे देवत्व की प्रतिष्ठा की और श्रद्धा से अपना सिर झुका दिया। देवताओ तथा दैवी शक्तियों मे शिवत्व का आरोप करके उसने उनका स्तवन किया। इस प्रकार मानव ने प्रकृति के उपादानो के अद्भुत, रौद्र, शिव एव सुन्दर रूपो का अवलोकन कर नवीन भावनाओ को ग्रहण किया और आश्चर्य, भय तथा मंगलमय विश्वास के योग से उसमे पृथक्-पृथक् व्यक्तित्व की कल्पना करते हुए देवत्व की स्थापना करली। इस भाँति मानव-मस्तिष्क की विकसित चेतना द्वारा प्रकृति के प्रति पूजा भाव का आविर्भाव हुआ।[2] धीरे-धीरे उसने अनुभव किया कि प्रकृति के समस्त उपादान नियम के चक्र की धुरी पर घूमते रहते है। इसी जिज्ञासा ने उसको ससार चक्र की प्रमुख प्रेरक शक्ति का अनुभव कराया और उसने अनेक देवी-देवताओ मे भी एक ही दैवी-शक्ति के दर्शन किये।

वैदिक काल मे प्रकृति के विविध उपादानों की स्तुति का विधान था जिसका विकास उपनिषद्काल तक हुआ। महाकाव्यकाल मे परब्रह्म की सत्ता को राम और कृष्ण मे केन्द्रीभूत कर दिया गया। शिव तो आदि देवता के रूप मे पूज्य थे ही, राम और कृष्ण मे भी

---

[1] मेघनाद वध (हिन्दी अनुवाद) झाँसी स० २००८ भूमिका पृ० १३७।
[2] हिन्दी काव्य मे प्रकृति चित्रण २००६ वि० —डा० गुप्त पृ० ६

देवत्व का आरोप किया गया और परवर्तीकाल में तो इन विभूतियों की इतनी महिमामण्डित किया गया कि इन्द्र जैसे देवता का महत्त्व भी उपेन्द्र (विष्णु) के सामने तुच्छ हो गया और विष्णु का प्रभाव इतना बढ़ गया कि वे परमदैवत् और परब्रह्म के अंगभूत रूप में स्वीकार किये गये। पौराणिक युग में ब्रह्म की शक्तियों को शिव, राम और कृष्ण के रूप में चित्रित किया गया और उनसे सम्बन्धित विविध कथाओं का समन्वयात्मक रूप में व्यापक प्रचलन हुआ। वैदिक काल में जिन देवताओं से ज्ञान, शक्ति, विद्या, बल, बुद्धि आदि प्रदान करने की प्रार्थना की जाती थी वे ही अब "परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्" कह कर पृथ्वी का भार उतारने के लिये अवतार धारण करने लगे। भगवान् के इस लीलामय रूप में लोक रक्षक और लोकरंजक रूपों की मान्यता प्रचलित हो गई। इसी पौराणिक परम्परा ने परवर्ती-काल के साहित्य को भी प्रभावित किया।

प्राकृत-अपभ्रंश काल में जो स्तुति एवं विनयपरक रचनाएं मिलती हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण और राम केवल महामानव ही नहीं रहे वे देवत् रूप में भी स्वीकार किये जाने लगे और कृष्ण की लीलाओं में मधुरा वृत्ति, रासलीला तथा गोपियों के हास विलास में उनका चरित्र उज्ज्वल बनाकर दिखाया गया और ब्रजभाषा तथा अवधी काव्य पर इन परम्पराओं का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

इस प्रकार भगवान् के विविध लीला रूपों (अवतारों) को स्मरण करने के दो प्रकार निश्चित हुए—(१) स्तोत्र रूप में-भगवान् के विविध रूप नामों की आवृत्ति (२) लीलारूप में भगवान् के कार्यों का स्मरण करना या काव्यरूप में उनका गुण गान करना। लक्षदास जी की रचनाओं में भगवन्नाम स्मरण के उपर्युक्त दोनों प्रकार मिलते हैं। भक्तवत्सल भगवान की स्तुति,[1] मंजुमुक्तावली[2] शतनामस्तोत्र,[3] सम्पत्तिप्रद स्तोत्र,[4] पावनलीला,[5] में भगवान् के भक्तवत्सल रूप तथा भक्तों की रक्षा के लिये की गई उनकी लीलाओं का प्रकर्ष गान है। 'हरिहरनामावली'[6] में राम, कृष्ण और शिव ने कृष्ण के बाल और मधुर जीवन के सम्बन्ध में गेयपद लिखे हैं जिनमें उपर्युक्त मुक्तकों की भांति कृष्ण के भक्तवत्सल, दीनप्रतिपालक और लीलारूप का स्तवन किया गया है।

शृंगारकाव्य एवं भावनापरक गीतिकाव्य

कृष्णचरित के विकास की परम्पराओं के विषय में इसी प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में हम विस्तार से विचार कर चुके हैं। इन पंक्तियों में हम कृष्ण चरित के काव्यबद्ध रूप का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयास करेंगे। 'महाभारतकाल से पुराणकाल' तक के साहित्या-वलोकन से पता चलता है कि कृष्ण का ऐश्वर्य और पराक्रमपूर्ण चरित ललित-साहित्य का

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ९३।
[2] वही वही, पृ० ९४।
[3] वही वही, पृ० ९५।
[4] वही वही, पृ० ९६।
[5] वही वही, पृ० १०१।
[6] वही वही पृ० १०२

विषय तो नहीं बना था किन्तु लोकगीतों और लोककथाओं के माध्यम से उनके सम्बन्ध मे मधुर और ललित कथाएं कदाचित् अधिक प्रचलित हो चली थी और उन्होंने लोक-मानस को भी मुग्ध कर लिया था। 'महाउमग्ग' जातक के काम-पीडित वासुदेव कृष्ण के उल्लेख से भी यह सूचित होता है कि उनके शृंगारी जीवन से सम्बन्धित कथाएं लोक-प्रचलित रही होंगी।[1] यही लोक-प्रचलित कथाएं जनमानस के विश्वास का अंग बन गई तब कृष्ण के शृंगारी चरित का रूप पुराणों मे भी लिखा जाने लगा।[2] इस प्रकार हरिवंश आदि पुराणों मे कृष्ण के राजसी वैभव-विलास के ऐश्वर्यपूर्ण चरित तथा गोपाल रूप मे उनकी ग्रामीण क्रीडा केलि के माधुर्यपूर्ण चरित के द्विविध रूपों को समन्वित किया गया।[3] इसी प्रकार की परम्पराओं के परिणाम-स्वरूप भागवत पुराण मे कृष्ण के जन्म से द्वारका-प्रवास तक के सम्पूर्ण चरित का पूर्ण रूपेण विकास किया गया और कृष्ण के ऐश्वर्य-पूर्ण और माधुर्य रूपों का विकसित रूप ही साहित्य का अंग बना। कुछ विद्वान माधुर्य भक्ति के विकास मे बौद्ध तान्त्रिक-साधना का भी हाथ मानते है। उनका कहना है कि "बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय वास्तव मे मधुर भाव का पोषक था।"[4] कुछ भी हो, मधुर भाव की व्यंजना के लिये दक्षिण भारत के आलवार भक्तों के मनमोहक गीतों को भुला देना घोर अपराध होगा क्योंकि इन गीतों ने आत्मा-परमात्मा से सम्बन्धित माधुर्य भावनाओं का सम्यक् निर्वाह करते हुए विरह-व्यथित नायिका (आत्मा) की मिलनोत्सुकता का बहुत ही भावपूर्ण वर्णन हुआ है।

प्राकृत गाथाओं का संग्रह 'गाहा सत्तसई' नाम से मिलता है। विद्वानों का अनुमान है कि हाल सातवाहन ने ये गाथाएं प्रथम शताब्दी ईसवी मे संकलित कराई किन्तु हमे इतना तो निस्संकोच स्वीकार कर ही लेना चाहिए कि ये गाथाएं लिपिबद्ध किये जाने के बहुत पहले से ही लोक-प्रचलित रही होंगी। इन गाथाओं मे गोपाल कृष्ण की प्रेम क्रीड़ाओं के वे अनेक संदर्भ दिये गये है जिनका (परवर्ती काल मे) कृष्ण भक्ति मे उपयोग हुआ। यद्यपि गाहासत्तसई मे भक्ति-भावना का संकेत नही मिलता, फिर भी गाथाओं की यह शृंगारिक परम्परा बारहवीं शताब्दी तक उत्तरोत्तर धार्मिक तत्वों से अभिभूत होकर और भी अधिक भक्ति भाव-समन्वित हो गई।[5] अपभ्रंश-काल की रचनाओं-सिरिहिट्ठ महापुरिस गुणालंकार, हेमचन्द्र रचित शब्दानुशासन, प्रबंध चिंतामणि, प्राकृत पैंगलम् आदि—मे भी प्रेमरूपाभक्ति का निरंतर विकसित रूप अंकित किया गया।

कृष्ण भक्ति के विविध सम्प्रदायों से माधुर्य भाव के स्वरूप और विस्तार को बहुत बड़ा योग मिला। सम्प्रदायाचार्यों ने वृन्दावन को नित्य 'लीला' का केन्द्र माना और राधा तथा गोपियों के साथ कृष्ण के विविध रास-विलास का मुक्तकों तथा गेय पदों के रूप मे वर्णन किया। निम्बार्क सम्प्रदाय ने राधा भाव या गोपीभाव को स्वकीया प्रेम तक सीमित करके उसमे संयोग-पक्ष को ही विशेष प्रश्रय दिया। इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए महाकवि जयदेव ने

---

[1] हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड—सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा (१६५६ ई०) पृ० ३३४।
[2] हरिवंश पुराण, विष्णु पर्व, अध्याय ६७, ८८, ८६।
[3] हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० ३३५।
[4] हिन्दी धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक १६६० ई० पृ० ४६६ ४६७
[5] हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड पृ० ३३७

'गीत गोविन्द' में राधा-कृष्ण की निकुञ्ज लीला का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। बंगाल के कवि चण्डीदास ने सहजिया सम्प्रदाय की मान्यताओं के अंतर्गत परकीया भाव के द्वारा मधुर भाव को चरम विकास तक पहुँचाया। मैथिल कोकिल विद्यापति ने भी परकीया प्रेम को आदर्श मान कर काव्य-रचना की। इसी परम्परा का विकसित रूप चैतन्य सम्प्रदाय की मधुरा भक्ति मे दिखाई दिया जहाँ माधुर्य भाव के उज्ज्वलरस की चरम परिणति परकीया प्रेम मे ही मानी गई। वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने भी माधुर्य भाव के क्षेत्र की व्यापकता को राधा और गोपियो के परकीया प्रेम के आदर्श रूप मे स्वीकार किया[1] क्योकि परकीया भाव में प्रेमानुभूति की विविधता, नित्य नवीनता और मर्यादा के बधनो का अतिक्रमण करके भी उसमे जीवनी शक्ति को तीव्रतर बनाये रखती है; किन्तु सूरदास के काव्य का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने काव्य मे राधा को स्वकीया और परकीया दोनो रूपो मे चित्रित करके राधा-कृष्ण की विलास लीलाओ का अद्भुत सगम उपस्थित किया है। राधा वल्लभ सम्प्रदाय मे न तो परकीया भाव की स्वीकृति है, न विरह भाव की, वहाँ तो निकुज लीला का वृन्दावन-रस नित्य मिलन के रूप मे कल्पित किया गया है। इस सम्प्रदाय में राधा प्रेम की आलम्बन है और कृष्ण उसके आश्रय। ये 'नित्य-विहार' मे 'तत्सुखि' भाव से रास क्रीडा करते है और उनके परिकर और सहचरीगण भी इसमे उनकी सहायता करते है। निकुज लीला का यह आदर्श थोडे रूप भेद से अन्य कृष्ण भक्ति सम्प्रदायो मे भी उपलब्ध होता है। वल्लभ सम्प्रदाय की सबसे बड़ी विशेषता कृष्ण के प्रति सखा भाव और वात्सल्य भाव की भक्ति का विशिष्ट रूप ही है। हरिदासी सम्प्रदाय मे सखी भाव से युगल सरकार की अष्टयाम सेवा और निकुञ्ज लीला का विधान है।

महाराष्ट्र के भक्त कवि नामदेव ने राधा के परकीया रूप की स्वीकृति मे समाज की मर्यादा-प्रतिष्ठा के भग होने का ध्यान रख कर कृष्ण और रुक्मिणी के दाम्पत्य भाव को विशेष मान्यता दी और रुक्मिणी को स्वकीया के रूप मे अकित किया।

निर्गुणिए सतो ने दाम्पत्य भाव को पृष्ठभूमि मे रख कर स्वकीया रूप से माधुर्य भाव की भक्ति को अभिव्यजित किया किन्तु परकीया भाव को स्वीकार नही किया क्योकि उसमें प्रेम का उच्छृ खल रूप, अनैतिक आचरणो का वर्णन और मर्यादा के उल्लघन की बात थी।

माधुर्यभक्ति का चरमोत्कर्ष तो काव्यो मे प्रकृति के उद्दीपन रूप मे अपनाने पर ही हुआ। पुराणकाल में कृष्ण और गोपियो के विविध रास-विलास तथा उनकी लीलाओ का जो रूप अकित किया गया उसमे प्रकृति के उपमानो तथा प्राकृतिक वातावरण की सहज सृष्टि करके कवियो ने काव्य मे ऐसी स्फुरणा भर दी कि काव्य और प्रकृति का समन्वय भक्ति की आधार-भूमि बन गया। इसीलिये प्रकृति चित्रण के दो प्रकारो—षड्ऋतु वर्णन और बारहमासा— को अपनाया गया जो परवर्ती काल मे काव्य रूप (पोइटिक फार्म) की भाति विकसित हुए। भक्ति काव्य मे प्रकृति के उद्दीपन का चित्रण कदाचित् इसलिए आवश्यक समझा गया जिससे माधुर्य भक्ति के अन्तर्गत सयोग के सुखद वातावरण मे ऐसी 'रसनिष्पत्ति' हो सके कि भक्त उसमें तन्मय होकर सगुण साकार भगवान् की लीलाओ का पूर्णानन्द प्राप्त कर सके। सयोग के सुखद क्षणों की पूर्णाभिव्यक्ति के लिये 'षड्ऋतु वर्णन' किया गया। दूसरी ओर वियोग मे

[1] हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड १९५९ ई० पृ० ३४७

विरहिणी नायिकाओं (गोपियों) में प्रकृति के उद्दीप्त रूप से जिस .... की सृष्टि हुई इसको प्रदर्शित करने के लिये 'बारहमासा' की पद्धति को अपनाया गया। लक्षदास जी के पूर्व लिखे गये कृष्ण भक्ति काव्य में शृंगार का ऐसा विशद वर्णन तथा उसमें प्रकृति का समन्वयात्मक रूप इस सुन्दरता से समाविष्ट नहीं मिलता है जितनी विविधता के साथ उनके समसामयिक भक्त कवियों —सूर, श्रीभट्ट, श्रीहरिव्यासदेव, श्रीहितहरिवंश आदि—की रचनाओं में दिया गया।[1] हमारे आलोच्य कवि लक्षदास जी की रचनाओं में कृष्णचरित्र का वर्णन विविध प्रकार से मिलता है। आगे की पंक्तियों में हम उसका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे।

वृन्दावन विहार वर्णन[2]—लक्षदास जी के काव्य में दम्पति-केलि-विलास का विविध प्रकार से वर्णन किया गया है। राधा को स्वकीया बनाकर संयोग शृंगार तथा सखियों से परिसेवित राधा-कृष्ण की शोभा के सुन्दर चित्र अंकित किये गये हैं। 'वृन्दावन विहार वर्णन' में राधा-कृष्ण की क्रीडा के निमित्त ऋतु संकेत देकर सखियों द्वारा दम्पति के शृंगार की तैयारी, राधा-माधव की सेवा तथा राधा के मान करने पर कृष्ण की विकलता का वर्णन किया गया है।[3] कवि ने राधा के महत्व का निदर्शन करते हुए तथा कृष्ण की प्राप्ति के लिये राधा की सेवा को (स्वयं कृष्ण के मुखारविंद से ही) आवश्यक ठहराया है।[4]

कृष्ण की लीला[5]—लक्षदास जी ने बरवै छंदों में कृष्ण की लीला को अक्रूर के आगमन से कंसवध तक की कथा के रूप में लिखा है। इसमें कृष्ण को ब्रह्म का अवतार मानकर अक्रूर तथा मथुरा के नर-नारियों के द्वारा उनकी स्तुति तथा शोभा का वर्णन है।

बरवै उद्धव[6]—इस शीर्षक के अन्तर्गत विरह विदग्धा गोपियों की उद्धव पर व्यंग बाणों की बौछार तथा कृष्ण के कुशल क्षेम जानने का सुन्दर वर्णन है। वे कृष्ण को अपना प्रियतम तथा वैरी दोनों मानती हैं और प्यारे कृष्ण की स्मृति को 'बिसराकर' अपने मन को समझाती हैं।[7] एक गोपी कहती है—'यदि विधि मुझे कन्हैया और उन्हें (कृष्ण को) वर-नारि बनादे तो

---

१ इनकी रचनाओं का तुलनात्मक विवेचन अध्याय ६ में किया जायगा।
२ कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०१।
३ एक समै मानिनि भै राधा। मोहन मन मनसिज कृत बाधा॥
व्याकुल भये मीन ज्यों बिन जल। लुठत उठत धरनी पर नहि कल॥
हा राधा राधा टेरत सन। सुधि न भोग भूषन वसन।
मुरली मृदु राधा जस गावत।—
कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०२।
४ श्रीराधा की मया रास रसु। राधा रूप बसत मेरे अमु॥
मै राधा की कृपा बिहारी। राधा दासी राम अधिकारी॥
जो अनन्य सेवत श्री राधा। मन कर्म बचन भजन नहिं बाधा॥
केवल मेरो ना मन भावै। श्रीराधा को कहि गुन गावै॥
जो राधा गति जानै सो राधा रसु जान॥
कृष्णरससागर (हस्तलिखित), वही पृ० १०१।
५ श्रीमद्भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ९०, ९१।
६ वही पृ० ८९, ९०।
७ वीसरावे ... कृस्न पीआरे लछो ते प्रीतम वैरी दुखी हमारे
—वही पृ० ८९

(सम्भव है) लक्षदास, श्याम हमारी पीर को जान सके।'[१] 'कन्हैया तब तुम (केवल) माखनचोर थे (किन्तु) अब कैसे सहा जाय (तुम तो) चितचोर हो गये।'[२] 'प्रियतम तुम्हारे नयन 'मैन के बान' (जैसे) थे। देह मे घाव दिखाई नही देता (फिर भी) प्राण बेधे जा रहे है।'[3]

वन विहार, वसंत, फाग, हिंडोलना, शरद् रात्रि—इन प्रसगो मे कवि ने सयोग शृगार के बहुत सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है जिनमे ब्रजजनो के साथ में 'श्याम-श्यामा की नित्य लीला' का वर्णन किया गया है।[४] सयोग शृगार के पदो मे कवि की भावना सहस्रमुखी हो उठी है। लक्षदास जी के ये भावनापरक पद सूरदास के पदो की समता में रखे जा सकते है। हिंडोलना का एक उदाहरण लीजिये—'सुरग दपति हिंडोले मे झूलते है मानो सारे पावस की शोभा को बराबर 'अजोरे' लेते है। श्याम तन के साथ गौर तन की शोभा वैसी ही है जैसे सघन घटा (कृष्ण) के साथ दामिनि छवि (राधा) 'छीनी' गई हो। सरस भृकुटि पर 'केसरि चंदन' है मानो 'मनि-धन' ने 'सोसरि' जोड़ दी है। उर पर श्वेत सुमनो की माला चतुरो के चित्त को भी चुराने वाली है मानो नील जलद (कृष्ण का शरीर) पर बगपात (बगुलो की पक्ति के रूप मे पुष्प) 'तृण' तोड़कर डाल रही है। सिर में से खिले हुए सुमन गिरते है मानो थोड़े थोडे करके बरस रहे है। लक्षदास, श्रीराधा मनमोहन सदा मेरे मन मे वास करो।'[५] इसी प्रकार 'फाग' के वर्णनो मे कृष्ण और राधा की शोभा को भी कवि ने बड़ी तन्मयता मे प्रस्तुत किया है।' नद का चचल ढोटा सारे ब्रज मे फाग खेलता है। वह 'राग भरो' है और सब गोपियो से राग रग भरता फिरता है। लाल एक के गुलाल भरता' है और हसकर 'नै नै' की तान भरकर गाता है। एक से वह 'हाहा' करता है और एक के 'कान लगता है।' एक से हिलमिल कर छिपा रहता है, एक के दौड़कर पकड़ने पर भी वह पकड़ में नही आता है।''''कभी वह किशोरी का वेष धारण करता है और कभी (स्वय को) नवलकिशोर कहता है। किसी ने (उसकी) मुरली 'चोरि लई' और किसी

---

१ मोहीं बीधी करै कन्हैया वै बरनारी। लछी स्याम तौ जानही पीर हमारी ।।

—वही।

२ तब तुम हते कन्हाइ माखन चोर। अब कैसे सही जाइ भयेऊ चीतचोर ।।

—वही।

3 नैन तोहारे प्रीतम मैन के बान। देह घाउ नही देषीअ भेदत प्रान ।।

—वही, पृ० ६०।

४ स्याम स्यामा नित्य लीला रहत ब्रज जन सगही ।।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०६।

५ झूलन दपति सुरग हीडोरे।
मनहु सकल पावस की सोभा बरवस लेते अजोरे।
सघन घटा दामिनि छवि छीनी नल बल स्याम तन गोरे।
भ्रौकुटी सरस केसरी चंदन जनु मनु मनीधन सोसरि जोरे।
उर पर माल सेत सुमन (न) कि लेत चतुर चित चोरे ।।
नी (ल) जलद बगपति मनहु त्रृन डारत हे तिन तोरे।
गिरत सीस ते फुल फलही जनु वर्षत थोरे थोरे
श्री राधा मन मोहन सदा बसो मन मोरे वही पष्ठ ११२

ने पटपीत नद किशार की लीलाओ को धमार' म गाकर कहता ह श्री मनमोहन की चरण रणु पर लक्षदास बलि जाता है।

भ्रमरगीत—लक्षदास जी ने 'भ्रमरगीत' प्रसग के अन्तर्गत उद्धव-गोपी सवाद का जीता जागता चित्र उपस्थित किया है। उद्धव ब्रज्वनिताओ को योग का संदेश देते हुए कहते है गोपियो हरि 'बिछुरे' नही है, सबके भीतर 'भरि पूरि' रहे है। जल के भरे कोटिक घट 'पेखने' पर सभी के भीतर एक 'ससि' दिखाई देता है। वह 'दारु' मे 'पावक' की भाति विद्यमान है और यत्न करने पर दिखाई देता है। मैं सार विचार (कर) कहता हूँ कि (तुम लोग) अब 'भोग तजिकर' 'जोग' को साधो। लक्षदास, मधुप ने ये उदास बाते गोपियो से कही कि सभी लोग अपने मन मे विचार कर देखो, 'कान्ह' कही 'बिछुरे नही है।' उद्धव के इस उपदेश को सुनकर गोपिया सीधे-सादे शब्दो मे अपनी बात कहती है—"हरि सखा, तुम सयाने हो। (हम) ब्रज के लोग अयाने" (अज्ञानी) अहीर है। तुम इन गीतो को तो वहां (जाकर) गाओ जहा बिना जल के 'मीन' जीवित रह सके। (यदि तुम) जल के बिना 'मीन' को 'जिआवो' और 'चातक' के 'नेम' को 'हर लो' (तो) स्याम रग और 'रग लावो' (और हमे भी) 'जोगिनी' कर लो। श्रीमनमोहन की मधुर मूर्ति, लक्षदास, नयनो मे 'भर रही है' तुम (चाहे) चतुर 'हरिजन सही' किन्तु हमारे पास और 'ठौर' नही है जहाँ हम और (किसी को) रख सके।"[2] वे उद्धव

---

[1] चंचल ढोटा नद को सब ब्रज मे पेलत फागु री।
राग भरो रग भरत फीरै सब गोपीन्ह सो अनुराग री।
येकन्ह लाल गुलाल भरै हसी गावै नै नै तान।
येकन्ह सौ हाहा करै येकन्ह के लागै कान।
येकन्ही हीलीमीली छपी रहे येक गहै गही नही जाइ।
× × ×
कबहु कीसोरी वेप बनै कबहु कहै नवल कीसोर।
काहु मुरली चोरी लइ काहु के पटपीत चोर॥
× × ×
लीला नंदकीसोर की कहो धमारीन्ह गाइ।
श्री मनमोहन चरन रेनु पर लछीदास बलीजाइ।
—भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ९२।

[2] गोपिहु बिछुरे हरि नाही। भरि पूरि रहे सब माही।
जल भरि कोटिक घट पेषौ। ससि एक सबनि मह देषौ॥
देषियतु है जतन जैसे प्रगट पावक दारु मे।
भोग तजि अब जोग साधहु कहहु सार विचारि मे।
लछदास उदास बाते मधुप गोपिन सो कही।
आपु आपु विचारि देषौ कान्ह कहु बिछुरे नही॥
तुम हौ हरि सषा सयाने। ब्रज लोग अहीर अयाने।
ये गीत उहातौ गावौ। जह जल बिन मीन जिआवौ॥
मीन जल बिन जो जिआवो नेम चातिक को हरो।
स्याम रग रग और लावो हमहि जोगिनि तौ करो॥
श्रीमनमोहन मधुर मूरति लछि नयननि भर रही।
ठौर नही जह और रापै चतुर तुम हरिजन सही॥
पृ० १११

के योग संदेश तथा निर्गुणोपदेश को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट करती हुई कहती है—" (उद्धव) तुम हरि के निकट रहकर भी इतनी नीरस कथा कैसे कहते हो? तुम (उन) नंददुलारे को व्रज 'आनहु' (लाओ) जो हमारा जीवन प्राण है। सुन्दर साँवरे को छोड़कर हमारा कोई दूसरा व्रत नहीं है। (ऐसे) 'विरह व्याकुल बावरे' कौन व्रजजन है जो (ऐसी बात) 'गुजावै' (कहते हैं) जिन्होंने (कृष्ण की) बाललीला नहीं देखी और 'रास रस' ग्रहण नहीं किया। ऊधो, 'श्याम नीरज' के निकट (वे) 'भेक जैसे रहत हैं।'[1] गोपियों की वचन विदग्धता के आगे उद्धव के तर्क ठहर न सके। उनके ६ महीने यों ही बीत गये, पता नहीं लगा। अंत में व्रज के लोगों ने हरि चरणों की 'सुधि' करके कुछ भेंट दी। उद्धव (उनकी) भेंट तथा संदेश लेकर चले। उनके नेत्रों से वारि (आँसू) बरसता था। उद्धव ने (कृष्ण के समीप जाकर) व्रज नारियों के प्रेम की प्रशंसा की। श्रीमनमोहन के 'सुजस' के 'पुनीत गीतों' को जो 'नेम' से गाता है, लक्षदास (वह) सदा सुखी रहता है और प्रेम से भक्ति को प्राप्त करता है।[2]

बारहमासा—संस्कृत साहित्य में बारहमासा प्राप्त नहीं होता, षट्-ऋतुओं का वर्णन ही मिलता है। वाल्मीकि रामायण, ऋतुसंहार (कालिदास), शिशुपाल वध (माघ) आदि संस्कृत की रचनाओं तथा अब्दुर्रहमान कृत 'संदेशरासक' आदि अपभ्रंश की रचनाओं में भी षट्ऋतु वर्णन अत्यन्त विस्तार से मिलता है। बारहमासा की सर्वाधिक प्राचीन रचना जिणधर्मसूरिकृत 'बारहनावउ' १३वीं शताब्दी में लिखी गई ऐसा कहा जाता है।[3] 'बारहनावउ' श्रावण मास से प्रारम्भ होता है और आषाढ़ तक चलता है। इसी परम्परा की दूसरी रचना विनयचन्द्र सूरि कृत 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' है इसका प्रारम्भ श्रावण से और अंत आषाढ़ से होता है।[4] इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है[5] फिर भी इतना तो निश्चित है कि

---

[1] ऊधो हरि निकट रहत हौ। कत नीरस कथा कहत हौ।
व्रज आनहु नंद दुलारे। जे जीवन प्रान हमारे।
नहि हमारे दूसरो व्रत छाडि सुन्दर सावरे।
जो गुजावै कौन व्रजजन विरह व्याकुल बावरे।
जीन न देषा बाल लीला रास रस नही लहत है।
स्याम नीरज नीकट ऊधो भेक जैसे रहत है॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११२।

[2] ऊधो रहे प्रेम रससाने। षट मास जात नहि जाने।
हरि चरनन की सुधि कीन्ही। व्रज लोगन भेंटे दीन्ही।
ले चले भेंट संदेस ऊधो नयन वर्षत वारि हो।
पाइ परि परि कहै प्रभु सौं धन्य व्रज (की) नारि हो।
श्री मनमोहन सुजस गीत पुनीत गावै नेम सो।
लछदास सदा सुषी भगति पावै प्रेम सो॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११२।

[3] हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ६, अंक ४, पृ० ४०।

[4] हिन्दुस्तानी, भाग २० (१९५९ जनवरी-मार्च) अंक १ में प्रकाशित श्री हरिशंकर शर्मा का लेख।

[5] नेमिनाथ छन्द ? सम्पा० डा० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी श्री फार्बस गुजराती सभा ग्रंथावलि ६१ बम्बई ४ १९५५

इसका रचनाकाल १४०० शताब्दी इससे पूर्व का है क्योंकि सभी विद्वान इसी के लगभग उसका समय मानते है। 'बीसलदेव रास' संवत् १४०० के आसपास की रचना है जिसमें दिया गया बारहमासा कार्तिक से प्रारम्भ और क्वार में समाप्त होता है।[1] संवत् १५८४ की एक प्रबंध रचना 'माधवानल कामकंदला' (गणपति कवि कृत) में बारहमासा के दो प्रसंग आए है। दोनों बारहमासे फाल्गुन से प्रारम्भ होते है और चैत तक चलते है।[2] एक अन्य काव्य मैनासत में (रचनाकाल १५०० ई० के लगभग) बारहमासा आषाढ से प्रारम्भ होता है और ज्येष्ठ तक चलता है।[3] इस प्रकार बारहमासों की जो परम्परा मिलती है उससे स्पष्ट है कि कवियों ने बारहमासा के प्रारम्भ करने में कोई एक नियम नही माना। 'बारहमासा की परम्परा और पद्मावत' शीर्षक लेख में डा० श्याममनोहर पाण्डेय ने अपभ्रंश में प्राप्त परम्परा से हिन्दी साहित्य में पद्मावत तक उपलब्ध बारहमासों की परम्परा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए अनुमान किया है कि जैन कवियों तथा मलिक मुहम्मद जायसी ने बारहमासा लोक परम्परा से ग्रहण किया होगा।[4]

हमारे आलोच्य कवि लक्षदास के काव्य में 'बारहमासा' का वर्णन भी प्रकृति के उद्दीपन रूप की अभिव्यक्ति के लिये हुआ है। कवि ने अपनी रचना 'भ्रमर गीत' के प्रसंग में 'बारह-मासा' की पद्धति को अपनाया है उसमें नायिका के कथन 'आषाढ' मास से प्रारम्भ होते है[5] और सावन, भादों तथा शरद् के समय के सम्बन्ध में है। इसके अतिरिक्त भी लक्षदास ने 'बारहमासा' नाम की एक (स्वतंत्र) रचना की है जिसकी नायिका के कथन 'सावन' मास से प्रारम्भ होते हैं[6] और आषाढ मास तक बारहों महीनों में विरह विदग्धा नायिका की चित्त-वृत्ति एवं व्याकुलता का सजीव चित्र प्रस्तुत करते है।

सगुणोपासना के कवित्त—'सगुणोपासना के पद' शीर्षक के अन्तर्गत १२कवित्त पंचदूत में प्रकाशित हुए थे। इनमें शरद् रास के समय कृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनकर जाती हुई अस्त-व्यस्त गोपिका का भावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है।[7] अन्य कवियों में निर्गुण की

---

[1] बीसलदेवरास की भूमिका, डा० माताप्रसाद गुप्त।
[2] माधवानलकामकंदला, प्रबंध—गणपति कवि, पृ० २०३।
[3] मैनासत—सम्पा० श्री हरिहरनिवास द्विवेदी, भूमिका, पृ० ८८।
[4] सम्मेलन पत्रिका—भाग ४७ (पौष-फाल्गुन शक १८८२), अंक १, पृ० ४२।
[5] ऊधो वै दिन कौन है जब माधो चले विदेसा।
अवध असाढ़ न आये ऊधो मरिअत विरह अंदेसा॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११२।

[6] यह सावन सुनी घनघोर मोर बोलन बन लागे।
रातीक मोन न होत बोल चातिक उर दागे।
सीतल मंद समीर नीर फुहीअन्ह झकझोरै।
दमकी दमकी दामीनी बीरह बारीध महं बोरै।
उठी उठी होत उसास सेज सुनी बीनु भावन।
तलफी तरनी तन तजीही सखी मिली पेपीय सावन॥

(हस्तलिखित) पृ० ६१

[7] पंचदूत वर्ष ६ अंक २ सन् १९५५ ई० कवित्त संख्या १

अपेक्षा सगुणोपासना के कारण एवं उसकी पुष्टि के लिये तर्कसंगत बात कही गई हैं। उद्धव गोपी संवाद में गोपियों की वचन विदग्धता के सुन्दर कथन हैं।[1]

दोहावली—'दोहावली' लक्षदास प्रणीत एक स्वतंत्र रचना है जो 'कृष्णरससागर' तथा 'भागवतपुराणसार' में संकलित मिलती है। इसमें कवि के द्वारा समय-समय पर लिखे गये भावनापरक दोहे हैं जिनमें गोपी प्रेम, भक्तवत्सलता, राधा-कृष्ण की शोभा, प्रेम की अनन्यता, भक्ति तथा क्रोध आदि मनोविकारों एवं कुसंग परित्याग, नीति, संत महिमा, संत के लक्षण, नाममहिमा, मर्यादा, पतिव्रत धर्म के रूप में प्रेम की उत्कृष्टता, आत्मकथन, आत्म-प्रबोध एवं दैन्य आदि के विषय में दोहे लिखे गये हैं।

गोपी-प्रेम—इन दोहों में कवि ने भक्त की मनोदशा और उसके प्रेम को विविध रूपों में प्रस्तुत किया है जिनको पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि गोपिका कृष्ण के दर्शनों की लालसा में आज भी फिर रही हैं। कृष्ण के वेणुवादन को सुनकर प्रेम मगन गोपियाँ घर त्याग कर चल देती हैं। लक्षदास कहते हैं कि चन्द्र वदन, मृग लोचनी और सकल अंग शोभा की खान गोपियाँ (शीघ्रता के कारण) उलटे सीधे 'वसन' पहनकर और अपने मन को उनके प्रेम में 'सान' कर चलती हैं।[2] गोपियों ने हरि रूप के प्रति अपना एक नेम' बना लिया है। उनका प्रेम (ऐसे है ज्यों) पानी के साथ 'मीन' का होती है। लक्षदास यदि 'तन प्राणविहीन' हो जाय तो यही सारे पथ नीरस हैं। कृष्ण की रूपसुधा ने गोपी के हृदय तक जाने के लिये उसके नेत्रों को मार्ग बना लिया है।'[3]

भक्तवत्सलता—वेद जिसे 'नेति नेति' कहते हैं वही भगवान् भक्तों (ग्वालिनों) के वशीभूत होकर मानवरूप में लीलाएं कर रहा है। "जिसके यश का गान करते-करते शेष भी 'नेति' कह देते हैं, गोकुल की ग्वालिनी उसे 'वदन' पर 'चाटिका' देती है।" "ब्रह्मा, शिव और नारद भी जिसे नहीं देख पाते, गोकुल की ग्वालिनी उसे बुलाकर (उससे) गाय दुहाती है।" "हर, विरंचि, भूधर, अमर और काल भी जिससे भयभीत रहते हैं, लक्षदास, (वह) यशोदा के साथ 'खरिक की खोरिन' (गलियों) में फिरता है।" "गुरु गणेश, गिरिजा रवन (शंकर) (आदि देवता) और वेद जिसका गुणानुवाद करने में लजाते' हैं, लक्षदास, यशोदा-यत्न करके उससे 'बातें' कहलाती है (बोलना सिखाती है)। "जिन्होंने वामन के रूप में त्रिपुर तीन ही पद (में) नाप लिये, लक्षदास, नंद नारी (यशोदा) उसे अंगुली पकड़ कर चलना सिखाती है।"

---

[1] वही कवित्त २ से १३ तक।

[2] अधर बेनु धरि प्रेम भरि हरि की होइ रसाल।
लछ सुनत ग्रह त्यागि सब चली घोष की बाल।
चंद बदनी मृग लोचनी अंग अंग सोभा षानि।
उलटे भूषण वसन तन लछ प्रेम मन सानि ॥

—दोहावली (हस्तलिखित) सं० १४ व १५।

[3] नेम येकु हरि रूप को प्रेम पानी जो मीन।
लछी और पथ नीरस सब जौ तन प्रान बिहीन। —वही १७३।
नीकसत येहो देषींवे आवत येहो साध।
लछो कान्ह मारग कीवो मरो प्राचीन मांझ —वही १७४

"जिसके नाम स्मरणमात्र से कोटि कलुष छूट जाते हैं उन 'मपपति' (ब्रह्म रूप कृष्ण) को नद नारी ने माखन (के लालच से) बाध (अटका) रखा है।"[1]

पांच दोहों मे कवि ने कृष्ण-सुदामा की मैत्री को आदर्श रूप मे रखा है और सतो को शिक्षा दी है "हे सतो, सुदामा और श्याम के मिलन से शिक्षा ग्रहण करो। लक्षदास, जगदगुरु (कृष्ण) ने (अपने भक्त को) प्रेम और आदर देकर निभाया।"[2] कुछ अन्य दोहो मे कवि ने मुचकुद, प्रह्लाद, द्रौपदी, गजराज, अजामिल, गणिका आदि भक्तों के प्रति भगवान् की दया और उन्हे 'सुगति' प्रदान करने के विषय मे कहा है।[3]

राधा-कृष्ण की शोभा—कवि ने राधा-कृष्ण की शोभा का पृथक् रूप से तथा युगल रूप से वर्णन किया है। " (भगवान् कृष्ण के) मुकुट पर 'मनिधन' और 'श्याम' को देखकर धन 'वारो'। उनके वामाग मे 'बाम' (राधा) को देखकर 'दामिनी' को वारिये।" उनके 'वदन' पर 'कमल' और 'नैनो' को देखकर 'मदन' वारिये। सावरे के 'बैन' सुनकर 'सुधा' और 'विधु' को वारिये। 'कटि किकिन जाल' को लखिकर त्रिभुवन शोभा वारिये, लक्षदास, 'उर' पर 'बैजयती की माला' देखकर (स्वय को) न्योछावर कीजिये।"[4] कवि ने राधा को दामिनी और श्याम को घन बताकर शोभा का वर्णन किया है और राधा को कृष्ण (पति) की लाडली बता कर पति को चातक और उन्हे (राधा को) मेह बताया है।[5] 'इसके बाद राधा के 'मान करने तथा कृष्ण के हृदय की दशा का वर्णन करते हुए सुन्दर व्यजनाए की गई है।" (हे राधा) तेरे रूठने पर श्याम के तन (से) प्रान 'बिसरि' जाते है। जिसके (आधीन) ऐसे पति है उनसे प्यारी कैसे 'मान' करती है।" "प्यारी तेरा वदन विधु (सदृश) है और मेरे नैन (उसके लिये) चकोरवत् है। (तुम) नखशिख रस की राशि हो (फिर) 'रिस' (क्रोध) को 'ठौर' कौनसा?

---

[1] हरि विरचि भूधर अमर कालहु जाहि डेराल।
लछ जसोमति सग फिरै पौरिन पकि लौ जात॥ —वही ७०।
सुर गनेस गिरजा रवन बरनत वेद लजात।
लछ जसोमति जतन करि ताहि कहावन बात॥ —वही ७१।
त्रिपद तीनपुर जिन किये वर वामन तनहारि।
चलन सिषावनि लछि तेहि गहि अगुरी नदनारि॥ —वही ७२।
छोरत कोटिन कलुपते लछ नाम के लेत।
ते बाधी नद नारी गहि मपपति माषन हेत॥ —वही ७३।

[2] मिलन सुदामा साम को सत सबै मिषि लेहु।
लछि निवाहो जगतगुरु दीवो आदर नेहु॥ —दोहावली ८१।

[3] दोहावली संख्या २५, २७, २८, ८८, ९०, ९१, ९७।

[4] मनि धनु वारौ मुकुट पर धन वारौ लषि स्याम।
लछी दामिनी वारिये वाम अग लषि वाम॥ —वही ३३।
कमल वारियै वदन पर मदन वारि लषि नैन।
लछ सुधा विधु वारिये सुनत सावरे बैन॥ —वही ३४।
त्रिभुवन सोभा वारियै लषि कटि किंकिनि जाल।
लछ निछावरि किजीयै वैजती उर माल॥ —वही ३६।

[5] राधा दामिनि स्यामघनु हरि छाया तम देह।
सोह रावरी लादुला पति चातक तुम मेह —वही, १३७

(निकल आया?)।" कुवरि वृषभानु सुनो 'कान्ह' तेरे रूप में मगन (रहते) है। (इस प्रेम को) तुम और श्याम गूगे के सकेत के भाति (परस्पर ही) जानते हो।"[१]

इसी प्रकार मान वर्णन के सम्बन्ध मे और भी दोहे है[२] फिर 'मान-मनौवल' के सुखद समय को भी कवि ने प्रस्तुत किया है। राधा और कृष्ण परस्पर पीठ देकर बैठे है और दोनो मे 'मान' चल रहा है किन्तु 'पिया (कृष्ण) ने तिय (राधा) के 'नैनों' को और 'तिय' ने 'पिया' के नैनों को देखा तो लक्षदास, मनावनिहार के 'मुख बैन' बिसरि गये।[3]

प्रेम की अनन्यता—लक्षदास जी ने भक्त के अनन्य प्रेम पर प्रभु की कृपा की कामना व्यक्त की है। "प्रभु के अनेक दास हे (किन्तु) दासों के लिये प्रभु एक (ही) है। लक्षदास (उस) सुमुख की न्योछावर हैं अपने 'रुख' ('कृपा')को 'नेक'(भी)मत फेरिये।"[४] लक्षदास जी ने भक्त के प्रेम की अनन्यता के लिये मीन[५] चातक[६] तथा हारिल[७] आदि के आदर्श रखे हैं साथ ही यह भी बताया है कि उनका जीवन-प्राण (आराध्य) भी उनकी रक्षा मे सतत सजग रहता है। चातक को जलधर के प्रति प्रेम 'सर्व जन हिताय' सिद्ध हुआ। कवि ने बीणा के राग पर मुग्ध होकर (सारग के)अपने प्राण त्यागने की कथा का एक छोटा सा सुन्दर रूपक ७ दोहो मे प्रस्तुत किया है। "वधिक ने स्वय जानकर (बीणा के) गीत पर शर से (हरिण का) वध किया (क्योंकि), लक्षदास, हरिण ने अपने हृदय मे 'राग की तान' को माना (सुना)। मीत (बीणा) के गीत को सुनकर हरिण ने 'फाल' नही फादा' (किन्तु) वह 'मीत (उसके लिये) कूर काल (के रूप मे) 'हता' सिद्ध हुआ। नाद सौन्दर्य पर मुग्ध हरिण को 'शर' से बेध दिया गया। वह प्राण

---

१ तेरे रूसत स्याम को बीसरि जात तनु प्रान।
जैसे पति आधीन सो प्यारी कैसे मान ॥ —दोहावली १३८।
प्यारी तेरो वदन विधु मेरे नैन चकोर।
नषसीष रस की रास मे रिस धौं कौने ठौर॥ —वही १३९।
कान्ह मगन तू रूप मे सुनहु कुवरि व्रषभान॥
तुम जानहु की स्याम जू ज्यो गूगे की सान॥ —वही, १४०।

२ दोहावली १४१ से १४६ तक।

3 पिया देषै तिउ नैन मे तिय देषै पिय नैन॥
लछी मनावनिहार के बिसरि गये मुष बैन॥ —वही १५२।

४ प्रभु के दास अनेक है, दासन्ह के प्रभु एक।
लछी नीछावरी सुमुष की रुष फेरिये न नेक॥ —वही ११।

५ का प्रीतम प्रिय प्रान ते जग मे जानत जान।
लछ मछरीआ कही चली पल मे बिछुरत प्रान॥ —वही ४३।

६ चातक पीतन हेत को जलधर जीवन देत।
ताते जीवन लोग सब वारि वारि जलु लेत॥ —वही ४६।
प्यारी चपला स्याम घन बन बरसत छवि वारि।
हरन प्यास निजु दास को चात्रिक लछ निहारि॥ —वही १५३।
जीत पतग सतो सुमती बीन बीचार यह प्रेम।
लछी मरतहु टरत नहीं चातक वन यह नेम॥ —वही १६३।

७ व्रत अनन्य ते धन्य जन निगम कहत यह हेरि।
लछी तेहि पुर गाइये लकरी हारिल करि —वही १५९

रहित' (निश्चेष्ट) होकर धरनी पर गिर पड़ा (किन्तु) उसके कान 'राग' की ओर (रुख) रहे 'खरभराकर' भूमि पर गिरने के बाद (वह) वधिक के मुख की ओर तकने (देखने) लगा। लक्षदास, (उसने मन मे अनुभव किया कि) वन मे व्याध के रूप से मेरे 'प्रीतम' प्रकट हुए है। 'प्रियतम' के अवगुणो की ओर नही देखना चाहिये क्योंकि (इससे, मित्र (के प्रति) प्रेम लज्जित होता है। हरिण के चित्त की भाति, लक्षदास 'हरि' प्राणोत्सर्ग पर रीझते है। लक्षदास प्रेम को 'चीन्ह' कर मुझे इस मित्र से मिलाओ (चाहे वह भी) व्याध की भाति तिल-तिल कर 'हने' और तब उसपर 'रीझे'। वधिक ने स्वर (वीणा वादन) के सहारे शर सधान करके मृग का वध किया (किन्तु) मृग को (इस प्रकार के) मरण पर विश्वास नही हुआ। उसका मास जलाकर (भून-कर) व्याध के मुख मे गया (व्याध ने खाया) और (वह) आप ही (आत्मा) आकाश (स्वर्ग) को गया।"[1]

कवि की भक्ति भावना—भगवान् के रूप सौन्दर्य मे अवगाहन करने के लिये निष्कपट भाव से जो भक्त प्रयत्न करता है और उन्हे सर्वात्म समर्पण कर देता है भगवान् पत्थर मे से भी प्रकट होकर उनका दुख दूर करते है। 'पिय-प्यारे के रूपको 'साचे' (रूप से) मन मे 'ढार' लेना चाहिये। लक्षदास, (हरि के) नाम को 'नग कठ' करे तो वही 'सुमति नारि' है।"[2] "यदुपति के दर्शनो के लिये, भैया, कोई कितना ही श्रम करे, (किन्तु यदि) उसके 'मन' मे कपट नही है (तो) लक्षदास, (उन्हे) 'नीरतर' (सरलता से) देखा जा सकता है।"[3] "जो लोग 'कान्ह' के (नाम) श्रवण, कीर्तन और ध्यान से विमुख है उनके लोचन चित्रवत्, वदन (मुख; बिल सदृश और कान अध कूप के तुल्य है।"[4] "बोने से रस नही 'जमता' और न 'ऊख' से मिश्री निकलती

---

[1] गीत गाइ सर सो बध्यो वधिक आपने जान।
लछ हरिन मानो हिए लगी राग की तान॥ —दोहावली स० १३०।
गीत मीतु आवत सुन्यो हरिन न फाद्यो फालु।
लछी हतहि उलटी भई मीत कूर कै कालु॥ —वही, १३१।
स्वर राच्यो सर सो विध्यो लच्छि हरिन बड जान।
प्रान गये धरनी गिर्यो रहे राग रुप कान॥ —वही, १३२।
परभराइ जब भुइ पर्यो तकै वधिक मुष वोर।
लछी व्याधि वनहारि धौं प्रगटे प्रीतम मोर॥ —वही, १३३।
प्रीतम ओगुन जनि गनै प्रेम लजावत मीत।
प्रान हरत रीझै हरी लछ हरिन के चित॥ —वही, १३४।
मोहि मिलावो मित्र इन्ह लछि प्रेम को चीन्ह।
हनि रीझै कै व्याध को तिल तिल के तन कीन्ह॥ —वही, १३५।
बध्यो वधिक स्वरसरहु सो मृगहि न मरन बिसास।
मासु जासु जरि व्याध मुष पहुचे आपु अकास॥ —वही, १३६।

[2] पिय प्यारे को रूप को मन साचे ले ढारि।
लछि नाम नग कठ करु तौ सुमति सो नारि॥ —वही, ३९।

[3] जदुपति देषन को भीया भले ही करै श्रमु कोइ।
लछी नीर तर देषिये जो मन कपट न होइ॥ —वही, ५२।

[4] चीत्र ते लोचन बदन बिल अधकूप से कान।
लछी विमुष ज कान्ह के स्रवन कीरतन ध्यान —वही, ६१

है (किन्तु जिस प्रकार) सत लोग युगलकिशोर की लीलाओ को पीयूषवत् पान करते हैं (उसी प्रकार औरो को भी करना चाहिये)।[१] अर्थात् यत्न करने पर ही फलोपलब्धि सम्भव है।" 'तू जो कहता है मेरा सब कुछ है (किन्तु बता) कौन तेरा (सगा) है और तू कौन है ? या तो सब कुछ गोपाल का कहो या (नश्वर ससार की) वस्तुस्थिति को समझ कर मौन 'गहो'।"[२] "लक्षदास, कृष्ण के स्नेह बिना सारे स्नेह बधन व्यर्थ है (जैसे) भक्त को चतुराई (की आवश्यकता नही) और निष्प्राण देह व्यर्थ है।"[3] 'पावन यशोदा और नदधन श्याम का सुयश 'वरवारि' के रूप में बरसता है, सतो का कुल (समाज) हर्षपूर्वक उसे मुख से ग्रहण करता है।"[४] "सारा ससार जानता है कि 'पाथर' सबके लिये 'पसेव' नहीं है। लक्षदास प्रेम से (स्मरण करने पर) पत्थर से (भी) त्रिभुवन देव प्रकट हुए।"[५]

नीति—भक्तिमार्ग के पथिक को लौकिक जीवन मे पथ-प्रदर्शन हेतु कुछ सूक्तियो की आवश्यकता होती है जिससे वह पथ-भ्रष्ट न हो जाय। "लक्षदास, शरीर मे लालच वास करता है जैसे 'गेह' मे 'फनिक', (यदि) गारुड़ी गुरू मत्र (कहना) 'तज' दे तो 'देह' और 'गेह' मे से किसी को भी सुख नही होगा।"[६] "यदि कोई सुखदायक हितैषी (कालान्तर) मे (दुखदायक रिपु बन जाय (तो) लक्षदास, कोई नाता न रखना चाहिये। यदि दांत दुख देकर मुख की शोभा बढ़ाये तो उन्हे दूर कर देना ही अच्छा है।"[७] "लक्षदास जिसके मन मे जो विश्वास होता है वह छिपाने से भी नहीं छिपता। अगर नगर मे सुरा का 'बास' (प्रचार) हो जाय तो 'पसरे' कौन करे।"[८] "लक्षदास, जीवन मे (यदि) सबके साथ रहकर सभी सुख चाहते हों (तो सभव नही है है क्योंकि इस संसार को) सभी माली सीचते हुए चले गये किन्तु (किसी के) हाथ कोई 'फल' नहीं आया।"[९]

---

[१] लछ न रसु जमै वये मिश्री स्रवै न ऊष।
लीला जुगलकीसोर की पीवत सत पयूष॥ —वही, १०३।

[२] तू जो कहत मेरो सबै को तेरो तू कौन।
कै कहु सब गोपाल को कै समुझि लछि गहु मौन॥ —वही, १०६।

[3] लछ कृष्ण के नेह बिनु बधन सबै सनेह।
बिना भक्त को चातुरी बिना प्रान ज्यो देह॥ —वही, ११०।

[४] जसोमति पावन नद घनस्याम सुजस बरवारी।
लछी हरखी बरषत सदा मुखी सत कुल वारी॥ —वही, १६७।

[५] जगु जानै और सबकु है पाथर नहीन पसेव।
लछी प्रेम ते प्रगट भे पाथर त्रीभुअन देव॥ —वही, १८२।

[६] [illegible] लालच बसै फनिक वसै जेहि गेह।
[illegible] त्र गुर गारुरी नत सुष देह न गेह॥ —वही, ४१।

[७] [illegible] हीतु दुपद रीपु लछी न कोउ नात।
[illegible] सोभा दुष दिये दूरि किये भल दात॥ —वही, ४९।

[८] [illegible] पे ना छपे जो जेहि मन विश्वास।
[illegible] पसरे नगर अगर सुरा को वास। —वही, ८७।

[९] [illegible] सब सुष चहो लछो सबनी के साथ।
सींचत माली सब गए फलु आवा नहि हाथ —वही १८५

संत महिमा—कवि ने संतो के लक्षण बताते हुए संतो की महिमा का वर्णन किया है। "गर्व गुमान मेट कर हरि भजन करते हुए संतो की सेवा करनी चाहिये। घास भुस खाकर तो 'पशु' भी (अपना) पेट भर लेते है।"[1] "संतो का साथ करने से क्रोध निकट नही आता"[2] "लक्षदास, साधु श्रुति कहते है कि नाथ की महिमा अनन्त है सन्त मिलनोपरात ही प्रभु से मिलन (सभव) होता है।"[3] "अनन्य भक्तो के पीछे (तो) भगवान् (स्वय) डोलते हैं। (अत.) सकल 'सग' त्याग कर, लक्षदास, संतो की सेवा करनी चाहिये।"[4]

नाम महिमा—भक्ति-पथ में नाम स्मरण का बड़ा महत्व है क्योंकि भगवन्नाम की महिमा अपार है। "कोई भी व्यक्ति जप, तप, सयम, रीति चाहे कुछ भी करे (किन्तु) राम-कृष्ण (की प्राप्ति) के लिये राम नाम से प्रीति होनी चाहिये।"[5] भगवन्नाम का तो प्रभाव ही ऐसा है कि पूतना और अजामिल जैसे पातकी नाम स्मरण मात्र से ही तर गये और यमदूत उनको ले जाने के लिये रोते ही फिरते रहे।'[6] "यज्ञ और तप के लिये बड़े क्लेश सहन पड़ते है। बिना दाम (धन) के दान (करना) सभव नही है किन्तु 'जीभ' से केवल हरिनाम का जप करने से तेरा कुछ भी नहीं घटता है।'[7] 'पातक रुई के पहाड़ (की तरह) है और कृष्ण नाम प्रबल 'पावक' है। यदि (नाम का) तनिक कण भी पड़ जाय तो (पाप रूपी समस्त रुई) जलकर राख हो जाती है।"[8] और धनो की रक्षा करने के लिये धनी विविध उपाय करते है और मन मे डरते रहते है किन्तु, लक्षदास, कृष्ण का नाम तो ऐसा धन है कि (स्वय रक्षक) धनी की भी रक्षा करता है।"[9] इनके अतिरिक्त अन्य प्रसगो मे भी कवि ने यत्र तत्र 'नाम महिमा' की ओर सकेत किया है और उसे परमार्थ चितन का तत्व बताया है।

मर्यादा की रक्षा—मर्यादा की रक्षा के लिये कुसग एव पाखण्ड परित्याग आवश्यक है। "लक्षदास, सत का (भक्ति रूपी) पट कुसगत के 'मैल' से नाट हो जाता है (इसीलिये) सुरसरि के घाट पर भी लोग मृतक पट (कफन) को देखकर ही त्याग देते है।" "लक्षदास,

---

[1] सेइ सन हरि भजनु करु गरब गुमानहि मेटु ।
लछ घास भुस षाइके पसो भरत है पेटु ॥ —दोहावली स० १५८।

[2] लछी सत समता गहै नही क्रोध नियरात ॥ —वही, ६।

[3] लछी साधु श्रुति कहत है महिमा नाथ अनत ।
ते प्रभु तब ही मीलत है जब ही मीलत है सत ॥ —वही ७।

[4] पीछे भगत अनन्य के डोलत है भगवत ।
और सकल सग त्यागी कै लछी सेइये सत ॥ —वही ८।

[5] कियो चहै सोई करै जप तप सजम रीति ।
राम कृष्ण पै होति है राम नाम सौ प्रीति ॥ —वही ५२।

[6] दोहा ११४।

[7] तपहित जनन क्लेश ते जग्य दान विनु दामु।
लछी न तेरो कछु घटै जीभ जपतु हरि नामु ॥ —दोहा० १२७।

[8] कृष्ण नाम पावक प्रबल पातक रुई पहार ।
लछी तनक किनुका परै होत सबै जरि छार ॥ —दोहा० १६०।

[9] और धनही राषत धनी डरपत
लछी कृस्न को नाम धनु धनी को राषनी हार —दोहा० १६८

कुसगत के हो जाने पर बडो की कानि' (मर्यादा) भी घट जाती है, पातकी के भवन का पावन जल भी (उनके कारण ही) अपावन कहलाता है।''[1] शरद्-रात्रि मे वेणु वादन सुनकर जो गोपिया वन मे आगई कृष्ण ने उन्हे फटकारा और घर वापस लौट, कर अपने मदपति की ही मन लगाकर सेवा करने को कहा। पति से विमुख होने पर (नारी की) 'अगति' होती है और 'सती सयानप' भी जाता रहता है।''[2] इस प्रकार कवि ने समाज के मर्यादा धर्म की रक्षा के लिये परकीया भाव की निंदा की है और स्वकीया भाव को ही श्रेष्ठ बताया है। ''(पति से विमुख) नागरी वर नारि का रूप भी व्यर्थ है, (इससे तो) माई के पास रहने वाली गवार सुहागिन अच्छी है।''[3]

कवि का विचार है कि भगवद्भजन भी पतिव्रता नारी की भाति करना चाहिये। 'कृष्ण की शरण मे रहने पर, लक्षदास, 'आन' शरण मे जाने वाले का प्रण उसी प्रकार नही निभ सकता है जैसे गणिका को देखकर सिहाने वाली पतिव्रता नारी का।''[4]

'रुक्मिणी चरित्र' के प्रसग से कवि ने भारतीय नारी की सामाजिक मर्यादा और शीलता का सुन्दर चित्र अकित किया है। गर्भवती रुक्मिणी ने कृष्ण की हास्योक्तियो मे भावी माता होने के सकेत का उत्तर शब्दो मे नही, केवल शिष्ट सकेत मे ही दिया है।[5]

आत्म प्रबोध, दैन्य एव आत्म कथन—कवि ने समय-समय पर अपने मन को प्रबुद्ध करने के लिये कुछ दोहे कहे है जिनसे प्रकट होता है कि ये कवि के जीवन से किसी न किसी रूप मे सम्बन्ध रखते थे। रघुवीर कनक कुरग के पीछे 'पवि' ताने दौडे। इसलिये 'लक्षदास, जो कभी देखने-सुनने मे नही आया, मतिधीर, वह (कार्य) मत करे'।[6] ससार की अनित्यता की ओर सकेत करते हुए कवि का कहना है कि' (व्यक्ति) भगवान् का भजन नही करता है और विषयो से उत्पन्न सुख को ही सुख (चरमोपलब्धि) मानता है। 'सपने के पकवान' खाकर क्या

---

[1] लछ कुसंगत मयल ते होत सत पट लाट।
तजहि लोग लषि मृतक पट सुरसरि हु को घाट॥ —दोहा० ९८।
लछो कुसगत के वस घटै बडेन की कानि।
भवन पातकी पावनो होत अपावन पानी॥ —दोहा० ९९।

[2] मातु तातु सुत पतिन तजि निसि आइउ केहि काज।
लछ देषि वन जाहु घर कहो कुंवर व्रजराज॥ —दोहा० १७।
भलो मद पति आपनो त्रिय सेवै मनु लाइ।
लछो विमुष पति अगति है सती सयानप जाइ॥ —दोहा० १८।

[3] कहा रूप गुन आगरी नागरी जो वर नारि।
माई पास सोहागली सो वरु भली गवारि॥ —दोहा० २१।

[4] लछो कान्ह की सरन है आन सरन जो जाउ।
पतिव्रता पन क्यो रहै जो गनिकन देषि सिहाइ॥ —दोहा० ५७।

[5] प्रभु पूछो निजु सोह देवाई। बिहँसि रुकुमिनी वदन दुराई।
समुझे सुन्दर चतुर सुजाना। —कृष्णरससागर हस्तलिखित ., पृ० ६२।

[6] लछो जो नही देषा सुना सो न करहु मति धीर
धाये कनक कुरग को पवि ताने रघुवीर —दोहा० २३

किसी को सुख मिलता है? [1] इस मन की मूढ़ता न० (इसलिये) अगाधिल म (नाना) ताडकर ससार से 'हेतु' करता है। लक्षदास, (वह) कल्पतरु छोड़कर और ऊसर को खोदकर, खेत बनाने का प्रयत्न करता है।"[2] कवि 'सत पग धूरि' की श्रेष्ठता को स्वीकारता हुआ कहता है कि इसे धारण न करने वाले (चाहे) मणि मय मजुल मुकुट को ही धारण क्यों न करें, वह केवल भार रूप ही है, जब तक कि उनके सिर पर 'सत-चरण-रज' शोभित न हो।'[3] कवि नेअपना दैन्य प्रकट करते हुए अपने 'तारने' (उद्धार करने) की प्रार्थना की है।" लक्षदास, नाथ (मुझे) 'अपावन' जानकर 'केहि हेतु' 'तजते' हो। पैर अपनी 'पानही' को लाखों में भी 'चीन्ह' लेना है।'[4] 'नाथ, (यदि) आप (बिना) 'सुकृत, और साधुता के 'गति' नहीं देंगे तो गणिका, गीध और गयद की पाती' (तारने की प्रतिष्ठा) को लक्षदास, सभालो।"[5] 'गणिका 'कीर' पढ़ाने और विप्र (अजामिल) अपने पुत्र का नाम लेने से ही तर गये। नाथ, ऐसे ही सरल स्वभाव से लक्षदास को भी 'तारिये'।'[6] "हे दीनबंधु आपका विश्वम्भर सा नाम और (तदनुसार) 'बाना' विदित है। (यदि मैं) 'पराये' द्वार जाऊं तो यह मेरी ही 'मूढ़ता' है।'[7]

लक्षदास जी 'माघ मास' मे सतो का कथा सुनाया करते थे इसके विषय मे उनका सकेत है 'आपत्काल आने पर (यदि कोई) बडा (व्यक्ति) नीचता को प्राप्त हो, इससे तो उसकी मृत्यु ही भली। माघ मास मे लक्षदास ने जिस कथा को कहा उसे सभी (सतो) ने सुना।'[8] वृद्धावस्था मे लक्षदास जी की बहुत दयनीय दशा हो गई थी।" चरण पाणि, लोचन वचन, बल और बुद्धि ने (इस वृद्धावस्था के आने पर) साथ छोड दिया। लक्षदास, अब 'जरा' (बुढापे) के 'जोर' (आने) पर मेरे तो केवल 'ब्रजनाथ ही (रक्षक) है।"[9] अन्त मे भाग्य पर विश्वास प्रकट करता हुआ कवि कहता है' 'करतार' का किया हुआ होना है इसमे तनिक भी सदेह नही।

---

[1] लछ विषय सुष को सुषी बिना भजन भगवान।
कँ पाये सुष स्वाद कैं सपने के पकवान ॥ —दोहा० ५४।

[2] सोरत श्री गोपाल सों जोरत जग सों हेतु ।
लछि कलपतरु छाड़ि के ऊसर षोदत पेतु ॥ —दोहा० ४२।

[3] मनिमय मंजुल मुकुट सिर लछी भारु जनु भूरि ।
जिन्ह ऊपर सोभित नहीं सुभग संत पग धूरि ॥ —दोहा० ६२।

[4] लछी अपावन जानि कैं तजत नाथ केहि हेतु ।
पाये आपनी पानही चीन्हि लाप मे लेतु ॥ —दोहा० १५५।

[5] बिना सुकृत बिन साधुता जो न नाथ गति देहु ।
गनिका गीध गयद की पाती लछ लिनेहु ॥ —दोहा० १५६।

[6] गनिका कीर पढ़ाय के विप्र तर्यो सुत नाये।
नाथ लछी हु तारि हौ अैसे सरल सुभाये ॥ —दोहा० १५७।

[7] दीनबधु बानो बीदीत बीस्वभर सो नाउ ।
लछी आपनी मुढता द्वार पराये जाउ ॥ —दोहा० १९३।

[8] मीचु भली तेही बीपती ते जो बड़ो नीच को जाइ।
माघ कथा सबही सुनी कही लछी समुझाइ ॥ —दोहा० १९४।

[9] चरन पानी लोचन वचन बल बुधी छाडो साथ ।
लछी जरा के ओर अब मोरि येक —दोहा० १८६

'नीच' (तुच्छ व्यक्ति) यत्न बल से मृत्यु से बचना चाहता है (किन्तु यह सभव नही है।)"[१] लक्ष-दास जी "भूत पूजा' के विरोधी थे और उसे वे अंध विश्वास तथा मूढता का परिचायक मानते थे।" मृत्यु से आज तक कोई नही बचा और बाझ के (कभी) पुत्र नहीं हुआ, यह सत्य है (किन्तु तब भी, लक्षदास, 'कृष्ण-पद' को छोड़कर पामर (नीच व्यक्ति) भूतो की पूजा करते है।"[२]

बारह वन वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने गुरु-गोविद मे अभेद बताते हुए मथुरा के प्रमुख घाटो, वनो तथा वृन्दावन मे स्थित कृष्ण के प्रमुख श्रीविग्रहो के नाम गिनाये है। अत मे भक्ति और मुक्ति के जिज्ञासुओ को व्रज की परिक्रमा गाने को कहा है।[3]

इसके अतिरिक्त मन को प्रबुद्ध करने के लिये कवि ने जाकरी विलावल, अत-आसावरी, विष्णुपद राग, राग सारग और राग सोरठा शीर्षक रागो के अन्तर्गत भी अपने विचार व्यक्त किये है और मन को भगवन्नाम स्मरण करने का आदेश दिया है।[४]

लक्षदास जी ने कृष्ण के जन्म, उनकी शोभा तथा बाल-लीलाओ के सम्बन्ध मे भी पद लिखे है जिनमे से कुछ उपलब्ध भी होते है। ये पद गीतिकाव्य की परम्परा पर आधारित विविध राग-रागिनियो मे गाने योग्य पदो के रूप मे मिलते है। इन पदो मे सगीत तत्व और काव्य तत्व का सामजस्य अपूर्व और अनुपमेय है। कृष्ण जन्म पर " 'महराने' मे आज आनद बधाइया बज रही हैं। वेद पाठ हो रहा है। व्रज-नारिया गीत गा रही है, 'अजिर' मे ध्वजा-पताकाएँ 'राजती' हैं। ग्वालो ने भादो भर 'दधिकांदो' किया। नंद ने व्रज के 'वदीजनो' को पहरावा दिया। दास-दासियों को भी उनके मनोनुकूल 'फल' मिला। हे महादानी, दीन लक्षदास तेरा यश गान करता है। मुझे 'बाह गह' करके 'मनमोहन' का 'चेरा' (दास) बनाइये।"[५] कृष्ण की रूप सुधा की एक छवि देखिये—"माता यशोदा प्रातःकाल ही सुत-वदन निहारती है। उनकी (शोभा के आगे) कोटि 'कलानिधि' और 'मजु कज' की उपमा भी व्यर्थ है। उनके पलक 'उघर-उघर' कर झपक जाते है। जिसे देखकर (मन मे) यह विचार उठता है कि 'नीरज दल' को 'टार-कर' मधुप निकलना चाहते है। (उनके) अल्प 'दसन' (दात) दिखाई देते है (जिन्हे देखकर) यशोदा अचल 'वारती' है। वे कमलवत् कोमल है। उनकी (दामिनी सी) शोभा का वर्णन कौन कवि कर सकता है। इस सुख की समता कोई (भी व्यक्ति) किसी भी प्रकार नही कर सकता

---

१ कीबो होत करतार को पलक परै नहो बीचु।
लछी जतनु बलु चहत है नीच बचाई मीचु॥ —दोहा० १८७।

२ साची मीचु ना बचो बाझ न व्यानी पूत।
लछ कृष्णपद छाडि तउ पावर पूजहि भूत॥ —दोहा० ९३।

३ कृष्ण रससागर: हस्तलिखित, पृ० ९६।

४ कृष्णरससागर: हस्तलिखित, पृ० १०२-१०३ तथा
भागवतपुराणसार. हस्तलिखित:, पृ० ९३।

५ आनंद बधाइ आजु बाजै महराने। इत दधी माह उत घन घहराने।
सुनी वेद धुनी पुनी गावै व्रजनारी। राजत ध्वजा पताका अजीर बिहारी॥
सकल मगल मूल भयो भरु भादौ। नाचै गोप ग्वाल मीली करै दधिकादौ॥
व्रज जन वदीजन नद पहीराये। मन के भावते फल दासी दास पाये॥
महादानी लछी दीनु गावै जसु तेरा बाह गही कीजे मनमोहन को चेरो
हस्तलिखित पृ० ९२

है। लक्षदास, मनमोहन (की शोभा) को देखकर दृग और पलक टलते नहीं (टकटकी लग जाती है।)'[1] "यशोदा मैया प्रातःकाल उठकर कन्हैया को गोद मे लिये हुए 'मोदभरी' फिरती है। हँसकर (उनके) 'वारिज बदन' को निहारती' है। लटकते हुए मुक्ताओं को 'पोइ कर' सुधारती है। नासिका मे मोती की लटकन लुरती' है। लक्षदास (वह) सब (भक्तों) को भली लगती है, नदरानी के 'सुकृत-बिरवा' और मनोरथ फूलते-फलते (दिखाई देते) है। उनके चारु लोचन है। 'दँतिया' चमकती है, (मैं) तुझसे सत्य कहती हूँ। मै मोहन का नाच देखकर 'चित्र की पुतली' के सदृश रह जाऊंगी।"[2] "(यशोदा कृष्ण को)अगुली टेक कर' चलना सिखाती है। (वह स्वय)'तोतरे' वचन कहती और कहलाती है। कभी ब्रजनारियों को टोक कर बैठा लेती है और लाल' को 'कर तारी देकर' नचाती है। नाचते हुए लाल की शोभा को देखकर (उसका)मुख चूमती है और 'पायन' पड़ती है। लक्षदास,(वह)कनक ककन हार और अम्बर (वस्त्र)न्योछावर करती है। (कृष्ण की) कटि मे 'किकिनी' चरणो मे नूपुर और हाथो मे हेम की चूडिया (सुशोभित) है, महर के महल मे आनद-प्रेम की रूप तरगे निशिदिन प्रवहमान हो रही है।" बालक कृष्ण के नित्य प्रति बढ़ते हुए उत्पातो से परेशान आकर माता यशोदा उसे दण्ड देती है। वे रोने लगते है सखिया इस 'रुदन' को देखकर द्रवीभूत हो जाती है और यशोदा को फटकार कर कहती है कि क्या तुझे बालक की अपेक्षा दही अधिक प्यारा है? यशोदा तेरा हृदय बड़ा कठोर है। प्यारा कृष्ण डरा हुआ है उसके 'लोचन कोर' से आसू चू रहे हैं। उसके शशिमुख पर 'स्वेद कन' दिखाई देते है जिसके लिये कोई उपमा (समझ मे) नहीं आती है। चकोर (नेत्र) चुन चुनकर (रूप) सुधा को मन मे डालता है।"[3]

---

१ मात जसोदा प्रातही सुत वदन नीहारै।
कोटी कलानीधी कज मंजु उपमा गही डारै।।
उघरी उघरी पलझपकी जात मन माह वीचारै।।
मनहु मधुप नीकसे चहै नीरज दल टारै।।
अलप दसन वीहसत लसै लषी अचल वारै।।
कमल कोमल सदानीनी कबी को कही पारै।।
या सुष सम पावै नही जो वीधी करतारै।।
लछीदास लषी मनमोहन द्रीग पलक न टारै।।
—भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ९२

२ प्रात उठी जसोमती मैया। मोद भरे लिये गोद कन्हैया।।
विहसत वारिज वदन निहारै। लटकन मुक्ता पोहि सुधारै।।
लुरत लटकन नासा मोती लछ जन वरने भले।
नदरानी सुकृत विरवा जनु मनोरथ फल फले।।
चारु लोचन चमक दतिया कहत तोसो साचु री।
हो रहि हौ चित्र पुतरी देषि मोहन नाचु री।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०३

3 टेकि अगुरिया चलन सिषावै। वचन तुतरे कहै कहावै।
कबहुक रोकि बैठत ब्रजनारी। लालु नचावहि दे करतारी।।

(शेष अगले पृष्ठ पर

इन वर्णनो के अतिरिक्त कवि ने अक्रूर के आगमन और कृष्ण बलराम के मथुरा गमन की कथा को बरवै छंदों मे प्रस्तुत किया है।[1] इन छंदो मे अक्रूर की भक्ति-पद्धति, ब्रजवासियो की विकलता और असुर-विनाश की कथा को संक्षेप मे दिया गया है।[2] इसी कथा को कृष्णरससागर के अन्तर्गत भी दिया गया है।[3] इसमे बरवै छदो वाली कथा की अपेक्षा 'कथानक' तथा कथोपकथन कुछ अधिक दिये गये है।

गेय पदों में भी आत्मप्रबोध के पद है जिनमे भगवान की कृपा प्राप्त करने तथा अभिमान को त्यागने के लिये मन को समझाया गया है। "भगवान् ने जिन पर कृपा की है वे वर्ण-अवर्ण के अधम पशु भी हरि यशगान करते हुए स्वर्ग को गये। गणिका, गीध, अजामिल जैसे पतितो ने भी निर्वाण पद प्राप्त किया। 'पारस' के स्पर्श से लोहा पलभर मे 'कंचन' हो जाता है। (कृष्ण ने) रंक सुदामा को सुरपति के समान तथा गोकुल (को नारियों) को विदुर के समान (नीतिज्ञ और तार्किक) बना दिया। लक्षदास, शठ (मन) भूल कर मनमोहन के बिना अभिमान करता है।"[3] "बिना हरि भक्ति के अगति नहीं टलती। नारी चाहे कोटि सुपथ करे, किन्तु पति को बिसार देने पर उसकी शोभा नही रहती। "ऐसे मुख, नैन, नासिका, तन, कर, चरण को कौन बना सकता है? उन प्रभु को 'बिसार देने पर (वह) जड़ कृतघ्नी है और यमद्वार पर वह दुख का फल पाता है। दीनबंधु का गुणगान करने पर बिना श्रम के ही श्रम दूर होता है। (यदि भजन करेगा तो) लक्षदास, श्री मनमोहन के दासो के मन को भाएगा।"[4]

लालु नाचत निरषि सोभा चूमि मुष पायन परैं।
कनक ककन हार अम्बर लछ नीछावरि करैं॥
कट किंकिनी चरन नूपुर करनि चुरवा हेम के।
महर महल तरंग निसु दिन रूप आनद प्रेम के॥
—वही, पृ० १ ३।

नीरषी महरी सुत वदन वोर।
असो दधी नोही प्यारो जा लगी बाधो है वारो जसोमती कैसो हीयो कीयो कठोर।
प्यारो लालु डरी डरी लेन नैना भरी भरी, हरी हरी चुवै आसु लोचनन कोर।
ससी मुष स्वेद कन उपमा न आवै मन, डारै सुधा चचु चुनी चुनी चकोर॥
—भागवतपुराणसार, पृ० ६२।

[1] भागवतपुराणसार, (हस्तलिखित), पृ० ६०-६१।
[2] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०६।
[3] जीन्ह को कृपा करी भगवान।
बरन अबरन अधम पसु हरी जसु गावत चढे वीमान॥
गनीका गीध अजामील पतीतन्ह पायो पद नीरवान॥
पारस परसी लोह कचन भवो पल मे बारह वान॥
रंक सुदामा सुरपति सम कीयो गोकुल वीदुर समान॥
लछीदास वीनु मनमोहन सठ भुले करी अभीमान॥
—भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ६२।
[4] विन हरी भगती अगती नही टरी है।
पतीही बीसारी नारी सोभा नही कोटी सुपथ जो करी है।

शेष पृष्ठ अगले पर)

लक्षदास जी की मुक्तक और गद्य रचनाओं में कवि के वैयक्तिक एवं भक्ति भावना परक विचार मिलते हैं जिनका ऊपर विवेचन किया गया है। अन्य रचनाओं में वात्सल्य, शृंगार, और मंगलकाव्य आदि साहित्यिक विधाओं तथा चरितकाव्य कथा, उपाख्यान आदि पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंगों, स्तोत्र, स्तुति, ज्ञान वार्ता एवं भावनापरक मुक्तक रचनाओं पर विस्तार से विचार[1] किया गया है। इन रचनाओं के अध्ययन से कवि की भावनानुभूति के विकास, मानसिक प्रवृत्तियों के अध्ययन, उसकी अनुभूति व व्यापकता और उसके सूक्ष्म निरीक्षण का हमें परिचय मिलता है।

को अैसे मुष नैन नासीका तन कर चरन बनैहै।
सो प्रभु वीसारे जमद्वारे जड कुलघीन दुष फल पैहै।
वीनही स्रम भ्रम दुरी होत है दीनबधु गुन गैहै।
लछीदास श्री मनमोहन के दासन्ह के मन मैहै

हस्तलिखित पृ० ६२

अध्याय ६

कवि लक्षदास की कला एवं कृतित्व

मुक्तकों और गीतिकाव्यों मे कवि के भक्तिभावना सम्बन्धी वैयक्तिक अध्ययन पर हम पिछले अध्याय मे विचार कर चुके है। प्रस्तुत अध्याय मे कवि के द्वारा व्यक्त किये गये विभिन्न भावो, रस, अलकार और छद आदि की योजना का अध्ययन करके यह समझने का प्रयत्न किया गया है कि कवि ने अपने हृदय की संवेदनशीलता को भावानुभूति की विविधता और उसके विस्तार तथा कला की दृष्टि से कैसा रूप प्रदान किया है। आगे की पक्तियों मे हम कवि के भाव-जगत् के विकास की रूपरेखा निर्धारित करेगें।

वात्सल्य और उसके अन्तर्गत भाव-विस्तार

लक्षदास जी की रचना 'श्रीमद्भागवतपुराणसार' मे वात्सल्य भावना का चित्रण विशेष रूप से किया गया है। मुक्तक रूप मे जो अन्य फुटकर रचनाएं मिलती है, वे अत्यल्प हैं फिर भी उनसे वात्सल्य के अन्तर्गत विविध भावो का सुन्दर वर्णन हुआ है। कवि ने कृष्ण जन्म पर नद-यशोदा, सखियों, गोप-गोपियो आदि व्रजवासियो के 'हर्षोल्लास' का जो वर्णन किया है उससे विदित होता है कि उसकी सुषुप्त भावनाएं शिशु कृष्ण के प्रति ममत्व एव आत्मीयता से परिपूरित है। कवि के द्वारा वर्णित यह वात्सल्य सूचक हर्ष अत्यन्त व्यापक है और अन्य भावो के द्वारा भी प्रकट हुआ है।

वृद्धावस्था मे नंद-यशोदा को मनचाहा पुत्र-रत्न मिला जिससे उनकी 'अभिलाषा' की पूर्ति तो हुई ही, कृष्ण दर्शन की उनकी 'उत्सुकता' भी 'गर्व' मे परिणत हो गई। उन्होने बड़े 'उत्साह' से कृष्ण-जन्म पर मगल कार्य कराये और ब्राह्मणों को दान दिया। दास दासियो तथा बदी, मागध और सूत जनों को भी 'पहरावा' तथा मनोनुकूल वस्तुए दी गई।[1] शिशु कृष्ण की रूपसुधा और बालक कृष्ण की लीलाओं को देखकर नंद-यशोदा एवं गोपियो के मन मे कृष्ण के सुख और निरापद जीवन के लिये विविध कल्पनाये जागरित होती है जिनमे उनका वत्सल भाव पूर्णत्व की कोटि तक पहुँचता हुआ दिखाई देता है।

---

[1] नद महर सब कुल पहिरायो। मन वांछित धकरिनि धन पायो।
बंदी मागध सूत जे आये। उचित दान दीन्हे पहिराये॥
हस्तलिखित पृ० १५

कृष्ण की माखन चोरी पर गोपियों द्वारा दिये गये उपालम्भों से उत्पन्न यशोदा का क्रोध अमर्ष का रूप धारण कर लेता है। यशोदा कृष्ण को दण्ड देती है और गोपियों से कृष्ण के चोरी न करने की बात का दृढ़तापूर्वक उत्तर देती है। कवि ने यशोदा और गोपियों के पारस्परिक विवाद तथा तर्क के आधार पर 'भावों के द्वन्द्व' का चित्र उपस्थित करते हुए गोपियों की वचन विदग्धता पर यशोदा से प्रत्युत्तर कराये हैं जो वात्सल्य के भावों की तीव्रता अभिव्यजित करते हैं।[1] गोपियों के नित्यप्रति के उपालम्भों को सुनकर यशोदा का मन 'क्षुब्ध' हो जाता है और वह कृष्ण को दण्ड देती है। व्रजनारियाँ यशोदा की कठोरता की निदात्मक आलोचना करती हैं। जब यशोदा का क्रोध शान्त हो जाता है तब उसे अपने मन में पश्चात्ताप होता है और उसका हृदय कृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव से भर जाता है।

कृष्ण को मारने के लिये भेजे गये कंस के—असुरों के—प्रयत्नों से यशोदा का मातृ हृदय 'शंकाकुल' हो जाता है। उसे सदैव कृष्ण के क्षेम की 'चिन्ता' रहने लगती है। इसलिये जब कृष्ण और बलराम वन में खेलने के लिये जाते हैं तब भी यशोदा उन्हें वहाँ जाने की स्वीकृति देने को सहसा तैयार नहीं होती। अक्रूर के व्रज आगमन और कृष्ण के मथुरा प्रस्थान की घटना से सारे व्रज में त्रास और विषाद का वातावरण फैल जाता है। मथुरा में कृष्ण और बलराम का किसी भी प्रकार अनहित न हो और वे अपने इन बालकों को सुखपूर्वक व्रज वापस लौटा लावें, इस विचार से प्रेरित होकर यशोदा नंद को उनके साथ भेजती है और बार-बार अपने पुत्रों की बलैया लेकर उन्हें समझाती है, "राजा से कोई कठोर वचन मत कहना, सदा बाबा के ही साथ रहना।"[2]

इस प्रकार लक्षदास जी ने कृष्ण के व्यक्तित्व-विकास में प्राकृत और अतिप्राकृत तत्वों का सुन्दर समन्वय किया है। कवि ने कथा के बीच-बीच में कृष्ण के ब्रह्मत्व की ओर संकेत किया है किन्तु यशोदा के मन में कृष्ण के प्रति 'पुत्र की मंगल कामना' का भाव ही बार-बार दुहराया गया है और यशोदा के प्रेम (वात्सल्य) को लौकिकरूप प्रदान किया गया है। कृष्ण के असुर संहारन को यशोदा 'दैवी सहायता' ही समझती है।[3] 'भ्रमरगीत' प्रकरण में भी कवि ने यशोदा के वत्सल भाव का सुन्दर चित्रण किया है। यशोदा कृष्ण के समस्त कार्यों और उपकरणों की

---

[1] ग्वाली तिहारी रीति सदा गोरस ही राची।
जानत भाजन भेद लाल ये कहौ न साची।
माटे मीठे भेद है रस तिहारे आली।
लालु कबै पर ध्रस गे मैं चलन सिखयो काली।।
तब न सिखयो पगु धरत चरन जब सकट गिराई।
सिसु जाने पुतना हुती पय प्यावन आई।।
तुम्हो अक ना लै सकी हो मोहन पर बलिहारु।
त्रिनावर्त वधु जब कियो तब केतकि नंद कुमारु।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०४-१०५

[2] जसुमति दसा बरनिक नहि आवै। मुख चूमै परि पाइ सिखावै।।
कछु कठोर नृप सो जनि कह्यो। संग बबा के लागे रह्यो।।
—वही, पृ० ४७।

[3] छाती धुनत जसोमति आई। विघ्न करवर बड़ी बचाई।।
—वही पृ० १६

स्मृति करके व्याकुल और व्यथित होती है[1] इस प्रकार कवि ने कृष्ण के इस रहस्य के प्रति विस्मय का भाव एक नये ही रूप (सचारी भाव) मे प्रस्फुटित किया है माखन लीला के प्रसगों मे यशोदा और गोपियों की बातचीत मे 'व्यग विनोद' की सुन्दर झांकी देखने को मिलती है।

सख्य-प्रेम मे भावानुभूति का विस्तार

कवि ने कृष्ण तथा उनके सखाओ की क्रीडा के स्वाभाविकता और सरलता से युक्त थोडे से चित्र ही उपस्थित किये है अत इनमे उनके पारस्परिक भावो का विकास उतने मन-मोहक रूप मे प्रस्तुत नही किया जा सका है जितना कृष्ण की बाल-लीलाओ से उत्पन्न नद, यशोदा और गोपियों के वात्सल्य मे प्रस्फुटित हुआ है।[2]

बलराम कृष्ण के बड़े भाई भी हैं और सखा भी। वे दोनो विविध प्रकार की क्रीडाएँ करते हुए आंगन मे खेलते है। इनके अतिरिक्त सुबल, सुदामा और श्रीदामा भी उनके सखा हो जाते है। वे वन मे कृष्ण से गाये घिराते है और जब खेलने मे कृष्ण अपना दाव नही चुकाते तब सखा उन्हे खिझाते है। इस क्रीडा व्यवहार में सखाओं का कृष्ण के प्रति प्रेम ही झलकता है। कवि ने वन मे भी कृष्ण के ब्रह्मरूप का सकेत ग्वालो और बलराम के मुख से कराया है।

वन मे ग्वालो के भयभीत होने पर कृष्ण-बलराम असुर सहार करते है। कृष्ण की महत्ता का वास्तविक अनुमान तो तब होता है जब वे विप्र-पत्नियों को दर्शन देकर तथा वत्स-हरण कृत्य पर क्षमा याचना के लिये ब्रह्मा के प्रकट होने पर अपना दिव्य रूप दिखाते हुए उन्हे क्षमा करते है। इन वर्णनो से यह स्पष्ट है कि कवि के मानस की रहस्योन्मुख प्रवृत्ति वात्सल्य और सख्य के इन चित्रणो से सजीव रूपों मे प्रकट हुई है।

'कुरुक्षेत्र मे कृष्ण व्रजवासी समागम' के समय समस्त ग्वाल कृष्ण से पुन व्रज लौट चलने की प्रार्थना करते है।[3] इस विनय मे सखाओ का दैन्य, स्वाभाविक स्नेह और दीनता से परिवेष्टित ही चित्रित किया गया है।

---

[1] केहि प्रात कलेवा दीजै। बिना कान्ह अक केहि लीजै॥
कब षेलत ते हरि ऐहै। मा कहत अक लपटैहै॥
+ + +
ऊधौ है घर धरे षेलौना। कब आइहै षेलि है छौना॥
मुरली यह प्रान पियारी। सोउ गोपाल गोवै बिसारी॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५०-५१।

[2] भैया जे त्रिभुवन के धारन। देह धरे व्रज गाइन कारन॥
भैया हमरी सीष यह लीजै। गाइ विप्र की सौंह न कीजै॥
—वही, पृ० २२।

[3] गो बालक कहै व्रज चलहु कन्हैया। गाइ आपनी पालहु भैया॥
अरुझे कहा राज जजाला। व्रज वन केलि समुझि गोपाला॥
हस्तलिखित पृ० ८२

श्रृङ्गार और उसके अंतर्गत भाव विस्तार

कवि ने कृष्ण, राधा और गोपियों के पारस्परिक प्रेम के द्वारा भावानुभूति की तीव्रता और उसकी सूक्ष्मता को प्रदर्शित किया है। कृष्ण के शैशव की क्रीडाओं में लौकिक कार्य-व्यापारों की जो अभिव्यक्ति की गई है उसने और भी रस-सृष्टि करने के लिये गोपियों और राधा के प्रेम के विकसित रूप ने एक नया मोड़ प्रस्तुत किया है। गोपियों का सकोच और लज्जा त्याग तथा मर्यादा के बंधनों का उल्लंघन करके शरद रात्रि में रास लीला के लिये एकत्र होना और कृष्ण के लिए अपना तन, मन समर्पण भाव नये लोक की अनुभूतियों की सृष्टि करता है। फाग, वसंत और वर्षा वर्णन में गोपियों की तीव्रानुभूति राग रस रंजित उन्मुक्त वातावरण की स्वच्छंद केलि के दृश्य उपस्थित करती है।

कवि की रचनाओं में गोपियों और राधा का प्रेम भाव-विकास के आधार पर ३ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) गोपियों के मन में कृष्ण के प्रति प्रेम 'पूर्वानुराग' के रूप में व्याकुलता उत्पन्न करता है जिसकी परिणति यशोदा को उपालम्भ देने और दान-लीला तक की कथा में निहित है। (२) प्रेम के विकास के साथ-साथ संयोग और वियोग सम्बन्धी अनेक भाव विविध प्रकार के अनुभावों और संचारी भावों की सृष्टि करते हैं। (३) कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद विरह की तीव्रानुभूति तब गम्भीर रूप धारण कर लेती है जब उद्धव कृष्ण का संदेश लेकर ब्रजभूमि में आते हैं। ये भाव 'भ्रमरगीत' प्रकरण में दिये गये हैं।

गोपियों और राधा के प्रेम सम्बन्धी भावों का विकास 'पूर्वानुराग' के रूप में प्रकट होता है जब कृष्ण के प्रेम में मदमाती गोपियां उनका 'गुण कथन' करके प्रेम पथ पर अग्रसर होती हैं। कृष्ण के रूप दर्शन का गोपियों के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वे उनकी रूप-सुधा का अनवरत रसपान करती हुई 'चकित' और 'भ्रमित' हो जाती हैं। वे 'हर्षातिरेक' से विकल होकर अपना तन-मन न्योछावर कर देती हैं। माखन चोरी लीला में गोपियां कृष्ण की रूप माधुरी पर मुग्ध होकर उपालम्भ के मिस (बहाने) यशोदा के पास जाती हैं और भाव विभोर होकर कृष्ण-प्रेम की 'अभिलाषा' को अपने मन में स्थायी करती हैं। इस स्थायी भाव के साथ-साथ उनमें रोमांच, स्तम्भ आदि संचारी भाव उदित हो जाते हैं। वे कृष्ण के माखन-चोरी कृत्य को छिपकर देखती हैं और कृष्ण का हाथ पकड़कर उन्हें यशोदा के सामने ले जाती हैं। वे झगड़े तथा उपालम्भ के बहाने अपना प्रेम-प्रदर्शन करती हैं।[1] कवि ने गोपियों के श्रृंगार का भी सुन्दर वर्णन किया है।[2] कृष्ण के गुणों का 'स्मरण' करती हुई गोपियां अनेक अनुभावों को प्रकट करती हैं।[3]

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०३, १०४, १०५।

[2] वदन मयक शिरगज छवि नैनी। सुक नासा सुन्दरि पिक बैनी॥

+ + +

भ्रकुटी निकट लगी तिलक बनावत। चन्द्र काम जनु चाप चढ़ावत॥
लसत केस पाटी सीमंतहि। करि दिवो जनु मन मारग कन्तहि॥
वर चीरन्ह लहिराये कानन। ए सुनी हैं हरि बंशी तानन॥
पीठिन लसै सुमन जुत बेनी। चढे को मती चीतु चारु निसैनी॥ आदि

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० २८-२९।

[3] देषि दसा विहाल तन डोलै। जल नयन कछू नहीं बोलै॥

शेष अगले पृष्ठ पर

लक्षदास जी ने राधा-कृष्ण का प्रेम 'रूपदर्शन' के द्वारा व्यक्त कराया है इस प्रेम को कवि ने 'रास लीला' 'निकुंज केलि' तथा नित्य विहार लीलाओ के अन्तर्गत लौकिक और अतिलौकिक प्रवृत्तियो के निश्रण से प्रस्तुत किया है। नायिका राधा के हृदय मे उत्कण्ठा, विकलता तथा अधैर्य आदि भावो का चित्रण किया गया है। राधा कृष्ण से मिलने की 'उत्सुकता' मे 'मूर्च्छित' होती है। 'उन्माद' की 'जड़ता' के कारण उसे अपने तन-मन की भी 'सुधि नही रहती।'[1] गोपिया कृष्ण को पतिरूप मे प्राप्त करने की 'अभिलाषा' (कामना) करती है। अत वे हेमन्त ऋतु मे यमुना जल मे स्नानादि के अनुष्ठान करती है।[2] शरद्-रात्रि मे कृष्ण के वेणु-वादन से प्रभावित गोपिया घर तथा गुरुजनो के 'भय' और 'लज्जा' को त्यागती हुई एकत्र होती है। कृष्ण के मर्यादा धर्म के उपदेश पर उनमे 'व्याकुलता' और 'चिन्ता' उत्पन्न होती है।[3]

कवि ने 'जुगुल किशोर लीला' और 'वृन्दावन विहार वर्णन' शीर्षको के अन्तर्गत राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया है। इसमे उनके पारस्परिक प्रेम की गूढता और सयोग दशा का सुन्दर चित्रण है। कवि ने कृष्ण और राधा के मिलन से उत्पन्न 'हर्ष' और 'गर्व' का सकेत किया है जिसमे सखियो से परिसेवित युगल सरकार के 'शृगार' तथा उनकी 'निकुंज केलि' का वर्णन है। निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार 'नित्य विहार' मे प्रिया-प्रियतम का शाश्वत संयोग अथवा विहार रहता है। वहाँ पर 'मान-विरह' का कोई काम नही किन्तु फिर भी प्रेमातिरेक मे सभ्रम उत्पन्न होने से 'मान-विरह' की दशा उत्पन्न हो जाती है। एक बार राधा के 'मान' करने पर कृष्ण जल से बिछुडी मीन की भाति व्याकुल हो गए और पृथ्वी

सोई कुज धाइ सब घेरे। हरि पाये आवहु टेरै ॥
येक पुकारै कहा छपे हो। छाक आइ गोपालन लैहौ ॥
एक उहा कदम मिलि घेरै। जेहि चढि गैया मोहन टेरै ॥
एक धाइ जमुना धसि लीन्ही। ऊधो पग धरि ढाढी कीन्ही ॥
\+ \+ \+
दधि षात धरन हम पाए। ह्या षरक दुहावन आए ॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५३।

[1] देषे कान्ह नयन की कोर। मनु चित अटकि रहो वोहि ओर ॥
तनकौ सुधि न रही तन मन की। उपमा कछु चात्रिक घन की ॥
उरझी परी तन मन न सभारै। उठि कुंजनि की वोर निहारै ॥

—वही, पृ० ९८।

[2] श्री जमुना जल मज्जन करिकै। हरष हरी मूरति उर धरि के ॥
पूजि भगवती गोप कुमारी। पूरन करु कामना हमारी ॥
कात्यायनी कामदा भाई। दे हमका वर कुवर कन्हाई ॥

—वही, पृ० २८।

[3] तुम मुरली धुनि सरस सुनाई। हम दासी है सेवन आई।
\+ \+ \+
जे पति सुत तजि ग्रह ते आई। झूठे जानि सति कह धाई ॥
ते तुम हमहि सिषावन लागे। सुधा पियाइ अनल तन दागे ॥

हस्तलिखित पृ० ३९।

पर गिरते-पड़ते राधा राधा रटने लगे उन्हें भोग भूषण वसन की भी सुधि न रही।[1]

मान के अतिरिक्त वियोग का दूसरा कारण प्रवास है। श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने के कारण गोपी जन का चित्त अत्यन्त व्याकुल हो गया। कवि ने गोपी के मनोभावो के प्रकाशन के लिए 'बारहमासा' लिखा है जिसमे विविध ऋतुओ के उद्दीप्त विभाव की दृष्टि से वर्णन करने की प्रणाली का अनुकरण किया गया है।[2] गोपी-उद्धव सवाद इसी विरह वर्णन प्रसग के अन्तर्गत आता है। सभवत इसीलिये कवि प्रवासजन्य विरह के प्रसगो को चुनने का लोभ सवरण न कर सका। अत उसने गोपी-उद्धव सवाद में गोपियो के हृदय की विरहानुभूति तथा सगुणोपासना की प्रतिष्ठा को प्रस्तुत किया है।[3]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनोदशाओं के चित्रण में कवि ने प्रेम की जिन व्यापक अनुभूतियो का विवेचन किया है वे हमारे साहित्य की अनुपम निधि है। 'वात्सल्य' और 'शृगार' के अन्तर्गत वर्णित भाव और अनुभावो तथा नायिकाओ के उपभेदो की जो स्वाभाविक रूपरेखा प्रस्तुत की गई हैं उससे कवि की भावानुभूति के विकास, उसके सूक्ष्म निरीक्षण तथा मानसिक प्रवृत्तियो के अध्ययन का पता चलता है। कवि ने शृगार रति के अन्तर्गत केवल कोमल भावो को ही प्रधानता दी है, परुष भावो का तो यत्र-तत्र सकेत मात्र ही ह कवि के ऐसा करने का मुख्य कारण है निम्बार्कीय पद्धति के अनुसार प्रतिपाद्य विषय का वर्णन करना।

'निर्वेद' और उसके अन्तर्गत भाव-विस्तार

कवि की भक्ति भावना का सरलतम रूप 'दोहावली' तथा विनय के पदो मे मिलता है। इसमे उसने आत्म-कथन तथा आत्म-प्रबोध की बाते कही है और समाज की मर्यादा की रक्षा के लिये गोपियो को 'पतिसेवा' करके केवल 'स्वकीया भाव' की परिपाटी का पालन करने पर जोर दिया है। सत-समागम, सत-सेवा, कथा-कीर्त्तन-श्रवण आदि के महत्त्व का प्रतिपादन भी उनकी रचनाओ मे मिलता है।[4] लक्षदास जी की रचनाओ मे जहाँ अपने दैन्य को व्याजोक्तियो के माध्यम से व्यक्त किया गया है वहाँ वे अपने इष्टदेव से अपने विरुद की रक्षा करने तथा 'पतित पावन' नाम की सार्थकता को बचाये रखने का अनुरोध करते है।[5]

---

[1] एक समैं मानिनि भै राधा। मोहन मन मनसिज कृत बाधा।।
व्याकुल भये मीन ज्यो बिन जल। लुठत उठत धरनी पर नहि कल।।
हा राधा राधा टेरत सन। सुधि न भोग भूषन वसन।।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०२।

[2] भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ६१।

[3] 'भ्रमरगीत' के सम्बन्ध मे अध्याय ५ मे विवेचन किया जा चुका है।

[4] अध्याय ५ मे इस सम्बन्ध मे विस्तार से विचार किया गया है। अतः उसे यहाँ पर दुहराने की आवश्यकता नही है।

[5] बिना सुकृत बिन साधुता जो न नाथ गति देहु।
गनिका गीध गयंद की पाती लख लिलेहु।।

—दोहावली संख्या १५६।

गनिका कीर पढाय के विप्र तर्यो सुत नाये।
नाथ लख्यो हु तारिहौ ऐसे सरल सुभाये।।

—दोहावली सख्या १५७

कृष्ण की कथा के विकास तथा अन्य रचनाओं में कवि ने स्थान-स्थान पर कृष्ण के 'ब्रह्मरूप' तथा 'लीलावपु' धारण करने की याद दिलाई है। कृष्ण की आनंदहेतुक ब्रज-लीलाएं केवल लोकरंजक रूप के प्रदर्शन हेतु ही प्रदर्शित नहीं की गई है प्रत्युत् इन रचनाओं मे उनके 'मर्यादा रूप' की झांकी भी भली प्रकार मिलती है। कवि ने राधा कृष्ण की प्रेम सम्बन्धी भावनाओं को निर्दिष्ट करने मे भक्ति की भाव गरिमा का महिमामण्डित रूप तो प्रस्तुत किया ही है साथ ही विस्मय विमुग्ध रूप से राधा-कृष्ण की दाम्पत्य रति की 'निकुंज केलि' का भी वर्णन किया है।

अलंकार-योजना

कवि लक्षदास ने अपने काव्य मे रूप, स्वभाव, कार्य-व्यापार, दृश्य, घटना और भावना के चित्रणों के द्वारा सौन्दर्यानुभूति के विविध उपकरण प्रस्तुत किये है और अप्रस्तुत योजना के द्वारा अपने मन्तव्य को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। कवि ने भगवान् कृष्ण तथा उनसे सम्बद्ध अन्य आनुषंगिक कथाओं के वर्णन मे अलंकारो का न्यूनाधिक रूप मे यथास्थान प्रयोग किया है। कवि के द्वारा प्रयुक्त ये अलंकार विधान वर्ण्य विषय को और भी बोधगम्य बनाने की दृष्टि से किये गये है और उनका प्रयोग सर्वथा स्वाभाविक रूप मे ही हुआ है। हमने आगे की पंक्तियो मे कवि की रचनाओं में से कुछ अलंकार ढूँढ निकाले है, किन्तु हमारे इस विवेचन का उद्देश्य अलंकारो के उदाहरणो को एकत्र करना नही है प्रत्युत् यह देखना है कि कवि की कल्पना किस प्रकार की योजना प्रणालियो से उसकी सौन्दर्यप्रियता, प्रकृति-निरीक्षण और उसके ज्ञान वैविध्य का परिचय देती है।

लक्षदास जी ने भक्तवत्सल भगवान् के स्वभाव का वर्णन करके अपने दैन्य और आत्म प्रबोध से सम्बन्धित बाते कही है। उसने गज, गणिका, अजामिल और कंस आदि अनेक सांसारिक जीवो के उदाहरण देकर भगवान् के उद्धार कार्य समर्थ होने का वर्णन किया है। इसमे कवि ने प्राय. 'अतिशयोक्ति' का प्रयोग किया है। इसी भाव की तीव्रता प्रकट करने के लिये 'असंगति', 'असंभव' और 'विषम' का प्रयोग विस्मय की उद्भावना के रूप मे भी किया गया है। इनके अतिरिक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और उदाहरण आदि अलंकारो का प्रयोग करके वस्तुओ तथा घटनाओं के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये गये है।

कवि ने भगवान् कृष्ण की शोभा का वर्णन कई स्थानो पर किया है। देवकी के गर्भ से जन्म धारण करने के पूर्व जब भगवान् चतुर्भुज रूप धारण कर वसुदेव-देवकी को दर्शन देते हैं तभी से कवि की कल्पना कृष्ण की शोभा का वर्णन करने के लिये मुखरित होती है। भगवान् चारो हाथो मे आयुध धारण किये हुए दर्शन देते है। उनके सिर पर 'मनिगन जटित' मुकुट शोभायमान है। उनका प्रसन्न वदन शत मदन को भी मोहित करने वाला है। उनके करुणा-यत लोचन और पट पीत है, वे भयभीत को अभीत करते है। उनके कर-पल्लव मे जड़ाऊ मुद्रिका है। यह शोभा अन्यत्र दर्शनीय नही। (भगवान् के) अभय दान देने वाले चार हाथ हैं। उनका वर्णन करने में कवि का चित्त स्वस्थ नही रहता। कृष्ण के भाल पर लगे तिलक की शोभा को देखकर सारी उपमाएं तिल-तिल कर न्योछावर की जा सकती है। कुण्डलो की झलकनि और कुंचित अलको को देखकर पलकें 'विसर' जाती हैं उर पर और केश

रिधौरी के लिये त्रिभुवन मे कोई उपमा नहीं है कटि मे किंकिनी और पगों मे नूपुर लसते हैं [1] (उपमा रूपक

यशोदा कृष्ण के चारु लोचन, द्वव की दतुलियों का चमक और मोहन का नाच देखकर 'चित्र पुतरी' सी रह गई। माता यशोदा की इस भावना को और भी तीव्र रूप से व्यक्त करने के लिये कवि 'मुकुत बिरवा' के मनोरथ रूपी फलो के 'फलने' की उत्प्रेक्षा करता है।[2] कवि ने एक ओर तो कृष्ण के रूप सौन्दर्य की तीव्रानुभूति कराने के लिये उपमेय और उपमाना मे सादृश्य दिखाया है, दूसरी ओर 'सोहे मोहन कोटिन्ह मारा' तथा 'सो ठगि रहे जाहि तन जोहै' कहकर उपमेय की श्रेष्ठता के आगे सारे उपमानो को फीका सिद्ध किया है।[3] बालक कृष्ण के विविध वेष वर्णनो के द्वारा कवि ने नवीन कल्पनाओ की सृष्टि की है। चरन, पानि, मुख, लोचनो के लिये उसने विकसित 'नव नीरज' की उत्प्रेक्षा की है और 'कुचित चिकुर चारु रुर वेनी' को 'मधुकर श्रेनी' कहा है। कवि नगमनि जटित कनक के कुण्डल' तथा 'नासा मोती' की शोभा को सिद्ध' उपमानो से सिद्ध नही कर पाता है तब दृग कोरने की चितवन से श्रवणो के छूने[4] और 'शशि, शुक्र और मगल' की कल्पना करके[5] असिद्धास्पद उत्प्रेक्षा करता है।

बालक कृष्ण जब गोपियो के प्रेम के आलम्बन बन जाते है तब कवि की कल्पना और भी अधिक मूर्त्तरूप धारण कर लेती है। कवि कृष्ण के विविध क्रिया कलाप की तुलना 'देह और इन्द्रियो के साथ से' करता है और पृथ्वी पर अपनी छाया को देखकर श्रीकृष्ण के आगन

---

[1] रूप चतुर्भुज दर्शन दीन्हो। आयुध चारि चहू कर लीन्हो॥
मनिगन जटित मुकुट सिर सोहे। बिगसित वदन मदन मन मोहे॥
करुनायन लोचन पटपीना। हुते भीग ते भये अधीना॥
कर पल्लव मुद्रिका जराऊ। जो छबि कहू दीप ना पाऊ॥
अभय दानि भुज नाना चारा। रहो न नर कवि कहत मझारा॥
निरखि निरखि करि उपमा सब वारो। लाल भाल जब तिलक निहारा॥
कुडल झलकनि कुचित अलके। निरपत नयनन बिसरी पलके॥
उर बन माल सो केश रिधौरी। उपमा त्रिभुवन सम नहि आरी॥
कट किंकिनी लसत पग नूपुर। बसे सो रूप लक्ष जन के उर॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १३।

[2] लुरत लटकन नासा मोती लछ जन बरनै भले।
नदरानी सुकृत बिरवा जनु मनोरथ फल फले॥
चारु लोचन चमक दतियां कहत तोसो साचु री॥
हौ रही हौ चित्र पुतरी देषि मोहन नाचु री॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०४।

[3] वही, पृ० १६।

[4] नगमनि जटित कनक के कुडल। डोलनि झलक कपोलनि मडल।
चितवत दृग कोरनि लगि धावै। मनहु स्रवन छुवै छुवै फिरि आवै॥

—कृष्णरत्नसागर (हस्तलिखित), पृ० १६।

[5] अधर निकट नासा मोती लस। ससी मह सुक्र ज्यो मगल जस।

—वही पृ० ४१।

की उत्प्रेक्षा हरि के माया से मिलकर जग मे विहार' करने से करता है[1]

ग्वालिनी के सूने घर मे कृष्ण माखन चोरी करने जाते है। ऐसे समय में कवि उनके माखन ढूढ़ लेने की तुलना संत के सुख त्याग कर 'सार' ग्रहण करने से करता है।[2] 'ग्वालिनि' के आने की सूचना पाकर सभी ग्वाल छिप जाते है। कृष्ण अधकार देखकर जहाँ-जहाँ छिपने का प्रयत्न करते हैं वही उनके श्यामल तन के सादृश्य को विकीर्ण करके प्रकाश हो जाता है। वे 'पीतपट' तथा 'कटि किंकिनी' को छिपाने की चेष्टा करते है तो उनकी द्युति सर्वत्र फैल जाती है।[3] यहाँ पर कवि ने वर्णन चमत्कार के साथ भाव चमत्कार का सुन्दर समायोजन किया है और इन पक्तियो मे 'मीलित' तथा 'उन्मीलित' अलकारो का सफल प्रयोग हुआ है।

कृष्ण के 'माटी' खाने पर यशोदा उसे डराती है। कृष्ण मुख खोलकर अपना विराट् रूप दिखाते हैं और सात समुद्र, गिरिवर, वन, तीन लोक आदि देख कर वह विस्मित हो जाती है। कवि ने यहाँ पर 'वीप्सा' और 'सन्देह' के द्वारा अपने मतव्य को प्रकट किया है।[4]

कवि ने 'हरि विहार लीला' प्रसंग मे भी कृष्ण के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उनके विशाल नेत्रो मे काजल, वारिज वदन पर 'दधि' रेखा, तन पर 'झगा' और 'भूषण', कर मे 'पहुची' की शोभा अकित की है। लाल की इस शोभा को देखकर व्रज जन के मन लुभा गए है।[5] वन क्रीडा के समय कृष्ण अपनी अद्भुत मण्डली बना लेते है और स्वय मध्य मे विराजते है। कवि ने उनके मदु कपोल, कुण्डल के हिलने, मुख से मधुर 'बोल' के निकलने, 'कर, नख, दशन (दात) अधर' की अरुणाई, अगो पर केसरि के चदन के लेप के द्वारा आनद रूप सिंधु नद नदन की शोभा का वर्णन किया है। इस रूप छवि पर 'मत्त मधुप' टोलियो मे गायन करते

---

[1] जो कछु कहही करहि हरि अैसे। ब्रह्म देह इन्द्रिन सघ जैसे।।
+ + +
धावत धरनि निरधि निज छाया। जनु हरि जग विहरत मिलि माया।।
—वही, पृ० १९।

[2] मापन ढूढि लेत हरि अैसे। तजि सुष सत सारु गह जैसे।।
—वही, पृ० १९।

[3] जह जह दुरै देषि अधियारी। तम नाशन तनतह उजियारी।।
कट किंकिनि पट पीत छपावे। तो किरनिकल चहु दिसि धावे।।
—वही, पृ० १९।

[4] देषे सात समुद्र गिरवर वन। तीन लोक देषी डरपी मन।
मुप भीतर आपुन औ लाला। निरषत रहो न महरि हवाला।
कहै नाथ देषनि हौ सपनो। माया किधौ मोह है अपनो।।
विधि यह लीला कौनि अपारा। रही न जसुमति देह सभारा।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० २१।

[5] नैन विसाल सकज्जल सोहै। फिरि फिरि चितवत मुनिमन मोहे।
वारिज वदन मुभार दधि देषै। पौछत करहि वहुरि फिरि देषै।
पीत झगा पहुचो कर राजै। मधुर मुखर भूषन तन भ्राजै।।
देषी सत तह लाल की सोभा। परम छोह ब्रज जन मन लोभा।।
हस्तलिखित पृ० २१

है।[1] कवि ने अनेक ग्वालों के मध्य में कृष्ण की उपस्थिति की तुलना चन्द्रमा के 'बहुघट' जल मे प्रतिबिम्बित होने से की है।[2] और उपमेयोपमा का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

कृष्ण रूप दर्शन की भाति कवि ने गोपियो के सौन्दर्य का भी सुन्दरता से विवेचन किया है। 'सुन्दरी का मयक सा वदन है, मृगशावक से नेत्र है, शुक सी नासिका है, वह पिक बैनी है। वह भृकुटी के निकट तिलक बनाती है मानो कामदेव चाप चढाना चाहता है, शिरपर केश 'पाटी' से लगते हैं मानो 'कन्ह' को मन में जाने के लिये मार्ग कर दिया है। वे सुन्दर वस्त्र पहन वन में हरि-वशी की तान सुनती है। उनकी पीठ पर सुमन युक्त वेणी 'लसती' हैं जो पति के चित्त मे चढने (प्रवेश करने) को चारु नसेनी है। 'शुभनासा' पर गज मोती ऐसा लसता है जैसे 'अधर पानप' पर 'सगुन कलश'। (उपमा, उत्प्रेक्षा)। चिबुक और बिंदी की शोभा गोविंद के मन को भ्रमर किये हुए है। प्यारे प्रियतम को हृदय मे प्रवेश करने के लिये मुख-मग मे रसना के पावड़े डाल दिये है। (उपमा, रूपक)।[3]

शरद् रात्रि में कृष्ण की शोभा का गोपियों पर अत्यन्त गम्भीर प्रभाव पड़ता है। 'कृष्ण के सिर पर मोर मुकुट शोभित है। उस पर मणि जटित हेम सुमन बने हुए है। उनके ऊपर चारु चंद्र फहरा रहा है। उनके रंग का वर्णन सम्भव नहीं। हिलते हुए बालों कुण्डल जगमगाते हैं। उनकी द्युति कल कंज कपोलों मे झलकती है। भाल पर मृगमद तिलक शोभायमान है। भृकुटि (तिरछे) नयनो की चितवन मन को मोहित करती है। सुखद नासिका (के पास) मसे भीगती हैं और अधर 'दशन' की द्युति प्राणवान है। उनके घन रूपी तन पर चंदन चित्र बनाये

---

[1] अति अद्भुत मडली बनाइ। राजत मडप मध्य कन्हाइ।
सोभित स्याम चारु मृदु आसन। भोजन करत पान करि बासन।
मृदु कपोल कुंडल कर डोलनि। बरषत छवि डिगसुप मधु बोलनि।
करै नष दशन अधर अरुनाई। मिलत महाछवि बरनि न जाई।
मडित अग सुकेसरि चदन। आनद रूप सिंधु नद नदन।
मत्त मधुर गावत मिलि टोलनि॥

—कृष्णरसनागर (हस्तलिखित), पृ० २५।

[2] देषत सब सनमुष हरि ऐसे। ससि प्रतिबिंबित बहुघट जैसे।

—वही, पृ० २५।

[3] वदन मयक म्रिगज छवि नैनी। सुक नासा सुन्दरि पिक बैनी।
उपजै लगी भौंह द्रिग मौजै। ... .
भ्रकुटी निकट लगी तिलक बनावन। चहत काम जनु चाप चढावन।
लसत केस पाटी सी मत हीं। करि दियो जनु मन मारग कनहीं।
वर चीरन्ह पहिराये कानन। ए सुनी है हरि वशी तानन।
पीठिन लसै सुमन जुत बैनी। चढे को पती चीतु चारु निसैनी॥
सुभ नासा गज मोती लसत अस। अधर पानप कै सगुन कलस जस॥
सोहत चिकव स्वामि का विदा। बहुधा मन अलि किये गोविंदा।
हिय आगे कह प्रीतम प्यारे मुष मग रसना पाउडे डारे

पृ० २८ २६

गये हैं। पीत वस्त्रों को देखकर वर्णन करना कठिन है। उर पर विशाल वन माला है, लाला का अंग अंग मन को मोहित करने वाला है।'[1] (उपमा, रूपकातिशयोक्ति)।

कृष्ण के वेणु वादन को सुनकर गोपियाँ व्याकुल हो जाती हैं और आर्यपथ त्याग कर व्रजराज से मिलने का उपक्रम करती हैं। 'गोपीजन' पावस नदी की भांति जाती हैं। उनका प्रेम रोकने से रुकने वाला नहीं है। वे 'नागर वरपद छेम' के 'हरि सागर' से 'उमगि' मिली। (समस्त वस्तु विषयक सांगरूपक)। कवि ने उनके प्रेम और उनकी व्याकुलता का सम्बन्ध 'धानुक की सरई' और व्योम से टूटे हुए तारे से 'संदेह' रूप में स्थापित किया है।[2] इससे न केवल गोपियों के प्रेम का ही पता चलता है प्रत्युत् उनकी प्रेम भावनाओं की तीव्र व्यंजना भी इसमें मिलती है।

कवि ने गोपियों की दशा का वर्णन करते हुए 'सांग रूपक', उपमा और उत्प्रेक्षा में कितनी सुन्दर योजना प्रस्तुत की है। 'कंत रूपी वसंत को पाकर वनिता रूपी लता फूल रही है। लक्ष-दास (कृष्ण) के ग्रीष्म जैसे विषम वचन से सूखती सी दिखाई दी। उनके मुख सूख गये और वे अनमने मन से नयनों से 'नीर ढारने' लगी जैसे पवन के वशीभूत कदली दल कांपता है वैसे ही उनका कनक-शरीर भी कांपने लगा। ऐसे वचनों को सुनकर सुन्दरियां वैसे ही कुम्हलाने लगी जैसे सर के सूखने पर सरसीरुह।[3] (रूपकातिशयोक्ति) कवि ने कृष्ण के वचनों के गोपियों पर पड़े प्रभाव की तीव्र शब्दों में अभिव्यंजना की है। 'सुधा के पीने के यश को छीन लीजिये और छल करके हलाहल ला दीजिये। जो चातक को मेघ हठ करके मारदे, जैसे—चन्दन काठ को जलादे, मीन के लिये नीर ताप उत्पन्न करे उसके लिये बताओ और कहाँ पर सत्यता

---

[1] मोर मुकुट सिर लसत सोहायो। हेम सुमन मनि जटित बनायो।
चारु चंद तापर फहराने। वरन रंग नहिं जात बषाने।
जगमगात जुग कुंडल डोलनि। झलकत दुति कल कंज कपोलनि।
म्रगमद तिलक भाल पर सोहै। भ्रकुटि नैन चितवनि मन मोहै।
सुघढ नासिका कछु मस भीजैं। अधर दशन दुति जीजैं।
घर तन चंदन चित्र बनाये। पीत वसन लषि वरनि न आये।
उर पर वर विसाल वन माला। अंग अंग मन मोहन लाला।
—वही, पृ० ३६।

[2] अरुन वसन भूषन भवन पति गुरजन उर लाज।
छाडो कछू न सुधि रही मन करषो व्रजराज।।
गोपीगन पावस नदी रोको रहो न प्रेम।
उमगि मिली हरि सागरहि नागर वर पद छेम।।
कीधौं प्रेम धानुक की सरई। टूटी कीधौं व्योम ते तरई।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ३७।

[3] फूलि रही वनता लता कंत वसंतहि पाइ।
लछ वचन ग्रीष्म विषम लागत लगी सुषाइ।।
मुष सूषे मन अनमने नयनन ढारत नीर।
ज्यो कदली दल पवन बस कांपे कनक सरीर।।
सुन्दर मदन सुनत कुम्हिलाने ज्यो सरसीरुह सरही सुषाने
हस्तलिखित पृ० ३८

मिल सकती है? (असंगति)। शशि वदनी मृगलोचनी गोपिएं हरि के 'बैन' सुनकर सोच करती है। लक्षदास उनके तन (में दुख) की थाह नहीं है वे 'नैन' भर कर श्वास लेती है।' (उपमा)।

जिस प्रकार कवि ने कृष्ण के रूप एवं भाव चित्रण में नई कल्पनाओं की सृष्टि की है उसी प्रकार उसने गोपियों के अन्तस् की झलक का वर्णन करने में अपनी कल्पना का उपयोग किया है। (गोपियाँ) पद पल्लव से धरणी पर ऐसे लिखती है जैसे लज्जा के लिये मार्ग बनाया हो। (रूपक उपमा) या क्षिति को नख से खोद कर जगाया हो, उसी प्रकार तुझसे कन्हाई अति हित करते है, (सन्देह, स्मरण)। नारि के सुख-दुख को नारि ही जान सकती है वे कान्ह से अपना हित मानने को कहती है। कभी उनकी दृष्टि देह की ओर आती है मानो वेग को तजकर वे अपने प्राण त्याग देना चाहती है।। (उत्प्रेक्षा) इस प्रकार घोर व्रजबालाओं ने मन में धैर्य धारण करके सुन्दर नंद लाला से सुनने को कहा।"[2] (स्वभावोक्ति)।

'रास विलास' के लिये एकत्र गोपियों को कवि ने 'चपला' तथा कृष्ण को 'सुख सिंधु' और 'सजल घटा' बताकर समुच्चयोपमा' का उदाहरण तो दिया ही है साथ ही उनके पारस्परिक सम्बन्धों की अन्योन्याश्रयता का परिचय भी दिया है। सभी गोपियां कृष्ण के सुख को उसी प्रकार देखती है जैसे एक 'सर' में विविध प्रतिबिम्ब दिखाई दे। (विशेष)। कवि श्याम-श्यामा को घन और शशि तथा गोपियों को पारषद उडगन' बताता है। श्याम 'शोभा सिंधु' और गोपीगन 'लहरी' है (सांगरूपक) मृदंग संगीत की ध्वनि सुनकर देवता हर्षित होते और सुमन-वृष्टि करते है। राधा और कृष्ण के नील-पीत वसन पर कवि घन-दामिनी की 'उत्प्रेक्षा' करता है। दम्पति के इस रास विहार वर्णन में कवि की भावना पूर्ण तन्मय होती हुई दिखाई देती है[1]।

---

[1] पीवत सुधा छीनि जम लीजै। छल करि आनि हलाहल दीजै।
जो चातकहि मेघ हठि मारै। जैसे चदन काठहि जारै।
मीनहि नीर नाय उपजावै। सो कहो और कहा सचु पावै।।
शशि वदनी मृग लोचनी सोचहि सुनि हरि वैन।
लक्षदास तनु थाह नही स्वास लेहि भरि नैन।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३८।

[2] पद पलव धरनी लिषे अैसे। मगु करै सुत लजान कह जैसे।
कै छिति नख सौ षोदि जगाई। तो सो अति हित करत कन्हाई।
नारि नारि को सुष दुष जानै। कहि कान्हहि हम सो हितु मानै।
कबहुक दीष्टि देह तन आनै। डारसि मनहु वेगि तजि प्रानै।
करि मनु धीर घोष व्रजबाला। कहहि सुनहु सुन्दर नदलाला।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३८।

[3] मिलि सुष सिंधु नाह संग झेले। सजल घटा चपला सी पेलै।
सबै स्याम सुष देषहि अैसे। बहु प्रतिबिंबु येक सर जैसे।
मडल मध्य स्याम स्यामा घन। ससि पारसद नर्सीकसत जनु उडगन।
स्याम सिंधु गोपीगन लहरी। सोभा सलील उमगी बन छहरी।

शेष अगले पृष्ठ पर

राधा-कृष्ण और गोपियो के रासविलास की क्रीडाओं ने कवि के मानस पर गहरी छाप छोड़ी है। निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार 'निकुजलीला' और 'नित्य विहार लीला' मे सतत रत 'नवल किशोर' की क्रीड़ाओ के दर्शन सुख का सान्निध्य 'साम रूपक' मे प्रस्तुत किया गया है और कवि ने अपने मन मधुप के 'मनमोहन' के 'पद पकज' मे 'वास' करने की बात कही है। कनक माला के बीच-बीच मे नीलमणि की भाति प्रत्येक गोपी के साथ गोपाल राजते है। (उन्मीलित) कवि ने वदनावली की उपमा विधु और कमल से देकर 'कलित कबरी' पर 'मुकुट छवि' छाजने की योजना प्रस्तुत की है। (स्वभावोक्ति) उसने सखियो को 'वारिज-पत्र' और 'शशि' मानकर उनकी प्रीति को 'अवतंश' रूप मे दिखाई देने की 'सिद्धास्पद उत्प्रेक्षा' की है। 'खजन और मीन के मान का 'मोचन' करते हुए तरुणी के तिरछे लोचन 'राजते' है (प्रतीप)। भाल पर 'भृकुटी तिलक' की छवि मदन चाप शर को 'हटक' देती है। (चपलातिशयोक्ति) अधर के निकट नासा मे मोती लसता है जैसे शशि मे शुक्र और मगल। (असिद्धास्पद उत्प्रेक्षा)।[1]

रास के प्रसगो मे राधा की शोभा का वर्णन कवि की कल्पना, भाव शवलता और प्रभावोत्पादकता से परिवेष्टित है। विविध आभूषणो और शृंगारों से सुसज्जित राधा की रूप छवि के निदर्शन मे कवि ने अलकारो का स्वाभाविक प्रयोग किया है। 'नील वसन मे तन की शोभा ऐसी दिखाई देती है मानो घन मे चपला चमकती है। उसका सुहावना रूप ऐसा लगता है मानो 'पिय' मन भावनी 'वेनी' रसिक मधुप को नसेनी सी 'लसती' है। उसके पद, पानि, लोचन की चपलता 'मन' को 'साधने' नही देती। (उत्प्रेक्षा)।

सुरभी हरषे बरषे सुमन सुनि मृदग सगीत।
लछ मनहु घन दामिनी वसन नील अरु पीत॥
व्रज वनिता बनि मडली दपति विहरत रास।
ससि सरोज घन दामिनी मोहो मदन विलास॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४०।

[1] एहि विधि आन उदधि मे विहरत नवल किशोर।
मनमोहन पद पकजहि वसो मधुप मन मोर।
राजत प्रति गोपी गोपाला। कनक नील मनि बिचबिच माला।
वदनावलि विधु कमल विराजै। कवरी कलित मुकुट छवि छाजै।
मनहु सखी पत्र वारिज ससी। रषि अवतंस प्रीती कीन्ही लसी।
तरुनी तिरछी राजत लोचन। षजन मीन मान को मोचन।
भृकुटी भाल तिलक छवि ओहै। हटकत मदन चाप सर को है।
अधर निकट नासा मोती लस। ससी मह सुक्र ज्यो मगल जस।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४१।

तन सोभा नील वसन मै। चमकत चपला मानो घन मै।
मजल घन चपला चमके भीउरपति रूप मुहावने।
मनो मधुप सेनी लसत वेनी रसिक पिय मन भावनी।
पग पानी लोचन चपला ताउर मुरथ न रथ साधे।
लछदास विलास की नीधी रास नीर्त्यती राधे।
हस्तलिखित पृ० ११०

गोपियां और कृष्ण के रूप सौन्दर्य की भांति राधा की रूप छवि के वर्णन में भी कवि ने ... को प्रश्रय दिया है और 'रूपकातिशयोक्ति' का आश्रय लिया है। कवि मण्डल में राधा-कृष्ण के बैठने और उसके शृंगार की योजना प्रस्तुत करता हुआ राधा की शोभा का वर्णन करता है। (राधा की) छवि और भी अधिक कल्पना देकर बनाई गई है जैसे कलित कुसुम की 'कोरी' रचकर दे दी गई हो। कवि राधा के गोरे तन पर वेणी को देखकर कुसुमित लता पर मधुप अवली के होने की 'उत्प्रेक्षा' करता है और सुमेरु शशि पर पन्नग के चढ़ने या 'नभ की धार' के होने का सन्देह करता है। अथवा वेणी को काम की 'कन्त नसेनी' मानकर उसके 'शशि' से चढ़ चढ़कर ग्रह-श्रेणी मिलने का अनुमान करता है। (सन्देह) राधा के सिर पर खिले हुए फूल शोभित हैं जो 'चोमरा धारे हुए' 'उर-मन' को मोहते हैं। 'भुजकार-मूल' में फूल के भूषण हैं और कर्णाभरण मानो 'पूषन' की भांति उदित हुए हैं (सिद्धास्पदउत्प्रेक्षा)। शीश पर चंदन ऐसा दिखाई देता है जैसे नभ को विकीर्ण करके अरुण किरणें निकलती हैं।[1] (पूर्णोपमा)।

कंस के आमन्त्रण से राजसभा में 'मल्ल युद्ध' देखने के लिये आये हुए कृष्ण को नर, नारी, मल्ल, गोप, सखा, कंस, नंद आदि सभी ने अपनी भावनानुसार विविध रूपों में देखा।[2] (उल्लेख)

गोपियां कृष्ण-विरह में अत्यन्त क्षुब्ध रहती हैं। कवि ने गोपियों की दशा का बहुत ही भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। सभी गोपियों के तन वदन सूखे हैं मानो बिना नीर के कमल सूख गये हों। (उत्प्रेक्षा) जिस प्रकार 'कर' के संकेत पर कठपुतली डोलती है, इसी प्रकार प्रेम के वश में वे 'हरि नाम' लेती हैं। (उपमा) नंद लाला ने सुमनों की जो मालाएं पहनाई थीं वे सूख गई हैं। (पूर्व रूप) गोपियों ने उन्हें नयन जल से सींच कर रखा है जैसे चातक 'पिय-पिय' रटता है। वे आभूषण टूटे और ढीले हैं जिन्हें प्रिय ने स्नेह में यत्न करके 'खोने'। कान्ह ने जो अंजन अपने हाथों से दिया था उसे फिर नहीं लगाया (शुद्धापह्नुति) कभी सखी उठकर मोहन को देखने के लिये दौड़ती हुई कहती है देखो री मोहन आता है। कभी 'मोर' देकर बुलाती है; कभी ऊंचे स्वर में गाती है। कभी मधुकर को मनमोहन की कथा को गाकर सुनाने के लिये कहती है।[3] (स्मरण)

---

[1] मंडल बैठि कुंवर दोउ राजत। प्यारी तन सिंगार पिउ साजत।।
करि कल्पना कीन्ही छवि ऐसी। दै दै कुसुम कलित रचि कोरी।।
बेनी लसत गोर प्यारी तन। कुसुमित लता मधुप अवली जनु।।
पन्नग चढ़ि सुमेर ससि परसै। की नभ धार मेरु पर दरसै।। आदि
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४२।

[2] मल्ल असनि नखरन नरन्ही नारिन काम समान।
गोप सषा सिसु मातु पितु काल कंस के जान।
जोगिन तत्व बिराट बुध इष्ट सनी देषे कुलदेव।
लछ सुषद सनन सदा सुभाव जो सेव ।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४९।

[3] तन बदन सबनि के रूषे। जनु कमल नीर बिन सूषे।

शेष अगले पृष्ठ पर

कवि ने व्याज निंदा के द्वारा कृष्ण के प्रति गोपियो की स्मृति को सजीव किया है। उसने काले 'मेघ' तथा 'व्याल' के उदाहरण देकर चातक के रटने पर भी मेघ की निष्ठुरता तथा 'व्याल' के पालने वाले के प्रति 'व्याल' की निर्ममता और लपटता मे अपने कथन की पुष्टि की है।[1] कृष्ण विरह मे दग्ध गोपियाँ अपने हृदय की वेदना उद्धव के समक्ष रखती है। सर्वत्र व्याप्त प्रभु 'ब्रज नाथ' नही है। वे उनकी पूर्णता की बात सुनकर उन्हे प्रकट रूप से अपने नेत्रो से देखना चाहती है। (स्वभावोक्ति) अत मे भावो को तीव्रानुभूति कराने के लिये गोपी अपने हृदय की छिपी हुई बात कहती हैं। मुझे अपने मन मे यह विश्वास है कि हम दुखित है किन्तु 'कान्ह-हिय' मे नही है। यह उपदेश तो उन्ही के लिये उपयुक्त है जिनके मन को मोहन ने नही 'हर' लिया है।[2] (दृष्टात)

रूपवती राधा की भाति ही कवि ने रुक्मिणी की रूपसुधा की प्रशसा 'रूपकातिशयोक्ति' 'उदाहरण' तथा 'सम' अलकारो के द्वारा प्रस्तुत की है। रुक्मिणी के सौन्दर्य को असुर और असत ऐसे विलोकते है जैसे पावक को देखकर पतग पडते है। सत और साधु उस छविश्री को देखते है। खवासिनि हँसते हुए उन्हे 'बीरी' देती है। रुक्मिणी की मराल जैसी गति, मृगनयनी जैसे विशाल नेत्र, शशि सम बदन और पिक सी बेनी है। भृकुटी 'चाप' और दृग 'बान' के समान है। उन्हें देखकर असुरो का वध हो गया और वे प्राण विहीन हो गये। शिव ग्रीवा पर 'शोभा' का हार लसता है मानो सुमेरु पर 'सुरसरि' की जुगधारा' हो। मनि गन जटित 'अवतश' लसता है मानो दोनो हस शशि की सहायता करते है। (उत्प्रेक्षा) कोमल कनक लता सी देह है।[3] (उपमा)।

हरि नाम प्रेम बिन बोलै। कर ज्यो कठपुतली डोलै।
सूखे सुमनन के माला। जे पहिराये नंद के लाला।
ते सींचि नयन जलु राखै। पिय पिय चात्रिक जिमि भाषै।
तेइ भूषन टूटै ढीले। पिय नेह जतन करि पीले।
सोइ अजन फेरि न दीन्हो। जो कान्ह कमल कर दीन्हो।
कबहुक उठि देषन धावै। देषहु री मोहन आवै।
कबहुक दै सौह बोलावै। कबहुक ऊचे सोर गावै।
कबहुक कहै मधुकर गावो। मनमोहन कथा सुनावो॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५२

[1] भये कारे कवन के हित मेघ को चात्रिक रटै।
व्याल पाले होत काके ज्योनिहारी लपटै॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५२

[2] ऊधो जे पूरन सब माही। ते रावरे नाथ ब्रज नाही।
पुनि पूरन हमहि सुनावो। किन प्रगटी नैन देषरावो।
+ + +
मो वह प्रतीत मन माही। हम दुषित कान्ह हिय नाही।
+ + +
उपदेस होत हित ताके। मोहन मन हरे न जाके॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५३

[3] असुर असंत विलोकत जैसे। पावक लषि पतंग परे जैसे।

शेष अगले पृष्ठ पर

रुक्मिणी और राधा श्री का है अत जिस प्रकार कवि ने राधा कृष्ण की नित्य विहार लीला का वर्णन किया है उसी प्रकार रुक्मिणी कृष्ण की लीलाओ को भी अपने काव्य का प्रतिपाद्य बनाया है। इन वर्णनो मे भी कवि की तन्मयता दर्शनीय है। कुवरि सुन्दर केलि कला मे प्रवीण है। दोनो नागर है और परस्पर प्रेमाधीन है। दोनो 'प्रिय' 'नखशिख रूप-खानि' है। 'वर और त्रिय' दोनो नागर और नागरि है। (अभेद रूपक) दोनो की रूप 'वयस' दिन-दिन बढती है जैसे कलानिधि की कला बढ़ती है (उपमा)। गौर-श्याम तन पर भूषण शोभित है। कुवरि (रुक्मिणी) के रूप ने हरि के मन को वश मे कर लिया है। दोनो ऐसे 'केलि कलाप' करते है जैसे श्री पुरुषोत्तम। भवन भूमि पर चित्रसारी 'राजती' है। महल मे निपुण नर-नारी 'टहल' करते है। वहाँ 'सुभग पर्यक' सोहते है जैसे शरद मयक पर सुमन चढ़ाये जाते हो। 'मणिगण मोती' की झालर झलकती है। पलग के चारो ओर ज्योति चमकती है। उसके ऊपर 'चौतनिया चादर' तनी हुई है, उस पर 'चौरगी' डासन बनी हुई है। सुगध छिड़क कर सुमन बिछाये है। उन पर तन को सुख देने वाले वस्त्र बिछाये गये है। (उपमा, रूपक) 'कुठि गेडुआ और गलसुही' सोहते है मानो ये त्रिभुवन की शोभा है। (उत्प्रेक्षा) उस पर कुवर और किशोरी बैठे है। 'त्रिभुवन-मणिजोरी' यौवन से भरपूर है। दोनो परस्पर पान खिलाते है। पति 'किचुकी' पर 'अगरसत' लगाते है।[1] (उपमा, उत्प्रेक्षा)

कवि रूप-दर्शन की लालसा 'संभावना' के द्वारा प्रकट करता हुआ कहता है कि यदि अग-अग मे जितने रोम है उतने ही नयन होते तो यह छवि 'अति हेत' से वर्णन करना सभव

संत साधु सबको छवि श्री। विहसत दई षवासिनि बीरी।
गनि मराल विसाल मृगनयनी। ससि सम वदनु कुवरि पिक बैनी।
भृकुटी चाप दृगबान समाना। बधे असुर लषि भे बिन प्राना।
गीव सिव सोभा लसत हार। जनु सुमेर सुरसरि जुगधार।
गनमनि जटित लसत अवतसा। मानहु ससि सोहाइ जुग हंसा।।
कोमल कनक लता सब देहइ।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ५८

[1] केलि कला कल कुवरि प्रवीना। दोउ नागर दोउ प्रेम अधीना।
नष सिष रूप पानि प्रिय दोऊ। त्रिय नागरि नागर बर दोऊ।
दिन दिन रूप बैस दोउ चढै। कला कलानिधि की ज्यो बढै।
+ + +
गौर स्याम तन भूषण कीन्हे। कुवरि रूप मन हरि बसि कीन्हे।
केलि कला करै दो ऐसे। श्री पुरुषोत्तम कहिये वैसे।
राजत भवन भूमि चित्रसारी। निपुन महल टहली नर-नारी।
तहा सुभग सोहे परजका। सुमन जात कही सरद मयका।।
झलकति झाली मनि गन मोती। चमकत पलग चहू दिसि ज्योती।
चौतनिया चादरि तेहि तनी। तापर चरंग डासत बनी।
छिनकि सुगधनि सुमन बिछाये। तापर तन सुष बसन बनाये।
सोहही गेडुवा सुठी गलसुही। त्रिभुवन की सोभा जनु उही।।
तापर बैठे कुवर किसोरी। भर जोवन त्रिभुवन मनि जोरी।
जुगल परसपर पान षवावत। पति किचुकी अगरसत लावत।।

(हस्तलिखित पृ० ५९ ६०

होता। यदि रसना के नयन अथवा नयनो के रसना होती तो उस युगल-रूप छवि को 'अक्ष भरि' देखते।[1]

लक्षदास जी ने 'श्रीरूना' राधा रुक्मिणी तथा ब्रह्मरूप श्री कृष्ण की विविध लीलाओ के वर्णन में तथा उनके रूप सौन्दर्य चित्रण मे सुन्दर उपमा, उत्प्रेक्षा एव रूपक की योजनाए प्रस्तुत की है। विस्तार भय से हमने उनकी रचनाओ मे कुछ ही उदाहरण दिये है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन मे भी कवि को कल्पना सजग होकर प्रतिभासित होती हुई दिखाई देती है। वस्तुत. इन प्राकृतिक दृश्यो का चित्रण कवि ने स्वतत्र रूप से नही किया प्रत्युत् कृष्ण की लीलाओं को सजीव बनाने, उद्दीपन विभाव की स्पष्टता का द्योतन करने तथा भावनात्मक वातावरण उत्पन्न करने के लिये किया है। कवि ने राधा-कृष्ण के शरीर के विभिन्न अंगों की उपमा प्रकृति के विविध उपमानो—वारिज, विधु, सिंधु, सर, घन, दामिनि, लता, मेघ आदि—से की है और सुन्दर रूपक, उपमा और उत्प्रेक्षाएँ प्रस्तुत की है। कवि की रचनाओ से उदाहरण देकर ऊपर की पक्तियो मे इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

कृष्ण वन मे गाये चराने जाते है। कवि वन की शोभा का वर्णन करता है। लता और तरुओं के घने समूह को फलते-फूलते देखकर 'रस भूले मधुप' मस्त होकर गाते हैं। 'पुछारी' को नाचता हुआ देखकर कोकिल 'सुर के अनुसार' बोलती है। वन्य जतु वन मे विशेष प्रकार से विहार करते हुए दिखाई देते है। (स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा)। प्रकृति के ये विविध उपादान कृष्ण की क्रीड़ाओ की भावानुकूलता का परिचय देने मे सहायक होते है।

कवि ने गोवर्द्धन लीला प्रसग मे वर्षा का वर्णन किया है। मेघो के गर्जन, उनचास पवन के चलने, दामिनि के दमकने और वारिधि के शब्द करने की प्रस्तुत योजना के आधार पर उसने तत्कालीन दशा का सजीव चित्र उपस्थित किया है।[3] (उदाहरण, उपमा, उत्प्रेक्षा)।

---

[1] ... ... लछ आँख भरी भरी जुग जोऊ।
रसना नैनहि नैनन्हि रसना। कहा कहौ है विधि मम बस ना।
रोम रोम रसना दृग देत। तब यह छवि बरनत अति हेत॥

—वही, पृ० ९९

[2] देषि लता तरु घन फल फूले। गावत मत्त मधुप रस भूले।
बोलत कोकिल सुर अनुसारी। नाचत नाचत देषि पुछारी॥
जेइ जेइ जत सघो वन देषे। तेइ तेइ करत विहार विसेषे।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० २४

[3] महामेघ मेघन को राजा। लिये प्रवल सब सग समाजा।
गरजे महा प्रबल बलभरे। प्रलयकाल लपि दृग जन डरे।
चले पवन उंचासहु धायक। अदिति तनय सुरराज सहायक।

+ + +

दमके दशो दिसा से दामिनि। सो लषि डेरी सकल व्रजकामिनि।
लागे करन गगन घन सोर। जल औ पवन अग्नि से जोर।
वारिधि शब्द बहुत विधि करै। सुनत उछाह हिये के हरै।
डोलत पवन झड नहि वारन मना चहत गिरराज उघारन

हस्तलिखित पृ० ३४

शरद की रात्रि में वेणवादन को सुनकर एकत्र हुई गोपियों के लिये कवि ने साग रूपक देकर प्राकृतिक उपमानों का दृश्य चित्र-सा प्रस्तुत किया है। प्राची दिशा में पूर्ण इदु उदित हुआ जिससे 'कानन राची' की किरणें मुदित होकर फैलने लगीं। व्योम में घन और उडगन अत्यत शोभित हैं। वे छाह में स्वच्छ यमुना जल प्राप्त करती हैं। उडपति (कृष्ण) के साथ उडगन (गोपियाँ) प्रकाशमान हैं और वृन्दावन निश्चित सुशोभित हो रहा है। शशि की किरणे चारो दिशाओं में व्याप्त हो गई हैं।[1] (स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा)। 'त्रिविध समीर मानो सुखद स्वभाव की है। उसमे भी मानो सुगध के सुमन लसते हैं। (उत्प्रेक्षा)

वर्षागमन पर सर्वत्र हर्ष का वातावरण हो जाता है और ग्रीष्म की विभीषिका समाप्त हो जाती है। लताए फूल उठती हैं और शोभायुक्त हो जाती हैं। 'सर' सूखने पर घन वृष्टि होती है और नव कमल और द्रुम प्रफुल्लित होते हैं।[2] (उत्प्रेक्षा)

प्रकृति के अनुकूल दृश्यो की कल्पना करके भी कवि ने चातक, मोर, मीन आदि के प्रेम की अनन्यता के 'उदाहरण' देकर वस्तु वर्णन की योजनाएं प्रस्तुत की हैं। गोपियां यमुना तट और शरद् रात्रि की 'स्मृति' की आवृत्ति भी नहीं करना चाहती हैं क्योंकि इससे उन्हे कष्ट होता है। कदाचित् इसी कारण पूर्व की घटनाओं को स्मरण न कराने के लिये ही वे उद्धव से कहती हैं और विरह के भावो की तीव्रता व्यजित करती हैं।[3]

रुक्मिणी चरित्र लीला' प्रसग में कवि ने रुक्मिणी की दशा का वर्णन करने के लिये ग्रीष्म में नदी के सूखने, नीर से निकाली हुई मीन सी मुख छवि के होने और प्रबल वायु के झकझोरने से सुकुमारी लता के विकसित रूप को नष्ट होने की उपमा और उत्प्रेक्षाएं दी हैं।[4]

कवि ने 'बारहमासा' में विरह विदग्धा नायिका (गोपी) के हृदय की पीड़ा को विभिन्न मासो में उपमा और उत्प्रेक्षाओं के आधार पर चित्रित किया है।[5]

वसत वर्णन, हिंडोलना तथा जल विहार वर्णन में कवि ने वर्ण्य और अवर्ण्य दोनों प्रकार के चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'विरहिन से लड़ने को ही दबाने के लिये 'मैन' की सेना सजी आती है। केकी, कीर, कपोत, कोकिला और सारस सब मिल कर काम भूपति की 'कटक कलोल' की

---

[1] उदित इदु पूरन दिसि प्राची। मुदित कीरनी कल कानन राची।
घन उडगन अति व्योम सोहावो। छाह सुछ जमुना जल पावो।
उडपति संग प्रकासित उडगन। सुछ सुछ सोभित वृन्दावन।
फैलि चलि ससि किरनि चहू दिसि। आदि॥

—वही, पृ० ३६।

[2] गत ग्रीषम वर्षा जनु आई। फूलि उठी सब लता सोहाई।
सूखत सर जनु बर घन बरषे। बहुरि कमल द्रुम प्रफुलित हरषे॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४०।

[3] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५२।

[4] अस जब सुनी कृस्न मुख बानी। ज्यो ग्रिषम छवि नदी झुरानी।
मुख छवि प्रीति भई है जैसी। मीन नीर सो काढत जैसी।
फूली फली लता सुकुमारी। झकझोरे ज्यो प्रबल बयारी॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ६०।

[5] पृ० ६१

व्यंजना करती हैं। (साग रूपक)——मानिनी के मान को कम करने के लिये मानो कामदेव सशरीर प्रकट होना है। मधुप-अवली पचम स्वर से चंपक-चाप की ध्वनि (अरण्य मे) प्रस्तुत करती है। त्रिविध समीर मे मुरली के राग 'बाण' की भाति चलना चाहते है।[1] (उपमा, उत्प्रेक्षा)।

कवि ने बरवै छदों में 'कृष्ण की लीला' शीर्षक के अन्तर्गत कस के मुख से, नदगाव जाने और राम तथा कृष्ण को यज्ञ-निमत्रण के धोखे से बुलाने के लिये, अक्रूर को आज्ञा देने की बात कही है।[2] इसमे 'कनवापह्नुति' का उदाहरण तो प्रस्तुत किया ही गया है साथ ही छल बल से कार्य सिद्ध करने की (कस की) मनोवृत्ति का भी परिचय दिया गया है।

कवि ने रूप सौन्दर्य वर्णन के विस्तार मे अनुप्रास का मुन्दर प्रयोग किया है। उसने भगवान् के कनक के कुण्डल और मुख के 'विहसन' पर मन के मुग्ध होने[3] और 'दशन' की द्युति (दमक) से 'दामिनि' की तुलना करने पर व्रज-जन के मन मे 'करषि' पैदा करने का सकेत किया है।[4] 'रुक्मिणी चरित्र लीला' प्रसग में गर्भिणी रुक्मिणी की दशा का वर्णन करते हुए उदरस्थ गर्भ के शिशु के 'कला शशि' की भाँति बढ़ने तथा पर्यक के 'छिन-छिन' क्षीण होने का वर्णन किया है।[5] (अनुप्रास, यमक)।

कवि की रचनाओ के उपर्युक्त उद्धरणो से उसकी कल्पना-शक्ति की उत्कृष्टता, सूक्ष्म निरीक्षण, सौन्दर्य प्रियता, वचन-विदग्धता आदि बातों का पता चलता है। उसने अपनी रचनाओ मे उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक की नवीन उद्भावनाओ के सहारे जहाँ कल्पना को सजीव और सशक्त बनाने का प्रयत्न किया है वहाँ दूसरी ओर प्रतीप, अतिशयोक्ति, दृष्टात, उदाहरण आदि के द्वारा चित्रोपम दृश्य उपस्थित करने मे सफलता प्राप्त की है। निम्बार्क

---

१ मानहु मैन सैन सजी आवो वृन्दा वीपीन वसंत।
केकी कीर कपोत कोकीला सग्स सारसीनी बोल।
सुनीं व्रवाम काम भुपती के सुनीअत कटक कलोल।।
+ + +
आपु अनग अग धरी मानो घेरत चहत है आन।
चंपक चाप पत्चम मधु पावली कीवो है आन तकी तान।
त्रीवीध समीर राग मुरली के चलन चहत है वान।।
—भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ९२।

२ जावहु वेगी नदगाव ही मीत अकुर।
राम कृस्न दोउ बालक सुनीअत सुर।।
धोखे जग्य नेवते मीसी आनवे चाली।
छल बल वैरी आपने साधवे काली।।
—वही, पृ० ९०।

२ कुडल कनक सनक सुक को धनु। मुख विहसनि मोहत मनु को मनु।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३।

३ दशन दमक द्रुति दामिनि धावै। करषि करषि व्रज जन मन लावै।।
—वही, पृ० १९।

४ कला कन्ना ससि सो सिमु बढै। लिय मुख पियरी नित चढै।।
—वही पृ० ६२

सम्प्रदाय की परम्परा में दीक्षित होने के कारण कवि ने संयोग शृंगार का विशेष रूप से वर्णन किया है और विरह तथा वात्सल्य का वर्णन परम्परा का पालन मात्र-सा है।

रस—लक्षदास जी की रचनाओं में शृंगार, हास्य, अद्भुत, करुण और शान्त रस के उदाहरण मिलते हैं। शृंगार रस में निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परानुसार प्राय संयोग शृंगार का ही वर्णन है किन्तु 'भ्रमरगीत' की पद्धति के अनुसार 'विप्रलम्भ' की भी कुछ रचनाएं मिलती हैं। 'रुक्मिणी चरित्र' में कृष्ण और रुक्मिणी की पारस्परिक विनोद वार्ता दी गई है। जब कृष्ण माता यशोदा को अपने मुख में 'माटी' न होने के प्रमाण स्वरूप अपना 'विराट् रूप' दिखाते हैं तब विस्मय विमुग्धा यशोदा उस 'अद्भुत' प्रसंग को देखकर विस्मित हो जाती है। विनय के गेय पदों, दोहों तथा स्तोत्रों में शांत रस के सम्यक् दर्शन होते हैं। कृष्ण के मथुरा गमन की बात सुनकर व्रजवासी करुणा विगलित होकर दुखी होने लगते हैं। इस प्रसंग में 'करुण रस' की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। इन रसों के वर्णन में कवि ने कोई विशेष प्रयोजन अपने सामने नहीं रखा है बल्कि कृष्ण कथा के विकास या आत्म कथन के पदों में अंगीभूत रस की दृष्टि से स्वाभाविक रूप से ही इनका प्रयोग हुआ है। नीचे की पंक्तियों में रस के आधार पर कवि की रचना के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं—

शृंगाररस (संयोग)

(१) फूलि गइ पावत पति अैसे। जागत अंग प्रान लहै जैसे॥
ससि जनु छुहै राहु के मुष ते। भरे पयुष वहुरि हरि सुषते॥
सुथल कमल वृंद जनु फूले। निरषि स्याम मधुकर रस भूले॥
पुहपित लता विविधी वनु दरसै। चलि चलि पति चंचलु अलि परसै॥
मिलि सुष सिंधु ताह संग झेलै। सज्जल घटा चपला सो षेलै॥
सबै स्याम मुष देषहि अैसे। अनु प्रतीबिंबु येक-सर जैसे॥
मंडल मध्य स्याम स्यामा घन। ससि पारसद रसीवत जस उडगन॥
स्याम सिंधु गोपी गन लहरी। सोभा सलील उमगी वन छहरी॥

सुरभी हरषे वरषे सुमन सुनि मृदंग संगीत।
लछ मनहु घन दामिनी वसन नील अरु पीत॥
व्रज बनिता बनि मंडली संपति [illegible] रास।
ससि सरोज घन दामिनी सोहो करत विलास॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४०।

(२) कोक कला कल कुवरि प्रवीना। पिय लियो वेनु प्रीय लीन्हो वीना।
नाचत ताल काल गति लीन्हे। कवहुक दोउ भुज भुज पर दीन्हे॥

+ + +

एहि विधि व्रज विहार वर वीहरत राधा स्याम।
लक्षदास घन दामिनी वारीआ सौ रतिकाम॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४३।

द्वार द्वार सब देषहि ठाढी। पाहन कढी पुतरी सी काढी।
हरि हरि कहै हहरे थरभरैं। व्याकुल विरह भूमि धसि परै।।

—वही,

देषि दशा विहाल नन डोलैं। जल नयन कछू नहीं बोलैं।
सोई कुंज धाइ सब घेरैं। हरि पाये आवहु हेरै।।
येक पुकारे कहा छपे हौ। छाक आइ गोपालन लैंहौ।
एक उहा कदम मिलि घेरैं। जेहि चढ़ि गैया मोहन टेरैं।।

—वही,

तुम सुन्दरि मनि राजकुमारी। नष सिष विधना रची सवारी।
नव जोवनी कनक तन वदनी। सुनु रुकुमिनि नागरि मन हरनी।

\+ \+ \+

बन्यो न रुकुमनि करत विचारा। तुम न वरे वर राजकुमारा।
हम नहि कुवर राज अधीकारी। उग्रसेन के अग्याकारी।

\+ \+ \+

कुवरि विचारु अजहु मन धरिऐ। कोउ महाराज वरु वरियै।
अनजानत कियो हम पर भावा। अजहु जनि रावहु पछितावा।
ना हम नृप ना कुवरि कुलीना। मित्र हमारि सुनहु सब दीना।

\+ \+ \+

राजकुवरि ते तबै न जानी। अब हौ हमहि देषि पछितानी।
अजहू कुवरि समुझि तेहि वरौ। रानी होहु भोग सुष करौ।।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ

देषे सात समुद्र गिरवर वन। तीन लोक देषी डरपी मन।
मुष भीतर आपुन औ लाला। निरषत रहो न महरि हवाला।
कहो नाथ देषन्ति हौ सपनो। माया किधौ मोह है अपनो।
विधि यह लीला कौनि अपारा। रही न जसुमति देह समारा।।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ

बीन हरी भगती अगती नही टरी है।
पतीही बीसारी नारी सोभा नही कोटी सुपथ जो करी है।
को अैसे मुष नैन नासीका तन कर चरन बनैहै।
सो प्रभु बीसारे जमद्वारे जड कृतघीन दुष फल पैहै।
बीनहीं श्रम भ्रम दुरी होत है दीनबंधु गुन गैहै।
लछीदास श्री मनमोहन के दासन्ह के मन भैहे।।

हस्तलिखित

करुण रस

चलहु भोर उठि मधुबन मे चली जाउ ।
सुनत बात अकुलाइ उठी सब गाउ ॥
जैसे जलचर व्याकुल सुखत नीर ।
हे अधीर धरनी रही धरही नहीं धीर ॥
कर मीजही पछीताही धुनही हीश हाथ ।
प्रात कौन गती करीहहु त्रीभुअन नाथ ॥

—वही, पृ० ६० ।

छंद—संस्कृत काव्यो मे वर्णिक छंदो का प्रयोग मिलता है किन्तु प्राकृत-काव्यो मे मात्रा या ताल छंदो के प्रयोग का प्रारम्भ अपभ्रंश काल मे हुआ । तुकान्त छंद परम्परा के मात्रिक छंद गेय होते थे इसलिये इनके प्रचलन से काव्य मे संगीतात्मकता का समावेश हो गया । विद्वानो का विचार है कि प्राकृत के अधिकांश मात्रिक छंदो का मूलस्रोत 'गाहा' छंद है । अपभ्रंश के 'कडवक' संधियो के अन्तर्गत होते थे जिसका विकसित रूप हिन्दी मे 'चौपाई' के रूप मे प्रचलित हुआ । चौपाई की प्रकार से मिलते-जुलते छंद कालिदास के विक्रमोर्वशीय मे भी मिलते है ।[1] अर्द्धालियो के बाद पाठ्य विषय को नीरसता बचाने या परिवर्तन के उद्देश्य से 'घत्ता' का प्रयोग किया जाता था । बौद्ध सिद्ध कवियो ने दोहा, सोरठा, पादाकुलक आदि के प्रयोग से छंद-परम्परा मे एक नये युग का सूत्रपात हुआ जो आगे चलकर प्रबन्ध काव्यो मे दोहे का 'घत्ता' छंद के रूप मे प्रचलित किया गया । अपभ्रंश मे दोहा मुक्तक काव्यो मे प्रयुक्त हुआ किन्तु हिन्दी मे दोहा मुक्तक तथा प्रबन्ध मे 'घत्ता' के प्रयोग के रूप मे व्यवहृत किया जाने लगा ।

ब्रजभाषा कृष्ण काव्य की वर्णनात्मक और कथात्मक रचनाओं मे दोहा, रोला, रोला-दोहा तथा दोहा-चौपाई आदि को मिलाकर कुछ नये छंदो की रचना का नया प्रयोग प्रारम्भ हुआ । ब्रजभाषा कृष्ण काव्य के इन नये प्रयोगो की परम्परा लक्षदास जी के काव्यो मे नहीं मिलती । इससे अनुमान होता है कि लक्षदास जी के समय तक इन नवीन छंद-प्रणालियो का आविष्कार नहीं हो पाया था अन्यथा वे भी इन्हे अपने काव्यो मे प्रयुक्त करते । लक्षदास जी के समय तक दोहे का प्रयोग पूर्वापर प्रसंग से निरपेक्ष मुक्तक रचना के लिये विशेष रूप से प्रयोग मे लाया जाने लगा था । निम्बार्क सम्प्रदाय के श्री भट्टदेव जी द्वारा रचित 'युगल शतक' तथा श्री हितहरिवंश की स्फुट वाणी मे भी दोहो का प्रयोग मिलता है । सूरदास जी रचित २५ दोहे 'सूर पचीसी' नाम से संकलित मिलते है । इनके अतिरिक्त सोरठा, कवित्त, चौपाई, चौबोला आदि छंदो का प्रयोग भावो की विविधता के प्रदर्शन के उद्देश्य से किया गया जिसका प्रभाव लक्षदास जी की रचनाओं मे भी मिलता है ।

'बरवै' अवधी का 'लाडला छंद' कहा जाता है । अद्यावधि यह मान्यता रही है कि बरवै छंद की रचना सर्वप्रथम रहीम कवि ने की किन्तु यह धारणा भ्रमपूर्ण है क्योंकि बरवै के रहीम कृत कहे जाने का आधार बाबा वेणीमाधवदास का 'मूलगोसाई चरित' ग्रंथ कहा जाता

[1] ४ ३२

हा गया है कि कवि रहीम बरवै रचे पठये मुनिवर पास' और साथ ही यह कथा भी कि रहीम के किसी सिपाही की नवविवाहिता स्त्री ने अपने पति के द्वारा उसके वापस जाते समय—

'प्रेम प्रीति का बिरवा चलेउ लगाय।
सींचन की सुधि लीजियो मुरझि न जाय।।'

खकर रहीम के पास भेजा था जिससे प्रेरणा ग्रहण करके रहीम ने बरवै छद मे द' लिखा और तुलसीदास जी को भी बरवै छद लिखने की प्रेरणा दी।

र्युक्त विवरण से यह तो स्पष्ट है कि बरवै छद के प्रथम प्रणेता होने का जो श्रेय दया जाता है वह सर्वथा उचित नही है क्योकि यह छद तो जनता में बहुत पहले से था। कवि लक्षदास जी की रचनाओ मे भी बरवै छदो मे 'कृष्ण की लीला' तथा रवै' मिलते है। लक्षदास जी का आविर्भाव तुलसी से पर्याप्त पहले का है[2] और जी ने भी लक्षदास जी की रचनाओ तथा व्यक्तित्व से प्रेरणा ग्रहण की थी। इतिहास है कि रहीम आयु मे तुलसीदास से छोटे थे। इस प्रकार बरवै छद का प्रयोग तुलसी की काव्य रचना के प्रारम्भ होने से भी पर्याप्त पहले प्रचलित था, इस बात का पता

क्षदास जी की रचनाओ मे बरवै छद में 'कृष्ण की लीला' शीर्षक के अन्तर्गत ११२ ते है जो कवि रचित 'कृष्णरससागर' ग्रथ मे सकलित मिलते है। 'कृष्ण की लीला' चना को देखकर यह अनुमान होता है कि संभवत कवि ने इस नाम की कोई स्वतन्त्र की हो किन्तु आज उसके पूरे छद उपलब्ध नही है। इसी प्रबन्ध के अध्याय ३ मे यह ा जा चुका है कि कृष्णरससागर और भागवतपुराणसार कवि की रचनाओं के ए हैं। 'भागवतपुराणसार' वाली प्रति मे जो बरवै छद मिलते है उनके प्रारम्भ मे उधवा' और अत मे 'इति बरवै कुस्न के समाप्त' लिखा गया है जिससे यह स्पष्ट है की लीला' के सम्बन्ध मे लिखे गये 'बरवै' छदो का यह एक भाग है जो कि आज । अत अनुमान होता है कि लोक मे प्रचलित 'बरवै' छंद को साहित्यिक रचना इसे पहले लक्षदास जी ने ही दिया क्योकि उनके पूर्व की रचनाओ मे भी इस छद का ी मिलता।

ष्ण काव्य मे 'गीति पद' मुख्य रूप से मिलते है जिनमे कवियों की स्वानुभूतिमूलक कि के साथ-साथ कृष्ण काव्य के अनेक प्रसग भी कथात्मक रूप मे दिये गये है। मोहन शर्मा के विचार से इन 'गीति पदो' के प्रथम रचयिता मराठी भक्त नामदेव इस अपभ्रंश काल मे लिखे गेय पदो का प्रभाव जयदेव के गीत गोविंद, नाथ योगियो कवियों—कबीर आदि की रचनाओं के द्वारा घूमता फिरता हिन्दी को दाय के रूप से । परवर्तीकाल में यही गेय पद संगीतकारो के प्रभाव से राग-रागिनियो में वर्गीकृत

---

१ रत्नावली—सम्पा० मयाशकर याज्ञिक, पृ० २१-२२।
२ भारती—दिसम्बर १९६० 'अवधी के एक विस्मृत कवि भक्त लक्षदास' शीर्षक लेख।
३ हिन्दी को मराठी संतो की देन—डा० विनयमोहन शर्मा पृ० १३०

किये जाने लगे और कालांतर मे इन पदो की रचना भी राग-रागिनियों के आधार पर होने लगी।

लक्षदास जी की रचनाओ मे विविध प्रकार के छदों—दोहा, चौपाई, चोपई, कवित्त, सोरठा, रोला, छप्पय, गीतिका आदि—का प्रयोग किया गया है। इन छदो के प्रयोग मे किसी परम्परा या नियम विशेष का अनुगमन किया गया प्रतीत नही होता। नवम स्कंध से पूर्व की कथाओं मे तो प्राय: कथारम्भ दोहे से करके विषय वस्तु का वर्णन चौपाई तथा चोपई छद मे किया गया है। सारी रचनाओ मे विविध प्रकार के छदो को दोहा, चौपाई या छद ही कहा गया है जो कि नितान्त भ्रामक है। यह प्रतिलिपिकारो की असावधानी एवं अज्ञता के कारण हो गया प्रतीत होता है। शब्दो तथा शब्द रूपो मे इकार, ईकार, उकार, ऊकार के आवश्यकतानुसार भेद को भी स्पष्ट नही किया गया है प्रत्युत् जिसको जैसे चाहा, वैसे ही लिखा गया है। पाठ की शुद्धता तथा भाषा के परिष्कृत रूप के प्रयोग मे असावधानी भी प्रतिलिपिकारो के कारण हुई है जिससे शुद्ध पाठ की वैधता भी कभी-कभी सन्देहास्पद हो जाती है। कवि की रचनाओ मे चोपई, चौपाई, और चाबोला प्राय: मिलजुल कर व्यवहृत हुए है। इन छदो के चार चरणो के नियम की ओर भी कवि ने कोई ध्यान नही रखा है। भागवत के कथात्मक प्रसगो, कथापूर्त्यर्थ वर्णनात्मक अशो तथा स्तोत्रो या नामावली मे ये छद अधिकतर व्यवहृत हुए है। 'गौरी राग' मे 'दम्पति छवि' के विषय मे लिखे गये छद मे पक्तियो के मध्य मे 'हिडोलना' शब्द का प्रयोग प्रत्येक पंक्ति मे किया गया है। यह 'वीर' छंद है जिसके प्रत्येक चरण मे १६-१५ की यति से ३१ मात्राए होती है। अन्त मे लघु होता है।

बृन्दावनहिँ सवारिअै हिडोलना सुनहु रसिक नदलाल।
जहा रैन दिन झुलियै हिडोलना फूले है लाल तमाल॥
कीर कपोती कोकिली हिडोलना कुंजत सारस हस।

+ + +

बरनत दंपति की छवि हिडोलना सरद सिथिल विचार।
श्री मनमोहन पदरज हिडोलना लछदास बलिहार॥[1]

तोमर—तोमर छद के प्रत्येक चरण मे १२ मात्राए होती हैं।
'सुनि स्याम भगत ह्वै गए। सुधि करत बिकल अति भए॥'[2]

कलिका—इस छद के प्रत्येक चरण में १४ मात्राए होती है। अत मे एक गुरु होता है।
'गोपीहु हरि है तुम माही। तन ते न्यारी कछ नाही।
रहै बास कुल मह अैसे। जल जल तरंग मह जैसे॥'[3]

चौपई-चौपाई—इस छद को 'जयकरी' भी कहते है। इसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएं होती है और चौपाई के प्रत्येक चरण मे १६ मात्राए होती हैं।

---

[1] कृष्णरसमागर (हस्तलिखित), पृ० ११३।
वही वही पृ० ५४।
[3] हस्तलिखित पृ० ५१

लोचन मदि ध्यान में गय । ठाढे जाइ द्वारिका भये (चौपई)
प्रतीहार देषत सिरु नायो । मानहु सुषनिधि को सुष आयो ।।
कहेउ आसिषा कहियो जाई। विप्र सुदामा नाम सुनाई ।।[1] (चौपाई)

पद्धरी—इसके प्रत्येक चरण मे १६ मात्राए होती है। अन्त मे जगण होता है। इस छद को पद्धरिका, प्रज्वलय और प्रज्ज्वलिया के नाम से भी पुकारते हैं।

'गोपी जन मन माषन चोरः। सानंद भज नंद किसोरः।
पाक रदन मर्दीतमभीमानः। धृत गोवर्धन कृत व्रजत्रानः ।।[2]

चन्द्र—१० और ७ मात्राओ के विराम से १७ मात्राओ के चंद्र छद का उपयोग कवि ने बहुत कम किया है।

'कटि केहरि वर वसन विविधी रंग।
घन दामिनी द्रुति हरन चपल अंग ।।'[3]

प्लवंगम्—इस छद के प्रत्येक चरण मे ११ और १० मात्राओ के विराम से २१ मात्राए होती है। अंत मे एक गुरु होता है।

'श्री गुर चरन पुनीत सुचित विचारिये।
लीला केलि कलोल किसोर तुम्हारिये ।।'[4]

राधिका—इस छद का उपयोग कवि ने बहुत कम किया है केवल भावोद्रेक प्रदर्शित करने के लिये ही इसको प्रयुक्त किया गया है। इस छद के प्रत्येक चरण मे २२ मात्राए होती है जिसमे १२ तथा १० मात्राओ पर विराम होता है।

'लक्षदास जन्मत ही हरि नित करत विहार।
आनंद सिंधु बढे नित घोष कृस्न अवतार ।।'[5]

लावनी—लावनी छद के प्रत्येक चरण मे २२ मात्राये होती है। १३ और ९ मात्राओ पर विराम होता है। अत मे २ गुरु होते है।

'कृस्न कृस्न राम राम वासदेव माधो।
राधापति सीतापति गिरजापति साधो।
नंदनंदन रघुनंदन संकरहर केसो ।
रघुनायक व्रजनायक गननायक गनेसो ।।'[6]

रोला—रोला का प्रयोग पृथक् रूप से नही मिलता। यह अन्य छदो के साथ मिलाकर ही प्रयुक्त किया गया है। इसके प्रत्येक चरण मे ११ और १३ मात्राओं के विराम से २४ मात्राए होती है। अंत मे गुरु होता है।

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ६५।
[2] वही वही पृ० ९६।
[3] वही वही पृ० ४१।
[4] वही वही पृ० ११४।
[5] वही वही पृ० २१
[6] वही वही पृ० ९७

बाघ लग्यो मुरली ठफ फागुन आयो है।
स्याम सलोने सखा संग रंग बढायो है।।
रंग बिरंग भुअंगनि बागे बनाये है।
मानहु मैन के सैननि साहुल आये है।।'[1]

झूलना—इस छंद के प्रत्येक चरण में २६ मात्राएं होती है। अंत में गुरु और लघु होता है।

'कंस मार उग्रसेन नृप करि सुख दै जननी तात।
गुर ग्रह ते पढी आइके उठो दोनों भ्रात।।'[2]

गीतिका—गीतिका के प्रत्येक चरण में १४ और १२ के विराम से २६ मात्राएं होती हैं। अंत में एक लघु-गुरु और आरम्भ में एक लघु होता है।

'भई ठाढी जोरि मंडल रास रचि रव गावही।
मध्य स्यामा स्याम जोरी मान सब सिर नावही।।
प्रेम लग्न मन देह की सुधि नेह मोहन आवहु।
लछ ऊधौ देखि भूले बहुरि ब्रज रहिहो न हू।।'[3]

विष्णुपद—विष्णुपद के प्रत्येक चरण में १६ और १० मात्राओं के विराम से २६ मात्राएं होती हैं। अंत में गुरु होता है।

'ते लता हम होहि नाही नेह जिनके दूसरो।
स्याम घन हम चातकी अलि रटत दिन भुवन पसरो।।
जौंग तेरो कटक फलो ज्यो करीही कोटन दोहनी।
परिक मे कब देखिहै हरि हाथ न हूं दोहनी।।'[4]

लक्षदास जी ने इस छंद को राग सारंग[5] तथा जाकरी[6] बिलावल में पदों के रूप में भी प्रस्तुत किया है।

विधाता—इस छंद के प्रत्येक चरण में १४-१४ मात्राओं के विराम से २८ मात्राएं होती हैं। अंत में २ गुरु होते हैं।

'ऊधो वै दिन कौन अहै जब माधो चले बिदेसा।
. अवध असाढ़ न आये ऊधो मरिजत बिरह अदेसा।।'[7]

लक्षदास जी ने इस छंद को हीडोलराग गौरी के प्रारम्भ तथा बीच बीच में प्रयुक्त किया है।

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११४।
[2] वही वही पृ० ५०।
[3] वही वही पृ० ५३।
[4] वही वही पृ० ५२।
[5] भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ६२।
[6] कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० १०२।
[7] हस्तलिखित पृ० ०१२

हरिगीतिका २८ मात्राओं के हरिगीतिका छंद मे १६ और १२ मात्राओं पर विराम होता है। अंत मे लघु और गुरु होता है।

'श्री वृन्दावन केलि कुंज की सोभा बरनि सुनाउ री।
जो सारदा बसै मति मोरी रोमनी रस पाउ री।।
पावन सलिल सुहावन सीतल श्री जमुना के तीर री।
हरे फले फूले छतनारे द्रुम तहा त्रिविध समीर री।।'[1]

कवि ने इस छंद को 'राग आसावरी' मे गाया है और इसके द्वारा 'दम्पति-छवि' का र्णन किया है।

चोबोला—इस छंद मे १६ और १४ के विराम से ३० मात्राएं होती है। अंत मे गुरु होता है।

'यह निठुर मोहि नचावती निसु दिन मोह टोना सिर धरै।
वहु भाति लोभ देपाइ बाधत कर्म दृढ़ बंधन करे।।'[2]

कवि ने इस छंद के पहले चौपाई लिखी है जिसकी अंतिम पंक्ति इस छंद की प्रारम्भिक पंक्ति होती है। कवि ने इसे 'जाकरी विलावल' राग मे प्रस्तुत किया है।

छप्पय—लक्षदास जी ने छप्पय छंद मे 'बारहमासा' लिखा है। इसमें विरहिणी नायिका के हृदय की दशा प्रकृति के उद्दीपन विभाव की पृष्ठभूमि मे की गई है। छप्पय छंद एक रोला और एक उल्लाला से मिलकर बनता है। इसमें ६ पद होते है। कुल १४८ मात्राए होती है।

'यह सावन सुनी घनघोर मोर वोलन वन लागे।
रातीक मौन न होत वोल चातिक उर दागे।।
सीतल मंद समीर नीरु फुरीअन्ह झकझोरे।
दमकी दमकी दामीनी वीरह वारीध मह वोरे।
उठी उठी होत उदास सेज सुनी वीनु भावन।।
तलफी तरुनी तन तजीहीं लखी मिली पेषीय सावन।।'[3]

इसी प्रकार अन्य महीनो की दशा का भी वर्णन है।

बरवै—बरवै छंद के विषम अर्थात् पहले और तीसरे पदों मे १२ तथा सम अर्थात् दूसरे और चौथे पदों मे ७ मात्राए होती हैं। अंत मे लघु होना है।

'रटु रसना हरी नाम सुजस सुनी कान।
नत हहो जीवन प्रीतक हमारे जान।।'[4]

अति बरवै—इस छंद के विषम अर्थात् पहले और तीसरे पदो मे १२ और सम अर्थात् दूसरे और चौथे पदो मे ९ मात्राएं होती हैं।

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ११४।
[2] वही वही पृ० १०२।
[3] हस्तलिखित पृ० ६१
[4] वही वही पृ० ८९

'बोसराव समशाव औस्न पीआर
लछी ते प्रीतम वैरी हुआ हमारे ।।'[1]

बरवै तथा अति बरवै दोनो छदो मे कवि ने कृष्ण की लीला का ही वर्णन किया है।

सोरठा—सोरठा के सम अर्थात् दूसरे और चौथे चरण मे १३ और विषम अर्थात् पहले और तीसरे चरण मे ११ मात्रायें होती है। अंत मे कभी गुरु कभी लघु होता है। यह दोहा छद का उल्टा होता है।

'हे विद्याधर देह ब्रह्म साप ते गज भयो।
स्वै तन धरि निज गेह कृस्न चरन सुमिरत गयो।।'[2]

मात्रिक छंदो मे 'दोहा', कथाओ के बीच मे तो कवि ने प्रयुक्त किया ही है साथ ही 'दोहावली' मे भी कवि रचित दोहो का सकलन किया गया है। कवि ने वर्णिक छदो का प्रयोग बहुत कम किया है। उसने मनहरण कवित्त मे 'सगुणोपासना' का प्रतिपादन भ्रमरगीत प्रसग मे और 'वन विहार' वर्णन मे दम्पति की वसन केलि और विहार का सुन्दर वर्णन किया है।

'मनहरण' छद को 'कवित्त' भी कहते है। इस छद मे १६ और १५ वर्ण के विश्राम से ३१ वर्ण होते है। अंत मे गुरु होता है। 'सगुणोपासना' के पदो मे से एक कवित्त नमूने के तौर पर दिया जाता है—

'सुन्दर सुवास सुकुमार हार फूलनि के,
केसर की रासि कोऊ ग्वालिनि लगाइ हैं।
कंचन कलस लस जगमग जोति होति,
सुधागरी पूरी को धूरी धरि नाइहै।
'लछी' मनमोहन की मुसकान सानि रहै,
आनी रहै सगुन अगुन कैसे आइहैं।
भोगिनी भवन बसी जोगिनी करन हमै
नागरी विसम व्रज भसम पठाइ है।।'[3]

कवि ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परानुसार 'वन विहार' का वर्णन किया है। उदाहरण के लिये एक कवित्त दिया जाता है—

'कटि तट पीत छोर बनमाल उर ओर
वग पक्ति चपला निकसि मानो घन तें।
कुंडल झलझलात चल दृग जलजात,
हसत कहत बात वारिज बदन तें।
कर सों उठाइ डार बाम उर बार बार
परसत पातनि उठावत नयन तें।

---

[1] भागवतपुराणसार (हस्तलिखित) पृ० ८६।
[2] [illegible] (हस्तलिखित) पृ० ५।
[3] पचदूत वर्ष ६ अक २ ३० सितम्बर १९५५ ई० मे प्रकाशित।

लछ्दास सुनि सुनि गावनि मधुर धुनि
नाचत मुकुट छबि आवत हैं बन ते।।[1]

कवि की रचनाओ मे अर्द्धालियो के बाद दोहे के प्रयोग मे कोई नियम रखा गया नही जान पडता। चौपई-चौपाई तथा इसी प्रकार के मिलते जुलते छदो के ४ चरण देकर चौबोला, हरिगीतिका, विष्णुपद और लावनी जैसे छदो को उसके बाद मे लिखा गया है किन्तु विशेषता यह है कि चौपाई के अन्तिम चरण की पक्ति की आवृत्ति मे ही नये छद का श्रीगणेश होता है। ये सभी छद रागो पर आधारित है। कवि ने रोला, चौबोला और हरिगीतिका छदो का सर्वाधिक प्रयोग किया है। वर्णिक वृत्तो मे मनहरण कवित्त के प्रयोग का निर्वाह भी सुन्दरता से हुआ है। दोहो के स्वतंत्र प्रयोग के प्रमाण मे तो कवि रचित 'दोहावली' स्वय साक्षी है। इसके उदाहरण पाचवे अध्याय मे विस्तार से दिये गये है। कवि का गीतिकाव्य एव उसकी पद-रचना विविध रागो के परिवेश मे निबद्ध है। कवि ने राग गौरी, राग पचम, जाकरी बिलावल, अन आसावरी, बिलावल, रागु जैतश्री मारु, राग नट, जाकरी राग आसावरी, जाकरी, हीडो राग गौरी, राग मल्लार, राग आसावरी, रागु जैतश्री, राग सारग, राग सोरठा, राग काफी, राग केदारा, राग धनाश्री तथा राग में अपनी रचनाए प्रस्तुत की है। इनमे से राग गौरी, राग काफी, राग बिलावल, राग आसावरी, राग सोरठा, राग सारग तथा राग मलार मे लक्षदास ने अपनी विशेष अभिरुचि प्रदर्शित की है और इन रागो मे गेय पद तथा अन्य रचनाए अधिक लिखी है। कवि ने गीति काव्य में मात्राओ के नियम का सम्यक् प्रकारेण पालन नही मिलता। प्रतिलिपिकार की असावधानी से भी पाठ की शुद्धता मे बाधा पहुँची है। सावधानी से चुने हुए उदाहरणों मे भी 'यति भग' दोष या शब्दो की कमी किसी भी छद मे सरलता से मिल सकती है, कही-कही तो गति भग भी मिल जाता है। इन त्रुटियो का कारण पिगल की अपेक्षा सगीत पर अधिक ध्यान दिया जाना प्रतीत होता है। फिर भी कवि ने सगीत से अधिक महत्व भावो को दिया है। यह सभव है कि लक्षदास की रचनाओ मे जो गतिभग दोष मिलता है वह गाने के समय ठीक कर लिया जाता हो किन्तु निश्चित रूप मे ऐसा सभव न हो सकता हो।

(ख) पूर्ववर्ती एव समसामयिक कवियों और भक्तो की तुलना मे लक्षदास की प्रतिभा

ब्रज के प्रमुख सम्प्रदायों में उपासना का स्वरूप और उसका लक्षदास की रचनाओं पर प्रभाव—इसी प्रबध के अध्याय १ मे हमने कृष्ण कथा के चरित्र-विकास के जिस रूप का अवलोकन किया है वह महाभारत और पुराणो की परम्परा मे पालित एव सम्प्रदायो की प्रवाह-धारा पर अवलम्बित है। महामानव कृष्ण के व्यक्तित्व के विकास एव देवत्वरूप मे उनकी लीलाओं के प्रस्फुटन ने भारतीय वाङ्मय को एक नई जीवन का आलोक दिया जिसकी प्रतिभा एव प्रकाश से अनुप्राणित होकर प्राकृत एवं अपभ्रश साहित्य ने जनजीवन को तो प्रभावित किया ही, साहित्य मे भी कृष्ण के ब्रह्मत्व रूप की कथाए एव गाथाए लिखी जाने लगी। भाष्य-कारो एवं सम्प्रदायाचार्यो ने भक्ति महार्णव श्रीमद्भागवत तथा अन्य प्रमुख पुराणों का आश्रय लेकर अपने सम्प्रदाय के अनुरूप सिद्धान्त स्थिर किये और उन सम्प्रदायों के कवियो ने अपने

[1] नागरी प्रचारिणी सभा काशी याज्ञिक सग्रह वेष्टन स० ४१ पुस्तक स० ७-४ पृ० ३५

इष्ट देव की पूजा-उपासना, उनकी लीलाओ तथा दार्शनिक मान्यताओ को एक विशिष्ट रूप प्रदान किया।

कवि जयदेव ने कृष्ण की विलास लीलाओ का वर्णन संस्कृत की सरस संगीतमयी कोमल-कांत पदावली मे किया जिसका प्रभाव चण्डीदास, विद्यापति आदि परवर्ती कवियों के बीच होता हुआ व्रजभाषा के वरेण्य भक्त कवियो की रचनाओ मे निःसृत हुआ। अपने सम्प्रदाय की पद्धति के अनुसार इन भक्त कवियो ने मुख्यत कृष्ण की लीलाओ का वर्णन किया और दास्य, सखा-सखी एव कान्ता भाव से उपासना का रूप निश्चित करके काव्य रचना की।

रामानन्द सम्प्रदाय के कवियो ने भगवान् की लीलाओ का वर्णन दास्य भाव से किया। गो० तुलसीदास जी की रचनाए इसी परम्परा मे आती है। वल्लभ सम्प्रदाय मे दीक्षित होने के पूर्व सूरदास की रचनाए भी दास्यभाव मे ही लिखी गई किन्तु जबसे वे गोवर्द्धन मे श्रीनाथ जी के मुख्य कीर्त्तनकार नियुक्त किये गये उन्होने सखा भाव से कृष्ण की वात्सल्य लीलाओ की पयस्विनी मे अवगाहन प्रारम्भ किया। अष्टछाप के अन्य कवियो की रचनाए भी सखाभाव मे ही लिखी गई। निम्बार्क सम्प्रदाय के श्रीभट्ट जी, श्री हरिव्यासदेवाचार्य एव श्री परशुराम-देव जी ने कृष्ण की निकुज केलि, नित्य विहार एव अष्टयाम सेवा का विधान सखी भाव से प्रतिपादित करके प्रेम की स्वाभाविक दशा और राधा-कृष्ण के सयोग वर्णन मे मिलन-उत्कण्ठा तथा उपास्यतत्व आदि का विस्तृत विवेचन किया। स्वामी हरिदास जी ने भी राग रागिनियो मे राधा-कृष्ण के युगल रूप तथा रस-विलास आदि के द्वारा निकुज लीला का वर्णन किया। गौडीय सम्प्रदाय के कवियो ने राधा को परम शक्ति का प्रतीक मानकर उपासक को राधा भाव मे कृष्ण का चिंतन करने की प्रेरणा प्रदान की। माधवीदासी, गदाधरभट्ट तथा सूरदास मदन मोहन आदि की रचनाए इसी कोटि मे आती है। मीराबाई की माधुर्य उपासना भी इसी भक्तिपद्धति के अन्तर्गत आती है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री हितहरिवंश ने राधा की सेवा को प्रधानता देकर आनुषगिक रूप से श्रीकृष्ण का स्तवन किया। उन्होने राधावल्लभ के नित्य विहार को लौकिक रूप मे प्रस्तुत किया किन्तु सम्प्रदाय मे इसे आध्यात्मिक रूप मे ही अगीकार किया जाता है। श्री हरिराम व्यास ने वृन्दावन को राधा-कृष्ण की निकुज केलि तथा नित्य विहार का स्थल और परम धाम स्वीकार किया है।

अवधी के कवि लालचदास ने किसी सम्प्रदाय की परम्परा मे तो नही किन्तु स्वतंत्र रूप से भगवान् के नाम-चिंतन, कथा-श्रवण और उनके गुणानुवाद को श्रेयस्कर मानकर मुन-कनन्द को आत्मसमर्पण करना ही श्रेष्ठ समझा। उन्होने ब्रह्म के निर्गुण-निराकार तथा सगुण साकार रूप मे एकीकरण स्थापित करके वर्णनात्मक शैली से 'कृष्ण चरित' का वर्णन किया।

ब्रज के सम्प्रदायो की परम्परा मे लक्षदास जी ने भी विनय के पदो मे दिग्दर्शन तथा कृष्ण की लीलाओ के वर्णन मे यत्र-तत्र दास्य भावना के सकेत किये है। शेष रचनाओ मे निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परानुसार राधा-कृष्ण की निकुज केलि, नित्य विहार तथा अष्टयाम सेवा का वर्णन सखी भाव से किया है।[1]

राधाकृष्ण के लौकिक तथा अतिलौकिक वर्ण्य विषय का विवेचन

समस्त वैष्णव भक्ति-सम्प्रदायो मे राधा-कृष्ण की लीलाओ का वर्णन किया गया है।

[1] इसी प्रबंध के ५ मे इस पर विस्तार से विचार किया है

वल्लभ सम्प्रदायी कवियों ने मुख्यत कृष्ण की बाल-लीलाओं के सभी अगों पर रचनाएं प्रस्तुत की हैं जिनमें से 'सूर तो वात्सल्य का कोना-कोना झाक आए।' भ्रमर-गीत की परम्परा मे सूरदास और नददास की रचनाए मुख्य है। इस प्रकार वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो ने कृष्ण के बाल चरित से लेकर शृगार के सयोग और वियोग दोनो रूपो का अच्छा चित्रण किया है। इन कवियो के वर्ण्य विषय का आधार श्रीमद्भागवत है। हमारे आलोच्य कवि लक्षदास ने भी श्रीमद्भागवत का अनुवाद प्रस्तुत किया है तथा कृष्ण जीवन से सम्बद्ध शृगार के वर्णनो को निम्बार्कीय पद्धत्यनुसार सखी भाव मे लिखा है। विनय के पद वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो की भाति दास्य भाव मे ही लिखे गये है।

कृष्ण की बाल-लीलाओ का वर्णन तो लक्षदास ने लौकिक रूप मे ही किया है किन्तु कृष्ण जन्म के समय देवताओ द्वारा सुमन वृष्टि, यमलार्जुन मोक्ष तथा असुर संहार आदि के कार्यों के द्वारा कृष्ण के अवतार धारण करने तथा 'ब्रह्म' होने की ओर कवि ने यथास्थान सकेत किया है।[१] कवि ने कृष्ण की इन बाल-लीलाओ का वर्णन सूर को भांति गहन रूप मे तो नहीं किया किन्तु उनके चरित मे प्रमुख प्रसगो को लेकर वर्णनात्मक ढग मे भावात्मक शैली मे लिखा है और माधुर्य भाव के अन्तर्गत 'राधा कृष्ण' की रस केलि तथा 'नित्य विहार' का वर्णन बडी तन्मयता से प्रस्तुत किया है।[२] कवि ने भगवान् कृष्ण के बालरूप की सुन्दरता का वर्णन कई स्थानो पर किया है। 'राग गौरी' ने सांग रूपक म एक सखी गोचारण से लौटते हुए कृष्ण की शोभा को देखने का आग्रह करती हुई कहती है---

'चलु सखी सावरौ देषियै आवत सुरभिन साथ री।
मानो घन पर धनुष सोभियत मुकुट विराजत माथ री।
लाल भाल लसत तिलक सो कल कुंकुम की रेष।
त्रिभुवन छवि जय उदित ह्वं मनो उपमा जोति असेष।

---

१ (क) फूल फुहिन वरषहि सुर मेहा। नद हेम वर्षहि भरि नेहा।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १५।
(ख) जिनकी माया जग वध्यो महित देव नर नाग।
ते बाधे नदरानि गहि सहा महरिके भाग ।।
—वही, पृ० २२।
(ग) फटो उदर भयो द्वै फारा। मगल दीव्य देवतन विचारा।
जै जै करि सुर फूलन वरखै। इत ब्रजनारी देपी सुप हरषे।।
—वही, पृ० ४४।

\+ \+ \+
वध्यो कम त्रिभुवन कै मूला। वरषे हरषि देवता फूला।।
—वही, पृ० ४६।

२ पुनि आमिषा दीन ब्रजनारी। करहु केलि तुम नित्य विहारी।
—वही, पृ० ६६।

× × \+
लछिदास वृन्दावन राधा मोहन केलि।
कहत सुनत सुष सागर रसिक पिवत रस गलि
—वही पृ० १०१

चलकल नैन बिसाल है लसत भृकुटी यहि भांति
सरसिरुह रस लोभ ते मनो मधुप सिसुन्ह की पांति।
मनिजुत कुंडल करन में छलकनि लजत मीन।
मजु कंजु मुख पोषनी कारन ये दिन मनिंद अधीन री।
जगमग मुक्ता नासिका मुसकनि दसनन जोति।
अधर बिंबरस लेन को मनो होड़ परस्पर होती री।
बरन बरन मनि गज मुक्ता लेलर सोहत ग्रीवा।
मनो सरोज सुत रस भरि कीन्ही त्रिभुवन सोभा सीवा।
कंचन कट कंकन लसैं चंदन चित्रित बाहु।
मनहु मदन द्रुम डारही छवि फुल देषत दृगन्हि उछाह री।
सुन्दर वोदर नाभी सरसी की धौन्रो दृग माझक मीन।
लाल काछ पटपीत कोकिली धुनि सुनि सुनि रही मौन री।
जुग जंघा मरकट मनि रंभा उलटी धरे धरी कंज।
नूपुर चरनु चरन पद तब नष करत कबिन मति धजरी।
करपद तब मुद्रिका जराऊ नप मुरली पर सोम।
बस बिलसत मनिआरे उरग राग के लोभ री॥
हो त्रिभंग गावत पुनि धावत इत उत गैयन घेरी।
जावत सुधा पिआवत हसि हसि ब्रजबासिन तन हेरि री।
लछदास श्री मनमोहन के रूप रगे जे प्रान।
तिनको सदा चरन रज बंदौ करत जुहरि गुन गान री॥[1]

वि सूरदास ने वन से लौटते हुए कृष्ण का वर्णन इन शब्दों में किया है

वन ते आवत धेनु चराए।
संध्या समय सांवरे मुख पर, गोपद-रज लपटाए।
बरह-मुकुट कें निकट लसति लट, मधुप मनोरुचि पाए।
विलसत सुधा जलज आनन पर, उड़न न जात उड़ाए।
विधि-वाहन-अच्छन की माला, राजत उर पहिराए।
एक बरन बपु नहिं बड़ छोटे, ग्वाल बने इक धाए।
सूरदास बलि लीला प्रभु की, जीवत जन जस गाए।[2]

स जी ने 'जुगल किसोर लीला' प्रसग मे राधा और कृष्ण के प्रथम

हरि देखी वृषभानु दुलारी। कदर कोटि बिधु ते उजीयारी
हसि पूछो मोहन तुम को हो। बरबस मेरे मन को मोहो

---

[1] ...गर (हस्तलिखित), पृ० १०१।
[2] ...सभा संस्करण पृ० ४०१ पद ४१७।१०३५
...ागर हस्तलिखित पृ० ९९

लक्षदास जी ने राधा कृष्ण के प्रथम परिचय को बहुत ही सरल एवं स
किन्तु इसमे सूरदास के द्वारा वर्णित राधा-कृष्ण के प्रथम परिचय की सी वच
पटुता नही है—

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहां रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कबहूं ब्रज-खोरी
काहे कों हम ब्रज-तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी
सुनत रहति स्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातन भुरइ राधिका भोरी

लक्षदास ने प्यारी (राधा) का शृगार प्रिय (कृष्ण) के हाथों कराने की सुन्दर
करते हुए राधा की शोभा का वर्णन किया है।

मंडल बैठि कुवर दोउ राजत। प्यारी तन सिगार पिउ साजत।
करि कल्पना कीन्ही छवि ऐसी। दै दै कुसुम कलित रचि कौरी।
वेनीलसत गौरप्यारी तनु। कुसमित लता मधुप अवलो जनु।
पन्नग चढि सुमेर ससि परसै। की तम धार मेर पर दरसै।
कीधौ काम कल रची निसैनी। चढ़ि चढ़ि ससोहि मिलत ग्रह सोनी।
सीस फूल फूलनि को सोहै। धारु चौसरा उर मन मोहै।
भुज कर मूल फूल के भूषन। करना भरन उदित जनु पूषन।
सीस समेत चंदन लस असी। तम सम हमह असन कीरनी जसी।
अति सुष बैठि विराजत प्यारी। कहो नाचिअै लाल विहारी।[2]

गौडीय सम्प्रदाय के भक्त कवि रामराय ने कृष्ण के मुख से राधा के सौन्दर्य
हुए लिखा है—

'तेरो मुख पीयूष पंक प्यारो प्रगटे तामे द्वै इन्दीवर।
मेरो मन मत्त मधुप सो जाय वस्यो पुतरी ह्वै अंतर।
रस लोभी एक सों अनेक भयो तौ इन तृपति मानत रसकंदर।
श्रीरामराय पुनिकपोल दल तिल वन्यो मस्तक स्याम विन्दीवर॥'[3]

कृष्ण वेष मे राधा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

'कियो सिंगार लाल प्यारी को निरखि निरखि सहचरि मुसक्यानी।
मोर मुकुट माथे श्रुति कुण्डल भाल तिलक तन मृगमद सानी।
पीताम्बर पटका कटि उपटत हार हिये वनमाल सुहानी।
चिबुक बिन्दु सामन्त कज्जल चाखि रस ताम्बूल लालिमा खानी।
मुरली करजु देति मोहन की रामराय मति गति भुलानी॥'[4]

सागर, सभा सस्करण, पृ० ४६७ पद ६७३।१२६१,
गरमसागर (हस्तलिखित), पृ० ४२।
दिवाणी पद सख्या २०
ी पद सख्या २०

दास ने राधा को ब्रह्म की आह्लादिनी शक्ति माना है वह परम पुरुष
र म नित्य रास का अधिकारिणी है जिसका केन्द्र वृन्दावन धाम है

'नीलाम्बर पहिरे तनु भामिनि, जनुघन में दमकति है दामिनि।
शेष महेश लोकेश शुकादिक नारदादि मुनि की है स्वामिनि।।

+ + +

रूप-राशि, सुख-राशि राधिका शील महागुण - राशी।
कृष्ण चरण ते पावहिं श्यामा जे तुव चरण उपासी।
जगनायक जगदीश पियारी जगत-जननि जगरानी।
नित बिहार गोपाल लाल संग वृन्दावन रजधानी।।
अगतिन की गति, भक्तन की पति श्रीराधा पद मंगल दानी।
अशरन शरनी, भवभय हरनी, वेद पुराण बखानी।।'[1]

हरिव्यास देवाचार्य जी ने राधा के सौन्दर्य का इस प्रकार अनुभव किया

'जय जय राधिका रसिक रस मंजरी रसिक शिरमौर विराजै।
रसकिन्नी रहसि रसधाम वृन्दाविपिन रसिक रस रसी सहचरि समर
रसिक रस प्रेम सिंगार रंग रंगि रहे रूप आगार सुख सार साजै।
मधुर माधुर्य सौन्दर्यलावण्यं पर कोटि ऐश्वर्य की कला लाजै।

+ + +

प्रान प्रियतम प्रिया प्रियतमा प्रेयसी पद पद्म पांसु पावन करो जय।
परमरस-वर्धिनी कर्षिनी चित पिय नित्य हिय हर्षिनी श्रीहरि प्रिया-जय

दास ने राग सोरठा में राधा-कृष्ण की युगल छवि का कितने प्रवाहपू
है—

'आवहु मोरे भवन हो जसोमति के लाला।
मैं राखी रची रुचीर है सुमननी की माला।
धाइ जाइ वही आगही मोही मोहन वाला।
वोउ मोहे मोहनी लखी नैन बीसाला।
गौर स्याम छवी प्रेम धाम उर उमग उताला।
'लछीदास' मानस बसै जोरी मुदीत मराला।।'[3]

सखी रसिक जनो के हेतु 'जुगल किशोर' की नयनाभिराम छवि का वर्णन

'देखि सखी दृग भरी जुगल कीसोर।
छवी सुख सानी मानो घन दामीनी नाच गाव मोर।।
मनो धनु मुकुट थाती बग बग मानो वैजयंती उर बोर।
तापर सरस सुधा स्वर बरषत गरज मुरलीका घोर।।
नही अघात पीवत चीत चातक चतुर रसीक चीत चोर।
श्री मनमोहन 'लछीदास' तन नीरषी नैन कीसोर।।

गर, सभा संस्करण, पृ० ६२३ पद १०५५।१६७२.
णी सिद्धांत सुख पृ० १७४।
हस्तलिखित पृ० ६२

देखि सखी दोउ पीअ रग भरे
घन बरषत तन भीजो लग पट वन ते नीकसी घरे।
वो इत ऐची चुनरी अंचल पीअ उर आनी धरै ॥
सलील सीत सामुहे समर चाहत है उबरे।
करज वरन दर बदन रदन छद सोहत सुष लरे ॥
चंदन चौत्र सहीत सुमनावली कंचुकी कवच टरे।
स्याम गौर चीतचोर रसीकमनी बनी रती ठरनी ठरे ॥
'लछी' नीरषी मनमोहन जोरी वारन प्रान करे॥'[1]

राधा-कृष्ण के सम्बन्ध मे दिये गये ये चित्र लक्षदास की भावतन्मयता एव माधुर्य भक्ति के सुन्दर नमूने है। माधुर्य भक्ति को स्वीकार करने वाले वैष्णव भक्ति-सम्प्रदायो मे राधा को बहुत ऊंचा स्थान प्रदान किया गया। उसे कृष्ण की वामाग-सम्भूता कहकर 'ह्लादिनी शक्ति' कहा गया। वह व्रज की समस्त लीलाओं की सचालिका और कृष्ण की आराध्या है। मन, वचन, कर्म से राधा की सेवा करना परम तत्व को प्राप्त करना है। राधा के इस माधुर्य मडित रूप की महत्ता को लक्षदास ने भगवान् कृष्ण से इन शब्दो मे कहलाया है—

'मैं राधा की कृपा विहारी राधा दासी रास अधिकारी।
जो अनन्य सेवत श्रीराधा। मन कर्म वचन भजन नहि बाधा ॥
केवल मेरो ना मन भावै। श्री राधा को कहि गुन गावै।
जो राधा गति जानै सो राधा रसु जान।
निज छाया मेरेहु उर निरषि सकरति है भानु ॥'[2]

इस प्रकार लक्षदास ने राधा को महत्ता प्रदान की क्योंकि नित्य विहार रस का आनद बिना 'राधा भाव' के सभव नही। लक्षदास ने राधा के उन नेत्रो की सुषमा को एक दोहे मे बडी सुन्दरता से व्यक्त किया है जो मनमोहन को भी वशीभूत कर लेते है—

शिव विरंचि सनकादि सुक सेषहु देषे जे न।
तिन मनमोहन बस किये राधे आधे नैन ॥[3]

राधा के इन बाके नेत्रो की इसी सुषमा को वीठल विपुल ने इन शब्दो मे व्यक्त किया है—

प्यारी तेरे नैना री अति बांके।
ललित त्रिभंगी बिहारी नागर तें अपने करि आंके।
कहि धौं कुंवरि किशोरी कोक गुन सिखए इनहि कहां के।
श्री विट्ठल विपुल विनोद बिहारी प्रिय प्रानन्नि में ढांके ॥[4]

लक्षदास जी ने अपने काव्य मे राधा और रुक्मिणी को 'श्रीशक्ति' के दो रूप माना है

---

[1] भागवतपुराणसार (हस्तलिखित) पृ० ६२।
[2] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०१।
[3] दोहावली स० ६४
[4] निम्बाक माधुरी पृ० २२० पद सख्या २४

और नित्य विहार वर्णन म दोनों की महत्ता स्वकीया भाव मे प्रतिपादित की है वस्तुत राधा और रुक्मिणी मे कोई अन्तर नहीं है लौकिक लीलाओ म राधा तथा रुक्मिणी दो नारियों के रूप मे चित्रित अवश्य की गई है किन्तु मौलिक रूप से उनमे कोई अन्तर नहीं है। वे लीलारूप मे ब्रह्म की शक्ति को प्रकट करने के लिये ही अवतरित हुई है।

निम्बार्क, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदाय मे निकुज विहारी राधा-कृष्ण को अनुरागात्मिका मधुर उपासना के अन्तर्गत प्रिया-प्रियतम भाव से आराध्य माना गया है। इस भाव की सम्यक् साधना का स्थल इस भूमण्डल से परे गोलोक है और उसी का व्रजमडल मे दूसरा रूप नित्य वृन्दावनधाम है।[1] कृष्ण और राधा पुरुष और प्रकृति के रूप है। उन अगम अगोचर को तो केवल रसिक जन ही जानते है।[2] वृन्दावन के यमुना पुलिन और बन कुंजो मे श्रीकृष्ण की लीलाओं का दर्शन भक्त की एकमात्र साध होती है। जिज्ञासु भक्त को निकुज-केलि-रत श्यामा-श्याम की सेवा का अधिकार पुरुषत्व के समस्त भावो के विलीन होने पर सखी भाव मे ही मिलता है। सखी भाव को स्वीकार करने वाला भक्त युगल स्वरूप की अष्टयाम सेवा करने का अधिकारी हो जाता है और वह अष्टयाम की उन लीलाओं का चिन्तन-कीर्तन करता हुआ प्रभु की उपासना मे तल्लीन रहता है। 'नित्य विहार' का सान्निध्य सुख लौकिक रति सम्पन्न नायक-नायिका के पारस्परिक क्षणिक सुख की अपेक्षा अधिक स्थायी और दृढ होता है। यहाँ पर एक विशेषता यह है कि राधा-माधव के विहार को देखकर सहचरी वर्ग की तृप्ति होती है।[3] श्यामा-श्याम के इस अखण्ड निरवधि प्रेम मे मान-विरह के लिये कोई स्थान शेष नहीं रहता।

राधा का परकीया-स्वकीया स्वरूप

गौडीय सम्प्रदाय को छोडकर व्रज के शेष सभी सम्प्रदायो मे राधा को स्वकीया बताया गया है। वल्लभ और निम्बार्क सम्प्रदायो मे इसकी पुष्टि करने के लिये राधा-कृष्ण का विधिवत् विवाह भी सम्पन्न कराया है। राधा-माधव का अतिलौकिक रूप मे जो पारस्परिक सम्बन्ध है उसे ही लौकिक रूप में भी मान्यता दी गई है क्योंकि केवल भावनाओ मे बहकर ही सामाजिक नियमो के विधि-निषेधो का सम्यक् प्रकारेण पालन सम्भव नहीं होता। बगाल के सहजिया सम्प्रदाय मे इन्द्रियो के संस्कारार्थ परकीया भाव मानकर उसे लौकिक रूप मे प्रस्तुत किया

---

१ लछिदास वृन्दावन राधामोहन केलि।
कहत सुनत सुप सागर रसिक पिवत रस झेलि।
+ + +
श्रीराधा कृपात हिये वृन्दावन। श्री वृन्दावन झलकत राधा तन।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०१-१०२।

२ प्रकृति पुरुष जेहि वेद वषाने। अगम अगोचर को तेहि जाने।।
पीवत रसिक रस सुजस राम को। व्रत विवेक जन लक्षदास को।।
—वही, पृ० ४३।

३ श्री राधा कृपाल हिये वृन्दावन। श्री वृन्दावन झलकत राधा तन।।
श्री राधा कृष्ण चरन मृदु अंकित। जो रस सेइ रसिक नहि सकित।
जमुना स्याम स्याम बन स्याम स्यामता पानी।
राधा पद नष चद्र सत प्रभा उदित रस दानी।।
—कृष्ण (हस्तलिखित) पृ० १०२

जिसने समाज मे विकृति की एक रेखा छोड़ दी जो बौद्धो के वाम मार्ग से प्रभावित थी जिसके फलस्वरूप सहजिया वैष्णवो द्वारा प्रतिपादित आदर्श साधारण लोकमत की दृष्टि मे गिर गया। चैतन्य सम्प्रदाय मे परकीया भाव की स्वीकृति काम सम्बन्धो पर आधारित न होकर शुद्ध आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिपादित की गई। इस प्रकार चैतन्य मत से गृहीत परकीया भाव लौकिक परकीयात्व का भाव न होकर 'अलौकिक है।

वल्लभ सम्प्रदाय ने राधा को स्वकीया ही माना, परकीया नही किन्तु परकीया भाव मे जैसी मन.स्थिति होती है उस का वर्णन अवश्य किया। राधा की विरहाकुलता मे परकीया रूप भी प्रदर्शित किया गया है क्योकि वह परकीया नायिका की भाँति लुक-छिप कर अपने प्रियतम से भेट करती है। सूरदास ने अपने काव्य मे राधा को मुख्यत स्वकीया ही चित्रित किया है और स्पष्ट रूप से राधा और कृष्ण के विवाह का वर्णन किया है। राधा मानवती और गौरवशालिनी है। सूर ने राधा के मान के कारणो पर सम्यक् प्रकारेण प्रकाश डाला है और दम्पति विहार का वर्णन किया है।

श्रीहितहरिवश ने अपने काव्य मे राधा को 'रसरूप' कहा है और निरतिशय आनन्द स्वरूपा बताकर उसके नित्य भाव, नित्य विहार तथा नित्य रास की अभिव्यजना की है। राधा श्रीकृष्ण की उपासिका आराधिका नही वरन् श्रीकृष्ण की उपास्या, आराध्या है। वैसे लौकिक क्रीडा के लिये दोनों प्रिया-प्रियतम रूप है। श्री हितहरिवश ने इसे 'तत्सुखि भाव' की नित्य प्रेम लीला कहा है।

निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा को स्वकीया माना गया है। इसकी पुष्टि के लिये विविध पुराणो से उदाहरण दिये गये है। 'महावाणी' मे राधा-कृष्ण की 'नित्य-विहार-लीला' का वर्णन बडे समारोह के साथ किया गया है और इस प्रकार राधा की प्रतिष्ठा आराध्या देवी के रूप मे स्वीकृत की गई। निम्बार्की कवियो ने राधा को स्वकीया रूप मे ग्रहण करके अपने इष्टदेव को लौकिक आलोचनात्मक इगितो मे सुरक्षित रखा है। श्री भट्टजी ने राधा को स्वकीया रूप में ग्रहण करने का संकेत निम्नलिखित पद मे दिया है—

गोपाल लाल दूलह ग्वाल बराती।
गौवन आगे सखिन यूथ मे राधा दुलहिन लाल गवाती।
दुंदुभि दूध दोहन की बाजी राजी सब गोप सजाती।
आरति पलक नेह जल मोती श्रीभट्ट रूप पिवाती ॥[1]

लक्षदास ने श्री भट्ट जी की भाँति 'गोपाल लाल की बरात' तो नही निकाली किन्तु यमुना तट पर मेघावती ने प्रेम प्रीति के रस की भाँवर देकर राधा-कृष्ण के विवाह की विधि सम्पन्न की और ललिता आदि सखियो ने मिलकर मगल गान किये—

लछदास कुंज घन श्री जमुना के तीर।
बिलसत विविध रस सावर गौर सरीर ॥
मेघावती व्याह विधि कीन्ही। प्रेम प्रीति रस भावरी दीन्ही।
ललितादिग मिलि मंगल गाए। रंग महल दंपति चलि आए ॥[2]

---

[1] युगल शतक पद २०

[2] हस्तलिखित पृ० ९९

वेदिका मडन के नीचे दम्पति शोभा पाते हैं उन्होंने पित होकर पर ई बाजे बजने लगे और व्योम में सुर सुमन वृष्टि करने लगे।—इस प्रक विवाह सम्पन्न हुआ। अनन्यरसिक ने समस्त सेवको को सुख दिया।[1]

ालना, फाग और बसत विहार

ब्रज के सम्प्रदायो मे बारहमासो मे विशेष उत्सव मानाये जाते है। पद्म मे इनका वर्णन किया गया है।[2] राधा-कृष्ण के नित्य विहार मे वृन्दावन होती है। लक्षदास जी ने भी इसी परम्परा का अनुगमन करके सुन्दर उपम पति के सुरग हिडोले मे झूलने का (राग मलार मे) वर्णन किया है—

झूलत दपति सुरंग हींडोरे।
मनहु सकल पावस की सोभा बरबस लेते अजोरे।
सघन घटा दामिनी छवि छीनी नल बल स्यामजन गोरे।
भ्रीकुटी सरस केसरी चंदन जनु मनु मनी धन सोसरि जोरे।।
उर पर माल सेत सुमनन की लेत चतुर चित चोरे।
नील जलद बगपति मनहु इत डारत है त्रिन तोरे।
गिरत सीस ते फुल फुलही जनु वर्षत थोरे थोरे।
श्री लछदास राधा मनमोहन सदा बसो मन मोरे।।

लक्षदास जी के उपर्युक्त वर्णन की भाति ही गौडीय सम्प्रदाय के कवि सत, होली, वर्षा तथा अन्य प्राकृतिक वर्णन किये हैं। लक्षदास के उपर्युक्त ीरामराय के निम्नलिखित पद की तुलना करिये—

सजनी झूलत श्यामा श्याम।
दे गल बांह बिराज हिंडोरे लेत नाहिन विश्राम।
कारी घटा छटा विज्जुत की मिलत जुगल अभिराम।
भीज रहे मदमाते लालन उर उछाह अविराम।
दादुर मोर पपैया बोलन पवन अप्राकृत काम।
श्रीरामराय झोका झुकि बाढ़त झूलन श्री वृन्दावन धाम।।[3]

इन सषि स्यामा साथ उतहि मनु सपति।
निदित वेदिका मडलु राजही दपती।
पहिराइ जयमाल परसपर हरषही।
बाजत बाजन व्योम सुमन सुर बरषही।
\+ \+ \+
येही वीथी सरस बीआहु रास रस कीन्हेउ।
रसीक अनन्य सेवकन्ही सब सुष दीन्हेउ।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित)

पद्मपुराण पाताल खण्ड ८० (श्लोक २१ से ६६ तक)
(हस्तलिखित पृ० ११२

आदि वाणी पृ० ७३

लक्षदास जी के पदो की ब्रजभाषा के अन्य वरेण्य कवियो से तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि लक्षदास जी प्रतिभा के धनी थे और उनका काव्य सूर, श्रीभट्ट, हरिव्यासदेव तथा हितहरिवंश आदि के वर्णनो एव रूप तत्वों की तुलना मे किसी भी प्रकार कम नही था। फाग का जीता जागता-सा वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

बाजै लग्यो मुरली डफ फागुन आयो है।
स्याम सलोने सखा संग रंग बढ़ायो है।
रंग बिरंग सुअंगनि बागे बनाये है।
मानहु मैन के सैननि मोहन आये हैं।
+ +
स्याम स्यामा गही गही भुजल अजोरी है।
डोलत बोली हसैं हो होहो होरी है॥
कंचन कंचन हार निछावरी कीन्ही है।
तै ब्रजवासिन दासिन दासिन दीन्ही है॥[1]

नददास जी का 'फाग' वर्णन देखिये—

कान्हर खेलियै हो बाढ्यो श्री गोकुल में अनुराग।
जान्यो नही बहुरि कब ऐहै परम भावति फाग।
बाजत ताल, मृदंग, झाझ, डफ, सहनाई अरु ढोल।
तुमहूं खेलो सखा संगले, करहु आपनी ओल।
उतते सबै सखी जुरि आई, प्रबल मदन के जोर।
खेल मच्यो है नंद की जू की पौरी, प्यारो राधा नदकिसोर।[2]

इसी प्रकार वसंत मे वन विहार हेतु गये प्रिया-प्रीतम की रूपसुधा की छटा लक्षदास के शब्दो मे *अवलोकिये*—

कुसमनि रहे झेलि मनोहर वृछ बेल
हसनि सुगंध रेलि पवन हलत है।
सोभित बिहार बन फूलन के आभरन
गौर स्याम तन छल बल सो ललित हैं॥
अधर अरुनाई बातनि में चतुराई
सैना बैंदी सुघराई आननि पलति है।
चांदनी रही है खिलि राधिका रवन मिलि
देखो बलि बलि नैना चन्द्रघा चलति है॥[3]

स्वामी हरिदासजी के ग्रंथ केलिमाल मे शृगार (प्रेम) तथा विहार के पद दिये गये है

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११४-११५।
[2] नददास (द्वितीय भाग) १९४२ ई० —सम्पा० उमाशकर शुक्ल पृ० ३३८।
[3] नागरी प्रचारिणी सभा काशी याज्ञिक सग्रह वेष्टन स० ४१ पोथी स० ७३४ पृ० ३५ कवित्त ३।

जिनमें राधा-कृष्ण के जुगल रूप, नख-शिख, डोल-झूलना और रस विलास आदि का वर्णन किया गया है। 'केलिमाल' में कवि ने श्यामा-श्याम के रूप की एक झाकी इस प्रकार दी है—

जोरी विचित्र बनाई री माई काहू मन के हरन को।
चितवत दृष्टि टरत नहिं इत उत मन वेच क्रम याही संग भरन को।
ज्यो घन दामिनि संग रहत नित विछुरत नाहिन और बरन कौं।
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंज विहारी न टरन कौ॥[1]

इसी प्रकार श्री हितहरिवंश के विहार-सम्बन्धी पदो का विस्तृत तुलनात्मक विवेचन न करके उदाहरण के लिये हम उनका एक पद दे रहे है—

विपिन घन कुज रति केलि भुज मेलि,
रुचि श्याम श्यामा मिले शरद की जामिनी।
हृदै अति फूल सम तूल पिय नागरी,
करनि कर मत्त मनों विविध गुन रागिनी।
सरस गति हास्य परिहास आवेश बस,
दलित दल मदन बल कोकरस कामिनी।
: जैश्री : हितहरिवंश श्रुनि लाल लावन्य मिले,
प्रिया अति सूर सुख सुरत संग्रामिनी॥[2]

हमने ऊपर लक्षदास के पदों के वर्ण्य विषय एवं शब्द चयन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिये ब्रज के विभिन्न कवियों की रचना से कुछ उदाहरण दिये है जिनसे लक्षदास के भाव गाम्भीर्य, शब्द चँयन एवं उनकी विविधा ज्ञान शक्ति का सम्यक् परिचय मिलता है।

रास लीला

निम्बार्क सम्प्रदाय मे रस-उपासना को विशेष प्रश्रय दिया गया है। पद्मपुराण पाताल खण्ड के १६ श्लोको में जिस रसोपासना का वर्णन किया गया है[3] उसी की छाया श्री हरिव्यास देवाचार्य जी की 'महावाणी' मे मिलती है। रस भावना वाले साधक को श्री प्रियाजी के साथ रतिकेलि रसावेश से चपल नयन मुरली मनोहर श्रीकृष्ण चन्द्र का ध्यान करना चाहिये।[4] उनके वाम भाग मे नील वस्त्रो से विभूषित तप्त कचन के समान वर्णवाली श्री राधा जी विराजमान है जिन्होंने श्री श्याम सुदर के मुखारविंद मे अपनी दृष्टि लगा रखी है। वे आनन्द रस मे मग्न है। अनत सखिया चामर व्यजन आदि से उनकी परिचर्या कर रही है। उनकी वयस और गुण भी श्री राधा जी के जैसे ही है।[5] भगवान् की इस रसोपासना का रासलीला मे विशेष महत्व है। यह रास नित्य विहार की ही एक दशा है। जिस आनन्द की रसोपलब्धि विहार मे होती है, वही रास मे सहज प्राप्य है क्योंकि श्रीकृष्ण और राधा परमात्मा और आत्मा रूप से रासलीला मे प्रवृत्त होते हैं।

---

१ केलिमाल, पृ० ६, पद ४।
२ हित चौरासी, पद स० ४६।
३ पद्मपुराण, पाताल खण्ड, ८१।३४.
४ वही वही ८१ ४२ ४३
५ वही वही ८१।४४ से ५० तक

लक्षदास जी के पदो की ब्रजभाषा के अन्य वरेण्य कवियों से तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि लक्षदास जी प्रतिभा के धनी थे और उनका काव्य सूर, श्रीभट्ट, हरिव्यासदेव तथा हितहरिवंश आदि के वर्णनों एवं रूप तत्वो की तुलना मे किसी भी प्रकार कम नही था। फाग का जीता जागता-सा वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

बाजै लग्यो मुरली डफ फागुन आयो है।
स्याम सलोने सखा संग रग बढ़ायो है।
रंग विरंग सुअंगनि वागे बनाये है।
मानहु मैन के सैननि मोहन आये हैं।
+ +
स्याम स्यामा गही गही कुचल अजोरी है।
डोलत बोली हसै हो होहो होरी है॥
कंचन कंचन हार निछावरी कीन्ही है।
ते व्रजवासिन दासिन दासिन दीन्ही है॥[1]

नददास जी का 'फाग' वर्णन देखिये—

कान्हर खेलियै हो बाढ़यो श्री गोकुल में अनुराग।
जान्यो नहीं बहुरि कब ऐहै परम भावति फाग।
बाजत ताल, मृदंग, झांझ, डफ, सहनाई अरु ढोल।
तुमहूं खेलो सखा संगले, करहु आपनी ओल।
उतते सबै सखी जुरि आईं, प्रबल मदन के जोर।
खेल मच्यो है नंद की जू की पौरी, प्यारी राधा नंदकिसोर।[2]

इसी प्रकार वसत मे वन विहार हेतु गये प्रिया-प्रीतम की रूपसुधा की छटा लक्षदास के शब्दो में अवलोकिये—

कुसमनि रहे झेलि मनोहर बृछ बेल
हसनि सुगंध रेलि पवन हलत है।
सोभित बिहार वन फूलन के आभरन
गौर स्याम तन छल बल सों ललित हैं॥
अधर अरुनाई बातनि में चतुराई
सेना बैनी मुघराई प्राननि पलति है।
चांदनी रही है खिलि राधिका रवन मिलि
देखो वलि वलि नैना चन्द्रधा चलति है॥[3]

स्वामी हरिदासजी के ग्रंथ केलिमाल मे श्रृंगार (प्रेम) तथा विहार के पद दिये गये हैं

जिनमे राधा-कृष्ण के जुगल रूप, नख-शिख, डोल-झूलना और रस विलास आदि का वर्णन किया गया है। 'केलिमाल' मे कवि ने श्यामा-श्याम के रूप की एक झाकी इस प्रकार दी है—

जोरी बिचित्र बनाई री माई काहू मन के हरन कों।
चितवत दृष्टि टरत नाँहि इत उत मन वच क्रम याही संग भरन कों।
ज्यो घन दामिन संग रहत नित बिछुरत नाहिन और बरन कौं।
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुज बिहारी न टरन कौं॥[1]

इसी प्रकार श्री हितहरिवंश के विहार-सम्बन्धी पदो का विस्तृत तुलनात्मक विवेचन न करके उदाहरण के लिये हम उनका एक पद दे रहे है—

विपिन घन कुंज रति केलि भुज मेलि,
रुचि स्याम स्यामा मिले शरद की जामिनी।
हृदै अति फूल सम तूल पिय नागरी,
करनि कर मत्त मनो विविध गुन रागिनी।
सरस गति हास परिहास आवेश बस,
दलित दल मदन बल कोकरस कामिनी।
: जैश्री : हितहरिवंश सुनि लाल लावन्य भिदे,
प्रिया अति सूर सुख सुरत संग्रामिनी॥[2]

हमने ऊपर लक्षदास के पदो के वर्ण्य विषय एवं शब्द चयन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिये व्रज के विभिन्न कवियो की रचना से कुछ उदाहरण दिये है जिनसे लक्षदास के भाव गाम्भीर्य, शब्द चयन एव उनकी विविधा ज्ञान शक्ति का सम्यक् परिचय मिलता है।

रास लीला

निम्बार्क सम्प्रदाय मे रस-उपासना को विशेष प्रश्रय दिया गया है। पद्मपुराण पाताल खण्ड के १६ श्लोको मे जिस रसोपासना का वर्णन किया गया है[3] उसी की छाया श्री हरिव्यास देवाचार्य जी की 'महावाणी' मे मिलती है। रस भावना वाले साधक को श्री प्रियाजी के साथ रतिकेलि रसावेश से चपल नयन मुरली मनोहर श्रीकृष्ण चन्द्र का ध्यान करना चाहिये।[4] उनके वाम भाग मे नील वस्त्रो से विभूषित तप्त कचन के समान वर्णवाली श्री राधा जी विराजमान है जिन्होने श्री-श्याम सुदर के मुखारविंद मे अपनी दृष्टि लगा रखी है। वे आनन्द रस मे मग्न है। अनत सखिया चामर व्यजन आदि से उनकी परिचर्या कर रही है। उनकी वयस और गुण भी श्री राधा जी के जैसे ही है।'[5] भगवान् की इस रसोपासना का रासलीला मे विशेष महत्व है। यह रास नित्य विहार की ही एक दशा है। जिस आनन्द की रसोपलब्धि विहार मे होती है, वही रास में सहज प्राप्य है क्योंकि श्रीकृष्ण और राधा परमात्मा और आत्मा रूप से रासलीला मे प्रवृत्त होते है।

---

[1] केलिमाल, पृ० ६, पद ४।
[2] हित चौरासी, पद स० ४६।
[3] पद्मपुराण, पाताल खण्ड, ८१।३४
[4] वही वही ८१ ४२ ४३
[5] वही वही ८१ ४४ से ५० तक

सखियो ने रास मे रस की सष्टि करके शरद रात्रि में राधा-कृष्ण का f
। मनमोहन ने दूलह और नवेली राधा ने दुलहिनी का वेष धारण किया।
ास भक्तो को आनन्द देने वाला है—

'धाइयै फल-रूप जोरी रास रस संतत वनी।
श्री मनमोहन लाल दुलह नवल राधा दुलहीनी।
बार बार नीहार दंपति केली ललीत लड़ाइयै।
लछीदास हो करी नीछावरी सरसु मंगल गाइयै ॥'[1]

यूथेश्वरियो के सहित रास विलास के हेतु शृंगारिक प्रसाधनो से सज्जित
क साथ राधा कलिदजा तट पर आई। कृष्ण ने गोपियों के बीच 'एकोऽहं ब
रण करके समस्त सहचरी वर्ग को सुख प्रदान किया। भुज मडल जोडकर
-

'विलसत रास विलास सरसाली। प्रति गोपी विच वनमाली॥
कुंडल कलित किरीट विराज। कटि तट नील पीतपट राज॥
पटपीत कटितट घंटिका नट भेषु नागर कामिनी।
जगमगात मनिगन माल ससि दुति सरद सोभित जामिनी॥
म्रेदु वंस ताल म्रदंग धुनि लषि थकित सुर सुष आसही॥
कलिंद कानन कुल मोहन विलस रास विलास ही॥
ललित रच्यो मंडलु भुज जोरी। लटकत मध्य स्याम घन मोरी।
निरषत तसुष संगील वषानै। अति रस मगन न तन सुधि जानै॥
रस मगन तन मन लसत छवि परस रती वारौ मारही।
मुष कंज चंदन कोर लोचन लछ निरषि न टारही।
दे परसपर कर बाहु मूलनि प्रेम ललना लाल ही।
आभूत भूतल भामिनी भगवान ही ललिता लही॥'[2]

इसी प्रकार के भावनापरक रास का वर्णन श्री भट्ट जी ने युगल शतक मे
ण्डल के मध्य शरद् यामिनी मे श्री श्यामा-श्याम सुशोभित है। समस्त
मे प्रिया-प्रियतम बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से समाविष्ट हैं—

'मण्डल मधि विमल जुगल मल सोहै।
करत बिहार बिहारी प्यारी मार कोटि मन मोहै।
श्रुतरूप धृत सब मन रजक इक प्रति अगना दोहै।
मण्डलाकार अपार बढ्यो सुख हरि सन्मुख सबको है।
सबनि मनि मन मुदि हिये नैं, पिय रस रास रच्यो है।
दम्पति अंतर साजि ग्रीवा भुज भौंह भृकुटि फिर कोहै।

——— (हस्तलिखित) प० ११७।
वही वही पृ० १११

नयन नयन मिलि लेन विछेपन नैन की सेक मिली है।
श्री भट भटकि रहे जित के तित निज निज लगन लगी है ॥'[1]

श्री हितहरिवंश ने भी 'हितचौरासी' में रासलीला का वर्णन इसी प्रकार के भावना रक रास के भाव साम्य के आधार पर किया है—

'श्याम संग राधिका रास मंडल बनी।
बीच नंदलाल ब्रजबाल चंपक बरन, ज्यों घन तड़ित बिच कनक मरकत मनी।
लेत गतिमान तत्त थेइ हस्तक भेद, स्वरेगमपधनि ये सप्त सुर नन्दिनी।
निर्त्य रस पहिर पट नील प्रकटत छवी, बदन जनु जलद में मकर की-चन्दिनी।
राग रागिनि तान मान संगीत मत, थकित राकेश नभ सरद की जामिनी।
हित हरिवंश प्रभु हंस कटि केहरी, दूर कृत मदन मद मत्त गज गामिनी ॥'[2]

सूरदास ने रासलीला वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

अद्भुत कौतुक प्रगट दिखायो। कियौ स्याम सबहिनि मन भायौ।
बिच गोपी, बिच मिले गुपाल। मनिकंचन सोभित सुभ माल।
राधा-मोहन मध्य बिराजै। त्रिभुवन की सोभा ये भ्राजै।
रास-रंग रस राख्यो भारी। हाव-भाव नाना गति न्यारी ॥'[3]

यहाँ तक तो हमने श्यामा-श्याम के नित्य विहार रस और शरद् यामिनी में उनकी रासकेलि की संक्षिप्त रूपरेखा दी है। शरद् रात्रि में गोपियाँ समस्त गृह-कार्यों का परित्याग करके आर्य मर्यादा का उल्लंघन करती हुई और नशे से चूर उन्मत्त मनुष्य की भाँति सब अंगों पर उलटे आभूषण धारण किये हुए भागी आईं। ये गोपियाँ आत्मास्वरूपा हैं जो परमात्मा-रूप कृष्ण से मिलने के लिये आतुर होकर ऐसे भागती हैं जैसे पावस में नदी सिंधु की ओर जाती है। भगवान् के मुरली नाद को सुनकर गोपियों की सांसारिक कार्यों में लगी हुई चित्तवृत्ति परमार्थ तत्व की ओर उन्मुख हो गई—

'जिन जिन करन परी कल तानै। तिनहि मनो आई सबी आनै।
सुनत सुमुख हरषित सब धाई। पावश नदी सिंधु की नाई।
एकनि एक नैन दियो अंजन। एक चली तजि पति मन रंजन।
एकन तजी दुहावत गैया। एक देत भोजन तज्यो सैया।
येक ठही गोदहु ते सुत डारे। उलटे पट भूषन न सुधारे।
मुरली धुनि बारुनी पान जनु। अति उत्तम तन सुधी भूषन तनु ॥'[4]

बिलकुल यही बात सूरदास ने भी अपने शब्दों में कही—

'मुरली श्याम अनूप बजाई। विधि मर्यादा सबनि भुलाई।
निशि बन कौं युवती सब धाई। उलटे अंग अभूषण ठाईं।

---

१ युगलशतक, पद २३।
२ हितचौरासी—श्री हितहरिवंश. पद ७१।
३ सूरसागर सभा पृ० ६३५ ३६ पद १०८४ १७०२
४ हस्तलिखित पृ० ३७

कोऊ चलि छरण हार लपटाई। काहू चोकी मुजनि बनाई।
अंगिया कटि लहंगा उर लाई। यह शोभा वरणी नहि जाई॥'[1]

जब सारी गोपियाँ निशीथ मे अपने पतियो को छोड़कर वन मे कृष्ण के समीप आई ने हँसते हुए उन्हे मीठी-डाट लगाई—

'व्रज है कुशल कहो हो भामिनी। ग्रह तजि किमि आइव वन जामिनी।
लोक वेद विरोध न कीजै। तिय को धर्म जो पिय व्रत कीजै।
जिन तिय के पिय को व्रत नाही। ताके कर्म धर्म धन छाही॥
हसि बोलि हरि सुंदरिन निसि आयहु केहि काज।
पति सेवा रति विमुष ह्वै कहो कुवर व्रजराज।
मूरष रोगी निधन पति तिय से वे श्रुति भाष।
च्छ विमुष पति अगति है जतन करे जो लाष॥'[2]

लक्षदास ने गोपियो के इस परकीया भाव की भर्त्सना तो की किन्तु साथ मे ही गोपियो रकीया तत्व का समाहार उन्होने कृष्ण की पारमार्थिक सत्ता के वास्तविक रहस्य को कारण बताया। उन्होने (गोपियो ने) सासारिक सम्बन्धो की नश्वरता की ओर सकेत र अपने मूल कर्त्तव्य कर्म की ओर निर्देश किया—

'देह ग्रेह पति पुत्र सो नेह न कहिये नाह।
तुम साचे वै देषियतु बादर कैसी छाह॥
पीय हमते तिय होहि नही जिनके झूठे नेह।
कै मिलिऐ प्रभु क्रिपा करि कै हम मिलिहै तजि देह॥

× × ×

हिय फाटहु तिन तियन के पति जिनके हित और।
लच्छदास अषियन वसो सुंदर नंद किसोर॥'[3]

महाकवि सूरदास ने भी अपने ग्रथ सूरसागर मे इस प्रसग का, लक्षदास जी द्वारा गृहीत के अनुसार ही वर्णन किया है। इस प्रसग मे यह अद्भुत बात है कि दोनो कवियो का न तो समानांतर गति से चलता है किन्तु भावापहरण नही है—

'यह विधि वेद-मारग सुनो।
कपट तजि पति करौ पूजा कह्यो तुम जिय गुनो।
कन्त मानहु भव तरोगी और नहिन उपाय।
ताहि तजि क्यों विपिन आई कहा पायो आय।
विरध अरु विन भागहू को पति भजौ पति होय।
जड़ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोय।
इहै मैं पुनि कहत तुमसों जगत में यह सार।
सूर पति सेवा बिना क्यों, तरोगी संसार॥'[4]

सागर, सभा सस्करण, पृ० ६०३, पद ९८९।१६०७.
शरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३८।
वही वही पृ० ३९
सभा पृ० ६११ पद १०१६ १६३४

कृष्ण से प्रतिभासिक सत्ता का अनुभव करती हुई सूर की गोपियां उत्तर देती है—

'तुम पावत हम घोष न जाहि।
कहा जाहि लैहै ब्रज मे हम यह दरशन त्रिभुवन मे नाहि।
तुम हू तें ब्रज हितू कोउ नहिं कोटि कहो नहिं मानें।
काके पिता मात है काके काहू हम नहि जानें।
काके पति सुत मोह कौन को घर है कहा पठावत।
कैसौ धर्म पाप है कैसौ आश निराश करावत।
हम जाने केवल तुमही को और वृथा ससार।
सूरश्याम निठुराई तजिये तजिये वचन विनु सार॥'

इस प्रकार लक्षदास ने समाज मे मर्यादा धर्म की रक्षा करने तथा परकीयात्व के लोक विरुद्ध धर्म को समाप्त करके वास्तविकता का निदर्शन किया है और परमात्मा (कृष्ण) के प्रति जीवात्मा (गोपियों) की उत्कट प्रेमानुभूति का अच्छा नमूना प्रस्तुत किया है। इस स्थान पर लक्षदास जी के विचार सूरदास जी से मिलते-जुलते दिखाई देते है।

मान-विरह—वैसे तो निम्बार्क एव राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों ने जिस नित्य विहार का वर्णन किया है उसमे मान-विरह के लिये कोई स्थान ही नही है क्योंकि निकुज केलि मे रत श्यामा-श्याम का शाश्वत सयोग निरवधि रूप से सत्य है फिर भी विरह मे निहित एक विशिष्ट आनद की अनुभूति को स्पष्ट करने के लोभ को ये भक्त कवि सवरण नही कर सके है। इसीलिये श्रृंगार के वर्णनो मे मान और विरह की स्थिति के निमित्त गौण हेतुओ की कल्पना की गई। कवि लक्षदास ने राधा के मान का एक स्थान पर वर्णन किया है जिसके प्रतिफलस्वरूप कृष्ण व्याकुल होकर राधा की रट लगाते हुए पृथ्वी पर इधर-उधर गिरते-पडते दिखाई देते है। इसमे सूरदास की भांति मान-विरह का विस्तृत विवेचन नही मिलता प्रत्युत् परम्परा का पालनमात्र ही दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण, राधा का स्मरण उपास्य तत्व की दृष्टि से ही करते है।

'एक सखै मानिनी भै राधा। मोहन मन मनसिज कृत बाधा।
व्याकुल भये मीन ज्यौ बिन जल। लुठत उठत धरनी पर नही कल।
हा राधा राधा टेरत सन। सुधि न भोग भूषन बसन।
मुरली मृदु राधा जस गावत। पुलकि रोम सुर दृग भरि आवत॥'

एक अन्य स्थल पर लक्षदास ने राधा के मान को भग करने के लिये कृष्ण के अन्तर्धान होने की बात कही है।[3] विरह की यह मानसिक स्थिति ही निम्बार्क सम्प्रदाय के विप्रलम्भ की आधारभूमि है। श्री भट्ट जी ने राधा के मान का निमित्त कारण प्रस्तुत किया है। श्रीकृष्ण चन्द्र के शरीर की ज्योति मे अपना प्रतिबिम्ब देखकर राधा को किसी अन्य युवती का सम्भ्रम हो

---

१ सूरसागर, सभा सस्करण पृ० ६१३, पद १०२१।१६३९.
२ [illegible] (हस्तलिखित) प० १०२।
3 एहि विधि मन तन सुष भरी पति सो पाइ सोहाग
जानि मानीनी हरि छपे देषन का अनराग वही पृ० ४०

जाता है। इस सभ्रम की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वे श्रीकृष्ण से मान कर बैठती है। ('रसिकिनि मान कियो रस राम' आदि)[१] इसी प्रकार श्री हरिव्यास देव जी की किशोरी ने दर्पण मे अपने प्रतिबिम्ब को सपत्नी जानकर श्यामसुन्दर से मान ठान दिया।[२]

कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों की बुरी दशा हो गई। वे कृष्ण की बाल्यकाल एव सयोग सुख की लीलाओ को स्मरण करके पछताने लगी। इधर प्रकृति ने भी इस समय उद्दीपन का काम दिया। लक्षदास ने गोपियो के इस विरह का वर्णन 'बारहमासा' तथा शरद् वर्षा आदि ऋतुओं के वर्णन द्वारा प्रस्तुत किया है। कवि ने इस विरह दशा मे गोपियो की एकादश अवस्थाओं तथा वियोग की विभिन्न मनोदशाओ का चित्र उपस्थित करके तीव्र एव गम्भीर वेदना के चित्र उपस्थित किये हैं।[३] विरह वर्णन के ऐसे ही प्रसग महाकवि सूरदास के सूरसागर, परशुरामदेव के परशुरामसागर तथा तुलसीदास की कृष्णगीतावली मे भी दिये गये है।

भ्रमरगीत—विप्रलम्भ शृगार के अन्तर्गत लक्षदास जी ने 'भ्रमरगीत' तीन बार लिखा है—(१) दोहा—चौपाई,[४] (२) पदो मे[५], (३) बरवै छद मे।[६] इसमे उद्धव के ज्ञान, योग और अद्वैतवाद के उपदेश को सरल प्रकृति की ग्रामीण गोपियो के एकनिष्ठ प्रेम और सगुण ब्रह्म की आराधना की उपयुक्तता से व्यर्थ सिद्ध करके सगुणोपासना को प्रतिपादित किया है। वल्लभ सम्प्रदाय के मूर्द्धन्य कवि सूरदास और नददास ने भी भ्रमरगीत लिखा है जो वाग्विदग्धता, हृदयस्पर्शिता, वचनवक्रता (व्यग्य) और उपालम्भ की दृष्टि से उच्च कोटि का काव्य है।

लक्षदास की गोपिया सूर की गोपियो की भाति सरल और निश्छल हैं और नददास की गोपियो की भाति तार्किक नहीं है। आगे की पक्तियो में हम लक्षदास और सूरदास के भ्रमरगीत के कुछ उदाहरण तुलना के रूप मे दे रहे है—

गोपीहु हरिहै तुम माही। तन ते न्यारी कब छाही।
रहै बास कुल मह असे। जल जल तरंग मह जैसे।
करि जतन जुगुति मन आनहु। है जोग वियोग न मानहु।
× × ×
अब जोग जुक्ति मन राखौ। सपी हरि वियोग जनि भाषौ।
दीन रहौ जोग लौ लागी। जग भूषन विषै अनुरागी।
अब समुझि यहै व्रतु लीजै। निरगुन विचार चित दीजै॥[७]

---

१ युगलशतक, पद २६।
२ महावाणी, पृ० ७६।
३ इसका विवेचन इसी अध्याय में अन्यत्र किया जा चुका है।
४ कृष्णरसमागर (हस्तलिखित), पृ० ५१ से ५४ तक।
५ वही वही पृ० ११० से ११३ तक।
६ हस्तलिखित पृ० ८६ ६०
७ हस्तलिखित पृ० ५१

सुनहु गोपी हरि को सदेश।
करि समाधि अन्तर्गत ध्यावहु यह उनको उपदेश।
निर्गुन ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है वेद पुराणन गाइ।
सगुण रूप तजि निर्गुण ध्यावो एक चित्त इक मन लाइ॥[1]

२. बिसरी उन्हें जसोमति मैया। त्रिन चरै न धौरी गैया।
तब स्याम स्याम बिसराये। गोपीपति भये पराये।
हहि पराये भे कन्हैया लछि जन मधुबन गये।
देवकी वसुदेव नंदन नाम सुनियत हे नये।
मिलन कैसे है अहीरन्हि भूप संपति पाइहो।
लछि बारक जाइ मिलिहौ जयति जसोमति आइ हो॥[2]

तब ते मिटे सबै आनन्द।
या ब्रज के सब भाग सम्पदा लै जु गये नंदनंद।
विह्वल भई यशोदा डोलति दुखित नंद उपनंद।
धेनु नहीं पय स्रवति रुचिर मुख चरति नाहिं तृण कंद।
विषम वियोग दहत उर सजनी बाढ़ि रहे दुख द्वन्द॥[3]

३. कलप बीछ सम जानीअ सो नरदेह।
लछी जो नीसु दीन सरनी असो कृस्न सनेह।
बीसरावै समुझावै कौस्न पीआरे।
लछी ते प्रीतम वैरी हुऔ हमारे॥
छीकतहु गयुं न माही मे वही घाट।
जहा कन्हैआ ठाढे जमुन के घाट।
वही गे जल मह गर पियर ही न पाये।
लछी तीरछी चीतवनी कोन्हैनी धाये।
सीस मुकुट अती सोभीत कुंडल कान।
येही वीधी देव सकुलेहही मोरेउ प्रान।
अब तो सीषेन्ही वजावै वंसी तान।
लछी न धर धीर रहही पलौ भरी प्रान॥[4]

वै जो देखत राते राते फूलन फूले डार।
हरि बिनु फूली झरी सी लागै झरि झरि परत अगार।
फूल बिनन ना जाउं सखी री हरि बिन कैसे फूल।
सुन री सखी मोहि राम दुहाई लागत फूल त्रिशूल।

---

१ सूरसागर, पृ० १४३६, पद ३५०२।४१२०.
२ कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १११।
३ सूरसागर, पृ० १३३७, पद ३१५७।३७७५.
४ हस्तलिखित) पृ० ८६

अब ते पनघट आउ सखी री वा जमुना के तीर।
भरि-भरि जमुना उमड़ि चलत है इन ननन के नीर॥
इन नैनन के नीर सखीरी सेज भई घर नाव।
चाहत हौं ताही पै चढ़ि कै हरि जी के ढिग जाव।
लाल पियारे प्राण हमारे रहे अधर पर आइ।
सूरदास प्रभु कुंज बिहारी मिलत नहीं क्यों धाइ॥[1]

५. ऊधो रहे प्रेम रस साने। षट मास जात नहिं जाने।
हरि चरनन की सुधि कीन्ही। व्रज लोगन भेंटें दीन्ही।
लैलै भेंट संदेस ऊधो नयन वर्षंत वारि हो।
पाइ परि परि कहे प्रभु सों धन्य व्रज की नारि हो॥[2]

मोमन उनहीं को जु भयो।
पर्‌यो प्रभु उनकै प्रेम कोरन में, तुमहूं बिसरि गयो।
तुमसों सपथ करि गयौ मोहन बेगि कह्यो हो आवन।
तिनहिं देखि बैसोइ में ह्वै रह्यो, लग्यो उनहिं मिलि गावन।
समुझि परी षट मास बितीते, कहां हुतो हो आयौ।
सूर अनकही दै गोपिन सों, स्रवन मूंदि उठि धायौ॥[3]

दोनो कवियों की रचनाओ के उपर्युक्त तुलनात्मक विवरण से यह स्पष्ट है कि लक्षदास ने अन्य सम्प्रदायों की पद्धतियों को ग्रहण करके भी काव्य रचना की और उसमें सफलता प्राप्त की। इससे कवि की मौलिकता, उसकी सूझ-बूझ और उसके शब्द गाम्भीर्य का भली भांति पता चलता है। लक्षदास ने अपने काव्य की वर्ण्य-वस्तु के द्वारा व्यावहारिकता और आध्यात्मिकता दोनो क्षेत्रो मे अभूतपूर्व कार्य किया है।

व्रजभाषा के वरेण्य कवियो तथा उनके पूर्ववर्ती कवियों की परम्पराओं का अनुसरण करते हुए ही कवि ने अपने काव्य मे रसो का वर्णन विविधता से किया और उस काल मे प्रचलित छद परम्परा तथा रागो मे अपनी काव्य प्रतिभा का प्रकाशन किया जिसके विषय मे हम इसी अध्याय मे पहले सकेत कर चुके हैं।

---

[1] सूरसागर, पृ० १३७२, पद ३२७५।३८९३
[2] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११२
[3] सूरसागर, पृ० १६४२, पद ४१४९।४७६७

अध्याय ७

लक्षदास की भाषा एवं शैली

व्यक्ति के भावो एव विचारो की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। साधारण व्यक्ति की अपेक्षा कवि अपने विचारो का प्रकाशन कुछ विशिष्ट भाव-शैलियों एव शब्द-शक्ति के कतिपय विशेष प्रयोगो के द्वारा करता है। जो कवि अपने शब्द भाण्डार को विविधता से प्रयोग करने मे जितना ही कुशल होगा उसकी भाषा उतनी ही समृद्ध, गरिमामय एव सक्षम होगी और भावों की अभिव्यक्ति में उतनी ही स्पष्टता और सुचारुता रहेगी। हमारे आलोच्य कवि लक्षदास ने अपने वर्ण्य-विषय के वस्तु प्रकाशन के लिये शब्द प्रयोग और शब्द निर्वाचन में पर्याप्त सावधानी बरती है। उसने शृंगार के वर्णनो में भी शब्दो के अशिष्ट एव ग्राम्य प्रयोगो को कोई स्थान नही दिया। इसीलिए समाज की मर्यादा-प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये उसने अमर्यादित एव गर्हित प्रसगो को बिल्कुल ही ग्रहण नही किया, फिर भी पात्र और परिस्थिति के विचार से जिन शब्दो को उचित एव उपयुक्त समझा गया उनका प्रयोग करने मे उसने तनिक भी सकोच नही किया। शब्दो का चयन करते समय कवि ने भावाभिव्यक्ति, ओज, प्रसाद गुण एव शब्दो की कोमलता का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। कही-कही अपना अभीष्ट अर्थ निकालने अथवा लय और तुक मिलाने के लिये कवि ने अपनी रचनाओ में शब्दों के रूप भी बदल दिये हैं। इस प्रकार उसने अबाधित स्वतन्त्रता लेकर भाषा को विरूप भी किया है। अपने मन्तव्य की पूर्ण एव सम्यक् अभिव्यक्ति के लिये उसने तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी सभी प्रकार के शब्दो लोकोक्तियो और मुहावरो का सफल प्रयोग किया है।

कवि ने सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग मुख्यत रूप सौन्दर्य वर्णन, प्राकृतिक दृश्य वर्णन, राधा-कृष्ण के नित्य विहार, स्तोत्र, नामावली एवं गेय पदो में किया है। इस प्रकार उसने तत्सम शब्दो का प्रयोग दो अवसरों पर किया है—(१) साहित्यिक ढग से विषय के प्रतिपादन में, (२) भक्ति एव सिद्धान्तो के प्रकाशन मे।

राधा-कृष्ण तथा गोपियो आदि के रूप-सौन्दर्य, ऋतु-वर्णन, मुरली-वादन एवं स्तोत्रो तथा भाव शबलता के प्रसंगो मे तत्सम प्रधान शब्दो का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। भक्ति तत्वों एव दार्शनिक सिद्धान्तो के प्रतिपादन मे भी तत्समता की प्रधानता हो गई है।

जी की रचनाओ मे तदभव प्रधान शब्दावली का प्रचुरता से प्रयोग किया

या है। इस प्रयोग का अपनी एक विशिष्टता है जो हमारे आलोच्य कवि के अन्य पूर्ववर्ती कवियो तथा अन्य समसामयिक कवियो मे कठिनाइ से ही मिलेगी तदभव शब्दो का प्रयोग करके कवि ने अपने काव्य मे व्यावहारिक भाषा को स्वाभाविकता के साथ सहज, आडम्बरहीन एव सरस रूप मे प्रस्तुत किया है जिससे उसे अपने काव्य मे विचारो की मार्मिकता, गम्भीरता एव सूक्ष्म भावो की अभिव्यक्ति मे आशातीत सफलता मिली है। तुलसी, सूर, श्री हितहरिवंश, श्री भट्ट, श्री हरिव्यासदेव आदि भक्त कवियो की अपेक्षा हमारे आलोच्य कवि की भाषा मे अत्यधिक सरलता एव भाव गाम्भीर्य की रक्षा मिलती है। उसने भाषा की अभिव्यजना शक्ति के माध्यम से विचारों को जीवत रूप देने के लिये व्रज, अवधी तथा अन्य प्रदेशीय भाषाओं के चलते हुए मान्य शब्द-प्रयोगो को अपने काव्य मे स्थान दिया है। तुलसी, सूर, श्री हरिव्यासदेव आदि अन्य भक्त कवियों की भाँति लम्बे सामासिक पदो के प्रयोग से उत्पन्न भाव दुरूहता से हमारा आलोच्य कवि मुक्त रहा है।

वैसे तो लक्षदास जी की समस्त रचनाओ में व्रज और अवधी के मिले-जुले शब्द-रूप प्रयोग मे लाये गये है किन्तु बरवै छंद मे लिखी गई 'कृष्ण की लीला' तथा 'बरवै उधवा' एक-मात्र अवधी की ही रचनाएँ है क्योकि बरवै छद का प्रयोग केवल अवधी में ही हुआ है, व्रज मे नही। आलोच्य कवि की रचनाओ मे प्रयुक्त हुए शब्द रूपान्तरो तथा तद्भव शब्दो के प्रयोगो का हम सक्षेप में विवरण प्रस्तुत करेंगे—

१. हेमचन्द्र ने जिस अपभ्रश के उदाहरण प्रस्तुत किये है उनकी अनेक ध्वनियाँ व्रजभाषा मे सुरक्षित है। प्राचीन व्रजभाषा की 'ऐ' और 'औ' की ध्वनियाँ अभी तक विद्यमान हैं। इन ध्वनियो के लिये किसी अन्य वर्ण की व्यवस्था न होने से अभी भी इन्हे प्राय 'ऐ' (अइ) और 'औ' (अउ) खडी बोली के रूप की (भाँति) लिख दिया जाता है। लक्षदास की रचनाओ मे भी व्रजभाषा की ये प्राचीन ध्वनियाँ सुरक्षित मिलती है, जैसे—'अब न तजौ तुम्हे माधव चोरा।'[1]

२. अवध एवं व्रज मे अकारान्त शब्दो को उकारान्त या इकारान्त करके बोलने की प्रथा है। लक्षदास की रचनाओ मे भी ऐसे प्रयोग मिलते है, जैसे—मन का 'मनु' और तीन का 'तीनि'।

(क) नारि वस्य जाको मनु पर्‌यो। ताको ग्यानु धर्मु विधि हर्‌यो।।[2]

(ख) तुम हो तीनि काल समतोषी।[3]

३. दो से अधिक वर्णो वाले शब्दो के आदि में 'इ' के उपरात 'आ' आने पर (उच्चारण में) व्रजभाषा और खडी बोली दोनो मे सधि हो जाती है, जैसे—अवधी के बियाज, बियाह, पियार इत्यादि व्रजभाषा मे व्याज, ब्याह, प्यार इत्यादि बोले जाएगे।

(क) 'बबा व्याह की बात चलावै'[4]

---

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० २०।
[2] वही वही पृ० २ ।
[3] वही वही पृ० ३४
[4] वही वही पृ० १६

(ख) 'मान छडावती कुअरी को कल बचनन्ही येही व्याज'[1]
(ग) 'पिय प्यारी मुष केशरि लाइ'[2]

इसी प्रकार 'उ' के बाद 'आ' आने पर भी शब्द-रूपान्तर हो जाता है, जैसे—'दुआर' का 'द्वार' और 'कुँआर' का 'क्वार'। लक्षदास की रचनाओं में दोनों प्रकार के प्रयोग मिलते हैं, जैसे—

(क) नरक नग्र के चारि दुवारा।[3]
(ख) द्वार द्वार सब ग्वालि निहारे।[4]

४. संस्कृत के तत्सम शब्दों का ऋकारान्त व्यंजनों में 'ऋ' के स्थान पर कहीं-कहीं 'उ' का आगम हो जाता है, जैसे—मातृ, पितृ से मातु, पितु हो गए। गुजराती में 'क' को अब भी 'रु' बोलते हैं। सम्भव है, इसी 'रु' का रेफ घिस कर केवल 'उ' ही रह गया हो। लक्षदास की रचनाओं में मातु, पितु जैसे शब्दों का ही प्रयोग मिलता है।

५. अवधी की भविष्यत् काल की क्रियाओं—आइहै, जाइहै, पाइहै तथा दिखाइह का ब्रजभाषा में ऐहै, जैहै, पैहै, दिखैहै आदि रूप हो जाते हैं। लक्षदास ने ब्रजभाषा वाले क्रिया-रूप प्रयुक्त किये हैं, जैसे—'को अैसे मुष नैन नासीका नन कर चरन बनैहे।'[5]

६. खड़ी बोली की आकारान्त पुल्लिंग संज्ञाएं, विशेषण और सम्बन्ध कारक के सर्वनाम ब्रज में ओकारान्त या औकारान्त हो जाते हैं, जैसे—साँवरो, आपनो, अपनो, तेरो, तुम्हारो आदि। 'चलु सखी साँवरो देषिये आवत सुरभिन साथ री।'[6] (सर्वनामों के अधिक नमूने इसी अध्याय में आगे दिये गये हैं।)

• इसी प्रकार आकारान्त सामान्य क्रियाएं तथा भूतकालिक कृदन्त भी ओकारान्त हो जाते हैं, जैसे—देवौ, लेवो, दीवो, आयो, गयो, चल्यो, खायो आदि।

(क) लछ सिखाइो जगत गुर दीदे आदर नेह।[7]
(ख) तेहि समय भवर एक आयो।[8]

७ ब्रजभाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के अनुस्वार का ह्रस्वीकरण किया जाता है। किसी व्यंजन के पहले आया हुआ पूर्ण अनुस्वार संकुचित होकर निकटस्थ स्वर का सानिध्य रह जाता है। ऐसी दशा में कवि ने कभी तो क्षतिपूर्ति के लिये पूर्ववर्ती स्वर को दीर्घ कर दिया है, कभी नहीं भी किया। कवि की रचनाओं में वंशी का बाँसुरी, पंक्ति का पाँत, पंच का पाँच, संदेश का सँदेसनि, रंग का रँग और नन्दनन्दन का नँदनन्दन रूप कर दिया गया है।

---

[1] भागवतपुराणसार, (हस्तलिखित), पृ० ६२।
[2] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ६६।
[3] कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ८।
[4] वही वही पृ० २७।
[5] भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ६२।
[6] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०१।
[7] दोहावली दोहा संख्या ८१।
[8] हस्तलिखित पृ० ५१

८. ब्रजभाषा में शब्दों के मध्यम म का रूपान्तर प्राय व हो जाता है, जैसे भ्रमर से भँवर, श्यामल से साँवरो, कमल से कँवल आदि। जैसे—'भँवर स्याम बिन डोलत भूले।'[१]

९ लक्षदास जी की रचनाओ में कही-कही पदान्त के 'ट' के स्थान मे 'र' भी कर दिया गया है, जैसे—कोटि का कोरि, ललाट का लिलार, 'तिलक लिलार मार मन मोहत।'[२]

१०. शब्दान्त मे 'ड' का प्रायः 'र' कर दिया गया है। ब्रजभाषा मे आज 'करोडो' को 'करोरन' कहते है।

११. 'र' के पूर्व या साथ मे किसी अन्य व्यजन का संयोग होने पर प्राय 'र' का लोप हो जाता है, जसे—'प्रन' से 'पन', 'प्रिय' से 'पिय', 'रात्रि' से 'राति' आदि। लक्षदास की रचनाओ मे इनके उत्सम और तद्भव दोनो रूप मिलते है।

१२ ब्रजभाषा के कुछ शब्दों मे मध्यम 'व' व्यजन का लोप दिखाई पड़ता है। यह लोप मूलत प्रयुक्त या श्रुतिजन्य दोनो प्रकार के 'व' के प्रयोगो मे दिखाई पड़ता है। 'व' का लोप होने पर उसके स्थान मे 'ए' या 'इ' या 'उ' का प्रयोग मिलता है। यह अपभ्रंश की परम्परा का प्रभाव है। जैसे—घाव > घाउ, गाव > गाउ। लक्षदास की रचनाओ मे दोनो प्रकार के प्रयोग मिलते है।

(क) प्रेम पीर न लगत औषध बान बिन को घाव री।[३]
(ख) सासता के सासु त्रासे बासु या नदगाउ री।[४]

१३. ब्रजभाषा मे 'श' और 'स' के स्थान पर प्राय. 'स' का ही प्रयोग होता है। लक्षदास ने भी तालव्य 'श' के स्थान पर प्राय. दन्त्य 'स' का प्रयोग किया है, जैसे—स्याम, स्यामा, सरीर, नंदकिसोर आदि।

१४. कही-कही कवि ने 'हि' के स्थान पर विसर्ग लगाये है, जैसे—'करि अजुलि सब विधि· मनावै।'[५] यह प्रतिलिपिकार की असावधानी से भी हो गया हो, ऐसा सभव है।

१५. कही-कही शब्दो के मध्यवर्ती और पदान्त के 'प' के स्थान पर 'व' हो जाता है, जैसे—'वप' धातु से 'बवा' या 'बवो' (जस कछु कंश बवो तस लुनो।)[६]

इसी प्रकार 'शपथ' से 'सोह' (गाइ विप्र की सौह न कीजै।)'[७] भाद्रपद से भादव (भादो) शब्द बन गये।

(क) भरु भादो दधिकिदो करै।[८]

---

१ कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५३।
२ वही वही पृ० २७।
३,४ कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०४।
५ वही वही पृ० ४८।
६ वही वही पृ० ५०।
७ वही वही पृ० २२।
८ वही वही पृ० १५

(ख) अब बीरहानल रूप प्रगट जारत मरी मादव।[१]

१६. शब्दो के मध्य अथवा अंत मे रेफ के पीछे किसी अन्य व्यंजन का संयोग होने पर रेफ के आगे उसी स्वर का ह्रस्व रूप जोड दिया जाता है जो रेफ के पहले होता है, जैसे—मूर्ख से मूरुख, पूर्व से पूरुव।

(क) मूरुख बहिनी के सुत मारे।[२]
(ख) प्रकटे पूरुब काल तुम्हारे।[३]

१७. कवि लक्षदास की रचनाओ मे 'मुकुट' का ठेठ अवधी रूप 'मुटुक' और सामान्य अवधी तथा व्रज रूप 'मुकुट' दोनो ही प्राप्त होते है, जैसे—

(क) नख रूप अनूप मुटुक छवि मोर चन्द्र फहराति री।[४]
(ख) सीस मुकुट उर बर बनमाला।[५]

१८. शब्द के पदान्त या मध्य के 'क्ष' के स्थान मे अवधी के प्रयोग के अनुसार 'छ' कर दिया गया है, जैसे—लक्ष > लछ और परीक्षित > परीछित।

१९. संस्कृत के तत्सम शब्दो के 'ज्ञ' के स्थान मे कभी 'ज' और कभी 'य' का रूप स्वीकार किया गया है, जैसे—'ज्ञान' से 'जान' तथा 'सज्ञान' से 'सयान' (कछुक भये नंदलाल सयाने)[६]। यह 'य' सम्भवतः 'ग्य' (ज्+ञ) का घिसा हुआ रूप है।

२० लक्षदास जी ने शब्दो के आदि—अंत मे 'अ', 'उ' और 'य' के स्थान पर कही-कही 'व' का प्रयोग किया है, जैसे—ओहि > वोहि, उदर > वोदर, भयो > भवो।

विदेशी शब्द—लक्षदास जी की रचनाओ मे अरबी, फारसी, आदि भाषाओ के शब्दो का भी प्रयोग मिलता है। इन शब्दो को ध्वनियो को उन्होंने यथावसर प्रचलित भाषा की ध्वनियो के अनुकूल ही प्रयुक्त किया है, ये शब्द नीचे दिये जाते है—

बिराबरी, पुतरिया, हजूर, करतूनि, मुरीद, फानूस, पीर, रुख, फासी, साहबी, जोर, कैद, तमासो, निसान, नीसान, जहाज आदि।

लोकोक्तियां एवं मुहावरे—कवि ने अपने भाव और कल्पना की गम्भीरता तथा सूक्ष्म-दृष्टि-अनुभव को स्पष्ट करने के लिये वाच्यार्थ को छोडकर लक्षणा और व्यजना के प्रयोग अपनाए है। लोकानुभव मे इस प्रकार के प्रयोग मौखिक रूप मे बहुत प्रचलित होते है। इन्हे 'कहावत' या 'लोकोक्ति' कहते है और जब किसी विशेष संदर्भ मे इनका प्रयोग किया जाता है तब उन्हे 'मुहावरे' कहते है। लक्षदास की रचनाओं मे ऐसे लोकानुभूति से प्राप्त प्रयोग प्रचुर मात्रा मे मिलते हैं। इनमे से कतिपय मुहावरे और लोकोक्तियाँ दी जाती हैं—

---

१ भागवतपुराणसार (हस्तलिखित), पृ० ६१।
२ कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १४।
३ कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १४।
४ मोतीलाल की हस्तलिखित डायरी मे प्राप्त।
५ ———— (हस्तलिखित) पृ० ३१।
६ वही वही पृ० १६

घूरे परे जो हीरा पैये। सकुचित जे सुत पुनि पछितैये, पावत सुनै रक निधि जैसे, लग्यो स्राप ज्यों ससि को राहु; पालत अजहु प्रान की नाईं, भ्रम्यो रम्यो नट चेटक अैसे, कुशियारी को किरवा, हंस सदा छानहि पै पानी; फूके मह्यो दूध को जरो, जननी जन कुसगति अैसी। ताते षीर पटाई जैसी, भ्रातहि पवन उडावै जैसे; कोप वेतु, नित लागै नित उजरे हाटा। तुला फेरि डांडी घटि बाटा, दै कपूर लहसुन लै लीन्हो, कंचन मोल काचु; जल बिना ज्यैं नहि मीना; विना सुक्रित को उद्यम अैसो। पेत बीज दिन जमै न जैसो; पैठि अग्नि को सीतल रहै; पय जमाय दधि सो ब्रन लीज, है अकास पक्षी की नाइ, परै पटाई ताते षीरा, निज् क्रत कर्म ब्रिक्ष फले फले; फटे नाउ ज्यौ सागर धारा; मिटै न भूप कर्म की रेषा। ज्स अपजस जग इहै विसेषा, करता कियो वहै सोइ होइ, वारै सोन लोन मिलि राई, वाढे चन्द्र-कला सी लागे; महरि उतारै राई लोना: तजि मुष सत सारु गह जैसे, बयारि न लागै, देइ दे नीसहि दीपक घी को। जाको समो सुक्रित मुठि नीको; सो जानइ जेहि उर वसी; चित्र पुतरिया षरी, नट चेटक सपनो निसि जैसे; मद्यप मुप जो उचित न बेद; पाहन कढी पुतरी सी ठाढी, बाज लवा सो वाजै जैसे, (जस कछु कंश) ववो तस लुनो, कर ज्यो कठपुतरी डोले, पलकन वींच नयन रह जैसे, ज्यो जल न्यारे मीन, चोर कहै ज्यो चोरन को जमु। ज्यो चाटै गीवा पसु की पसु; पावक लषि पतग परै, पाये रक महानिधि, ब्रज की क्रपा कल्पतरु छाही, अपजस हानि बोलावै, कुमति सुमति की भाँति सिषावै। होइ सुधा जो विषै पियावै, अग्नि परी जनु घी की धारा; दरपनु कहै जौन मुष जैसे, जनु ठग पढि विष लड्डू दीन्हे; दिन दस गये न रहै बुढाइ, मलहि पान जो मल को कीरा, सदनो देपि सत्य नहि नज्रियै; बीध्या (बिद्या) अधम पुरुष मुष; संत हम छानहु पै नीरा; मोह टोना सिर धरै, न्लटत पानन की नाई, वोट पर को दिया; गरुड महि पनग जैसे; लाल मुनैया सी, छगन मगन वा लाल की, जो सन्मुष रवि डारि देइ फिरि परै तासु मुष धूरि; गूगे के सान (सैन) इत्यादि।

ब्रज और अवधी की सीमाएँ—लक्षदास जी की रचनाओं मे ब्रज ओर अवधी का मिला जुला तथा पृथक्-पृथक् प्रयोग मिलता है। इसका मुख्य कारण यह है कि लक्षदास का निवास ग्राम गुनीर (फतेहपुर हसवा मे) था जो ब्रज और अवधी भाषाओं का सधि स्थान है। आगे की पंक्तियो मे हम ब्रज और अवधी की सीमाओ की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करेगे जिससे लक्ष-दास की रचनाओ मे प्रयुक्त शब्दो की स्थिति तथा उनके व्याकरण को समझने मे सुविधा रहे।

विशुद्ध ब्रजभाषा मथुरा, आगरा, अलीगढ, धौलपुर और भरतपुर मे बोली जाती है। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा का मिला-जुला रूप जयपुर राज्य के पूर्वी भाग तथा बुलदशहर, मैन-पुरी, एटा, बदायू और बरेली तक में बोला जाता है। बुंदेलखण्ड की बुदेली बोली भी ब्रजभाषा का ही रूपान्तर है जिसे दक्षिणी ब्रज भी कह सकते हैं। ग्रियर्सन ने अपने 'भाषा सर्वे' मे पीली-भीत, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद, हरदोई, इटावा तथा कानपुर की बोली को कनौजी कहा है। वस्तुत: ये क्षेत्र ब्रज की मिली-जुली बोली के ही है क्योकि कारको और क्रियापदों आदि मे ये ब्रजभाषा मे अधिक साम्य रखते है। हम इसे पूर्वी ब्रज कह सकते है। श्री हरिहर निवास द्विवेदी ने अपने ग्रंथ 'मध्य देशीय भाषा' में ब्रजभाषा के अस्तित्व को स्वीकार नही किया है बल्कि इस क्षेत्र मे प्रयोग मे लाई जाने वाली भाषा को 'ग्वालियरी' या 'ग्वालेरी' कहा है। यह लेखक का दुराग्रह ही कहा जा सकता है क्योकि एक प्राचीन कवि गोपाल ने अपना भाषा को 'ब्रजभाषा

बताया है।[1] वस्तुत शौरसेनी अपभ्रंश से प्रादुर्भूत ब्रजभाषा के अस्तित्व को इस प्रकार भुला देना न्यायसंगत नहीं है क्योंकि उत्तर भारत की भाषाओं में ब्रजभाषा का महत्व एवं प्रभाव सर्वाधिक रहा है।

अवधी को 'पूर्वी हिन्दी' भी कहा जाता है। इसके दो प्रकार के रूप मिलते हैं — पूरबी (पूर्वी) और पश्चिमी। अयोध्या या गोंडा के आसपास बोली जाने वाली पूर्वी या शुद्ध अवधी है। इसे कोसली भी कहते है। बघेली और छत्तीसगढी भी इसी के अन्तर्गत आती है। बिहार के मगही और मैथिली क्षेत्रों के मुसलमान इसी बोली को बोलते हैं। ग्रियर्सन ने बैसवाडी को अवधी की एक स्वतंत्र बोली माना है। उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली तथा फतेहपुर के कुछ भाग को 'बैसवाडा' कहते है। इसी सीमित क्षेत्र की बोली का नाम 'बैसवाडी' है। इनके अतिरिक्त ग्रियर्सन ने तिरहारी बोली के भी नमूने दिये है। इनमे से कुछ तो बुंदेली के अन्तर्गत आते हैं और शेष अवधी के निकट है।

फतेहपुर जनपद से प्रकाशित 'अन्तरवेद' पत्र के 'लोक साहित्य अंक' में (इसके सम्पादक डा० शिवगोपाल मिश्र तथा रावत ओउम् प्रकाश सिंह हैं) सम्पादकों ने 'अन्तरवेद की भाषा और उसका व्याकरण' शीर्षक लेख में 'अन्तर्वेदीया' या 'अन्तरवेदी' भाषा की स्थिति बताई है जो कानपुर से लेकर प्रयाग तक और उत्तर तथा दक्षिण में गंगा-यमुना नदियों के बीच के देश (अन्तरवेद) में बोली जाती है। अन्तरवेद की इस बोली को उन्होंने विशुद्ध अवधी तथा बघेली बोली से प्रचुर साम्य रखने वाली बताया है। इस बोली की उत्तरी सीमा में बैसवाडी, यमुना पार बादा में बघेलखण्डी, पश्चिम में हमीरपुर जिले में बुंदेली और दक्षिण में तिरहारी बोली जाती है।[2]

उपर्युक्त सम्पादकद्वय ने जिस 'अन्तर्वेदी' भाषा की ओर संकेत किया है इस नाम से उसकी कोई पृथक् स्थिति विद्वानों ने स्वीकार नहीं की है क्योंकि भाषा का वर्गीकरण अभी छोटे-छोटे क्षेत्रों की बोलियों के आधार पर नहीं किया गया है। वस्तुत यह क्षेत्र पश्चिमी अवधी और पूर्वी ब्रज की सीमा में आता है जिस पर बैसवाड़ी का भी प्रभाव है। सम्पादकद्वय ने 'अन्तर्वेदीया' का जो व्याकरण दिया है और उसकी ध्वनि सम्बन्धी जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है उनका अस्तित्व भी पछाही अवधी, पूर्वी ब्रज और बैसवाड़ी में ही स्थापित हो जाता है। अत स्वतंत्र रूप से गणना करने में इस भाषा की किसी विशेष महत्ता का प्रतिपादन नहीं होता।

हम ऊपर संकेत कर चुके है कि लक्षदास जी की कुछ रचनाएँ—कृष्ण की लीला तथा बरवै उधवा—तो केवल अवधी में ही लिखी गई है, शेष में ब्रज और अवधी के मिले-जुले शब्द रूप प्रयोग में लाये गये है। हमने आलोच्य कवि की रचनाओं में से संज्ञा, परसर्ग, सर्वनाम, सर्वनामिक विशेषण तथा क्रियापदों से उदाहरण देकर उनके शब्द रूपों के प्रयोग का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

संज्ञा—ब्रज और अवधी में संज्ञा शब्दों के प्रयोगों में प्राय समानता मिलती है। इनके

---

१ सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—डा० शिवप्रसाद सिंह- पृ० १४२ पर उद्धृत।
२ अंतरवेद सम्पा० डा० मिश्र फतेहपुर पृ० ३४

बहुवचन का रूप खड़ी बोली के समान 'ओं' लगाकर (जैसे—गोपियो, कुमारियो) नही होता बल्कि नान्त प्रत्यय लगाकर बनता है, जैसे—ग्वालिन, बछरन, गोपिन आदि। लक्षदास जी की रचनाओं में सज्ञा शब्दो को दीर्घ से ह्रस्व कर दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि शब्दो की सुन्दरता और कोमलता की अभिवृद्धि के लिये ही उसने इस प्रकार के प्रयोग किये है, जैसे—दात, बटोही, धनी आदि।

१—चारु लोचन चमक दतिया[1]
२—अरे मीत बटोहिया[2]
३—एहिश्यन धनी नद की धनिया[3]

परसर्ग-कारक—ब्रजभाषा की कारक-विभक्तियों का प्रयोग अपभ्रंश काल मे ही पुष्ट हो गया था किन्तु भाषा-विकास की कतिपय गुत्थियों को सुलझाने के सिलसिले में इनके रूपो में शीघ्रगामी परिवर्तन होते रहे। इस प्रकार ब्रजभाषा मे निर्विभक्तिक या मूल शब्दो तथा सविभक्तिक पदो के साथ परसर्गो के प्रयोग बहुत प्रचलित हुए। अपभ्रश की सबसे महत्व-पूर्ण विभक्ति 'हि' है जिसका प्रयोग अधिकरण और करण इन दोनों कारकों में होता था।

(क) अंगहि अंगण मिलिउ (४।३३२) करण
(ख) अद्धा वलया महिहि गउ (४।४२२) अधिकरण
(ग) नव उज्जाण वणेहि (४।४२२) अधिकरण

ब्रजभाषा में 'हि' विभक्ति का प्रयोग न केवल करण-अधिकरण मे बल्कि कर्म और सम्प्रदान मे भी बहुतायत से होता है।'[4] काव्यो की पुरानी हिन्दी मे-सवध की 'हि' विभक्ति (मा० 'ह', अप० 'हो') सब कारको का काम दे जाती है। अवधी मे अब भी सर्वनाम मे कारक-चिह्न लगने के पहले यह 'हि' आता है, जैसे 'केहिको' (पुराना रूप केहिकहँ), 'केहिकर'। यद्यपि बोलचाल से अब यह 'हि' निकलता जा रहा है। ब्रजभाषा से इस 'हि' को उड़े बहुत दिन हो गए, उसमे 'काहि को', 'जाहि को' आदि के स्थान पर 'काको', 'जाको' आदि का प्रयोग बहुत दिनों से है। यह उस भाषा के अधिक चलतेपन का प्रमाण है।'[5] कर्म कारक की विभक्ति के रूप मे ब्रज का पुराना प्रयोग द्रष्टव्य है जैसे—'पातहि पवन उडावै जैसे'।[6]

अब हम लक्षदास की रचनाओ मे से ब्रज और अवधी दोनो भाषाओ के मिलते-जुलते रूप के प्रयोगों के उदाहरण कारको की विभक्तियाँ देते हुए करेगे।

	ब्रज के कारके चिह्न	अवधी के कारक चिह्न
कर्ता	—ने, नै, ने	....
कर्म	—को (कों)	के, कॉ (पुराना रूप कँह)

[1] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०३।
[2] वही वही पृ० १०२।
[3] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १६।
[4] 'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' से उद्धृत, पृ० ५५।
[5] बुद्ध चरित भूमिका शुक्ल प० २५ २६
[6] (हस्तलिखित , पृ० ७

करण —सो, ते	से, सन
सम्प्रदान —को (कौ), कै	के, कों (पुराना रूप कँह)
अपादान —ते	से, ते
सम्बन्ध —को	के, कर (बोलचाल 'क'), केर
अधिकरण—में, मों, पै ('पर' भी)	मे, मां (पुराना रूप मँह), पर

अवधी मे कर्त्ता के लिये 'ने' विभक्ति का प्रयोग नहीं होता और व्रज में उत्तम पुरुष कर्त्ता का रूप 'ने' लगने पर भी 'मे' ही रहता है, जैसे—'जननी पितु यह जन्म मैं आइ तुम्हारे लीन।'[१] इसके अतिरिक्त एक वचन उत्तम पुरुष मे 'हौं' भी आता है लेकिन उसमे कोई कारक चिह्न नहीं लग सकता, जैसे—'हौं' मधुपुरी जात हो स्वामी।'[२]

व्रज मे कर्म, सम्प्रदान की 'को', 'कैं' और 'कौ' विभक्तिया मुख्यतः प्रयोग में आती है, अवधी में 'के' और 'कँह'। जैसे—

१. भौ सागर के पार को श्री गुरु चरन जहाज।[३] —कर्म, संप्रदान
२. ग्वाल गोप को धरैं न धीरा।[४] —कर्म
३. जिनके काम क्रोध नहि रहैं।[५] —संप्रदान
४. प्रभु सेवन कह् महि सब आये।[६] —कर्म

करण-अपादान कारक की विभक्तियों मे से कवि ने प्राय 'सो', 'ते' का ही प्रयोग किया है, जैसे—

१. प्रभु तुमसों करि प्रेम निरंतर।[७]
२. वसुदैव देवकी सों कह्यो।[८]
३. लोक प्रीति ते उर पैं प्यारो।[९]

सम्बन्ध कारक मे व्रज मे तीन विभक्तियाँ 'को', 'के' और 'कै' तथा अवधी मे 'कै', 'कर' और 'केर' पाई जाती है। बोलचाल मे 'क' का प्रयोग होता है। लक्षदास जी की रचनाओ में इन सभी विभक्तियो के उदाहरण मिलते है।

१. तिन साधुन को संग चितै री।[१०]
२. विनती कै सुर सदन सिधाये।[११]

---

१ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० १३।
२ वही पृ० २।
३ वही पृ० ६।
४ वही पृ० ४७।
५ वही पृ० ६।
६ वही पृ० १२।
७ वही पृ० ३।
८ वही पृ० १३।
९ वही पृ० ७।
१० वही पृ० ६।
११ वही पृ० १३।

१ रहस रच्यो ब्रज खोरि के मेचक गौर सरीर।[१]
२. प्रभु प्रसन्न करि मागौ काहू।[२]
३. आठौ गर्भ देवकी केरो।[३]
४. नृप भगवतीक पूजा देहु।[४]

अधिकरण कारक मे ब्रज की 'पर' और 'पै' विभक्तियां तथा अवधी की मा, मँह और दोनो मे समान रूप से प्रयुक्त 'पर' और 'मे' विभक्तियो का प्रयोग किया गया है।

१. पारस परसी लोह कंचन भयो पल में बारह बान।[५]
२. सब मा सो सब जेहि मा अहै।[६]
३. अंध कूप मंह पर्‌यो अब चहत बिसारन ताहि।[७]
४. स्याम गौर किसोर कुंवर वर तापर बैठे आय री।[८]

सर्वनाम—ब्रजभाषा में जो सर्वनाम प्रयुक्त होते है, उनके कुछ रूप तो अपभ्रंश से आए है और कुछ प्राकृत से। अवधी के सर्वनामो मे दो प्रकार के रूप देखने को मिलते है जिन पर मागधी या अर्द्धमागधी का प्रभाव है। खड़ी बोली के 'कौन', 'जो' और 'वह' के अवधी क्षेत्र में दो रूप प्रचलित है। पश्चिमी अवधी में 'को', 'जो', 'मो' और 'के' तथा पूर्वी अवधी मे 'के', 'जे', 'से', या 'ते'। ब्रजभाषा मे 'को', 'जो', 'सो' का रूप 'का', 'जा', 'ता' हो जाता है। इनमे 'को', 'जो', 'सो' मे शौरसेनीपन है और 'के', 'जे', 'से' में मागधी या अर्द्धमागधीपन। अवधी के सम्बन्ध कारक मे तीन चिह्न प्रयोग मे लाये जाते है 'के', 'कर', 'केर'। इनमे से 'के' और 'कर' मे लिंगभेद नही है। वस्तुत. अवधी की रुचि लघ्वन्त पदो की ओर रहने से उसके 'इकार' का रूप उतना स्पष्ट नही रहता, जैसे 'आपन', 'हमार' और 'तुम्हार' आदि के रूप 'आपनि', 'हमारि' और 'तुम्हारि' आदि होते है। पश्चिमी अवधी मे 'केर' का जो प्रयोग होता है उसी का व्रजरूप 'केरो' है। यह व्रज की दीर्घान्त पद होने की प्रवृत्ति के कारण है। जैसे—'आठो गर्भ देवकी केरो'।[९] इसी का बैसवाडी रूप 'क्यार' है। लक्षदास जी के काव्य मे 'के', 'कर', 'केर' विभक्तियां तो प्रयुक्त हुई है किन्तु 'क्यार' नहीं।

व्रज और अवधी के प्राचीन काव्य मे शब्दान्त मे 'हि' विभक्ति का प्रयोग मिलता है। अवधी के सर्वनाम के बाद मे 'हि' विभक्ति अब भी प्रयोग में आती है। लक्षदास जी की रचनाओं मे भी इसी परम्परा के अनुसार 'हि' का प्रयोग किया गया है, जैसे— 'हमहि छाडि पग देहु कन्हाई।' यही नही, चलती भाषा के प्रयोग के अनुसार 'आवे', 'जाने', 'करें' आदि क्रिया-

---

१ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० ४१।
२ वही पृ० ३ ।
३ वही पृ० १२।
४ वही पृ० १०।
५ भागवतपुराणसार (हस्त०), पृ० ६२।
६ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० ६।
७ वही पृ० ६।
८ वही पृ० ११४।
९ वही पृ० १२

प्रयोग भी मिलते हैं, जसे— विदित कथा जान सब लोका । इसी प्रकार 'इमि', 'जिमि', 'तिमि' के स्थान पर चलती भाषा के 'यों', 'ज्यों', 'त्यों' या 'अस', 'तस' तथा 'ऐसे', 'जैसे' के प्रयोग भी कवि की रचनाओं में भरे पड़े हैं।

व्यक्तिवाचक सर्वनाम—व्यक्तिवाचक सर्वनामों के ३ पुरुष होते हैं—उत्तम, मध्यम और अन्य। उत्तम पुरुष के सर्वनाम हैं—'मैं' और 'हम', मध्यम पुरुष के 'तू', 'तैं' और 'तुम' और अन्य पुरुष के 'सो' और 'ते' हैं। इनमें उत्तम पुरुष के लिये ब्रजभाषा में 'हौं' भी आता है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिवाचक सर्वनाम के वैकल्पिक रूपों के एकवचन और बहुवचन में प्रायः समानता होते हुए भी मूलतः कुछ अन्तर है। अवधी के उत्तम पुरुष एकवचन में 'मोर' और 'मोरा' तथा बहुवचन में 'हमार' और 'हमारा' प्रयोग में आते हैं। उत्तम पुरुष सर्वनाम के जिन रूपों का प्रयोग लक्षदास की रचनाओं में मिलता है हम उनके उदाहरण दे रहे हैं—

एकवचन—मैं — जननी पितु यह जन्म मैं आइ तुम्हारे लीन।[1]
मय — ताते मय कछु कियो ढिठाइ।[2]
हौं — हौं मधुपुरी जात हो स्वामी।[3]
मो — मैया वन सुष मो मन भावै।[4]
मोसो— रूप सो मोसौ कहा न जाता।[5]
मोहि— दीनबन्धु जीनी मोही बीसारो।[6]
मोहिं— जब ते तें मोहिं सौंह देवाई।[7]
मेरी — क्रम जनि चढ़ौ सौंह मेरी करि।[8]
मम — कंस करहु मम मत अवगाही।[9]
मेरो — मैं मेरो सुत पति परिवारा।[10]
मेरे — नहि माटी मेरे मुष माही।[11]
मेरी या मोरी (स्त्री)—देषी माल धरकती है छतीआ मोरी।[12]
मोर — मन मोहन पद पकजहि बशो मधुप मन मोर।[13]

---

[1] कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० १३।
[2] वही पृ० ११।
[3] वही पृ० २।
[4] वही पृ० २६।
[5] वही पृ० २१।
[6] भागवतपुराणसार (हस्त०), पृ० ६३।
[7] कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० २६।
[8] वही पृ० २४।
[9] वही पृ० १३।
[10] वही पृ० २१।
[11] वही पृ० २१।
[12] ” (हस्त०) पृ० ६१।
[13] हस्त० प० ४१

मोरा — अब न तजो तुम्हें मावन मोरा चितचित चपल चोरायो मोरा।[1]

—हम — हम पठय हैं कुवर कन्हैया।[2]
हमहिं — हमहिं छाडि पग देहु कन्हाई।[3]
हमारो— अब भोरवन मन लगो हमारो।[4]
हमरे — हमरे मन क्रम वचन तुम्ही गति।[5]
हमार — कहियै कहा हमार गोसाइ।[6]
हमारे — चलिये मोर हमारे साथ।[7]
हमरी — भैया हमरी सीष यह लीजै।[8]
हमारा— कहा न टारहु रुकुम हमारा।[9]

ज और अवधी के मध्यम पुरुष के सर्वनामो मे 'तू', 'तें', 'तुम' और अन्य पुरुष के 'सो', 'ते', 'वे' मे प्रायः समानता रहती है। विभक्तियों के प्रयोग से शब्दो के रूप में र होता है उसके बारे में हम 'कारक' शीर्षक के अन्तर्गत सकेत कर चुके हैं।

पुरुष

—तू — तू जेहि ब्रह्म कहत हरि जैई।[10]
तें — मैया तै जो कहो सो करिहौं।[11]
तोहि — निजु कर तोहि मारिहो जो आनि उबारै प्रान।[12]
तोसों — चारु लोचन चमक दलिया कहत तोसो साचुरी।[13]
तोर — कोमल माषन से मन तोर।[14]
तेरो — तू जो कहत मेरी सवै को तेरो तू कौन।[15]
तेरे — षट रिपु है तेरे तन माहीं।[16]

गरससागर, (हस्त०), पृ० २०।
ी पृ० ३१।
ी पृ० २७।
ी पृ० २०।
ी पृ० ३६।
ी पृ० ३१।
ी पृ० ४६।
ी पृ० २२।
ी पृ० ५८।
ी पृ० ३७।
ी पृ० २४।
ी पृ० १०६।
ी पृ० १०३।
हो पृ० ५०।
हो पृ० १२०
हो पृ० ८४

तोपै (तुमपै)—तुमपै रहत धूरि लपटाये।[1]
तव — तव जसु तीनि लोक को पावन।[2]
तेरी (स्त्री०)—तेरी सो कहुहि नहि डेरिहौ।[3]

बहुवचन—तुम — अब तुम वचन कठोर सुनाय।[4]
तुम्हें — अब न तजौं तुम्हैं माखनचोरा।[5]
तुमते, तुमहि—तुमते भयो तुमहि प्रतिपारो।[6]
तुम्हारो—कहो सुदामा नाम धाम यह देव तुम्हारो।[7]
तिहारो—होय सब दिन सब भांति तिहारो।।[8]
तुमसों— प्रभु तुमसों करि प्रेम निरन्तर।[9]
तुम्हारे— विभौ चहत नहि दास तुम्हारे।[10]
तुम्हरे — मैं तुम्हरे तन की परिछाहो।[11]
तिहारे— है मेरे व्रत चरन तिहारे।[12]
तुम्हरी— तुम्हरी भक्ति रहन लौ लीन।[13]
तिहारी— हरि हरि है नहि विपति तिहारी।[14]

अन्य पुरुष

एकवचन—सो — विषु लै सुधा डारि सो देइ।[15]
तेहि — तेहि पठावैं बछरु चरावन।[16]
तातें — तातें भय कछु कियो ढिठाइ।[17]
ता — अहंकार मद ता छिन गयो।[18]

---

[1] कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० २२ ।
[2] वही पृ० ३४ ।
[3] वही पृ० २४ ।
[4] वही पृ० २० ।
[5] वही पृ० २० ।
[6] वही पृ० १०२।
[7] वही पृ० १०८।
[8] वही पृ० १०२।
[9] वही पृ० ३ ।
[10] वही पृ० ६१।
[11] वही पृ० ४१।
[12] वही पृ० ६६।
[13] वही पृ० २२।
[14] वही पृ० ६४।
[15] वही पृ० ३ ।
[16] वही पृ० २३।
[17] वही पृ० ११।
[18] वही पृ० ५

र तापर कृस्न घुटुरुअन्ह धाये।[1]
ो — चन्द्रहास ताको सुत भयो।[2]
ो — नारि वस्य जाको मनु पर्यो।[3]
— वे त्रिय कान्ह तिहारी कहौ।[4]
— वै मानी वै उनहि मनावै।[5]
— ते तेहि तीर कृश्न जसु गावहि।[6]
— तेइ तेइ वचन तिरीछे कहै।[7]
— काल आइ लेऊ गहि हने।[8]
— तिन विनती कीन्ही कर जोरे।[9]
के—तिनके हिये वसत भगवाना।[10]
ाको— तिनको कंस देवकी दीन्ही।[11]
ाहि— जगत मात पिता गुरु हरि तिन्हहि सुत मानत नही।[12]
— उन्हे माखन रोटी भावै।[13]
— जननी तात तिहूं सुष पायो।[14]
र कहुँ—तिन कंह सदा स्याम सुषदानी।[15]
कर (के)—तीन्ह के कबहु न जाही बुझी जे परही वीरानी।[16]
चक सर्वनाम—प्रश्नवाचक सर्वनाम मे वचन के अनुसार भेद नही होता और
लिगो मे समान होते हैं।
— काढनिहार को है भवकूपा।[17]
र — ऊधो वै दिन कौन है जब माधव चले विदेसा।[18]

ार (हस्त०), पृ० ७१।
ा पृ० ७१।
ो पृ० २।
ा पृ० ३२।
ो पृ० ४०।
ो पृ० ४।
े पृ० ६।
े पृ० १२।
ा पृ० २२।
ा पृ० ६।
ो पृ० १२।
ो पृ० ५१।
ा पृ० ५०।
ो पृ० ३।
ो पृ० ४३।
ो पृ० १०५।
ो पृ० ९।
ो पृ० ११०

कौनो — भूषण भाजन कहौ कौनों ।[1]
क — बिन सतसग मोछ क पावो ।[2]
काके — काके कांध चल्यो चढि भूपा ।[3]
काको — काको यह चंदनु बर नारी ।[4]
काहि, केहि—काहि बोलावो केहि पै जाऊ ।[5]
कवन — कारन कवन गवन बन कीन्हो ।[6]
क्यों — ते क्यों ब्रज का दुष सहिहै ।[7]

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम—इस सर्वनाम के रूप भी दोनो लिगो मे समान होते है ।

—जौ — जौ मुनि महा ध्यान अनुरागे ।[8]
जाके — जाके जन्म मरन डेरु नाहीं ।[9]
याके — जान्यो याके प्रभु बनमाली ।[10]
जाको — नारि वस्य जाको मनु पर्‌यो ।[11]
जेहि — जेहि ते कुमविट भस्म न आना ।[12]
— —जे जे लावत ते जानत नाहीं ।[13]
जिन — जीन्ह को कृपा करी भगवान ।[14]
जिनके— है जिनके बस मेघनि माला ।।[15]
जिन्हहि— जिन्हहि देखि सुर लोक सिहाइ ।[16]
जौन —- जौन्मि काज करिहहि जे जौन ।[17]

अन्य सर्वनाम—इनके अतिरिक्त कुछ और सर्वनाम भी है, जैसे—कछु, आपु, आपुन, आदि। इनमे 'कछु' और आपु' का प्रयोग केवल एकवचन मे होता है। सस्कृत के

णरससागर (हस्त०), पृ० ५१।
ी पृ० ६ ।
ी पृ० ८ ।
ी पृ० ४८।
ी पृ० ८ ।
ी पृ० ११० ।
ी पृ० ५३।
ी पृ० ३८।
ी पृ० ७ ।
ी पृ० १०।
ी पृ० २ ।
ी पृ० ५ ।
ी पृ० २१।
ागवतपुराणसार, (हस्त०), पृ० ६२ ।
णरससागर (हस्त०), पृ० ३३ ।
ी प० ३३।
ी पृ० १२

'आत्मन्' की भाँति 'आपु' सदा एकवचन में ही रहता है। हमारे आलोच्य कवि ने अवधी के 'आपुहि' के बजाय प्राय 'अपनो' या 'आपनो' शब्द का प्रयोग किया है। जैसे—'माया किधे मोह है अपनो'[1] इसके अतिरिक्त 'आपुन' शब्द गौरववाची 'आपु' (संस्कृत 'भवान्') के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। जैसे—'मुष भीतर आपुन औ लाला'।[2] इसी प्रकार 'रावरे', 'राउरे' और 'रावरी' आदि शब्दों के प्रयोग भी इसी अर्थ में हुए है। जैसे—(१) बाधहु प्रीति रावरी डोरी।[3] (२) करि रस बस कान्ह तव हम अब पठाये रावरे।[4] कवि ने 'स्व' शब्द भी (संस्कृत आत्मन्) 'अपने' लिये प्रयुक्त किया है—'स्वै तन धरि निज गेह'।[5]

सार्वनामिक विशेषण

प्रकारवाचक या सादृश्यवाचक विशेषण—'अस' अथवा 'ऐसा', 'जस' अथवा 'जैसा', 'तस' अथवा 'तैसा' और 'कस' अथवा 'कैसा'—ये चारो एक प्रकार के शब्द हैं। क्रियाविशेषण के रूप में भी इनका प्रयोग मिलता है। ऐसी जगह कवि ने 'ऐसा' का 'ऐसे', 'जैसा' का 'जैसे' 'तैसा' का 'तैसे' और 'कैसा' का 'कैसे' रूप प्रयुक्त किया है।

ऐसे — को ऐसे मुष नैन नासीका तन कर चरन बनै है।[6]
एसो, जैसो— बिना सुकृत को उद्यम ऐसो। षेत बीज बिन जमै न जैसो।[7]
ऐसी, जैसी— बैस आस बस सुंदरी ऐसी। सेवत अलिन कमल कलि जैसी।[8]
ऐसे, कैसे — इंदुनि नंद भवन चली ऐसे। राइ मुनैया कवि कहै कैसे।[9]
अस — जरासिंधु कीन्हो हमको अस।[10]
जस, तस — जस कछु कंश बवो तस लुनो।[11]
किमि — ग्रह तजि किमि आइव बन जामिनी।[12]

इसके अतिरिक्त सम, समान, सरिस आदि शब्दो का भी हमारे आलोच्य कवि की रचनाओ मे प्रयोग हुआ है। केवल 'सा' का भी इसी अर्थ मे प्रयोग मिलता है, जैसे—नेकु चितै मुसकाइ के चेटक सो कीन्हो।[13]

---

१ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० २१।
२ वही पृ० २१।
३ वही पृ० ३६।
४ वही पृ० ५३।
५ वही पृ० ५।
६ भागवतपुराणसार (हस्त०), पृ० ६२।
७ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० १०।
८ वही पृ० १६।
९ वही पृ० १५।
१० वही पृ० ६८।
११ वही पृ० ५०।
१२ वही पृ० ३८।
१३ हस्त० पृ० ६३

परिमाण वाचक

केती या केतिक—केतिक हानि गोरस की माई।[1]
कितनी —केतनी रस कथा कहत हौ।[2]

संख्यावाचक—लक्षदास जी ने 'एक' शब्द के लिये 'एक' और 'येक', और 'प्रथम' का प्रयोग किया है, जैसे—(क) डेरौ एक ब्राह्मण के कुल को।[3] (ख) सो सुनि येक सेवरा आयो।[4] (ग) प्रथम गर्भ वावन भयो।[5]

'दो' के अर्थ मे 'दो', 'दुइ', 'द्वै', 'जुग' तथा 'जुगल' का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त 'दो' के वैकल्पिक प्रयोग के लिये 'उ' प्रत्यय भी जोड दिया गया है जो संख्यावाचक विशेषण के 'भी' का समानार्थक है। इस प्रकार 'दोउ' (द्वौउ), 'दोनउ', 'दूनउ' आदि शब्द प्रयुक्त किये गये है।

१. सखा व्यास द्वै लाय सुनाही।[6]
२. द्वै दतिया।[7]
३. एक सेज द्वौउ लाल सोवँहीं।[8]
४. बेगि निकारौ दूनौ माइ।[9]
५. नहि दूसर कोउ जन्मै मरै।[10]
६. रही दासन के आस न दूजी।[11]
७. दोउ मिलि महरि जोहारन आये।[12]

'तीन' के लिये 'तीनि', 'त्रि', 'तिहू' और 'तीजो', 'तीसर' आदि का प्रयोग किया गया है।

१. तुम हो तीनि काल समतोषी।[13]
२. तिहू लोक मंगल महि भयो।[14]

---

[1] कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० २०।
[2] वही पृ० ११२।
[3] वही पृ० ८ ।
[4] वही पृ० १०।
[5] वही पृ० १३।
[6] वही पृ० १५।
[7] वही पृ० १६।
[8] वही पृ० १९।
[9] वही पृ० ४९।
[10] वही पृ० ८ ।
[11] वही पृ० १५।
[12] वही पृ० २४।
[13] वही पृ० ३४
[14] वही पृ० १४

३ तीजो यह अवतार
४. उपमा त्रिभुवन सम नहि औरी।[2]
५. गुरु तीसर अकास है भूपा।[3]

'चार' के लिये कवि ने 'चार', 'चारि', 'चहू',(दिशि), चतुर्भुज आदि का प्रयोग किया है।

१. अभय दानि भुज नासा चारा।[4]
२. घुमरी घटा चहू दिसि कारी।[5]
३. रूप चतुर्भुज दर्शन दीन्हो।[6]
४. नट चेटक दिन चारी मोहि कहा बुझावै।[7]
५. गुरु चौथ मेरो है पानी।[8]

'आठ' के लिये 'अष्ट', 'आठे', 'अष्टमी', 'अठए', 'आठो', 'आठवो' आदि रूप प्रयुक्त हुए हैं।

१. से चली अष्ट सिंधु जनु आई।[9]
२. बुध आठे।[10]
३. भादौ केरी अष्टमी।[11]
४. अठए गर्भ कृपा हरि कीन्ही।[12]
५. आठो गर्भ देवकी केरो।[13]
६. इनके कवन आठवौ आही।[14]

इनके अतिरिक्त 'छह' के लिये 'षट' और 'छठो'; 'सात' के लिये 'सात' तथा 'सतये', 'नौ' के लिये 'नवम', 'दस' के लिये 'दश'; 'ग्यारह' के लिये 'येकादश', 'बारह' के लिये 'बारह'; 'चौबीस' के लिये चौबीस' तथा 'उनचास' के लिये 'बचास' (चले पवन बचासहु धायक)[15] आदि सख्याओं के लिये वैकल्पिक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

---

[1] कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० १४।
[2] वही पृ० १३।
[3] वही पृ० ६१।
[4] वही पृ० १३।
[5] वही पृ० ३४।
[6] वही पृ० १३।
[7] वही पृ० १०७।
[8] वही पृ० ६१।
[9] वही पृ० ३१।
[10] वही पृ० १५।
[11] वही पृ०१३।
[12] वही पृ० १३।
[13] वही पृ० १२।
[14] वही पृ० १३
[15] वही पृ० ३४

इन संख्याओं के अतिरिक्त समय का द्योतन करने के लिये पल (क्षण), निमिष, अगनित (अगणित), सहस्र, 'कोटिन', 'कोटिन्ह' (कोटि से भी अधिक संख्या के सूचक), आदि शब्दो मे कवि ने सस्कृत के आधार पर तत्सम और तद्भव सख्याओ को प्रयुक्त किया है।

लक्षदास की रचनओं में ब्रज और अवधी के अनुसार क्रिया पद के प्रयोग—

जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है अवधी भाषा के २ रूप मिलते हैं—पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी। पूर्वी अवधी का वातावरण ब्रजभाषा से बहुत भिन्न है। पश्चिमी अवधी और पूर्वी ब्रज के सर्वनाम, विशेषण और क्रियापदो मे बहुत कुछ समानता है। ग्रियर्सन ने अपने 'भाषा सर्वे' मे फतेहपुर की बोली के, अवधी बोली मे कुछ भिन्न होने का सकेत किया है क्योंकि यह 'दोआब' की बोली होने के कारण उस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है।[1] मोटे तौर पर यदि देखा जाय तो 'दोआब' की यह बोली सीमावर्ती विभिन्न बोलियों का सगम है और पच्छिमी अवधी की ही एक उपशाखा समझनी चाहिए। वस्तुत: पच्छिमी अवधी तो एक प्रकार से मध्यवर्ती प्रदेश की भाषा है जिसमे एक ओर तो ब्रजभाषा के अनेक रूप मिलते है और दूसरी ओर पूर्वी भाषाओं से इसका नैकट्य प्रतीत होता है। इस भूभाग की भाषा का विकास अर्द्ध मागधी से हुआ है, एसी विद्वानो की मान्यता है। ब्रजभाषा का विकास शूरसेन प्रदेश की अपभ्रंश भाषा से हुआ जिसके तिङन्त और कृदन्तज रूपो का सीधा विकास ब्रजभाषा मे दिखाई देता है।[2]

"ब्रजभाषा की कुछ प्रवृत्तिये पश्चिमी भूमि भाग मे तथा कुछ पूर्वी भूमि भाग मे विशेष रूप से पाई जाती है। उदाहरण के लिये पूर्वकालिक कृदन्त के 'य' सहित रूप, जैसे—चल्यौ या चल्यो, 'ब' लगाकर क्रियात्मक सज्ञा बनाना, जैसे—'चलिबो', 'ग' भविष्य जैसे—'चलैगो', सहायक क्रिया के भूतकाल के 'हो' आदि रूप.........पच्छिमी ब्रजभाषा प्रदेश की कुछ विशेषताएँ है। पूर्वकालिक कृदन्त मे 'य' का प्रयोग न होना, जैसे—'चलो', 'न' लगाकर क्रियात्मक सज्ञा बनाना, जैसे—'चलनो', 'ह' भविष्य, जैसे—'चलिहै' सहायक क्रिया के भूतकाल मे 'हतो' आदि रूप विशेषतया पूर्वी ब्रजभाषा प्रदेश मे पाये जाते है किन्तु ये प्रवृत्तिये ऐसी नही हैं जो एक दूसरे प्रदेश में बिलकुल न मिलती हो। अधिकाश रूप मे ये प्रवृत्तिये मिलती हैं।"[3]

ब्रजभाषा और अवधी भाषा के वर्तमान और भविष्यत् के तिङन्त रूपो मे कोई लिंग भेद नही होता। "ब्रज के वर्तमान मे यह विशेषता है कि बोलचाल की भाषा मे तिङन्त प्रथम पुरुष क्रियापद के आगे पुरुषविधान के लिये 'है', 'हू', और 'हो' जोड़ दिये जाते हैं।.........अब ब्रज में ये क्रियाएँ 'होना' के रूप लगाकर बोली जाती है—जैसे, 'चलैहै', 'उपजै है', पढै है' 'पढौ हो' या 'पढूँ हूँ'। इसी प्रकार मध्यम पुरुष 'पढ़ो हौ' होगा। वर्तमान के तिङन्त

---

१ एज रिगार्ड्स वोकेब्लरी, इट इज आल्सो ए वैरी यूनीफार्म डायलेक्ट। द ऑन्ली एक्सेप्शन इज द लोकल डायलेक्ट आव फतेहपुर, हि्वच, बीइंग सिचुएटेड इन द दोआब एप्रोक्सीमेट्स इन रिगार्ड टु इट्स वोकेबूलरी टु द लैंग्वेज आव दैट पार्ट आव द कंट्री।
—लिंगुइस्टिक सर्वे आव इण्डिया, जिल्द ६ (१९०४), पृ० ९।

२ सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (१९५८ ई०), पृ० ६०-६१।

3 —डा० धीरेन्द्र वर्मा (१९३७) पृ० १६

रूप अवधी की बोलचाल से अब उठ गए है पर कविता मे बराबर आए है। उ०—(क) पगु चढै गिरिवर गहन, (ख) बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। भविष्यत् के तिङ्न्त रूप अवधी और व्रज दोनो में एक ही है—जैसे, करिहै, चलिहै, होयहै=अप० करिहइ, चलिहइ, होइहइ, =प्रा० करिस्सइ, चलिस्सइ, होइस्सइ=स० करिष्यति, चलिष्यति, भविष्यति। अवधी मे उच्चारण अपभ्रंश के अनुसार ही हैं पर व्रज मे 'इ' के स्थान पर 'य' वाली प्रवृत्ति के अनुसार करिहय=करिहै, होयहय=होयहै इत्यादि रूप हो जायँगे। 'य' के पूर्व के 'आ' को लघु करके दोहरे रूप भी होते है, जैसे—अयहै=ऐहै, जयहै=जैहै, करयहै=करैहै इत्यादि। उत्तम पुरुष—खयहौं=खैहौ, अयहौ=एहौ, जयहौ=जैहौ।[1]

उपर्युक्त क्रियारूपों की प्रवृत्तियों के अनुसार कुछ उदाहरण लक्षदास जी की रचनाओ से दिये जाते है—

१. हौं मधुपुरी जातहौं स्वामी।[2]
२. हौं हू साथ लाल के अैहों।[3]
३. जेहि उत्तर्क भजन हौ आयो।[4]
४. सबकी रक्षा गिरवर करिहै।[5]
५. तौ कैसे संग षेलन अैहै।[6]
६. तब सुरभिन के साथ पठैहौ।[7]
७. भूष लगी है सुत कछु षैहौ।[8]
८. एक सेज द्वोउ लाल सोवैहौं।[9]
९. सुत तेहि की सरनहि जो जैहौ।[10]

अवधी मे क्रिया का वर्तमान कृदन्त रूप सामान्यतया लघ्वन्त होता है, जैसे—आवत, जात, डरत आदि। किन्तु व्रजभाषा मे इसका रूप दीर्घान्त भी हो जाता है, जैसे—आवतो, जातो, डरते आदि।

१. चलु सखि सांवरो देषियै आवत सुरभिन साथरी।[11]
२. हौं मधुपुरी जात हौं स्वामी।[12]

---

[1] बुद्ध चरित—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २३-२५।
[2] कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० २।
[3] वही पृ० २३।
[4] वही पृ० ३।
[5] वही पृ० ३४।
[6] वही पृ० २३।
[7] वही पृ० २७।
[8] वही पृ० २४।
[9] वही पृ० १६।
[10] वही पृ० २।
[11] वही पृ० १०१।
[12] वही पृ० २

३. इनके शब्द कन्हैया डेरते।[1]

खड़ी बोली के 'जाना' और 'होना' क्रिया रूपों का अवधी में भूतकालिक रूप 'गवो', 'भवो' (बहुवचन मे 'गे', 'भे') होता है, जैसे—

१. यहो उपाउ कंस को गवो।[2]
२. जसु नारिन को जग भवो सिर धुनि द्वज पछतात।[3]
३. ध्रुव सोचत गे जननी तीरा।[4]
४. पुनि भे मोह संग ते न्यारो।[5]

किन्तु अवधी के चलते प्रयोग मे 'गवा' और 'भवा' का 'वा' तिरोहित होकर 'गा' और 'भा' हो जाता है, जैसे—येही वीधी तलफत सब व्रज भा भीनुसार।[6]

इसी प्रकार व्रजभाषा मे 'गयो' और 'भयो' का 'यो' तिरोहित होकर 'गो' तथा 'भो' हो जाता है। लक्षदास जी की रचनाओ मे 'गयो', 'भयो' तथा 'गये', 'भये' के ही प्रयोग मिलते है, 'गो', 'भो' के नही। जैसे—

१. अहंकार मद ता छिन गयो।[7]
२. चन्द्रहास ताको सुत भयो।[8]
३. येहि विधि कान्ह निरत सब भये। कर्म अकर्म भूलि पथ गये।[9]

व्रजभाषा की भूतकाल की क्रियाओ के ओकारान्त रूपो की एक विशिष्टता है जो हिन्दी की सभी बोलियो से भिन्नता रखती है। यह विशिष्टता चल्यो, सह्यो, चह्यो, पर्यो और मार्यो आदि रूपो मे परिलक्षित होती है। अपभ्रंश के दोहो की भाषा मे भी भूतकाल के यही रूप प्रयोग मे लाये गए है[10]—

१. परिमल बास चल्यो चहु बोरा।[11]
२. देवहुती कह्यो कपिल सो कहियो तात बनाइ।[12]
३. बेलि केलि करि निकसन चह्यो। तेहि महं बैरि ग्राम पगु गह्यो।[13]

---

१ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० २३।
२ वही पृ० ४४।
३ वही पृ० ३२।
४ वही पृ० २।
५ वही पृ० ६।
६ भागवतपुराणसार (हस्त०), पृ० ९०।
७ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० ५।
८ वही पृ० ७१।
९ वही पृ० २३।
१० सूरपूर्व व्रजभाषा, पृ० ६० पर उद्धृत।
११ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० ८०।
१२ वही पृ० ७
१३ वही पृ० ४

४ को तुम थक्यो न पहुचो जाइ [1]
५. नारि वस्य जाको मनु पर्यो ।[2]
६. तुम प्रभु मोहि सुदरसन मार्यो ।[3]

लक्षदास जी की रचनाओं में पूर्वी अवधी की वर्तमान काल की क्रिया को भूतकाल के रूप में प्रयुक्त किया गया है—

१. हंसि करि लीन्हेसि लाल उठाइ ।[4]
२. हरि गिरि हाथ सात दिन लीन्हेनि ।[5]

इसी प्रकार भविष्यत्काल के क्रिया रूप 'आइब' को भी भूतकाल मे प्रयुक्त किया गया है—ग्रह तजि किमि आइब वन जामिनी ।[6]

'खड़ी बोली साधारण क्रिया का केवल एक ही रूप 'ना' से अत होने वाला (जैसे, आना, जाना, करना) होता है पर ब्रजभाषा मे तीन रूप होते है—एक तो 'नो' से अंत होने वाला जैसे, आवनो, कग्नो, लेनो, देनो, दूसरा 'न' से अत होने वाला, जैसे—आवन, जान, लेन, देन, तीसरा 'बो' से अत होने वाला, जैसे—आयबो, करिबो, देबो या लैबो इत्यादि । 'करना', 'देना' और 'लेना' के 'कीबो', 'दीबो' और 'लीबो' रूप भी होते है ।[7] लक्षदास जी की रचनाओ मे व्रजभाषा क्रिया के ये तीनों रूप प्राप्त होते हैं, जैसे—

१. अधम अजामिल महा कहा अघ बोघ वषानो ।
रहा न श्रुति मग नेक लहा द्विज जन्म नसानो ।[8]
२. नर नारिन सुनि हरि को आवन । लगी सभागिनि मंगल गावन ।[9]
३. लछ निबाहो जगत गुर दीबो आदर नेहु ।[10]

इनके अतिरिक्त क्रिया के 'एकारान्त' रूप भी प्राप्त होते है, जैसे—

जानि ढीठ मोहि नाथ रिसाने । मैं दुष लिषे ते औगुन माने ।[11]

पूर्वी अवधी मे साधारण क्रिया पद का अत 'ब' से होता है जो भविष्यत् काल का सूचक होता है, जैसे—आउब, जाब आदि । लक्षदास ने इसका प्रयोग आज्ञार्थक क्रिया के रूप मे किया है, जैसे—

---

१ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० ५७ ।
२ वही पृ० २ ।
३ वही पृ० ५ ।
४ वही पृ० १७ ।
५ वही पृ० ३५ ।
६ वही पृ० ३८ ।
७ बुद्ध चरित—आचार्य शुक्ल (भूमिका), पृ० २९ ।
८ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० १०६ ।
९ वही पृ० ५७ ।
१० दोहावली संख्या ८१ ।
११ हस्त० पृ० ५७

येक कहही गही राघव देव न जान।[१]

..जभाषा मे भविष्यत्काल मे 'ग' और 'ह' के रूपों का प्रयोग होता है। सस्कृत के 'गम्' (जाना) का प्रयोग भी 'जाइहै' के रूप में ही किया जाता है। हमारे आलोच्य कवि ने इसी परम्परा का अनुसरण किया है, जैसे—

१. लछ देषि छवि दूरि ते परिहौं पायन दौरि।[२]
२. जो नहि दाउ तिहारो दैहै। तो संग कैसे षेलन ऐहै।[३]
३. सुत तेहि की सरनहि जौ जैहौ। मन भावते सकल फल पैहौ।[४]
४. जो करता करिहै सो होई।[५]
५. भोजन करन लाल जब लागे। जननी सौ बतिया अनुरागे।[६]

इनके अतिरिक्त अपभ्रश के 'हइ', 'अहि' वाले रूपो का प्रयोग भी मिलता है, जैसे—

ससी वारीज रवि मिलिअहि मोर।[७]

इनके अतिरिक्त ब्रजभाषा के ही अन्तर्गत मध्यम पुरुष मे विशेषकर आज्ञा और विधि मे 'व' मे 'ई' मिलाकर ब्रज के दक्षिण से लेकर बुंदेलखड तक बोलते है।[८] हमारे आलोच्य कवि लक्षदास की कविता मे इस प्रकार के प्रयोग भी मिलते है, जैसे—

ताहि पूजि संतत अब लेबी।[९]

काव्य-शैली

लक्षदास जी की रचनाओ के काल-क्रम का निश्चित पता न होने के कारण शैली के क्रम-विकास पर सम्यक् विचार करना सम्भव नही है फिर भी लक्षदास के काव्यरूप के व्यक्तित्व का अध्ययन हम पिछले परिच्छेदो मे कर चुके है। हमने कवि की भाषा-सम्पन्नता, रस-अलकार और छदो के विविध प्रकार के प्रयोगो के आधार पर उसकी रचना शैली का वैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। इसी प्रबध के पांचवे अध्याय मे हमने लक्षदास जी की रचनाओ का वर्गीकृत रूप दिया है तथा उनके समय मे प्रचलित विभिन्न परम्पराओ का अध्ययन करके कवि की प्रतिभा का निर्देशन किया है। इस अध्याय मे हम उसका पिष्टपेषण न करके कवि की रचनाशैली की प्रमुख प्रवृत्तियो का अध्ययन करेंगे।

कवि की सारी रचनाओ को हम मुख्यतः तीन शीर्षको के अन्तर्गत रख सकते है—

---

१ भागवतपुराणसार (हस्त०), पृ० ६०।
२ कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० ४४।
३ वही पृ० २३।
४ वही पृ० २ ।
५ वही पृ० १२।
६ वही पृ० १८।
७ वही पृ० ६६।
८ बुद्ध चरित पृ० ३०
९ हस्त०) पृ० १०

(१) कृष्ण की बाल्लाला तथा माधय भाव की लीलाए २) कृष्णकथा से सम्बद्ध अ य रच नाए (३) अ य फटकर रचनाए जिनमे कृष्ण की स्तुति स्तोलो एव नामावली के आधार पर की गई है और मम्प्रदाय के सिद्धान्तो की ओर सकेत किया गया है।

कृष्ण की बाललीला तथा माधुर्य भाव की लीलाएँ—कवि ने कृष्ण की इन लीलाओ को श्रीमद्भागवत के आधार पर रचित सम्यक् ग्रंथ के प्रबधात्मक रूप मे प्रस्तुत किया है जिसमे कृष्णकथा के साथ-साथ कवि की भाव-प्रकाशन की शैली के दर्शन होते है। कवि ने कृष्ण जन्म के सस्कार, उनके भोजनादि के बर्णन, माखन चोरी, गोचारण तथा रासलीला आदि के प्रसगो मे दृश्य एव वर्णन विस्तार के विविध रूप प्रस्तुत किये है। इन वर्णनो मे कही-कही तो कवि की भाषा मे शिथिलता दिखाई देती है किन्तु कही-कही वह पाण्डित्यपूर्ण तत्सम प्रधान और तद्भव प्रधान शब्द-वीचियो मे तैरता-उतराता हुआ श्रीमद्भागवत (अनुवाद) महार्णव को पार करने का यत्न करता है। कवि ने बरवै छंदो में कृष्ण की लीला तथा उद्धव के सम्वन्ध मे जो बरवै दिये है, उनमे उसकी शैली की विकीर्णता एव वाक्यों मे शिथिलता को देखकर आश्चर्य होने लगता है। इसे देखकर प्रतिलिपिकार की त्रुटि, लापरवाही एव जल्दबाजी का भी अनुमान होता है जिसके कारण 'शुद्ध-पाठ' का भी अभाव हो गया है। इसी के ठीक विपरीत दोहा, चौपाई आदि छदो मे लिखे गये वही प्रसग कवि की काल्पनिक अनुभूति के सर्वोत्तम विचारो को अलकारो मे सज्जित करके स्वाभाविक, सहज एव सरल शैली का परिचय देकर हमे मुग्ध कर लेते हैं।

कवि ने स्वतंत्र रूप से जो वर्णनात्मक कथाए ली है उनमे कृष्ण-जन्म के आनदोत्सव, ब्रह्म-बाल-वत्सहरण, गोवर्द्धन लीला, राधा-कृष्ण का विवाह एव नित्य विहार वर्णन, रासलीला, भ्रमरगीत और रुक्मिणी चरित्र लीला आदि कथानक ऐसे है जिनकी रचना स्वतंत्र रूप से की गई प्रतीत होती है फिर भी कृष्ण-कथा के तारतम्य की शृखला ज्यों की त्यो बनी रहती है। इनमे से कृष्ण जन्म के आनदोत्सव, कृष्ण की लीलाएँ तथा रासलीला और भ्रमरगीत के प्रसगो की आवृत्ति तो पदो तथा अन्य छदो मे भी की गई है। इन प्रसगो मे (कवि को) भाषा को अलकृत करने का कम अवसर मिला है फिर भी उसने सरल, सहज और स्वाभाविक रूप मे अपनी बात कहकर हमसे आत्मीय भाव पैदा करने मे कोई कसर नहीं छोड़ी है। शब्दो के निर्वाचन में कवि ने ध्वनि-साम्य और विषयानुरूपता का प्राय सर्वत्र निर्वाह किया है।

इन रचनाओ मे कवि ने प्रायः दोहा-चौपाई छदो का ही प्रयोग किया है किन्तु सुरुचि उत्पादन एवं रुचि वैचित्र्य का ध्यान रखकर उसने छदो मे विविधता और नवीनता का समावेश किया है और वर्ण्य-विषय तथा शैली की गरिमा को विशेष महत्व प्रदान किया है। कवि ने अपनी रचनाओ मे जिन पात्रो के चरित्र का विकास किया है वे हमारे मानवीय धरातल के व्यक्ति होते हुए भी अतिमानव की कोटि तक पहुँच जाते है। भक्त कवि बीच-बीच मे कृष्ण के ब्रह्मरूप की ओर सकेत करने मे भी नही चूकता। उसने समाज की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये ऐसे प्रसगो की आवृत्ति की है और इस प्रकार की प्रवृत्तियो को जीवित जागृत रखने के तत्वो पर जोर दिया है। इसी कारण उसने कृष्ण-चरित्र से सम्बद्ध पनघट प्रस्ताव और दानलीला के ग्रामीण एव अशिष्ट प्रसगो को अपने वर्ण्य-विषय से बाहर निकाल दिया है जिस कृष्ण को हम मानें और जिसके चरित्र को आदश समाज को

उसका अनुगमन करने की बात कहे, भला मर्यादा का भक्त कवि पनघट की छेड़छाड़ और दान-लीला की ऐंठा-ऐंठी के रसिक प्रसगो को किस मुँह से जनता को सुनाये ? कवि ने 'संत मारु' (सार) गहू जैसे' कहकर अपनी इसी मनोवृत्ति का परिचय दिया है। उसने श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त्त आदि पुराणो को अपनी रचनाओं का आधार अवश्य बनाया किन्तु उनमें से राधा-कृष्ण के केवल उज्ज्वल चरित्र को ही ग्रहण किया है। 'राधा-कृष्ण और रुक्मिणी-कृष्ण हमारे बीच के आदर्श दम्पति हैं जो भगवान् और श्री के प्रतीक है और सदा इस भूलोक (वृन्दावन) मे निन्य विहार करते हैं।

कृष्ण कथा से सम्बद्ध रचनाएँ—कवि की इन रचनाओं मे भागवत के नवम स्कध तक के प्रसग तथा अन्य भक्तो की कथाएँ—ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, सुदामा द्रौपदी, चन्द्रहास, हंसध्वज, मयूरध्वज, जड़भरत, गजराज और जरासंध बध-दी गई है जिनमे कृष्ण के ब्रह्म रूप को प्रकट किया गया है। इन प्रसगो मे कथा को सक्षिप्त एवं सुसगठित रूप मे प्रस्तुत करना कवि का अभिप्रेत लक्ष्य प्रतीत होता है। इन प्रसगो की भाषा सुसस्कृत और परिमार्जित है। मुख्यत. ये कथाएँ घटनाप्रधान है जिनके बीच-बीच मे नीति एव सामाजिक मर्यादा के निर्वाह के विषय भी समाविष्ट किये गये है। अलकारो का स्वाभाविक प्रयोग, सम्भाषणों में स्वाभाविकता तथा घटना वर्णन मे अवसरानुकूल द्वैधी भाव इन प्रसगो की विशेषताएँ है जिनके कारण शैली मे ऋजुता, अकृत्रिमता और प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। कवि ने सकट में भक्तो के धर्म की रक्षा करने और उनकी परीक्षा लेकर उन्हे परम गति प्रदान करने की भगवान् की प्रतिज्ञा को विभिन्न कथाओ के द्वारा दुहराया है। इन कथाओं का प्रत्येक पात्र हमारे सामने सजीव रूप में सहज आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बनकर आता है और हमारे भक्त मन पर भगवान् के प्रति श्रद्धा और विश्वास की अमिट छाप छोड जाता है। इन रचनाओ मे प्राय तद्भव प्रधान शैली को ग्रहण किया गया है। कवि की भाव गभीरता, उसका शब्दचयन और सुसस्कृत भाषा उसके व्यक्तित्व-विकास तथा बहुमुखी अनुभव का दिग्दर्शन करती है। कवि ने अपने काव्यो को प्राय. आद्यन्त दोहा-चौपाई मे ही लिखा है किन्तु रुचि परिवर्तन के लिये अन्य छदो को भी प्रयुक्त किया है।

अन्य रचनाएँ—कवि की अन्य रचनाओ मे स्तोत्र, नामावली, सगुणोपासना के पद, हिंडोलना आदि, ऋतुवर्णन, ज्ञानवार्ताएँ, मोहाधदीप एव सुध ज्ञान तथा गेय पद एव दोहावली की रचनाएँ आती है। कवि ने इन स्तुतिपरक रचनाओ मे भक्तवत्सल भगवान् की कृपा और उसके द्वारा तारे गये भक्तों की तालिका दी है। भगवान् की विभिन्न लीलाओं को स्मरण करना ही भक्तो के हृदय का हार है। मंजुमुक्तावली में तो कवि ने स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की है—"और मालाओ से जाप करने पर तो उन (मालाओ) के टूटने की सभावना है और भगवन्नाम 'बिसर' भी सकता है किन्तु नाम स्मरण की यह माला 'रसना हिय कंठ' रखेगी और हरि-प्रेम को निरन्तर बढ़ाने वाली है।"[1] इन स्तुतिपरक रचनाओं मे राम, कृष्ण और शिव

---

[1] और माल कर जाइ जपैं टूटै विसरावै।
यह रसना हिय कंठ रहै हरि प्रेम बढावै।

हस्त० पृ० ६५

के रूपो मे साम्य स्थापित करके भगवान् के विविध अवतारो तथा उनके द्वारा मारे गये असुरो आदि की ओर भी संकेत किया गया है। सगुनोपासना के पदो मे भगवान् के सगुण रूप के प्रतिपादन के लिये 'भ्रमरगीत' का प्रसग मनहरण कवित्तों मे लिखा गया है। गोपियों की वचन विदग्धता के द्वारा कवि ने अपने इस मत की पुष्टि की है। हिंडोलना, झूला, फाग तथा वनविहार आदि मे माधुर्योपासना का रूप प्रतिपादित किया गया है। इन वर्णनों मे कवि की भाषा मे कही-कहीं असमर्थता और शैली मे शिथिलता दिखाई देती है। इनमे साहित्यिक सौन्दर्य का तो सर्वथा अभाव है। 'मोहाध दीप' मे मनुष्य के माया-जाल मे फँसने और भव-जाल से उसकी मुक्ति के उपाय की कथा को विस्तार से बताया गया है। 'सुध ज्ञान' मे सम्प्रदायो की परम्परा के आधार पर सिद्धान्त प्रतिपादन की पारिभाषिक शैली को अपनाया गया है किन्तु वह कथन में चारुता एव कमनीयता लाने में सर्वथा असमर्थ रही है। देवहूति-कपिल सवाद एव दत्तात्रेय जदु सवाद मे ज्ञान की वार्तो के आधार पर नीति एवं सिद्धात को समझाने की चेष्टा की गई है। दोहावली मे तो विविध प्रसगो पर आधृत दोहे लिखे गये है जो भाव एव भाषा की दृष्टि से बहुत उच्च कोटि के है। पाठ की शुद्धता न होने से कुछ दोहे पूर्णतया स्पष्ट नही होते फिर भी कवि ने इन दोहो के लिखने मे अपनी पूरी कुशलता दिखाई है। फुटकर पदो में आत्म प्रबोध, कृष्णलीला तथा दम्पति विहार के पद है जिनमे कवि की शैली एव भाषा प्रौढता को प्राप्त होती हुई दिखाई देती है। शब्द-चयन तद्भव एव तत्सम प्रधान है। कवि की यह शैली सूर और तुलसी के समकक्ष है। इन रचनाओ मे कवि ने दोहा, चौपाई, चौपई, चौबोला और हरिगीतिका आदि छदो का प्रयोग किया है। पद तो विविध रागो मे लिखे गये है जिनसे कवि के सगीत ज्ञान का भी परिचय मिलता है। लक्षदास के समय मे तथा उससे पूर्व इस प्रकार की रचनाओं को विशेप प्रश्रय दिया जाता था क्योंकि श्रीभट्ट, श्रीहरि-व्यासदेव, श्री हितहरिवश, स्वामी हरिदास आदि विभिन्न सम्प्रदाय के भक्त कवियो की रचनाएँ भी सगीत से अनुप्राणित एव पोषित रही थी।

निष्कर्ष

कवि लक्षदास की भाषा एव शैली के विविध रूपो से उनकी प्रबन्ध पटुता, वर्णन वैचित्र्य एवं क्षमता का पता चलता है। कवि की रचनाओ मे भाषा-शैली के कई रूप मिलते हैं। कही तो उसकी रचना सरल, स्वाभाविक, सहज, ऋजुतापूर्ण, साहित्यिक, अलकार सज्जित, तत्सम प्रधान एव भावाभिव्यक्ति मे पूर्ण सक्षम दिखाई देती है और कही सरल, शिथिल, विकीर्ण भावयुक्त एव तद्भव प्रधान है। रूप सौन्दर्य एवं प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन मे ध्वनि साम्य और चारुतापूर्ण भाषा उसकी अनुपमेय विशेषता है। उसने विभिन्न रागो में भी कृष्ण की कथा एवं विनय के पद लिखे है जो तत्कालीन परम्परा का प्रभाव है।

लिपि शैली

प्राचीन काल मे मुद्रण कला का आविष्कार न होने से ग्रथो की हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार कराई जाती थी। इन्हे तैयार करने वाले प्रतिलिपिकार प्राय अर्द्ध-शिक्षित या कम शिक्षित होते थे। प्रतिदिन एक ही प्रकार के लेखन कार्य की आवृत्ति होने से उनमे रुचि का अभाव हो जाता था कभी-कभी से प्रतिलिपि-करने पर इन पोथियो के शब्द

रूपों तथा वाक्य-गठन मे अतर हो जाता था या पंक्तियाँ छूट जाती थीं अत जब तक कवि की एक ही रचना की दो-तीन प्रतिलिपियाँ नही मिल जातीं तब तक उसके पाठ को शुद्ध करने या वैज्ञानिक रूप से उसका सम्पादन करने मे कठिनाई होना स्वाभाविक है। इन हस्तलिखित पोथियो के साथ लिपि सम्बन्धी कठिनाई भी है। ब्रजभाषा की हस्तलिखित पोथियाँ, साधारणत , देवनागरी लिपि में लिखी मिलती है और अवधी की कैथी तथा देवनागरी दोनो लिपियो मे। कभी-कभी कोई ग्रथ गुरुमुखी, फ़ारसी, अरबी या उर्दू लिपि मे भी पाये जाते हैं।

इन हस्तलिखित पोथियाँ की लिपि शैली कहीं-कही देवनागरी की प्रचलित लिपि से भिन्न मिलती है, यद्यपि वर्ण रूपों मे समानता होती है। लालचदास, राजेन्द्रप्रसाद, चददास की कतिपय पोथियाँ कैथी लिपि में तथा लक्षदास आदि कवियो की पोथियाँ नागरी लिपि मे प्राप्त हुई है। लक्षदास रचित ग्रथो की पोथियो में शब्द या वर्ण रूपों मे निम्नलिखित अतर मिलते है—

(१) इन पोथियो मे अनुनासिक या अर्धचन्द्र के यथोचित प्रयोगो मे ढिलाई मिलती है। इनमे प्राय अनुनासिक, अनुस्वार तथा चन्द्रबिन्दु का प्रयोग या तो किया ही नही गया, यदि कही किया भी गया है तो उसका यथोचित निर्वाह नही है। जैसे—भवर, अपिया, पाय (पाय), नाही, मे (परिक मे कव देषि है), ज्यो आदि।

(२) प्राय. शब्दो के आदि, मध्य और अंत मे अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त रूपो के शुद्ध प्रयोगो की ओर ध्यान नही दिया गया है, जैसे—नासीका नीहारे, लीवाहक, दपित, वधी, वधीक, सुपत, चहू, गुरु आदि। छद की मात्राओं की गणना करने पर इन शब्दो को ह्रस्व या दीर्घ रूप मे यथावत् समझना पडता है जैसे—'कबहुक ऊचे सोर गावै'—लक्षदास। निश्चय ही यह प्रतिलिपिकार का दोप होगा, कवि का नही।

(३) 'ख' के स्थान पर प्राय 'ष' लिखा गया है, किन्तु कही-कही 'ख' का भी प्रयोग हुआ है। यही नही 'ष' का प्रयोग कही-कही 'श' और 'स' के लिये भी किया गया है।

(४) प्राय· 'य' के स्थान पर 'ज' का प्रयोग किया गया है, जैसे—जोग, जुक्ति आदि। (अब जोग जुक्ति मन राषो)—लक्षदास।

(५) दन्त्योष्ठ्य 'ब' के लिये प्राय 'व' लिखा गया है किन्तु अन्तस्थ 'व' का प्रयोग करते समय उसके नीचे एक बिन्दु रख दिया गया है (व़)। इसी प्रकार अन्तस्थ 'य' के नीचे भी एक बिन्दु रखा गया है। यह बगला का प्रभाव मालूम देता है, उदाहरणार्थ—भव़र, गाव़त, दाव़ागिनी, बनाव़, तव, तुव और कहिय़, बिय़ोग, हय आदि। कहीं-कहीं इस बिन्दु को नही भी लगाया गया है।

(६) 'श' और 'स' के प्रयोग में बड़ी मनमानी की गई है। इन दोनो वर्णो की पारस्परिक अदला-बदली करने से शब्दो मे झमेला हो गया है। फिर भी 'श' के स्थान पर प्राय. 'स' का ही प्रयोग किया गया है जो ब्रजभाषा भाषी क्षेत्र की विशेषता है, जैसे—नदकिसोर, स्यामा, स्याम जुगलकिसोर, सुक, ससि आदि। इनके अतिरिक्त दन्त्य के स्थान मे तालव्य 'श' के प्रयोग भी पोथियों में मिलते हैं जो प्रतिलिपिकार की असावधानी या भूल से हुए जान पडते हैं जैसे वशो बसो सशि आदि

(७) पोथियो मे प्राय ज्ञ के स्थान पर उच्चारण के अनुरूप ग्य कर दिया गया है, जैसे—तिन करि जग्य बृत्ति बहु दीन्ही।—लक्षदास। कही-कही 'यज्ञ' को 'जग्ग' भी लिखा गया है, जैसे—'जग्ग जोग वीराग जप तप'—लक्षदास।

(८) 'इ, ई' के स्थान पर कही-कही 'इि, इी' रूप भी मिलते है और 'ऐ' के लिये तो प्राय. 'अै' का ही प्रयोग हुआ है।

(९) 'डु, ड, इ' तथा 'ट, ठ, ढ' की बनावट एकसी होने के कारण वर्ण को अनुमान से ही सही रूप मे पढना पड़ता है। ड, ढ को प्राय ड, ढ ही लिखा गया है।

(१०) 'ऋ' का व्यवहार प्राय उच्चारण के अनुरूप 'रि' (र् × इ) ही लिखा गया है, जैसे—ऋद्धि > रिद्धि, ऋतु > रितु, कृपा > क्रिपा। कही-कही 'ऋ' को 'र' करके भी लिखा गया है, जैसे—वृन्दावन > व्रदावन।

———

अध्याय ८

लक्षदास का सम्प्रदाय और उनका दर्शन

सोलहवी शती मे कृष्ण भक्ति को पुनरुज्जीवित करने के लिये उत्तर भारत मे कृष्ण के जन्म स्थान (प्राचीन शूरसेन जनपद) मे कृष्ण भक्ति के प्रचार के लिये प्रमुख केन्द्र बनाये गये और कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायो के सगठन का कार्यारम्भ हुआ। विष्णु स्वामी, मध्व और निम्बार्क प्राचीन आचार्य माने जाते है। इनमे से विष्णु स्वामी के बारे मे कोई निश्चित (ऐतिहासिक) प्रामाणिक वृत्त नही मिलता। कहा जाता है कि विष्णुस्वामी-परम्परा की उच्छिन्न गद्दी पर महाप्रभु वल्लभाचार्य जी आरूढ हुए और उन्होने इस सम्प्रदाय को जो दार्शनिक और व्यावहारिक रूप दिया, वह स्वय 'वल्लभ संप्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्होने 'शुद्धाद्वैत' मत की प्रतिष्ठा की। मध्वाचार्य ने अपने द्वैतवादी विचारो को ब्रह्मसूत्र, गीता, उपनिषद् और भागवत के भाष्य के द्वारा व्यक्त किया। निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा इन सभी सम्प्रदायो से अधिक प्राचीन है। शकराचार्य ने अद्वैत मत के प्रतिपादन के लिये निम्बार्क से पूर्व के द्वैताद्वैतवादी आचार्यो के मत का उल्लेख किया है। मध्ययुग मे शकर के अद्वैतवाद ने दार्शनिक क्षेत्र मे तो दृढ़ स्थिति पैदा कर ली थी किन्तु भक्ति-धर्म के साथ उसकी सगति न होने से वह केवल पण्डितों और तार्किको का विषय रह गया। १६ वी शती के आचार्यो ने कृष्ण भक्ति को दार्शनिक आधार देकर भक्ति-धर्म से समन्वित करने का प्रयत्न किया। राधावल्लभ सम्प्रदाय तथा सखी सम्प्रदाय (टट्टी सप्रदाय) ने किसी भी दार्शनिक मतवाद की प्रतिष्ठा नही की बल्कि अपनी उपासना विधि को ही प्रधानता दी। आगे की पक्तियो मे हम ब्रज के कृष्ण भक्ति काव्य के प्रेरक प्रमुख सप्रदायो और उनके दर्शन पर, सक्षेप मे, विचार करेंगे।

ब्रज में कृष्णभक्ति काव्य के प्रेरक प्रमुख सम्प्रदाय और उनका दर्शन

हिन्दी मे वैष्णव काव्य के उदय का काल १४वीं शती के मध्य भाग से माना जाता है क्योकि विक्रम की १५वी शती में काशी मे रामानंद ने वैष्णव भक्ति के प्रचार का कार्यारम्भ किया था। उन्होने भक्ति का द्वार सभी वर्णो के लिए खोल दिया। मुसलमानी अत्याचारो से कराहती हुई हिन्दू जनता को उद्धार का मार्ग दिखाकर निर्गुण और सगुण भक्ति की धाराएँ प्रवाहित करने का श्रेय स्वामी रामानद को ही दिया जाता है। इनके मत के प्रचारक हुए

वैष्णव काव्य मे कृष्ण भक्ति काव्य का मुख्य केन्द्र कृष्ण का लीलाधाम वृन्दावन हुआ क्योकि कालक्रम से यहाँ पर निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, हितहरिवंश आदि सम्प्रदाय प्रवर्तित हुए। ये सभी सप्रदाय भागवत को उपजीव्य ग्रथ मानते है और उसे प्रस्थानत्रयी (वेद, उपनिषद्, गीता) से भी बढकर प्रामाण्य ग्रथ स्वीकार करते है। इन सभी सप्रदायो में निम्बार्क सम्प्रदाय सबसे अधिक प्राचीन है; यद्यपि इसका काल निर्णय अभी तक विवादास्पद है।

निम्बार्क सम्प्रदाय

यह सम्प्रदाय भारतीय दार्शनिक जगत् में भेदाभेद सिद्धांत का प्रतिपादक माना जाता है। इसके अनुसार ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध व्यवहार दशा में भेद अर्थात् द्वैत तथा परमार्थ दशा मे अद्वैत अर्थात् अभिन्न है। इस सिद्धात के उपलब्ध प्राचीन इतिहास से यह स्पष्ट है कि आचार्य निम्बार्क के पूर्व भी यह सिद्धात प्रचलित था किन्तु आचार्यों के इस भेदाभेद सिद्धात के लुप्त गौरव को पुनः प्रतिष्ठापित करने का कार्य निम्बार्क स्वामी ने किया और कृष्ण भक्त समाज मे यह सिद्धात आज भी उसी रूप मे प्रचलित एव समादृत है।

ब्रह्मसूत्र के कर्त्ता बादरायण से भी पूर्व आचार्य औडुलोमि तथा आचार्य आश्मरथ्य भेदाभेदवादी थे। औडुलोमि ने ससार दशा मे जीव के नाना रूप एव ब्रह्म की एकात्मकता मे भेद मानकर मुक्ति दशा में चैतन्य रूप होने से उनकी अभिन्नता प्रतिपादित की।[१] आचार्य आश्मरथ्य ने कारण (ब्रह्म) की एकात्मकता और कार्य (जीव) रूप मे भिन्नता मानकर सुवर्ण-कुण्डल न्याय सिद्धात को माना।[२]

शकराचार्य के पूर्ववर्ती आचार्यो मे भर्तृप्रपच भी भेदाभेदवादी थे। शकराचार्य ने उनके मत का उल्लेख करते हुए वृहदारण्यक के भाष्य में उसका खंडन किया है।[3] भर्तृप्रपच ने अपने सिद्धात की व्याख्या समुद्र (ब्रह्म) तरग (जीव) न्याय से की क्योकि समुद्र की एक-रूपता होने पर भी उसमे तरंग, बुद्बुद् आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

शकरोत्तर युग मे आचार्य भास्कर तथा रामानुज के गुरु यादवप्रकाश भेदाभेदवादी मत के उन्नायक थे। भास्कर (समय—आठवीं शती) ब्रह्म की दो शक्तियाँ मानते हैं—(१) भोग्य शक्ति, जो आकाशादि अचेतन जगद्रूप मे परिणत होती है, (२) भोक्ता शक्ति, जो प्रपचमय चेतन जीवरूप मे विद्यमान रहती है। भास्कर ने ब्रह्म का स्वभाव 'अविकृत परिणाम' का उसी प्रकार माना है जैसे अच्युत् स्वभाव वाले आकाश से वायु उत्पन्न होती है।[४]

द्वैताद्वैत मत की इसी परम्परा में निम्बार्क द्वारा प्रतिपादित मत आता है। रामानुज मत की भाँति इन्होंने भी ३ तत्व प्रधान माने है— चित्, अचित् और ईश्वर। जीव और जगत् ईश्वर पर आश्रित रहते हुए भी उससे अभिन्न है (अद्वैत), किन्तु यह व्यवहारदशा मे जीव तथा जगत् ईश्वर से भिन्न दिखाई देते हैं (द्वैत)। निम्बार्क ने इन दोनो का समन्वय करके इन्हे द्वैताद्वैत नाम दिया है। मूलत रामानुज और निम्बार्क की परम्परा

---

१ ब्रह्मसूत्र १।४।२१.

२ ब्रह्मसूत्र १।४।२०.

3 वृहदारण्यक उपनिषद् पर शंकरभाष्य २।३।६, १।५।१ ३।४।२ ५।३।३०।

४ भारतीय दर्शन—बलदेव पृ० ४८८ ४९०

में भेद है, रामानुज का आग्रह अद्वैत की ओर अधिक है किन्तु निम्बार्क द्वैत और अद्वैत दोनों को समान महत्व देते हैं।

इस सम्प्रदाय के सिद्धात और भक्ति पद्धति का विस्तृत विवेचन 'दश-श्लोकी' में किया गया है। अत इस ग्रंथ का परिशीलन अत्यावश्यक है। निम्बार्क स्वामी ने जीव को ज्ञान स्वरूप तथा ज्ञान का आश्रय उसी प्रकार माना है जैसे सूर्य प्रकाशमय तथा प्रकाश का आश्रय भी है।[1] इस प्रकार सासारिक दशा और मुक्तदशा दोनों मे ही जीव कर्ता है। कर्तृत्व जीव भोक्ता भी है, इन सब बातों के लिए वह ईश्वर पर आश्रित रहता है। अत ईश्वर नियता और जीव नियम्य है। जीव हरि का अंश रूप है अत. हरि अशी तथा जीव उसका अश कहलाता है। आचार्य ने जीव के २ भेद माने है—मुक्त तथा बद्ध। मुक्त के दो भेद है—(१) नित्य-मुक्त, (२) साधना से मुक्त। इसी प्रकार बद्ध जीव के भी दो भेद माने गये है—(१) मुमुक्षु (मुक्ति का इच्छुक), (२) बुभुक्षु (विषयानद का इच्छुक)। भगवान् की कृपा होने पर ही जीव का अज्ञान दूर होता है।[2] आचार्य प्रवर ने अचित् तत्व (चेतनाहीन पदार्थ) के ३ भेद माने है—(१) प्राकृत, (२) अप्राकृत, (३) काल। यह अचित् तत्व भी ईश्वर पर आश्रित है।

निम्बार्क सम्प्रदाय मे ब्रह्म की कल्पना, रामानुज की भाँति सगुण रूप में मान्य है। वह (ब्रह्म) समस्त दोषो से रहित और ज्ञान, बल आदि अशेष कल्याण गुणों का निधान है।[3] इस प्रकार सर्वशक्तिमान ईश्वर स्वतत्र है और जीव तथा जगत् उसके अधीन रहते है। जीव ब्रह्म से अभिन्न तथा भिन्न दोनो हैं, जैसे—वृक्ष से पत्र, प्रदीप से प्रभा, गुणी से गुण तथा प्राण से इन्द्रिय।

साधना पक्ष—निम्बार्क सम्प्रदाय मे कृष्ण परमेश्वर एव परम उपास्य होने के कारण सर्वेश्वर कहलाते है। राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति है जिसका स्वरूप कृष्ण के अनुरूप (अनुरूप सौभगा) ही है। अत राधा सर्वेश्वरी है। वैष्णव सम्प्रदायों से सर्वप्रथम निम्बार्क ने युगलोपासना की पद्धति प्रचलित की जिसमे भगवान् के मधुर भाव तथा राधा की उपासना पर विशेष आग्रह प्रदर्शित किया। सहस्रो सखियो से सेविता तथा भक्तो की समस्त कामनाओ को पूर्ण करने मे सक्षम राधा भगवान् के वामाग मे विराजमान रहती है।[4] इन 'श्रीकृष्ण'

---

[1] ज्ञान स्वरूप च हरेरधीन शरीरसयोगवियोगयोग्यम्।
अणु हि जीव प्रतिदेहभिन्न ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहु ॥

—दशश्लोकी, श्लोक १।

[2] अनादि मायापरियुक्तरूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात् ॥

—दशश्लोकी, श्लोक २।

[3] स्वभावतो पास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहागिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम् ॥

—वही, श्लोक ४।

[4] अगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखी सहस्रै परिसेविता सदा स्मरेमदेवीं ———।

श्लोक ५

तथा 'श्री' का सबध अविनाभाव का सूचक है। इनमे 'श्री' वृन्दावनलीला मे 'राधा' के रूप मे तथा 'लक्ष्मी' रुक्मिणी के रूप मे पूज्य हैं। इन दोनो मे राधिका ही श्रेष्ठ है ऐसा श्रुति तथा पुराणो मे निश्चय किया गया है।

निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा को स्वकीया माना गया है। राधा (स्वकीया) की कल्पना विविध पुराणो के वर्णन पर आधृत है। सस्कृत कवि जयदेव तथा परवर्ती कवियो के काव्यो मे राधा के स्वकीया रूप के चित्रण का कारण, राधा-कृष्ण की दाम्पत्य लीला के विकास का सूचक है। राधा का यह अभिसार वर्णन बाल्यकालीन लीला होने के कारण परकीयात्व का सूचक नही है। राधा के लिए कुमारिका शब्द का प्रयोग अविवाहिता-सूचक न होकर अवस्थासूचक है।[1] 'नित्यविहार लीला' मे नित्य सम्बन्ध होने के कारण विवाह का प्रश्न ही नही उठता किन्तु अवतारलोला मे राधा के विवाह को शास्त्रसम्मत माना गया है। जहाँ राधा के परकीया रूप का आभास है वहाँ उसे 'छाया राधा' कहा गया है। पुराणो मे वर्णित यह 'छाया राधा' केवल लौकिक दृष्टि से ही मान्य कही जा सकती है।

निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यो मे श्रीभट्ट रचित 'युगल शतक' को हिन्दी की आद्य रचना माना जाता है। 'युगल शतक' के दोहो मे युगलोपासना का वर्गीकृत रूप तथा श्री हरि-व्यासदेवाचार्य प्रणीत 'महावाणी' मे वर्णित राधा का स्वरूप माधुर्य भक्ति को ध्यान मे रखकर निकुंज भावना की सेवा-उपासना के आधार पर ही अकित किया गया है। इन पदो में राधा की उपासना इष्टाराधा के रूप मे की गई है। निम्बार्की कवि का आदर्श निकुंज लीला है।[2] सम्प्रदाय मे माधुर्य भक्ति की पुष्टि के लिए—शात, दास्य, वात्सल्य, सख्य तथा माधुर्य (शृगार) —इन पाच भावो से परिनिष्ठित भक्ति को ही पूर्ण माना गया है। माधुर्य भाव की ही भाँति वात्सल्य भाव को प्रधानता देने के उद्देश्य से श्रीभट्ट जी तथा श्री हरिव्यासदेव जी ने वात्सल्य भाव से प्रेरित रचनाए की। श्रीभट्ट जी की गोदी मे बैठे हुए युगलसरकार का चित्र तो इस भावना को और भी अधिक बल देता हुआ दिखाई देता है।

स्वामी हरिदास का सखी सम्प्रदाय

वृन्दावन का हरिदास जी द्वारा प्रवर्त्तित यह सखी सम्प्रदाय निम्बार्क मत की ही एक अवान्तर शाखा माना जाता है। स्वामीजी के शिष्यो ने टट्टी सस्थान नाम से अपनी महन्त गद्दी पृथक् स्थापित कर दी है किन्तु यह स्वतत्र सम्प्रदाय नही है। यहाँ नित्यविहारी युगल सरकार की उपासना करके गोपी भाव को प्रधान स्थान दिया जाता है और रसिक बनकर ही सखी रूप मे राधा की उपासना करना विधेय है। वस्तुत निम्बार्क सम्प्रदाय और सखी सम्प्रदाय मे एक मौलिक भेद स्पष्ट है। निम्बार्क सम्प्रदाय तो दार्शनिक कोटि का सम्प्रदाय है किन्तु सखी सम्प्रदाय मे रस भक्ति पर विशेष आग्रह है जिसके कारण यह सम्प्रदाय ज्ञान प्रधान न होकर हृदय पक्ष (रस) प्रधान हो गया है।

स्वामी हरिदास जी के सिद्धान्त के पदो मे सम्प्रदाय की उपासना की सैद्धान्तिक व्याख्या

---

[1] भागवत सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय (२०१० वि०)-पृ० ३४७।
[2] भागवत सम्प्रदाय लीलातत्त्व पृ० ५४१ से ६५६ तक

है। इसमें संसार की असारता, धन-दारा की क्षणिकता, साधक आत्मा की परवशता और पिंजड़े के पक्षी की भाँति फड़फड़ाना आदि का वर्णन करते हुए युगलोपासना का महत्त्व दर्शाया गया है। बीठल विपुलदेव, बिहारिनिदेव तथा हरिव्यासदेव की कविताओं में निकुंज लीला से सम्बन्धित पद कहे गये हैं।

वल्लभ सम्प्रदाय

वल्लभ सम्प्रदाय शुद्धाद्वैत सिद्धांत का प्रतिपादक सम्प्रदाय है। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्त्तक कहे जाते हैं विष्णुस्वामी। भारतीय दार्शनिक जगत में विष्णुस्वामी एक पहेली बने हुए हैं। उनकी परम्परा का न तो कोई क्रमबद्ध इतिहास ही उपलब्ध है न दर्शन तथा साहित्य। कहते हैं कि आचार्य वल्लभ ने विष्णुस्वामी द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय का पुनरुद्धार करके शुद्धाद्वैत मत की पुनर्स्थापना की। चतुःसम्प्रदाय में यह 'रुद्र-सम्प्रदाय' के नाम से प्रसिद्ध है। विष्णुस्वामी की अनेक रचनाएँ बतलाई जाती हैं जिनमें 'सर्वज्ञ सूक्त' को ही प्रामाणिक माना गया है। 'विष्णुस्वामी के ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप हैं तथा वे अपनी ह्लादिनी संवित्' के द्वारा आश्लिष्ट हैं तथा माया उन्हीं के अधीन रहती है। ईश्वर का प्रधान अवतार नृसिंह रूप में बतलाया गया है। कुछ लोग विष्णुस्वामी को नृसिंह तथा गोपाल दोनों का उपासक मानते हैं।'[1]

वल्लभाचार्य का दार्शनिक मत शुद्धाद्वैत तथा भक्ति मार्ग पुष्टि मार्ग के नाम से अभिहित किया गया है। वल्लभाचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर अणुभाष्य तो लिखा ही किन्तु श्रीमद्भागवत को भी उपादेय मानकर उसके महत्व की प्रतिष्ठा की।[2]

सिद्धांत—शंकराद्वैत मत में माया शबलित ब्रह्म ही जगत् कारण है किन्तु वल्लभाचार्य ने माया से अलिप्त (नितांत शुद्ध) ब्रह्म को ही जगत का कारण माना है।[3] इसीलिए शंकराद्वैत मत से पार्थक्य प्रदर्शन-हेतु उन्होंने 'शुद्ध' विशेषण लगाकर 'शुद्धाद्वैत' नाम दिया।

शंकराचार्य ने निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकार की थी किन्तु वल्लभाचार्य ने ब्रह्म को सर्व धर्म (गुण) समन्वित माना। उनके विचार से ब्रह्म सर्व व्यापक एवं सोपाधिक अर्थात् सगुण है। संसार में अपनी लीला को वह अपने अंश रूप जीवों को दिखलाता है। ब्रह्म के ३ रूप माने गए हैं—(१) आधिभौतिक, (२) आध्यात्मिक (३) आधिदैविक। ब्रह्म अपनी शक्ति से संसार के रूपों में परिणत भी होता है और उससे परे भी रहता है (अविकृत परिणामवाद)। उसमें सत्, चित् और आनन्द का आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। जीव में आनन्द का तिरोभाव रहता है और सत्-चित् दोनों का आविर्भाव (प्रकाश) रहता है।

---

[1] भागवत सम्प्रदाय—श्री बलदेव उपाध्याय, पृ० ३६८।

[2] समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणतच्चतुष्टयम्

—शुद्धाद्वैत मार्तण्ड, पृ० ४९।

[3] माया सम्बन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः
कार्यकारणरूपंहि शुद्धं ब्रह्म नमायिकम्॥

—शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्लोक २८।
चौखम्भा काशी

जड (जगत्) मे आनद और चित् का निरोभाव रहता है और केवल सत् गुण का ही आविर्भाव रहता है। इनसे पृथक् माया कोई वस्तु नही है। इन तीनो गुणो के अनुकूल ब्रह्म की ये ३ शक्तिया मानी गई है। श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है जो सर्वगुण सम्पन्न होकर 'पुरुषोत्तम' कहलाते है। पुरुषोत्तम की सब लीलाए नित्य हैं। वे अपने भक्तो के लिए 'व्यापी बैकुण्ठ' मे अनेक प्रकार की क्रीडाए करते है। वृन्दावन निकुज, यमुना आदि सभी कुछ इसी बैकुण्ठ के अन्तर्गत है। जीव ३ प्रकार के माने गए हैं—(१) शुद्ध, (२) मुक्त, (३) ससारी। जीव की सबसे उत्तम गति 'नित्य लीला सृष्टि' में प्रवेश पाना ही है। वृन्दावन विहार नित्य विहार है जहाँ शक्तिमान् श्रीकृष्ण अपनी अनत शक्तियो को वश मे करके इस नित्य वृन्दावन मे निरन्तर विराजते हैं। भगवान् की प्रमुख १२ शक्तिया आधिदैविक रूप मे प्रकट होती है।

महाप्रभु ने जीव के अनुमरणके ३ मार्ग माने है—(१) पुष्टि मार्ग—भगवान् के अनुग्रह पर विश्वास रखते हुए 'नित्यलीला' मे प्रवेश पाना, (२) मर्यादा मार्ग—वेद की विधियो के अनुसार जीवन व्यतीत करते हुए स्वर्गादि लोक प्राप्त करना, (३) प्रवाह मार्ग—ससार की स्थिति में रहकर ही सुख प्रवाह की प्राप्ति मे लीन रहना।

आचार्यप्रवर ने जीव और ब्रह्म का भेद अशाशी भाव से माना है। शंकराचार्य की दृष्टि मे अंगांशी भाव वास्तविक नहीं है। वल्लभाचार्य के मतानुसार, जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग निकलते हैं[1] उसी प्रकार ब्रह्म मे जीव की उत्पत्ति हुई है। अत ब्रह्म और जीव दोनों ससार की स्थिति मे भी सत्यरूप ही है। ब्रह्म अंशी है और जीव उनके अश है।

साधना—साधना मार्ग मे वल्लभाचार्य 'पुष्टिमार्ग' के प्रवर्त्तक है। श्रीमद्भागवत मे कहा गया है 'पोषण तदनुग्रह' अर्थात् भगवान् का अनुग्रह ही पोषण है[2] जिसे 'पुष्टि' भी कहते है। जगत् के त्रिविध दुखों से पीड़ित प्राणी की निवृत्ति के लिए आचार्यों ने ज्ञान, कर्म और भक्ति का मार्ग निर्दिष्ट किया है। जो लोग भगवान के आगे सर्वात्म समर्पण कर देते है और उनके अनुग्रह पर पूरा भरोसा करते है ऐसे भक्तिमार्गीय उपासक ही पुरुषोत्तम को प्राप्त करने के अधिकारी है।[3] इस प्रकार वल्लभाचार्य ने मर्यादा मार्ग की अपेक्षा पुष्टिमार्ग की विशिष्टता बनाई है और बिना वर्ण, जाति और देश भेद के यह मार्ग सभी जीवो को मुक्ति का साधन मार्ग बनाता है। मर्यादा मार्ग के जीव फल के लिए अपने कर्मो के आधीन हैं किन्तु पुष्टिमार्ग मे कर्म की आवश्यकता का प्रश्न ही नहीं है। वल्लभमत के मंदिरो मे भगवान् की सेवा व्यवस्था राजसी ठाठबाट से करने का विधान है। राधा-कृष्ण उपास्यदेव है। वल्लभ-सम्प्रदाय में बाल कृष्ण की उपासना प्रतिष्ठापित की गई थी किन्तु बाद मे (गो० विट्ठलनाथ के समय मे) इस सम्प्रदाय मे भी 'भागवत' के ही आधार पर माधुर्यभाव की भक्ति का विकास किया गया। वल्लभ सम्प्रदाय मे राधा को मुख्यतः स्वकीया माना गया है किन्तु गौड़ीय

---

[1] विस्फुलिंगा इवाग्नेर्हि जडजीवा विनिर्गताः।
सर्वतः पाणिपादान्तात् सर्वतो क्षिशिरोमुखात्॥

—अणुभाष्य २।३।४३.

[2] भागवत २।१०।४.

[3] अणुभाष्य २ ३ ३३

सम्प्रदाय की भाँति परकीया प्रेम मे माधुर्य भाव के उज्ज्वल रस की चरम परिणति मानने के उद्देश्य से इस सम्प्रदाय ने भी राधा और गोपियो के प्रेम मे परकीया का आदर्श सम्मिलित किया।[1]

हिन्दी साहित्य में अष्टछाप के कवियो का मूर्द्धन्य स्थान है। इन कवियों ने पुष्टि सम्प्रदाय के दार्शनिक तथा साधना सम्बन्धी सिद्धान्तो का विधिवत् प्रतिपादन करके पुरुषोत्तम के स्वरूप का यथार्थ वर्णन किया। यहाँ पर जीव और भगवान् के अंशाशी भाव की सुन्दर व्याख्या की गई है। सूरदास और नंददास के काव्य मे पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तो का स्पष्ट एवं सूक्ष्म विवेचन मिलता है।

श्रीकृष्ण चैतन्य का गौडीय सम्प्रदाय

श्री चैतन्य महाप्रभु माध्वमतानुयायी ईश्वरपुरी तथा केशव भारती के शिष्य थे। महाप्रभु के भक्ति आन्दोलन का क्षेत्र मुख्य रूप से बंगाल था। उन्होने जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति के पदो का गायन करके कीर्तन पद्धति से भक्ति-रस का स्रोत खोल दिया। वृन्दावन मे इस सम्प्रदाय की स्थापना तथा वहा के लुप्त तीर्थ एवं मंदिरो के माहात्म्य को पुनरुज्जीवित करने का कार्य श्रीरूप तथा सनातन गोस्वामी ने किया। चैतन्य महाप्रभु ने श्रीमद्भागवत को ही वेदान्त का भाष्य माना इसीलिए उन्होने पृथक् से कोई स्वतंत्र भाष्य नही लिखा। रूप, सनातन और जीव गोस्वामी ने भक्तिरस शास्त्र की मर्यादा सीमा के भीतर सम्प्रदाय की भक्ति पद्धति को सर्वांगपूर्ण तथा शास्त्र-सम्मत बना दिया। यद्यपि सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तो का विवेचन 'चैतन्य चरितामृत' मे भी मिलता है किन्तु आचार्य बलदेव विद्याभूषण के 'गोविन्द भाष्य' मे दिया गया दार्शनिक विवेचन ही सम्प्रदाय का मान्य मूलाधार है।

यह सम्प्रदाय दार्शनिक दृष्टि से 'अचिन्त्य भेदाभेद' के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण परतत्व है जिनकी अनन्त शक्तिया है। भगवान् और उनकी शक्तियो मे तर्क की दृष्टि से पार्थक्य करना असम्भव है। अत. शक्ति और शक्तिमान मे भेद और अभेद को स्थापित करना कठिन है।

परमतत्व भगवान् श्रीकृष्ण के ३ रूप है—(१) स्वयंरूप, (२) तदेकात्मरूप, (३) आवेश। यह भगवान् अनन्त शक्तियो से विभूषित है किन्तु उसकी ३ शक्ति मुख्य है—(१) अंतरंग शक्ति (स्वरूप शक्ति), (२) तटस्थ शक्ति (जीव), (३) बहिरंग शक्ति (माया)। सच्चिदानंद भगवान् की स्वरूप शक्ति एकात्मिक होने पर भी त्रिविधा है—(क) संधिनी, (ख) संवित् (ग) ह्लादिनी। इन त्रिविधा शक्तियो के समुच्चय को पराशक्ति कहते है।

वस्तुत जगत् सत्य पदार्थ है। श्रुति तथा स्मृतियो का इस सम्बन्ध मे एक ही मत है।[2] ससार से ममत्व के परित्याग तथा वैराग्य के धारण करने के निमित्त ससार को 'अनित्य' कहा

---

[1] विशेष द्रष्टव्य भागवत संप्रदाय—बलदेव उपाध्याय, पृ० ३८३ से ४०३ तक।

[2] (क) ईशावास्योपनिषद् ८.
(ख) विष्णुपुराण १।२२।६०.
(ग) महाभारत अश्वमेध पर्व ३५ ३४

जाता है। सृष्टि-संहार (प्रलय-दशा) के बाद भी जगत् अनभिव्यक्त रूप से ब्रह्म में वैसे ही विद्यमान रहता है जैसे रात्रि में वन के पक्षी (वनलीन विहगवत्)।[1]

इस मत का सारांश निम्नलिखित श्लोक में दिया गया है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं, प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न परः॥

'व्रजस्वामी नंद के पुत्र श्रीकृष्ण ही आराधनीय भगवान् हैं। उनका धाम है वृन्दावन। व्रज की गोपिकाओं के द्वारा की गई रमणीय उपासना ही साधक के लिए माननीय प्रामाणिक उपासना है। श्रीमद्भागवत निर्मल प्रमाण शास्त्र है। प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है—चैतन्य मत का यही सारांश है।'[2]

भगवान् की भक्ति परम पुरुषार्थ का एकमात्र साधन है। भक्ति ज्ञानरूपिणी और आनंददायिनी है। संवित् तथा ह्लादिनी शक्तियों का सम्मिश्रण ही भक्ति का सार है। भक्ति के दो भेद हैं—वैधी (विधि भक्ति) और रागानुगा (रागात्मिका)। शास्त्र सम्मत उपायों से पोषित भक्ति वैधी कहलाती है तथा भक्त की दयनीय आर्त पुकार से रागानुगा भक्ति उदय होती है। भक्तिरस का सांगोपांग विवेचन श्रीरूप गोस्वामी के भक्तिरसामृतसिंधु तथा उज्ज्वल-नीलमणि में किया गया है।

श्रीकृष्ण की भावमयी गोलोक लीला ५ भावों से सम्बन्धित है—शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। भगवान् के प्रति प्रेम की निम्नतम दशा शांतरस में तथा उच्चतम दशा माधुर्यरस में समाविष्ट रहती है। माधुर्य भाव की रति के ३ भेद हैं—साधारणी, समंजसा और समर्था। क्रमशः कुब्जा, रुक्मिणी आदि पटरानियाँ और गोपियाँ इनकी प्रतीक हैं। इनमें गोपियों का प्रेम सर्वोत्कृष्ट है, जिसके कारण गोपीभाव (महाभाव) या राधाभाव में रस साधना का चरम महत्व निर्दिष्ट किया गया है। इसीलिए राधा को परकीया मानकर उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है।

हिन्दी साहित्य में चैतन्य मत का साहित्य प्रायः अप्रकाशित ही है। स्फुट रूप में यत्र-तत्र कुछ कवियों की कविताएँ संकलित की गई हैं। गौडीय सम्प्रदाय के प्रमुख कवियों में श्री रामराय (रामानंदराय), माधवीदासी, गदाधर भट्ट, नारायण भट्ट, सूरदास मदन-मोहन, गौरांगदास, वल्लभरसिक, और गुनमंजरीदास प्रमुख हैं। श्रीबलदेव उपाध्याय ने भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास जी को भी चैतन्य मतानुयायी माना है।[3]

राधा वल्लभ सम्प्रदाय

कुछ लोग राधावल्लभ सम्प्रदाय को चतुः सम्प्रदाय से सम्बद्ध करके वेदांत के अद्वैत-परक भेदों की दुरूह जटिल पद्धति के अनुसार मान्यता देने के पक्ष में हैं किन्तु वस्तुतः यह तो

---

[1] प्रमेयरत्नावली ३।७.

[2] भागवत संप्रदाय—बलदेव उपाध्याय पृ० ५१९ पर उद्धृत।

[3] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास प्रथम भाग २०१४ वि० पृ० ५५८

एक स्वतंत्र वैष्णव सम्प्रदाय है जो ठेठ ब्रजमंडल में ही उत्पन्न होकर परिपुष्ट हुआ। सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य हितहरिवंश जी ने ब्रह्मसूत्रों पर कोई भाष्य नहीं लिखा और दार्शनिक मतवाद की दुरूह जटिलताओं से हटकर राधावल्लभ की भक्तिपक्ष की मधुरोपासना का वह रससिक्त रूप ग्रहण किया जिसमें भक्ति के विधि-निषेध को कोई स्थान नहीं है बल्कि राधा के चरणारविंद की अनन्य उपासना ही भक्त के जीवन का चरमलक्ष्य है। कुछ लोगों ने शंकराचार्य की शैली का अनुगमन करते हुए 'राधावल्लभीय भाष्य' लिखे[1] और राधावल्लभ सम्प्रदाय के दर्शन को 'सिद्धाद्वैत' नाम दिया है।[2] डा० विजयेन्द्र स्नातक ने 'सिद्धाद्वैत' शब्द का प्रयोग शब्दार्थ की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण मानकर इस प्रकार के अर्थ को गलत ठहराया है।[3]

सिद्धांत—इस सम्प्रदाय में प्रेम का स्वरूप अत्यन्त विलक्षण और व्यापक है। अनन्त भाव-रूपों में नित्य क्रीडा करने वाला वह प्रेम ही परात्पर तत्व है। जो सहज और असीम होने के कारण नित्य माना जाता है। हित हरिवंशी सम्प्रदाय वस्तुतः 'रससम्प्रदाय' है। प्रेमामृत मूर्ति राधा तथा कृष्ण के नित्य विहार के समय साधक खवासी का कार्य तन्मय भाव से करता हुआ अपने को तद्रूप ही मानता है। आचार्य जी ने 'हित' शब्द को 'प्रेम' का पर्याय माना है और प्रेम की व्यापक परिधि में जिस प्रकार जल से तरंग का पृथक्करण असम्भव है उसी प्रकार उन्होंने साधक (सखी), युगलसरकार और वृन्दावन नित्यविहार परिकर के ४ मुख्य अंगों को एकही प्रेम तत्व की चार आकृतियाँ माना है। प्रेमरूप युगल किशोर के निरन्तर नित्य विहार (निकुंज क्रीड़ा) में अनिर्वचनीय आनंद की उपलब्धि होती है जो संयोग शृंगार का आधारभूत तत्व है और नित्य मिलन का रसदाता है।

अन्य सम्प्रदायों में जहाँ माया के आवरण उच्छिन्न करके भवजाल के बंधन तोड़कर मुक्ति की कामना हेतु 'ज्ञानदशा' की उपलब्धि की अभिलाषा रहती है, वहाँ इस सम्प्रदाय में नित्यविहार का दर्शन करके आनन्द की उपलब्धि ही अलम् है। आचार्य हितहरिवंश ने राधा-प्रेम के सामने कैवल्य को भी तुच्छ माना है।[4]

गौडीय सम्प्रदाय में परकीया भाव के कारण विरह भाव पर आश्रित प्रेम को प्रधानता दी गई है। निम्बार्क सम्प्रदाय में स्वकीया के मिलन भाव में ही रससृष्टि की कल्पना की गई है। वल्लभ सम्प्रदाय में गोपियों का विरह उनके चरम प्रेम का प्रतीक माना गया है किन्तु आचार्य हितहरिवंश ने परकीया तथा स्वकीया दोनों भावों को एकदेशीय तथा अपूर्ण माना है

---

[1] द्रष्टव्य—राधावल्लभ सम्प्रदाय (सिद्धांत और साहित्य), २०१४ वि०, पृ० १२७-१३२।

[2] श्री हितसुधासागर, प्रकाशिका—सॉंने वाली छोटी सेठानी शुभकौर बाई, पृ०-म. सिद्धान्तसार स्मृति, ले० गो० युगलवल्लभ (वृन्दावन), पृ० १२।

[3] राधावल्लभ सम्प्रदाय (सिद्धांत और साहित्य), २०१४ वि०, पृ० १२६-१२७।

[4] अलं विषयवार्तया नरक कोटि बीभत्सया,
वृथा श्रुतिकथाश्रमो बत बिभेमि कैवल्यतः।
परेश भजनोन्मदा यदि शुकादयः किं ततः,
परं तु मम राधिकापदरसे मनो मज्जतु॥

राधासुधानिधि श्लोक ८३।

क्योंकि स्वकीया मे जहाँ मिलन है, विरह नही और परकीया मे विरह है पर मिलन का सुख नही। आचार्यप्रवर ने इस स्थिति का स्पष्टरूप चकई-सारस के सवाद के रूप मे प्रकट किया है।[1] इस विषय का स्पष्टीकरण श्रीबलदेव उपाध्याय ने इन शब्दो मे किया है—"प्रेम विरहा ही राधावल्लभीय पद्धति का सार है। मिलने मे भी विरह जैसी उत्कण्ठा इसका प्राण है। युगलकिशोर श्री राधावल्लभ लाल के नित्य मिलन में वियोग की कल्पना तक नहीं है, परन्तु इस मिलन मे प्रेम की क्षीणता नही, प्रत्युत् प्रतिक्षण नूतनता का स्वाद है। प्रेमासव का अनवरत पान करने पर भी अतृप्तिरूपी महान् बिरह की छाया सदा बनी रहती है, प्रतीत होता है—'मिलेहि रहत मानो कबहु मिलै ना।'[2]

भक्तवर नाभादास जी ने हितहरिवश की प्रेम भक्ति को अत्यन्त कठिन बताया है। साधारण व्यक्ति तो इसका परिचय पा नही सकते, कोई सुकृत संपन्न व्यक्ति ही इसे समझ सकता है।[3]

ब्रज में परकीयातत्व और उपपतितत्व नदनदन कृष्ण के अवतार काल मे रस-सृष्टि करते है, नित्य विहारी कृष्ण (ब्रह्म) के लिए तो इस प्रकार के रूप की कल्पना करना ही अनुचित है क्योंकि वह सच्चिदानद, सत्य सनातन और नित्य तत्व है और सारे अवतारो का मूल उद्गम है जैसे अग्नि से चिनगारियाँ।

राधावल्लभ संप्रदाय के कवियो मे श्री हितहरिवश, श्री दामोदरदास (सेवक जी), श्री हरिरामव्यास, श्री चतुर्भुजदास, श्री ध्रुवदास, चाचा वृन्दावनदास आदि श्रेष्ठ कवियो ने सम्प्रदाय के सिद्धात तथा उपासना विधि का विस्तृत विवेचन अपनी वाणियों तथा कवितओ मे किया है।

लक्षदास जी के समय की दार्शनिक परम्पराएँ

ब्रज के (कृष्ण भक्ति के) प्रमुख सम्प्रदायो के दर्शन तथा साधना पक्ष की रूपरेखा हम, सक्षेप मे, ऊपर दे आये हैं। इन सभी का अनुशीलन करने पर यह ज्ञात होता है कि कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदायो का दार्शनिक मतवाद प्राय मिलता-जुलता है। प्रत्येक सम्प्रदाय ने 'भागवत' को प्रामाण्य ग्रथ मानकर उसकी व्याख्याएँ अपने साम्प्रदायिक मत की पुष्टि के हेतु अपने-अपने ढग से की है। सभी सप्रदायो ने ब्रह्म की सगुणता का प्रतिपादन किया है और उसे परमात्मा, पुरुषोत्तम, अनन्त शक्ति-सम्पन्न और आनदमय आदि नामों से अभिहित किया है। यही ब्रह्म जीवो के कल्याण हेतु श्रीकृष्ण रूप मे पृथ्वी पर अवतरित हुए। इसी प्रकार सभी सम्प्रदाय जगत् और जीव को ब्रह्म का ही अश रूप मानते है और ब्रह्म (श्रीकृष्ण) की अद्वैतता के साथ-साथ न्यूनाधिक भेद से उसकी द्वैतता भी स्वीकार करते है। श्रीकृष्ण ने मानव रूप मे अवतार लेकर अपनी विविध लीलाओ का प्रदर्शन सामान्य नागरिको की भाँति ही किया। कवियों ने कृष्ण की इन लीलाओं का वर्णन करते समय उनके ब्रह्म होने की ओर

---

[1] श्री हितहरिवंश रचित स्फुट वाणी, पद संख्या ५ तथा ६।

[2] भागवत सप्रदाय—श्री बलदेव उपाध्याय, २०१० वि०, पृ० ४४०।

[3] नाभादास भक्तमाल —— भक्त चरितांक (२००८ वि॰ पृ० १०

यथास्थान संकेत किया है और देवताओ द्वारा सुमन वृष्टि तथा व्रजवासियो द्वारा उनकी स्तुति से इनकी पुष्टि की है। वृन्दावन को नित्यधाम या गोलोक बनाकर उसमे श्रीकृष्ण की निकुंज केलि, वन विहार, गोप-गोपियो के साथ क्रीड़ा आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रकृति के ये जड़-चेतन सभी उपकरण श्रीकृष्ण से अभिन्न और अद्वय बताये गये है।

व्रज के ये सभी कृष्ण-सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में अद्वैत वेदात से प्रभावित हैं और उनपर सांख्य का भी प्रभाव दिखाई देता है। इन सम्प्रदायों मे माया को भगवान् की शक्ति बताया गया है और उसे केवल इसी रूप में स्वीकार किया गया है, अन्यथा पृथक् रूप से उसका कोई अस्तित्व नही है। इस प्रकार उन्होने अद्वैत दर्शन से अपने मतो का पार्थक्य स्थापित करके भक्ति के राग-रस-समन्वित रूप की स्थापना के लिये गुंजाइश निकाली है।

सभी कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय श्रीकृष्ण और राधा को इष्टदेव मानते है, परन्तु विभिन्न सम्प्रदायो मे दोनो के सापेक्ष महत्व मे पर्याप्त अतर पाये जाते है।[1]—निम्बार्क-मत के इष्ट-देव प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य आनंददायिनी शक्तियां अर्थात् गोपियो से परिवेष्टित श्रीकृष्ण माने जाते है। राधावल्लभ सम्प्रदाय मे राधा को कृष्ण की आराध्या कहा गया है। उसके अनुसार वे ही परम आनन्द तत्व है। इस प्रकार श्रीकृष्ण की पूजा भी आनुषगिक रूप मे होती है।

लक्षदास की रचनाओ मे भी कृष्ण को ही परब्रह्म स्वीकार किया गया है और उन्हे देवत्रयी—ब्रह्मा, विष्णु, शिव—मे सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया है। श्रीकृष्ण की विविध लीलाओ मे उनके निर्गुण ब्रह्मत्व की स्थिति को स्वीकार करते हुए भी उनके सगुण साकार रूप की महत्ता का निदर्शन किया गया है। कवि की विभिन्न रचनाओं मे राधा-कृष्ण के केलि विलास का वर्णन तो निम्बार्क सम्प्रदाय की पद्धत्यनुसार ही किया गया है किन्तु कृष्ण की बाल-लीला, दानलीला, माखनचोरी तथा भ्रमरगीत आदि के प्रसगो को भी उसने ग्रहण किया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि कवि अपने समय की सामाजिक और तात्विक परम्पराओ के प्रवाह से स्वय को मुक्त नही कर सका। उनसे प्रभावित होकर ही उसने अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का भी प्रकाशन किया है। वल्लभ सम्प्रदाय प्रारम्भ मे केवल कृष्ण की बाललीलाओ को लेकर चला था किन्तु बाद में उसमे भी राधा-कृष्ण की लीलाओ और उनके केलि विलास को स्थान दिया गया। कहते है, चैतन्यसम्प्रदाय भी प्रारम्भ मे कृष्ण के बालरूप की उपासना से प्रारम्भ हुआ था किन्तु बाद मे उसमे परकीया राधा को भी स्वीकार किया गया। इसे सह-जिया सम्प्रदाय का प्रभाव माना जाता है। इस प्रकार हमे ज्ञात होता है कि सम्प्रदायो की परम्पराओं मे भी काल-क्रम से विकास और परिवर्तन होता रहा है फिर भी विभिन्न सम्प्रदायो के कवियो के मूल तत्वो की स्थापना ने उन मे यथासाध्य कोई अतर नही आने दिया है।

लक्षदास की दार्शनिक मान्यताएँ

लक्षदास जी की रचनाओ के आद्योपान्त अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे निम्बार्क सम्प्रदाय की दार्शनिक एव भक्ति पद्धति से विशेषत प्रभावित थे। यद्यपि

---

[1] हिन्दी साहित्य द्वितीय खण्ड (२०१५ वि०) पृ० ३४४-४५।

कवि के काव्य मे दार्शनिक पद्धतियों का विवेचन पृथक् से नही किया गया है किन्तु कथाप्रसगो के बीच-बीच में अथवा यत्र तत्र जो संकेत मिलते है उनसे हमारे इस कथन की पुष्टि होती है। प० बलदेव उपाध्याय का अभिमत है कि 'निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियो के काव्यो मे दार्शनिक सिद्धात का प्रतिपादन अपेक्षाकृत न्यून है परन्तु साधना सम्बन्धी सिद्धान्त बडी ही सुन्दरता तथा प्रामाणिकता के साथ उनके काव्यो मे अभिव्यक्ति पा रहे हैं। राधा-कृष्ण की निकुज लीला (कर्णिका लीला) तथा ब्रजलीला (आवरण लीला)—इन उभयविधि लीलाओ की सेवा सम्प्रदाय को स्वीकृत है।'[1] उपाध्याय जी का यह कथन लक्षदास जी की रचनाओ पर भी यथावत् लागू होता है क्योकि उनमें भी ब्रह्म, जीव, जगत् तथा माया का विवेचन दार्शनिकदृष्टि से कम किया गया है और साधना पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। आगे की पंक्तियो मे हम पहले लक्षदास जी की दार्शनिक मान्यताओ पर संक्षेप मे विचार करेगे।

निम्बार्क सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप—निम्बार्क सम्प्रदाय मे ब्रह्म को निर्गुण और सगुण दोनो रूपों में स्वीकार किया गया है। वह सर्वज्ञ, अनत गुणो का आश्रय, ब्रह्मा-महेश्वर तथा कालादिको का नियता है।[2] समस्त जड-चेतन पदार्थो का स्रष्टा होने पर भी वह आनन्दमय ब्रह्म उनसे परे है किन्तु जगत् का उपादान कारण होने से वह उनसे युक्त भी है। इस प्रकार वे ब्रह्म को गुण या अश तथा जीव-जगत् को गुणी या अशी कहते है और उनका भेदाभेद सम्बन्ध (समुद्र तरग न्याय) निर्धारित करते है। जगत् एव जागतिक वस्तुओ की परिवर्तनशीलता, स्थिति और लय के विकार का ब्रह्म पर कोई प्रभाव नही पडता। ब्रह्म स्वयं काल नियता है अत काल से उसके स्वभाव मे परिवर्तन नही होता। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता के रूप मे उसकी कोई सीमाए निर्धारित नही की जा सकती है। इसी कारण ब्रह्म निर्गुण है।

निम्बार्क सम्प्रदाय मे ब्रह्म के निर्गुण रूप की स्वीकृति उपनिषद् युग की ब्रह्म विषयक चिन्तन शैली का विकसित रूप प्रतीत होती है। उपनिषद् के ऋषि ने ब्रह्म को सूक्ष्मातिसूक्ष्म और इन्द्रियातीत बताकर[3] उसके मूर्त्त रूपका निषेध किया है[4] तथा ससार की जड़ चेतन सभी वस्तुओ में ब्रह्म के व्याप्त होने का सिद्धात अपनाया गया है।[5] आगे चलकर बृहदारण्यक, छादोग्य तथा तैत्तरीयोपनिषद् आदि मे ब्रह्म और आत्मा के सूक्ष्म तत्व का सादृश्य प्रकृति के बाह्य उपादानो के आधार पर बताकर उनके अस्तित्व को समझाने का प्रयास किया गया। फिर भी ब्रह्म की सूक्ष्म स्थिति को व्यक्त करने मे असमर्थता प्रकट करने के लिये ही 'नेति-नेति' की शैली का प्रयोग किया गया और (साथ ही) उसके अस्तित्व तथा अनस्तित्व के बारे मे भी अस्पष्ट विचार व्यक्त किये गये।

गीता ने बहुत स्पष्ट शब्दों मे परमात्मा की स्वतंत्रता और प्रकृति की परतंत्रता का

---

[1] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (प्रथम भाग), पृ० ५४४।

[2] ब्रह्मसूत्र १।१।२ पर निम्बार्क भाष्य।

[3] कठोपनिषद् ८।१०३

[4] श्वेताश्वतर उपनिषद् ३।१६

[5] ईशावास्यमिद सर्व ८ ११

प्रतिपादन किया है। गीता में कथित 'पुरुष' सांख्य के 'पुरुष' की भांति एकदम निष्क्रिय और उदासीन नहीं है, सारे विश्व का प्रवर्त्तन उसी से हुआ है।[1] इस प्रकार परमात्मा स्वेच्छा से परा प्रकृति द्वारा नाना जीव रूप धारण कर तथा अपनी अपरा प्रकृति के विस्तार से स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरों तथा समस्त जगत् को धारण करता है।[2] अंतर केवल यह हो जाता है कि जीवात्मा अहंकार, राग-द्वेष आदि वृत्तियों को स्वीकार करके परतन्त्र और अल्प शक्तिमान बन जाती है[3] परन्तु परमात्मा अपने सर्वात्म भाव, सर्वज्ञ, स्वतंत्र और नित्य आनंद स्वरूप में ही स्थित रहता है। जब जीवात्मा इन वृत्तियों का परित्याग कर देती है तो सर्वात्म भाव पुनः समष्टि रूप होकर ब्रह्म रूप बन जाती है। जिस प्रकार गीता में वर्णित ब्रह्म अज, अविनाशी, सर्वव्यापी, निर्विकार और इन्द्रियातीत होने पर भी[4] संसार के पाप-ताप का नाश करने और पृथ्वी का भार उतारने के लिये पृथ्वी पर अवतार लेकर मानव सुलभ लीलाएँ करता है[5] उसी प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय की मान्यता है कि अपने उपासकों एवं शरणागतों की इच्छा एवं प्रार्थना पर, अपना अनुग्रह प्रदर्शित करने के लिये, ब्रह्म अवतार धारण करता है और चतुर्व्यूहात्मक रूपों में प्रकट होता है।[6] इस प्रकार सर्वशक्तिमान ब्रह्म अपनी शक्ति के विक्षेप से स्वयं ही जगदाकार हो जाते हैं किन्तु उनकी इस परिणति में भी शक्ति एवं कृति का योग रहता है।[7] इसी कारण निम्बार्क सम्प्रदाय में ब्रह्म को निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में मान्य ठहराया गया है।

लक्षदास की रचनाओं में ब्रह्म—हमारे आलोच्य कवि लक्षदास ने भी ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्वीकार किया है।[8] उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, निर्विकार और आदि-अन्त रहित माना है, फिर भी सांसारिक दशा में नटी (ब्रह्म की शक्ति माया) के त्रिगुणात्मक रूप (सत, रज, तम) की उत्पत्ति के बाद से ही निर्गुण ब्रह्म सच्चिदानंद रूप धारण करके सगुण कहलाया।[9] 'जड़भरतोपाख्यान' में कवि ने जड़ भरत के मुख से कहलवाया है कि 'वह (ब्रह्म) जन्म-मरण, सुख-दुख, काम-क्रोध और अनुराग से परे है। वह शिशु, तरुण एवं वृद्ध नहीं

---

[1] अहं सर्वस्य प्रभवोमत्तः सर्वं प्रवर्त्तते—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १०।८

[2] वही १३।२२।

[3] श्रीमद्भगवद्गीता ४।१०.

[4] वही ७।२४.

[5] यदाहि यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
—श्रीमद्भगवद्गीता ४।७.

[6] वेदान्त पारिजात सौरभ, १।८-१२-२५.

[7] दशश्लोकी ५।८-६
वेदान्त पारिजात सौरभ १।४-३६, २।१-२३

[8] निर्गुन सगुन रूप ये दोउ—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ५।

[9] आदि अंत सो सुनियत सुना। कहि न जाय गुन रूप विहुना।
है था नाम नटी तेहि केरे। रच्यो नाच नाचती तिहु फेरे।
तेहि पति निकट तीनों सुत जाये। तब ते निरगुन सगुन कहाये।
हस्तलिखित) पृ० ८५।

होता उसकी जाति गोत्र कुल और वर्ण कुछ भी नहीं है यह संसार उसकी लीला के विस्तार के रूप में ही हमें दिखाई देता है।[1] वह ब्रह्म ही सत्य है और जगत् स्वप्नवत् मिथ्या उस ब्रह्म की माया से प्रेरित होकर जीवात्मा संसार में नाना रूपों मे कष्ट पाता है। वह ब्रह्म द्वैताद्वैत दोनों रूपो मे पूज्य है जैसे स्वर्ण कुण्डल मे कारण रूप से तो एकता है किन्तु कार्य रूप मे दोनो भिन्न है।[2] ब्रह्म की द्वैताद्वैत की स्थिति को प्रतिपादित करने के लिये यही सिद्धात (सुवर्ण कुडल न्याय), आचार्य आश्मरथ्य ने भी स्वीकार किया था जिसके अनुसार उन्होंने ब्रह्म और जीव की कारणात्मना एकता और कार्यात्मना दोनो की अनेकता स्वीकार की, जिस प्रकार कारणरूपी सुवर्ण की एकता बनी रहने पर भी कार्यरूप कटक, कुडलादि रूप मे दोनो की भिन्नता रहती है।[3]

लक्षदास ने अपनी रचनाओ मे ब्रह्म को निर्गुण, निराकार तथा निरीह बताकर भी उसके सगुण साकार रूप धारण करने की प्रतिष्ठापना की है। जिस प्रकार गीता मे ब्रह्म के जन्म धारण कर लोक-रक्षा तथा धर्म सम्थापन का कार्य करने का निर्देश है उसी प्रकार लक्षदास ने भी ब्रह्म की उसके विविध अवतारी नामों से स्तुति की है और उसे सर्वेश्वर कहा है। 'वह नाम, रूप, गुण और कर्म से परे है किन्तु उसने अपार जन्म धारण किये। अगम, निगम शेष उसे अनत कहकर उसका सादर स्मरण करते है। वे शिव, सनकादि, विधि, सुरेश सभी के समर्थ पति है। वे दीनबधु मुझ अल्पज्ञ से हित मानेगे। वे सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ और सतो के हितकारी श्याम है जो धर्म को धारण करने वाले सुन्दर सुजान होकर सगुण और अगुण रूप मे प्रकट होते है। जगन्नाथ, बैकुठनाथ, श्रीनाथ, मुरारी, करुणासागर, कृपासिधु, भक्त भय-हारी सबको सुख प्रदान करने वाले, परम पवित्र, पूर्ण पुरुष, परमानन्द और सबके समर्थ स्वामी आदि उनके (ब्रह्म के) नाम है।'[4]

---

१ जाके जन्म मरन डेरु नाहीं। नहि सुष दुष को श्रम जेहि माही।
जो नहि काम क्रोध अनुरागे। राजा जानु जग्य तसो जागे।
जो सिसु तरुन बृढ ना होइ। जाति गोत्र कुल बरन न सोइ।
जगु जाको लीला विस्तारा।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृष्ठ ७-८।

२ येकै पति येकै पथ साचो। नटी नाच मोहन अस नाचो।
+ + +
सब जानही जगपति को नाचु। कोउ कहै मिथ्या कोउ कहै साचु।
+ + +
यह पथ पुनि मानत है दोनो। बहु आभरन नाम सोइ सोनो।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ८५।

३ ब्रह्मसूत्र १।४।२०

४ नाम रूप गुण कर्म जन्म अपार जिन केरे।
सादर अगम निगम सेश अनंत कहि टेरे।
शिव सनकादिक विधि सुरेश सबके समरथ पति।
दीनबधु हित मानिहै मेरी थोरी मति।
सब लायक सरवग्य स्याम संतन हितकारी।
सगुन अगुन सुन्दर सुजान ———

साधना पक्ष—भारतीय तत्वचिंतकों एवं मनीषियों ने जिस ब्रह्म को दार्शनिक दृष्टिकोण से निर्गुण, निर्विकार और अव्यक्त कहा है वही उपासना के क्षेत्र में सगुण रूप धारण करके मानव सुलभ लीलाएँ करता है। वेद जिसे नेति-नेति कहते हैं और ब्रह्मा शिव, सनकादि देवता जिसका पार नहीं पा सकते किन्तु उसकी वंदना किया करते हैं वही कृष्णचन्द्र परमेश्वर रूप हैं। उनकी अनंत शक्तियाँ हैं जिनके द्वारा वे भक्तों का संकट दूर करते हैं। यही कृष्ण सर्वेश्वर और परम-उपास्य देवता हैं।[1]

हमारे आलोच्य कवि लक्षदास की रचनाओं में भी कृष्ण को हरि, श्याम और श्रीकृष्ण नामों से सम्बोधित किया गया है। विभिन्न प्रसंगों में कवि ने इस बात का संकेत किया है कि कृष्ण ही ब्रह्म हैं। कवि कहता है कि 'तू (संसार) जिसे ब्रह्म कहता है वह यही 'हरि' है, साधुओं पर कृपा करने के लिये अपनी इच्छा से प्रकट हुए हैं। इन कृष्ण को साधारण मानव मत समझो, ये नित्य विहारी हैं जो लीला रूप दिखाने आये हैं।'[2] 'गोवर्द्धन लीला' प्रसंग में इन्द्र ने अपना मान भंग होने पर कृष्ण की स्तुति की 'तुम त्रिकाल स्थित हो और दुष्ट निकंदन करके स्वजन का पोषण करते हो, तुम्हारा यश तीनों लोकों को पावन करने वाला है।'[3] इन्द्र द्वारा की गई यह स्तुति कृष्ण के ब्रह्म रूप की प्रतिष्ठा की पोषक है और उनके अवतार धारण करने की सार्थकता का निर्देशन करती है। इसी प्रकार से कवि की विविध रचनाओं में ब्रह्म के अवतार धारण करने—रामावतार, कृष्णावतार, नरसिंहावतार आदि—तथा दुष्टों का संहार करने के लिये अवतरित होने की ओर स्थान-स्थान पर संकेत किया गया है जिससे ब्रह्म के सगुण रूप की प्रतिष्ठा की पुष्टि होती है। लक्षदास जी ने ब्रह्म (कृष्ण) की जागतिक लीलाओं का वर्णन करने के लिये ही नंदनंदन के सुखद यश का गायन किया है। 'श्रुतियाँ जिसे नेति-नेति कहती हैं, मुनि भी प्रयत्न करके और अनुमान के आधार पर ही अपने मन में उसका ध्यान करते हैं, विद्वान लोग उसके 'विराट वपु' का विविध प्रकार से वर्णन करते हैं, उसकी प्राप्ति के लिये तपस्वी क्लेश सहकर तप करते हैं, ज्ञानी उस अद्वैत, एक रूप ब्रह्म को

जगतनाथ बैकुंठनाथ श्रीनाथ मुरारी।
करुनासागर क्रिपासिंधु भगतन भयहारी।
पावन पूरन परम पुरुष सुष अंतरजामी।
परमानंद अनन्द प्रसिध बुध समरथ स्वामी॥

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ६४।

[1] नान्यागति कृष्णपदारविन्दात् संदृश्यते ब्रह्म शिवादि-वंदितात्।
भक्तेच्छयोपात्त-सुचिन्त्यविग्रहादचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्॥

—दशश्लोकी, श्लोक ८।

[2] तू जेहि ब्रह्म कहत हरि जेई। साध क्रिया इच्छा प्रगटेई।
क्रस्नहि जनि जानहु तन धारी। ये लीला वन नित्य विहारी।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३७।

[3] तुम हो तीनि काल समतोषी। दुष्ट निकंदन निज जन पोषी।
तव जसु तीनि लोक को पावन।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३४।

जगत् मे व्याप्त देखते है, योगी यत्न करके उसके तत्वो को देखते हैं विद्वान और वेद विधि पूर्वक उसका गायन करते है। उन हरि ने (स्वय) व्रज मे लीलाएं करने के विचार से 'वपु' धारण किया।'[1]

लक्षदास जी ने 'रास लीला' प्रकरण मे कृष्ण और राधा को वेद द्वारा वर्णित 'पुरुष' और 'प्रकृति' कहा है। राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति, अनुरूप सौभगा और सर्वेश्वरी है। कृष्ण और राधा का अभेद्य सम्बन्ध है जैसे चन्द्रमा और उसकी किरणो, सुमन-सुवास, रवि एव दीप म प्रकाश, विद्वानो के सार्थक वचनो मे पीयूष रस और मधुरता विद्यमान होती है। राधा मनमोहन एक प्राण दो रूप दिखाई देते है जैसे ध्वनि मे राग और रागिनी अर्तहित है।[2] इसी प्रकार राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति, अनुरूप सौभगा और सर्वेश्वरी है। इसीलिये लक्षदास ने युगलोपासना मे मधुर भाव को विशेष प्रश्रय दिया और राधा-कृष्ण की निकुज लीला को भक्तो का सर्वस्व बताया है। श्रीरूपा राधा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिये ही उसके स्वकीया रूप को अपनाया गया है। राधा और रुक्मिणी व्यवहार दशा मे तो कृष्ण की दो पृथक् रानियाँ (शक्तियाँ) है किन्तु मूलत वे दोनो एकही है। इसीलिये कवि ने रुक्मिणी-कृष्ण की लीला को भी निकुज लीला का अग मानकर 'गुप्त केलि' कहा है। (इसका विस्तार से विवेचन इसी अध्याय मे आगे किया जायगा।) उनके अगम-अगोचर रूप को जान पाना बहुत कठिन है (किन्तु) उनकी रासलीला रसिक (भक्त) जन को आनन्द देने वाली है।[3] कवि की अन्य रचनाओ एव प्रसगो—पचाध्यायी गोपिका गीत, यमलार्जुन मोक्ष, ब्रह्मा, बाल वत्स हरण, अक्रूर, सुदामा, द्रौपदी, प्रह्लाद, अम्बरीष, चन्द्रहास, हंसध्वज, मयूरध्वज आदि—मे भी कृष्ण के आदि ब्रह्म के अवतार होने की ओर सकेत किया गया है जिनसे भगवान् की भक्तवत्सलता तथा सर्वशक्तिमत्ता का बोध होता है।

ऊपर सकेत किया जा चुका है कि विष्णु के विभिन्न अवतारो मे अभेद स्थापित करने के लिये कवि ने विविध कथा प्रसगो की ओर सकेत किया है। इतना ही नहीं, विष्णु और शिव मे अभेद स्थापित करने के लिये भी 'हरिहर नामावली' मे भगवान् के समस्त अवतारो की सूची गिनाई गई है। जिसके अत मे कवि कहता है कि 'मुमुक्षु के लिये आवश्यक है कि वह

---

[1] नेति नेति जाको श्रुति गावै। मुनि अनुमान ध्यान मनु लावै।
बुध बरनत बहु बिधि बिराट वपु। सहि क्लेस तापसि करत तपु।
येक ब्रह्म ज्ञानी जग लेषे। जोगी जतन तत्व जेहि देषे।
+ + +
गावत बुध त्रिधि वेद पुरारी। स्वै हरि व्रज लीला वपुधारी।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ११।

[2] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ६६।

[3] पुरुष प्रकृति जेहि वेद बखानैं। अगम अगोचर को तेहि जाने।
पावत रसिक रस सुजस रास को।
(हस्तलिखित) पृ० ४३

शिव और हरि की समान रूप से उपासना करे। शिव की निंदा करने वाले वैष्णव 'परमपद' को प्राप्त नहीं कर सकते।[1]

इन्द्रियातीत ब्रह्म के विषय में केनोपनिषद् के ऋषि का कथन है कि 'जो व्यक्ति यह कहता है कि ब्रह्म को मन से नहीं जाना जा सकता है, उसे वास्तव में वही जानता है और जो यह विचार करता है कि उसे इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है वह उसे कदापि नहीं जान सकता।'[2] उपनिषद् के इस कथन का अंत-प्रेक्षण करते हुए लक्षदास जी ने अपना अनुभव व्यक्त किया है—'यदि कोई व्यक्ति उसकी प्राप्ति की बात कहे तो वह निकट नहीं रहता और यदि उसे दूर मानो तो वह हृदयस्थित दिखाई देता है। ध्यान में धारण करने पर उसका खोज (पता) नहीं मिलता और उसकी खोज कर लेने पर अपना 'स्वत्व' समाप्त हो जाता है।'[3] इसीलिये हमारे आलोच्य कवि की रचनाओं में सगुणोपासना पर विशेष आग्रह है। जब तक भक्त के मन में प्रेम और दृढ़ नियम नहीं है तब तक मन में स्थित निर्गुण रूप और (कल्पना में स्थित) सगुण रूप दोनों ही दुर्लभ हैं।[4] लक्षदास का कहना है कि बिना रूप के आकर्षण असम्भव है। बिना रूपाकर्षण के प्रेम होना सम्भव नहीं है। जब 'नैन' उस रूप में अटक जाते हैं तब हटाने से भी नहीं हटते। उस रूपसुधा का स्वाद कैसे बतलाया जाय? नेत्रों के तो 'रसना' नहीं है और वाणी के नेत्र नहीं हैं, अतः नेत्रों से उस रूप वारुणी को छक कर पीना चाहिये[5] (या पश्यति सा न ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति—देवीभागवत) इसीलिए कवि का कहना है कि राधा-कृष्ण की निकुंज केलि और नित्य विहार की लीलाएं भक्तों को आनंद देने वाली और भक्ति पथ को प्रकाशित करने वाली हैं।

---

[1] रहस देषि शिव चलत है दूर लिष्यो यह बात।
जे हरि मे लवलीन है चले परमपद जात।
लिष्यो कृस्न यह देषिके या मे नही बिवेक।
जे निंदक है संभु के ते न जात जन येक।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ६७।

[2] यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातम् विजानताम् विज्ञातं अविजानताम्।
—केनोपनिषद् २।११।

[3] पायो कहो तो नियरो नाही। मानो दूरि तो है उर माही।
ध्यान धरौ तौ षोज न पावो। षोजौ तबहि तौ आपु गवावो।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ८।

[4] सगुन रूप सुठि सुलभ है नीरगुन मनु भरपुरी।
लछी प्रेम द्रीढ नेम बीन है कीन्हे तउ पुरी॥
—दोहावली स० १६६।

[5] प्रेम न होइ रूप बिन अटके। अटके नैन रहही नही हटके।
लछी स्वाद सो बुझौ काही। अषियन के रसना नहि आही।
नेनन्ही रूप वारुनी पियो।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित) पृ० ८६।

निष्कर्ष—निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार लक्षदास ने ब्रह्म को निर्गुण और सगुण दोनो रूपो मे स्वीकार किया है। जीव और ससार उस ब्रह्म की लीला के विस्तार है, उनके तिरोहित हो जाने पर यह द्वैतता ब्रह्म की अद्वैतता मे परिणत हो जाती है। जैसे स्वर्ण और उससे निर्मित आभूषण। वह निर्गुण, निराकार और निरीह ब्रह्म लोक की रक्षा तथा धर्म-सस्थापना करने के लिये सगुण साकार रूप मे लीलाएँ करता है। कृष्ण उस ब्रह्म के ही अवतारी रूप है जिसकी शक्तियाँ श्री (राधा) और लक्ष्मी (रुक्मिणी) है जो व्यवहार दशा मे तो भक्तों की उपास्या हैं किन्तु परमार्थ दशा मे कृष्ण (सर्वेश्वर) के नित्य विहार की ही अग है। इसीलिये कवि ने राधा-कृष्ण के युगल रूप की मधुरोपासना को अपने काव्य का प्रतिपाद्य बनाया है जिससे भगवान् के इस रागरस समन्वित लीलाभाव मे वह अपनी चित्तवृत्तियों को केन्द्रित कर सके।

जीव

निम्बार्क स्वामी ने दशश्लोकी मे जीव को चित् या ज्ञानस्वरूप माना है। वह ज्ञान का आश्रय—ज्ञाता है। अत एक ही काल मे वह ज्ञानस्वरूप तथा ज्ञानाश्रय दोनो इसी प्रकार है[1] जिस प्रकार सूर्य प्रकाशमय है तथा प्रकाश का आश्रय भी है। ससारी दशा मे जीव का कर्ता होना अनुभवगम्य है परन्तु मुक्तावस्था मे भी जीव की कर्तृत्व शक्ति श्रुतिप्रतिपादित है। ससार दशा में जीव स्वतंत्र रूप मे कार्य करता है किन्तु फिर भी वह ईश्वर के आधीन है। ईश्वर नियन्ता है, जीव नियम्य है। मुक्त दशा मे भी जीव ईश्वर के आश्रित रहता है। मूलत जीव हरि का अश रूप है जो ससार दशा मे नानात्व रूपो मे दिखाई देता है। वह सर्वशक्तिमान ईश्वर का शक्ति रूप है किन्तु गुणमयी प्रकृतिरूपिणी माया से आवृत्त होने के कारण जीव का ज्ञान सकुचित हो जाता है। फिर भी भगवान् के प्रसाद से जीव को सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो सकता है।[2] इसके बाद निम्बार्काचार्य ने जीव के दो भेद—मुक्त और बद्ध माने है और इनके भी अवान्तर भेद किये है।[3]

लक्षदास जी ने भी जीव को ज्ञानस्वरूप माना है किन्तु 'वह प्रकृतिरूपिणी (सासारिक) माया मे फँसकर मृगतृष्णा की भांति भटकता है और ममता-मोह में लिप्त हो जाता है। सासारिक प्रपच (लोभ, मोह, मद, ममता, मत्सर) जीव को नचाते रहते हैं और नट के कपि की भाँति उसे परवश बना देते है।'[4] मनुष्य का शरीर पंचतत्व को मिलाकर बनाया गया

---

[1] ज्ञानस्वरूप च हरेरधीन शरीरसयोगवियोगयोग्यम् ।
अणुहि जीव प्रतिदेहभिन्न ज्ञातृत्ववन्त यदनन्तमाहु ॥

—दशश्लोकी १।

[2] अनादि मायापरियुक्तरूप त्वेन विदुर्वे भगवत्प्रसादात् ।

—दशश्लोकी २।

[3] इसी अध्याय मे निम्बार्क सम्प्रदाय के दर्शन के अन्तर्गत इनका वर्णन किया जा चुका है।

[4] मृग त्रिस्ना है सुष ससारी। तिन रमि जम जातना बिसारी।

× × ×

पंच प्रपंच नचावति लीन्हे। जड जीवहि नट को कपि कीन्हे।

हस्तलिखित पृ० ६

है।[1] जिस प्रकार सर्प के अंग पर कचुली रहती है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर से कर्म लिपटे हुए है।[2] इन कर्मों का प्रभाव मनुष्य को भोगना पड़ता है। 'बिना सुकृत के उद्यम उसी प्रकार निरर्थक है जैसे बिना बीज के खेत मे अन्न उत्पन्न नहीं हो सकता। पाप करके सुख संपत्ति की कामना तो वैसे ही है जैसे अग्नि के भीतर बैठकर कोई शीतलता प्राप्त करना चाहे।'[3]

कवि ने 'मोहांध दीप' प्रसग मे जीवात्मा के ससार में जन्म धारण करने तथा उसके माया-ममता में लिप्त होने के विविध उपकरणों पर विस्तार से विचार किया है। माया की प्रतीक नारी तथा ममता का प्रेरक परिवार संसार दशा मे जीवात्मा को अनुरक्त रखता है। उसे 'ससार सदन रूपी अंध कूप मे और कुछ भी नहीं सूझता। वह विषयों को त्याज्य कहता हुआ भी उनसे रति करता है। विषयो के बढ़ने के साथ-साथ तृष्णा भी बढती है।'[4] अतः आत्मा को प्रबुद्ध करने के लिये कवि उसके शरीर में स्थित षट् रिपुओं (पांच कर्मेन्द्रिय तथा मन) के अस्तित्व का बोध कराकर उन्हे पहचानने की याद दिलाता है। ये इन्द्रियाँ अपने-अपने 'रस' की ओर दौड़ती हुई मोह के वशीभूत करके उसे नचाती है। मनुष्य पशुवत् इनके इगित पर चलता है किन्तु इन्हे जीत नही सकता।[5] अत मे कवि मनुष्य (आत्मा) को भगवन्नाम का स्मरण करने तथा भागवत पढ़ने के लिये प्रेरित करता है जिससे वह 'श्रेष्ठ मोक्ष' को प्राप्त कर सके।

'सुध ज्ञान' के प्रसग में लक्षदास ने (ससार दशा मे) जीवात्मा की ५ सहेलियों (पच तन्मात्राओं) की ओर सकेत किया है और उनको वशीभूत करके ज्ञान प्राप्त करने की बात कही है। ५ ज्ञानेन्द्रियों से अनुराग करके तथा ५ कर्मेन्द्रियों को वश मे करके अपनी स्थिति को (सुहाग) दृढ़ करना चाहिए।[6] आगे चलकर कवि ने जीवात्मा को पतिव्रता नारी के सदृश कहा है जिससे वह अपने पति (ब्रह्म) रस को त्याग कर अन्यत्र न भटके। मुमुक्षु जीवात्मा

---

[1] पुनि भू नभ अप तेज समीरा। इनसो रचि विधि कियो शरीरा।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ७।

[2] ज्यो केचुलि भुवग अंग रहै। त्यो रिषि देह कर्म सब अहै।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ८।

[3] विना सुक्रित को उद्यम अैसो। पेत बीज विन जमै न जैसो।
करै पापु सुष सपति चहै। पैठि अग्नि को सीतल रहै।।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०।

[4] अंध कूप ग्रह और न सूझै। विषै कहै विष येहि रति बूझै।
विषै बढ़त त्रिस्ना सग बाढन।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ८४।

[5] षट रिपु है तेरे तन माही। तै सठ तू पहचानत नाही।
अपने अपने रस कह धावत। किये मोह वस तोहि नचावत।।
—वही, पृ० ८४।

[6] जीव भवसग पाच सहेली। पति वस करि अपने रस पेली।
पाचहु से राषे अनुरागु। वस करि पाचहु लियै सुहागु।।
—वही पृ० ८६।

हरिचरण रति करने पर षट् रस स्वाद को भूल जाता है और ब्रह्ममय हो जाता है।[१] पचाध्यायी प्रसग मे कवि ने सकेत किया है कि हरि मूरति का स्मरण करने पर आत्मा परमात्मा मे वैसे ही लीन हो जाती है जैसे पानी मे पानी मिल जाता है।[२] 'जड़भरतोपाख्यान' मे लक्षदास ने आत्मा को 'बनियाँ' और परमात्मा को 'साहु' का रूपक देकर जीवात्मा की विवशता तथा ससार की हीनता का जीवत चित्र प्रस्तुत किया है।[३]

इस प्रकार लक्षदास जी ने जीव को ब्रह्म की शक्ति (दूसरा रूप) माना है। संसार दशा मे जाकर जीव माया के प्रभाव मे भ्रमित हो जाता है। इन्द्रियो की रसलोलुपता तथा बुरे कर्मो का प्रभाव उसे भोगना पड़ता है। ससार दशा तथा मुक्त दशा मे जीव ब्रह्म (ईश्वर) के ही आधीन रहता है। इसीलिये कवि ने आत्मा को पतिव्रता नारी कहा है। कवि ने मायावश जीव को प्रबुद्ध करने के लिये ससार की विषमता और उसकी असारता का विस्तृत वर्णन किया है। अत मे उसने कहा है कि भगवन्नाम जप तथा भागवत पढ़ने से हरि चरण रति होती है और जीव 'श्रेष्ठ मोक्ष' प्राप्त करके ब्रह्ममय हो जाता है।

जगत्

श्री हरिव्यासदेव जी ने 'महावाणी' मे प्रकृति और जगत् को एक ही तत्व माना है। उनके अनुसार दोनो ही परब्रह्म की अपरा शक्ति के परिणाम हैं।[४] प्रकृति के अन्दर आने वाले सभी पदार्थ प्रकृति से उत्पन्न होते है। प्रकृति के कार्य व्यापार, जीव को सांसारिक दशा मे उलझाये रखते है और उसके मोक्ष में व्याघात पैदा करते है क्योंकि प्रकृति सत, रज और तम इन ३ गुणो के द्वारा परिणत होकर जीव का बधन करती है। श्री निम्बार्काचार्य ने ब्रह्म और जगत् मे अभेद भाव माना है। जगत् ब्रह्म का परिणाम है परन्तु वह ब्रह्म के स्वरूप का परिणाम नही है, उसकी उत्पत्ति ब्रह्म की अपरा शक्ति से हुई है। अत यह शक्ति विक्षेप लक्षण परिणाम कहलाता है। ब्रह्म अपने को जगत् रूप मे परिवर्तित कर लेता है परन्तु फिर भी वह अविकृत रहता है। इस प्रकार ब्रह्म और जगत् का भेदाभेद सम्बन्ध है।[५] जिस प्रकार मकड़ी अपने थूक से जाला बना देती है। इसके लिये उसे किसी अन्य प्रसाधन को काम में लाने की आवश्यकता नही पड़ती, ठीक इसी प्रकार सर्वशक्तिमान परमात्मा अपने अन्दर से ही जगत् को बनाता है।[६] ब्रह्म की अपराशक्ति से त्रिगुणात्मिका प्रकृति मे विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे महत्तत्व उत्पन्न होता है। महत्तत्व से अहकार, अहकार से १० इन्द्रियाँ और मन तथा पच

---

१ चरन रेनु को लालचु भयो। षट रस स्वाद बिसरी सब गयो।
जो पछी उडि गयो अकासा। द्रिष्टि गई पुनि प्रीतम पासा।

—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ८६।

२ यह कहि हरि मूरति उर आनी। जैसे गयो पानी मिलि पानी।

—वही, पृ० ३७।

३ कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ९।

४ महावाणी—सिद्धात सुख, पृ० १७१।

५ ब्रह्मसूत्र पारिजात सौरभ एवं कौस्तुभ भाष्य १-४-२३ से प्रारम्भ।

६ ब्रह्मसूत्र का वेदान्त कौस्तुभ भाष्य १ ४ २६

तन्मात्रा, उससे जल, आकाशादि पच महाभूत प्रकट होते है। इन्ही पचमहाभूतो से १४ लोको का ब्रह्माण्ड बनता है। सृष्टि रचना का यही क्रम है।[१] इसी कारण परमात्मा को संसार के सभी तत्वो का आधार भी स्वीकार करना चाहिये।

हमारे आलोच्य कवि लक्षदास की रचनाओ मे भी जगत् को ईश्वर की लीला का विस्तार बताया गया। उन्होने त्रिगुणात्मक जड़ प्रकृति को माया कहा है जो मोहिनी रूप धारण करके सारे ससार को छलती है। वह ब्रह्म की ही शक्ति है। ब्रह्म सत्य है किन्तु जगत् को कोई मिथ्या और कोई सत्य कहते हैं। इस प्रकार विद्वानो के विचार वैषम्य की ओर सकेत करते हुए कवि ने निम्बार्क संप्रदाय के द्वैताद्वैत सिद्धात को इन शब्दो में व्यक्त किया है—'स्वर्ण निर्मित आभूषण विविध रूपो मे दिखाई देने पर भी मूलत. स्वर्ण ही है।'[२]

'दत्तात्रेय-जदु सवाद' प्रकरण मे कवि ने ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति उसी प्रकार बताई है जिस प्रकार मकड़ी अपने थूक से जाला बनाती है। इसी प्रसग मे कवि ने दत्तात्रेय के २४ गुरुओं की सक्षिप्त कहानी देकर (संसार दशा मे) जीवात्मा के माया-मोह मे लिप्त होने और सच्चे पथ को भूल जाने के बारे मे बताया है।[3]

लक्षदास ने समस्त सांसारिक सुखो को मृगतृष्णा कहा है[४] क्योकि ससार स्वप्नवत् भासता है।[५] जीवात्मा ससार मे जाकर 'कुसियारी के किरवा' (भृगी कीट) की भाँति अपना जन्म व्यर्थ ही गँवाता है और विवेक छोड़कर मोह को धारण करता है।[६] वह उसमे और भी अधिक आसक्त होता जाता है और उससे निवृत्ति के उपाय काम मे नही लाता।

'जडभरतोपाख्यान' मे कवि ने ससार को विषम वन कहा है और सामारिक ममता के झझट में फँसने पर ब्रह्म के चिंतन के छूट जाने का सकेत किया है। इस ममता के चक्कर मे फँस जाने पर संसारी व्यक्ति अपना घर, गाँव और ठिकाना भी भूल जाते हैं।[७] कवि ने ससार मे आसक्ति के २ केन्द्र विन्दु बताए है—ममता और मोह। उनके रूप की व्यापकता तथा उनके प्रभाव का वर्णन करता हुआ कवि कहता है 'ममता ससार को निष्ठुरता से नचाती है और विविध

---

१ वेदान्त कामधेनु श्लोक ३।

२ येकै पति येकै पथ साचो। नटी नाच मोहन अस नाचो।
+ + +
सब जानहीजगपति को नाचु। कोउ कहै मिथ्या कोउ कहै साचु।
+ + +
यह पथ पुनि मानत है दोनो। बहु आभरन नाम सोइ सोनो।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ८५।

3 कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ६० से ६३ तक।

४ मृग त्रिस्ना है सुष ससारी। —वही, पृ० ६

५ स्वप्नाभामिव भासित लोक। —वही, पृ० ६६।

६ कुसियारी को किरवा भयो। छारु विवेक मोह मढि लयो।
—वही, पृ० ६।

७ भूप विषम वन है ससारा। ममता छूटै ब्रह्म विचारा।
वनु वाके जगु सवुइ भुलाने विसरौ घरु निजु गाउ ठेकाने
—वही पृ० ८

प्रकार से दुख देती हुई मोह का 'टोना' सिर पर रख देती है। वह अनेक प्रकार से लोभ दिखा-कर कर्म के बधन दृढ कर देती है। उसने अपने करोडों हाथ कर रखे है जिनका अनुभव करके लोग थक गये है। वह राजमार्ग (हरि भक्ति) से भी विचलित कर देती है। काम, क्रोध और अभिमान उसके सहायक है। उसने लालच और आशा की फाँसी बनाई है। इसके अतिरिक्त तृष्णा तो महाविकट वैरी है जो इन्द्रियो के सहित मन को घेर लेती है। दभ और छल इसके दूत है जो हिलमिलकर हृदय मे बसे हुए है। ससार मे ऐसा कौन है जिसे काम-क्रोध में लिप्त करके ममता रूपी माया ने नही जीत लिया है।'[1] 'मोहाध दीप'मे कवि ने जीव के सासारिक ममता-मोह मे फँस जाने के उदाहरण देकर ससार के आकर्षण रूप की भर्त्सना की है।[2]

इस प्रकार लक्षदास जी ने ससार को, ब्रह्म की अद्वैतता के अनुकूल स्वप्नवत् एव मिथ्या माना है। यह मिथ्या ससार माया के कारण ही सत्य-सा भासित होता है। कवि ने माया को मिथ्या सार का समानार्थी मानकर उसकी घोर विगर्हणा की है और लोभ, मोह, मद, ममता, अज्ञ.न, तृष्णादि विषय, वासनाओं तथा इन्द्रियो के समस्त व्यापारो को माया मानकर इनसे बचने का उपदेश दिया है। अपनी रचनाओ के विविध प्रसंगो में कवि ने संसार के आक-र्षणके केन्द्रओर बिन्दुओ की सकेत करते हुएउनमे सजग रहने का सदेशदिया है और हरि भक्ति ग्रहण करने, हरि शरणागत होने तथा भागवत सुनने के लिये उसने जीवात्मा को बार-बार प्रेरित किया है।

माया

लक्षदास जी ने अपनी रचनाओ मे जिस प्रकार ब्रह्म, जीव और जगत् की दार्शनिक दृष्टि से व्याख्या नहीं की है उसी प्रकार उन्होने माया के तात्विक रूप का भी विश्लेषण नही किया है। अपनी रचनाओ में कथा-प्रसगो के बीच मे यत्र-तत्र कवि ने जो कुछ सकेत किये है उन्ही से उसका एतद्विषयक अभिमत जाना जा सकता है।

कवि ने माया को ब्रह्म की शक्ति कहा है। यह माया संसार मे अपना अनिष्टकारी प्रभाव फैलाती है। जीवात्मा इस माया के प्रपचो मे फँसकर भगवद्भजन से विमुख हो जाता है और सासारिक भोगो मे लिप्त हो जाता है किन्तु ब्रह्म इस माया के प्रभाव से अविकृत रहता

---

[1] जेहि विधि यहि ममता दुष दीन्हे। निसिदिन निठुर नचावति लीन्हो।
यह निठुर मोहि नचावती निसुदिन मोह टोना सिर धरै।
बहु भाति लोभ देषाइ बाधत कर्म दृढ बधन करै।
आपुन हाथ कोटि कीन्हे विविध थाके औ गुने।
राजमारग ते भुलावत नाथ पै बिनती सुने ॥
काम क्रोध अभिमान सहाई। ललच आसा फासी बनाई।
महा विकट यह तिस्ना वैरी। इन्द्रिन सहित गहो मनु घेरी।
+ + +
दभु या को दूत छल कह बसतु है हिलिमिलि हिये।
सो को जाहि न जीतौ माया काम क्रोधहि सग लिये।
—————गर (हस्तलिखित) पृ० १०२।

[2] वही पृ० ८४

है। कहीं-कहीं लक्षदास जी ने माया को सर्वतंत्र स्वतंत्र भी बताया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह सर्वशक्ति सम्पन्न है। अपने विविध रूपों से वह सारे संसार, ऋषि, मुनि आदि सभी को मोहित करती रहती है। कवि ने कृष्ण की लीलाओं में भी माया के विस्तार का वर्णन किया है। 'माया मति' के हटने पर जीवात्मा को ज्ञान प्राप्त हो जाता है और भगवान् के प्रति अनुराग-रूपिणी भक्ति के उदय होने पर भगवत्साक्षात्कार होता है जिससे जीव भगवत्भावापन्न होकर समस्त क्लेशों से मुक्त हो जाता है।

लक्षदास जी ने संसार दशा में माया के अनिष्टकारी रूप का विशद वर्णन किया है त्रिगुणात्मिका प्रकृति में माया के विविध रूप—लोभ, मोह, मद, ममता, काम, क्रोध, अभिमान, लालच, आशा आदि—है जो देवता, मुनि आदि सभी को प्रभावित करते है। कवि ने 'ध्रुव चरित्र लीला' मे ध्रुव के मुँह से कहलाया है कि 'भोग मेघ की छाँह के सदृश है। मनुष्य अपने श्रेष्ठ जन्म को 'विषय-रस' मे ही खो देता है। वह नेत्र होते हुए भी अंधा और बिना नींद के सोने वाला हो जाता है। वह दुख और भोग को कल्पतरु की 'छाहीं' मानता है और साधुओं से मिलकर हरिचर्चा भी नहीं करता।' कवि ने 'गजगजसंकटमोचन' की कथा के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि भगवान् की माया केवल मनुष्यों को ही नहीं, पशुओं को भी भ्रमित करती है।[2]

सांसारिक सम्पत्ति भी माया का ही एक रूप है क्योंकि व्यक्ति उसमें अनुरक्त होकर भगवान् को भूल जाता है। यह संपत्ति 'नट-चेटक, घन-छाईं' की तरह है किन्तु भगवान् ही सत्य संपत्ति है। व्यक्ति इस सत्य को जानकर भी भूला हुआ है।[3] यदि भगवत्कृपा हो जाय तो यह माया क्षण भर मे तिरोहित हो जाती है।[4]

लक्षदास जी ने नारी को माया का प्रतीक माना है क्योंकि नारी मे आसक्त होकर ही व्यक्ति अपना सर्वस्व नष्ट कर देता है और उसी के वशीभूत होकर विचरण करता है। 'नारी काम बधिक की फाँसी है जो औरों को अपने बंधन मे बाँधती है किन्तु स्वयं स्वतंत्र रहती है। मुनि लोग उससे बहुत सावधान रहते है किन्तु फिर भी वह उन्हें ठग लेती है। अंत मे कवि कहता है कि 'हरि' से 'नेह' करते हुए भी जिन्होंने अपना मन नारी के वश मे कर रखा है उनके 'नेम, ज्ञान, तप और धर्म' की तो तिलांजलि ही समझो।'[5] जिस प्रकार व्याध के संगीत

---

[1] तनु अनित्य सतत है नाहीं। ताते भोग मेघ की छाहीं।
वर नर जन्म विषै रस खोवै। दृग जुत अध नींद बिनु सोवै॥
मिलि साधुन हरि सेवत नाहीं। दुख भोग वै कल्पतरु छाहीं॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३।

[2] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४-५।

[3] साधु संपतिहि मानत नाईं। जैसे नट चेटक घन छाईं।
नाथ सत्य संपति घन छाईं। जगु भूलो जनु भूलत नाईं।
—वही, पृ० ६६।

[4] प्रभु प्रताप माया उडि जाहीं।
—वही, पृ० ७७।

[5] त्रिय है काम वधिक की गासी आपु अनग त्रिया है फासी
करि यारी अपनी वसि कीन्हो त्यों तिय मनसा ते नहि चीन्हो

(राग)से मुग्ध करके मृग को मारता है उसी प्रकार यह माया भी संसार मे लिप्त करके बरबाद कर देती है। इसी प्रकार काम के ससर्ग से ज्ञान (विवेक) टल जाता है।[१] 'मोहाध दीप' और 'सुध ज्ञान' प्रसंगों मे कवि ने ससार मे माया का प्रभाव तथा उसमे जीव के लिप्त होने का विस्तार से वर्णन किया है।

हमारे आलोच्य कवि ने माया को 'भगवान् की शक्ति' के रूप मे तो माना है किन्तु वह भगवान् की इच्छा के अनुसार ही कार्य करती है। माया भगवान् से उत्पन्न होने पर भी उस पर प्रभाव नही डाल सकती, वह अविकारी ही रहता है। भगवान् की आज्ञा से माया ने बालिका रूप में यशोदा के गर्भ से जन्म धारण किया।[२] कही-कही तो ऐसा प्रतीत होता है कि माया सर्व शक्ति सम्पन्न स्वतत्र अस्तित्व वाली है। देवकी के सातवे गर्भ (सकर्षण) को माया ने (अपनी शक्ति से ही) रोहिणी के गर्भ मे भेज दिया।[3] कृष्ण जन्म के समय वसुदेव बालक कृष्ण को लेकर जब गोकुल गये तब माया ने अपना प्रभाव फैला दिया जिससे कारागृह के द्वार खुल गये और प्रतिहार सो गये।[४]

कृष्ण की लीलाओं में भी कवि ने माया का ही विस्तार प्रदर्शित किया है किन्तु यहाँ पर माया कृष्ण की आज्ञानुवर्तिनी है। इन लीलाओ मे कृष्ण साधारण बालक जैसे लगते हैं और उनका ब्रह्मत्व रूप तिरोहित सा दिखाई देता है। यशोदा को अपने मुख मे विराट रूप दर्शन, यमलार्जुन मोक्ष, ब्रह्मावत्सहरणलीला, गोवर्द्धन लीला आदि लीलाओ मे कृष्ण (ब्रह्म) की शक्ति (माया) का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। माया प्रेरित भ्रम के निवारण के बाद इन लोगो को भगवान् के वास्तविक रूप के दर्शन होते हैं।

कवि ने भगवान् की वंशी को भी उनकी माया (शक्ति) ही माना है क्योंकि 'जब शरद् रात्रि मे कृष्ण वेणु वादन करते है तो गोपियाँ मंत्रमुग्ध सी खिची चली आती है। इस वंशी-ध्वनि को सुनकर वन के लता-द्रुम भी स्थिर रह जाते है, जगम, अचर और अचर चर हो जाते हैं, मुनि और योगियो की समाधि भी नही ठहरती वे चाहे कितना ही ध्यान क्यो न करे।'[५] कवि

गुन आपने प्रगटि देषावे। बाधे लोहि न आपु बधावे।
सावधान ते मह मुनी। ठगे नारि ठगिनी तेउ पुनी।
लछदास हरि नेह करि जिन त्रिय वस मनु कीन्ह।
नेम ज्ञान तप धरम को अजुरी भरि जल दीन्ह॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ८४।

[१] राग रिझाइ व्याध म्रग मारै। तैसे काम ग्यानु सत टारै।
—वही, पृ० ८३।

[२] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १२।

[3] सतये सकर्षन उर आये। माया रोहिणी गर्भ पठाये।
—वही, पृ० १३।

[४] उघरे पट सोये प्रतिहारा। माया कीन्हो महापसारा।
—वही, पृ० १४।

[५] मोहन बन बांसुरी बजाइ। जनु गोपिन मोहनी लगाइ
× × ×

ने यही विचार 'मुग्ध ज्ञान' में फिर से दुहराये हैं।[1] जब गोपियों को रात्रि में इस प्रकार चले आने के लिये कृष्ण फटकारते हैं तो वे (गोपिया) कृष्ण (ब्रह्म) को सत्य और सासारिक बंधनो को मिथ्या कहकर उनके वचनो का प्रत्याख्यान करती है।[2] 'अक्रूर लीला' प्रसग मे कवि ने भगवान् की माया को 'हरि की मुरली' कहकर सम्बोधित किया है। माया के प्रभाव से भ्रमित अक्रूर की शका का समाधान करने के लिये हरि ने अपनी मुरली को 'हर लिया।'[3] इसीलिये कवि ने माया के प्रभाव से बचने और उससे मुक्ति पाने के लिये हरि भक्ति, साधु सत्सग तथा भगवन्नाम स्मरण करने के लिये बार-बार जोर दिया है। एक अन्य स्थल पर लक्षदास जी ने कहा है कि 'हरि की यह माया अत्यन्त मोहिनी है और घन छाया की भाँति क्षणिक है। जो लोग स्वप्नवत् संपत्ति को सुख समझ कर उसमें उलझे रहते है, वे अत में पछताते है।'[4] इस प्रकार कवि ने माया के विविध रूपों का सोदाहरण वर्णन किया है और उससे बचने के उपाय भी उसने अपनी रचनाओं मे बताये है। माया के इस ठगिनी रूप की विगर्हणा करते-करते कवि थकता नही, वह बार-बार उससे दूर रहने और उसमे अनुरक्त न होने के लिये व्यक्ति को सचेत करता है। 'अरे मीत बटोही सुन, पथ मे सावधान होकर चल। इस वन मे मार्ग मत भूल जाना। इसके चारो ओर माया की आँधी चल रही है, जो देखने मात्र से ही सर्वस्व हर लेती है। वह अपने हाथ से 'अहकार सुडी' बेचती है, चाहे 'भारवाहक' मर जाय। यह माया ठगिनी है जो वस्तुस्थिति को नहीं जानने देती और ठग लेती है। अत. अरे मीत बटोहिया, तू 'दस इष्ट लपट राज' से डर।'[5]

लक्षदास की भक्ति पद्धति

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे मध्ययुग (भक्तिकाल) का विशेष महत्त्व है। राम-

---

मुनि धुनि द्रुम धाराश्रये। जगम अचर अचर चर भये।
× × ×
मुनि जोगिन समाधि नहि रही। सन्मुष चले ध्यान धरि सही।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० २८।

[1] वही, पृ० ८६।

[2] वही, पृ० ४०-४१।

[3] रथ पर प्रभु देषत मुसक्याता। पुनि जल बुडी अचंभव राता।
हरि अपनी मुरली हरि लीन्ही। सका दूरि भक्त की कीन्ही।
—वही, पृ० ४४

[4] हरि माया अति मोहनी घन छाया छिन नाही।
सुष सेवर सपनो जो सपति अरुझी विमुष पछिनाही।
—वही, पृ० १०७

[5] सुनु सुनु रे मीत बटोही। पथ सावधान किन होही।
याही वन है बहुल जहाही। जनि भूलि परहु ढिग बाही।
ढिग बाह चारों ओर लागहि निरषत ही सरवसु हरै।
अहकार सुडी हाथ वेचीत भारवाहक जनु मरै।
माया तिनकी ठगिनी ठगी है आप भवन न जोहिया।
दस इष्ट लपट राज को डरु अरे मीत बटोहिया
—वही पृ० १०२

कृष्ण की भक्ति के प्रेरक स्रोतो की निर्झरिणी इसी समय प्रवाहित हुई जिसने जन-मानस को उद्वेलित करके हरि भक्ति का सीधा मार्ग दिखाया। १६वी शताब्दी के कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदायो ने राधा-कृष्ण की लीलाओ का राग-रस-समन्वित रूप जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। प्रस्थानत्रयी (वेद, उपनिषद् और गीता) मे श्रीमद्भागवत को और जोड़कर प्रस्थान चतुष्टय की परम्परा चलाई गई और सभी संप्रदायो ने श्रीमद्भागवत को आधार मानकर अपनी उपासना पद्धति प्रचलित की। श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध मे निम्बार्क द्वारा लिखित कोई भाष्य नही मिलता किन्तु फिर भी उनकी भक्ति पद्धति 'भागवत' से प्रभावित दिखाई देती है।

उपासना का स्वरूप

लक्षदास की दार्शनिक मान्यताओं से यह स्पष्ट है कि वे निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे। निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये जीव को भगवान् की शरण में जाना चाहिए। इसके लिये गुरू की सहायता चाहिए। अत प्राणी को गुरू की शरण मे जाना आवश्यक है। गुरू उपासना का उपदेश देकर शिष्य (भक्त) को भगवान् की ओर अग्रसर करता है। यह उपासना भगवान् की पूजा के रूप मे अवश्य करनी चाहिये। निम्बार्क स्वामी ने अपना अभिमत प्रकट करते हुए उपासना को आवश्यक उपादान माना है।[1]

श्रीमद्भागवत के ११वे स्कध के १३वे अध्याय मे निम्बार्क सम्प्रदाय की प्राचीन परम्परा और उपासना की ओर सकेत किया गया है। सनकादिको ने ब्रह्माजी से 'मन' को 'विषय' के सामीप्य और सायुज्य से हटाकर भगवद्भक्ति की ओर प्रवृत्त होने के बारे मे जिज्ञासा की थी। ब्रह्मा जी ने इसके समाधानार्थ भगवान् का ध्यान किया, तब भगवान् ने हंस रूप से अवतरित होकर उनकी शका का समाधान करके 'चित्त' और 'विषय' के मूलाधार (गुणरूप ब्रह्म) की ओर मन को प्रवृत्त करने का परामर्श दिया। इससे विषयो के प्रति मन की चचलता और आकर्षण समाप्त हो जायगा।[2] सनकादिको ने यही उपदेश नारद को दिया और नारद जी से यह श्री निम्बार्क को मिला। इसी प्रकार कृष्ण ने उद्धव को उपदेश दिया था कि साधक को चाहिये कि वह अपने चित्त की चचल वृत्तियों को रोकने के लिये मेरी प्रतिमा को वस्त्राभूषण से सुसज्जित करके नाचे, गावे और बजावे।[3]

'मंजु मुक्तावली' मे लक्षदास ने उपर्युक्त परम्परा को इन शब्दो मे प्रकट किया है—

'यह गिरिधर गुनमाल पहिरि शनकादिक नेमा।
सेस सहस मुष जपत सदा रत संकर प्रमा।
\+ \+ \+
कृस्न कही उद्धवहि देव रिषि सुक मुनि गाई।
श्रवन कीर्तन आदि भक्ति सुभ मारग आई।।'[4]

---

[1] उपासनीय नितराजनैः (सदा प्रहाणये ज्ञान तमोनुवृत्तेः)।
—दशश्लोकी, श्लोक सख्या ६।

[2] श्रीमद्भागवत, ११।१३ श्लोक १७-२६।

[3] वही ११।२६ श्लोक ८-११।

[4] हस्तलिखित पृ० ९५।

लक्षदास जी की रचनाओं में निम्बार्क सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्यो की परम्परा तथा अपने गुरु का निर्देश मिलता है। इसीलिये लक्षदास की रचनाओ मे उपासना का स्वरूप भी निम्बार्क सम्प्रदाय की पद्धति पर ही आधारित है। आगे की पक्तियो मे हम इस सम्प्रदाय की उपासना विधि पर विचार करेगे।

समस्त सांसारिक जीव माया जाल के कारण अज्ञानान्धकार में पड़े हुए हैं। इनसे निवृत्ति पाने के लिये मनुष्य को भगवदुपासना अवश्य करनी चाहिये। निम्बार्क सम्प्रदाय मे उपासना को इसीलिये प्रधान स्थान दिया गया है। 'इस सम्प्रदाय का प्रत्येक वैष्णव गुरु सेवा, भगवन्नाम जप, भगवत्पूजा और भगवत् रूप चिंतन का ही यथाशक्य अनुष्ठान करता है क्योकि निम्बार्क स्वामी की एकमात्र अपूर्व देन यह सुमधुर उपासना प्रणाली है, इसलिये इसके पूरे विधि-विधान इस सम्प्रदाय मे प्रचलित है।[1]

पद्मपुराण पाताल खण्ड में राधा-कृष्ण की उपासना करने के लिये ५ सस्कारो के साथ सद्गुरु से मन्त्र-दीक्षा लेना परमावश्यक बताया गया है। ललाट आदि स्थानो मे ऊर्ध्व पुण्ड्र, शख-चक्र की मुद्राएँ, दासान्त नाम, युगल मत्र और गुरु-वैष्णव पूजा। इन सस्कारो से युक्त होकर जिस गुरुदेव से मन्त्रोपदेश ले उसको अपना सर्वस्व या उसका आधा भाग समर्पण करे। विरक्त साधक को तो उचित है कि वह अपनी देह भी गुरुदेव के समर्पण करे और फिर अकिंचन होकर युगल किशोर की आराधना करे।[2]

हमारे आलोच्य कवि लक्षदास की रचनाओ में मत्रोपदेष्टा गुरु को सत कवियो की भाँति ही श्रेष्ठता प्रदान की गई है[3] क्योकि 'साधना के मार्ग मे पथभ्रष्ट होने या मार्ग भूलने पर गुरु ही सच्चा मार्ग बताता है। उन्होने 'गुरु और गोविंद मे कोई भेद नही माना क्योकि भागवत मे ऐसा ही आदेश दिया गया है। इसीलिये उन्होंने मन, वचन, कर्म से गुरु के चरणों मे 'सादर प्रतीति' की।[4] 'श्री गुरु के चरण कमल अत्यत निर्मल है। वे भूतल आदि तीनो लोको के स्वामी है। वे परम पावन और पुनीत कृपानिधि है। सत लोग उनकी वदना 'हरि-हर' विधि (नामों) से करते है। ससार उनकी विहार स्थली है।'[5] इसीलिये कवि ने गुरु और गोविंद की अभेद भाव से वदना की और 'ध्रुव चरित्र लीला' प्रसग मे यह विचार प्रकट

---

[1] निम्बार्क सम्प्रदाय और उनके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि (टंकित प्रति)—डा० नारायणदत्त शर्मा, पृ० १२४।

[2] पद्मपुराण पाताल खण्ड, ८२।१७ तथा १६।

[3] सीष भले गुर पंथ लगावै। विधि नही पथ ते कुपथ चलावै।

—कृष्णरसमागर (हस्तलिखित), पृ० ३६।

[4] श्री गुरु चरन कमल वदन करी। मन वच करम सादर प्रतीति धरी।
गुर गुविंद भेद कछु नाही। अगम कहो भागवत माही।

—वही, पृ० ६६।

[5] निरमल चरन कमल श्री गुर के। सुतल भूमि स्वामी तिहु पुर के।
पावन परम पुनीत कृपानिधि। वंदनीय सतत हरिहर विधि।
तिनके विहार जगतु है।

—वही पृ० ८२

किये मैं तुम्हारी पूजा करके वदना करता हूँ और दास भाव से तुम्हारा भजन करता हुआ सासारिक बधनों को तोड़ दूँगा। प्रभु, मैं तुमसे निरतर प्रम करके तन, सपत्ति और घर सभी कुछ तुम्हें समर्पित करता हूँ।'[1] कवि के ये विचार 'ध्रुव चरित्र लीला' के प्रसग मे अवश्य आये हैं किन्तु इनमे कवि के आत्मकथन रूप का भी प्रभाव दिखाई देता है। यह 'समर्पण भाव' निम्बार्कीय पद्धति के अनुरूप ही है।

'भगवत्प्राप्ति का ध्येय सामने रखकर निवृत्ति मार्ग पर अग्रसर होने वाले संत जन अपने गुरूपदिष्ट भजन-साधन को सर्वोपरि मानते है। इस अनुष्ठान की परिपूर्ति के सहायतार्थ ही उनका अध्ययन और शास्त्राभ्यास होता है। साधु-सतो के लिये शास्त्र वासना परित्याज्य कही गई है। इस दृष्टि से निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य शास्त्र चितन की अपेक्षा भगवदुपासना के क्षेत्र मे अधिक सलग्न रहे है। अपने सिद्धातों के पोषणार्थ उनके लिये आद्य आचार्यों की दार्शनिक और वधानिक रचनाओं का पठन-पाठन ही पर्याप्त था—शुष्क तार्किकों का बौद्धिक जगत् इनके (आचार्यो के) युगलकिशोर की लीला भूमि बने हुए सरस मानस के लिये रुचिकर न था।'[2] निम्बार्क सम्प्रदाय की इस परम्परा का लक्षदास ने अक्षरश पालन किया और शुष्क वाद-विवाद को त्याज्य बताकर उन्होंने गोविंद की कथा मे ध्यान केन्द्रित करने पर जोर दिया।[3] इतना ही नही, इसी कारण उन्होंने श्री गुरू के चरण कमलो का स्मरण करके नदनदन के यश का गान किया।[4]

निम्बार्क सम्प्रदाय मे पूजा और उपासना मे मौलिक रूप से तो कोई भेद नहीं है किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इन दोनों मे थोड़ा अन्तर बताकर उन्हें भक्ति के दो पृथक्-पृथक् उपकरण माना गया है। पूजा के लिये बाह्य उपकरण प्रयोग में लाये जाते है किन्तु उपासना आन्तरिक चिंतन का एक रूप है।

पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि सामग्री से इष्टदेव के साकार स्थूल स्वरूप के अर्चन को पूजा कहते हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय मे युगल किशोर श्रीराधा-कृष्ण की पूजा-अर्चना का विधान है।

---

[1] पूजि तुम्है को करौ वंदन। दास भाव भजि तजि जग फंदना।
प्रभु तुम सों करि प्रेम निरतर। तुम्है समर्पण तन संपति घर।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३।

[2] निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि (टंकित प्रति)—डा० नारायणदत्त शर्मा, पृ० २६१।

[3] तजि मिथ्याश्रम वाद विवाद। करि गोविंद कथावित स्वाद।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ९६।

[4] (क) परस सीस गुर चरन मनावो। सुषद नंदनंदन जसु गावो।
—वही, पृ० ११।

(ख) श्री गुर चरन कमल चित लाई। लक्षदास हरि लीला गाई।
—वही, पृ० ४३।

(ग) सीसु नाइ गुर चरन सरन समरथ हरि ध्याउ।
प्रनतपाल गोपाल सुमिरि श्रीपति गुन गाउ।
—वही पृ० १०७।

श्री निम्बार्क स्वामी ने 'अंगेतु वामे वृषभानुजा मुदा—' कहकर सहस्रों सखियो से परिसेवित श्री राधा-कृष्ण की मधुरोपासना की ओर संकेत किया है।[1]

निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा में पूजा के ३ विभाग किये गये हैं—(१) वैदिकी पूजा, (२) तांत्रिकी पूजा, (३) अनुरागात्मिका पूजा या सेवा।[2]

वैदिकी पूजा में वेद मंत्रो के अनुसार भगवान् की पूजा की जाती है। तांत्रिकी पूजा मे गोपाल मंत्र की आराधना की जाती है। भागवत के एकादश स्कंध और आचार्य केशव काश्मीरी की क्रमदीपिका मे इस सम्बन्ध मे विस्तार से लिखा गया है। अनुरागात्मिका पूजा में भगवान् श्रीकृष्ण की चरण सेवा ही परम वदनीय है। श्रीकृष्ण अपने भक्तों को आनन्दित करने के लिये सुमनोहर स्वरूप मे प्रकट होते हैं। ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये भक्त अनुरागपूर्वक उनकी पूजा-उपासना करता है।

उपासना और पूजा की यही परम्परा लक्षदास की रचनाओ मे भी अपनाई गई है। उनकी रचनाओं में राधा-कृष्ण की पूजा के बारे मे प्रसगवश उल्लेख मिलता है किन्तु इससे भी उनकी साम्प्रदायिक दृष्टि के अनुसार पूजा-अर्चना के विधान का अनुमान होता है क्योंकि सामग्री तथा वर्ण्य वस्तु के चयन मे कवि की दृष्टि अपने प्रिय उपास्य तथा उसी की उपासना विधि की ओर हुआ करती है। वैदिकी पूजा विधि के विषय मे कवि कहता है कि 'जो कुमारी-गोपिकाएँ हेमत ऋतु मे कृष्ण को वर रूप में प्राप्त करने के लिये व्रत-उपवासादि करती हैं वे यमुना जल मे स्नान करके पुष्प चयन करती हैं और जिस प्रकार वेद ने सोलह विधि—दधि, अक्षत, सुगंध, नैवेद्य आदि—की पूजा निर्दिष्ट की है उसी के अनुसार तट पर देवी की प्रतिमा बनाकर वे उनकी पूजा करती है और मार्ग मे हरि गुण गान करती जाती है।'[3]

कवि की रचनाओ मे तान्त्रिकी पूजा का उल्लेख केवल गोपाल कृष्ण के नाम-स्मरण के रूप में ही मिलता है। सखाओं के साथ खेलने जाते समय जब वन मे कृष्ण अतिलौकिक लीलाएं करते है और ग्वालों की विघ्न-बाधाओं को दूर करते है तब वे उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते है और उनका साथ न छोड़ने की कामना करते है। वे उन्हे सारे गोकुल के लिये भी सुखदायी बताते हैं।[4] कृष्ण के इसी गोपाल रूप की उपासना 'गोवर्द्धन लीला' प्रकरण में भी आती है जब

---

[1] वेदांत कामधेनु, श्लोक संख्या ५।

[2] निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि (टंकित प्रति)—डा० नारायणदत्त शर्मा, पृ० १२४।

[3] जल जमुना सो देह करि पावन। बिनहि फूल गावहि मन भावन।
दधि अक्षत सुगंध नैवेद। षोडस विधि बरनी जस वेद।
मारग हरि गुन गावत आवै। तट देवी प्रतिमा हि बनावै।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० २८।

[4] मैया इन गोपाल तुम्हारे। टारे कोटिन विघ्न हमारे।
इनके सग महासुख जीजै। इन पर प्रान निछावरि कीजै।
ये गोकुल को सब सुखदाई। हमतौ सुखी जो करै कृपाई।
—वही पृ० २९।

वे इन्द्रकोप का सामना करने के लिये गिरिराज को उठा लेते है और सभी को शान्ति प्रदान करते है अन्त मे जब इन्द्र का मान मदन होता है तब इस गोपाल रूप की प्रतिष्ठा पर व्रजवासियो की स्वीकारात्मक छाप लग जाती है।[१]

भगवान् कृष्ण की अनुरागात्मिका पूजा को कवि ने भागवत के नवम स्कंध तक के प्रसगो मे ध्रुव चरित्र, गजराज सकट मोचन, जड भरतोपाख्यान, कपिल देवहूति सवाद—द्रौपदी की लज्जा रक्षा, सुदामा, अम्बरीष, प्रह्लाद, आदि भक्तो के ऊपर अनुग्रह प्रकट करने के रूप मे चित्रित किया है। चन्द्रहास, हसध्वज, मयूरध्वज, सुधन्वा आदि भक्तो की भक्ति भी इसी रूप की है जिसमे वे भगवान् कृष्ण के वास्तविक रूप का ध्यान करते हुए उनकी पूजा-उपासना करते हैं। कवि की रचना 'भागवत दशम स्कंध भाग' के विविध वर्णनो मे तो अनुरागात्मिका विधि से कृष्ण स्मरण का विधान मिलता है। 'गोवर्द्धन लीला' प्रकरण मे कृष्ण ने वशीवादन करके तथा द्विविध रूपो मे दर्शन देकर समस्त व्रजवासियों को सुख दिया। उन्होने (व्रजवासियो) कर्म धर्म से हरि मे नेह लगाया और प्रभु से अनुराग करके उसका फल पाया।[२] वस्तुत: कृष्ण के प्रति अनुरागात्मिका उपासना (पूजा) का उज्ज्वल रूप गोपियों के अनुराग के रूप में विकसित हुआ है। गोपियाँ कृष्ण की वंशीध्वनि पर मुग्ध होकर,(सासारिक बन्धनो का आग्रह त्याग कर) अनन्य भाव से उनकी उपासना करती हैं और सासारिक बन्धनो को 'घन छाई' तथा 'नट चेटक' कहकर क्षणिक बताती हैं। इस राग के प्रति तो वैरागियो को भी राग उत्पन्न होता है, जो लोग भगवान् के इस रूप की ओर आकर्षित नही होते, लक्षदास, वे अभागे है।[३]

उपासना मे मानसिक चिंतन तथा स्मरण प्रधान होता है। हृदयगत भावो की प्रधानता के कारण इसे 'सेवा' भी कहा जाता है। निम्बार्क स्वामी ने उपासना के ४ भेद माने हैं—भृत्य, पुत्र, मित्र और प्रिया भाव।[४] परा या रागानुगा भक्ति की उपासना का यही मूलाधार है। श्री हरिव्यासदेव ने दशश्लोकी की व्याख्या करते समय इसका विस्तृत विवरण दिया है। इनमें निम्बार्क स्वामी ने सर्वोत्कृष्ट भक्ति प्रिया भाव या उज्ज्वल भाव के अन्तर्गत मानी है।[५] व्रज की गोपियो ने भगवान् की भक्ति इसी भाव से की थी। पद्मपुराण पाताल खण्ड के ८१वे अध्याय

---

[१] कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३२-३५।

[२] द्वै कर मुरली स्याम वजायो। सव्द सुधारस सवनि पियायो।
नयनन रूप वेन धुनि काना। व्रज जन मत्त रहे करि पाना।
कर्म धर्म हरि नेह लगायो। प्रभु अनुराग तासु फल पायो।
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३५।

[३] अनुरागी तेउ राग वस वैरागीन्ह भयो राग।
जे न बीवस मुरली करी लछ हीन तिन भाग॥
—वही, पृ० ३६।

[४] देहेन्द्रिय मन. प्राणेमर्यायाहित्वा ममाहित:।
भृत्यवत् पुत्रवत् सेवेत् प्रियावन्मित्रवत्तथा ।
—मन्त्र रहस्य षोडशी १६।

[५] वेदान्त कामधेनु श्लोक ९

मे इस भक्ति भावना का विस्तार से उल्लेख किया गया है। 'नारद भक्ति सूत्र' मे भी गोपीभाव वाली भक्ति को सर्वोत्तम माना गया है।[1] निम्बार्क सम्प्रदाय मे भी गोपीभाव वाली उपासना को प्रधान स्थान दिया गया है। श्रीबलदेव उपाध्याय का कहना है कि 'इस मत (निम्बार्क) मे साधको के लिये किसी विशेष भाव के स्वीकार का आग्रह नही है।'[2] साधक अपनी अभिरुचि के अनुसार दास्य, सख्य, माधुर्य आदि किसी भी भाव को स्वीकार कर सकता है किन्तु प्रधानता माधुर्य भाव को ही दी जाती है।

रागानुगाभक्ति की इसी शृखला मे हमारे आलोच्य कवि लक्षदास की भक्ति पद्धति भी आती है। उन्होने भी दास्य, वात्सल्य, सख्य तथा माधुर्य भाव से प्रेरित होकर रचनाएँ की है। दास्य भाव की रचनाओ मे कवि के आत्म-निवेदन के पद तथा भागवतादि के ऐसे प्रसग आते है जिनमे दास्य भक्ति को प्रधान स्थान दिया गया है। ऐसे प्रसंगो में दशम स्कध को छोडकर ग्रहण की गई अन्य कथाएँ—जैसे ध्रुव चरित्र, गजराज सकट मोचन, अम्बरीष चरित्र, प्रह्लाद चरित्र, हसध्वज, चन्द्रहास, मयूरध्वज आदि—आती है। वैसे दशमस्कध मे भी यत्रतत्र दास्य भाव की उपासना के संकेत मिलते हैं। दशम स्कध मे यशोदा, नद, वसुदेव, देवकी और गोपियों आदि के वत्सल भाव की आधार भूमि पर ही कृष्ण जन्म से लेकर माखन चोरी लीला तक के प्रसग आते है। सखाओ के साथ गोचारण एव माखन-चोरी के कतिपय प्रसगो मे सख्य भावना का विस्तार किया गया है। 'पचाध्यायी गोपिका गीत' तथा 'भ्रमरगीत' के प्रसंगो मे माधुर्य भावना का विकास हुआ है। भक्ति के इन भावो के विषय मे इसी प्रबध के अध्याय ५ तथा ६ मे हम प्रकारान्तर से विचार कर चुके है। यहाँ उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है। आगे की पक्तियो मे हम लक्षदास जी द्वारा वर्णित निकुंज लीला तथा वृन्दावन विहार वर्णन का विवेचन करेगे।

निकुज लीला एव नित्य विहार—निम्बार्क सम्प्रदाय मे निकुंजविहारी श्री राधा-कृष्ण प्रिया-प्रियतम भाव से सेव्य है। उनका नित्यधाम भूमण्डल से परे गोलोक है। अपने भक्तो तथा प्रेमीजनो को सुख देने के लिये वे अपनी लीलाएं पृथ्वी पर भी किया करते है। वृन्दावन के यमुना तट और वन कुंजों में राधा-कृष्ण की लीलाएँ भक्तो को सामीप्य और सान्निध्य सुख देने के लिये हुआ करती है। आचार्यों ने वृन्दावन को 'नित्यधाम' तथा पृथ्वी पर 'गोलोक' माना है और राधा-कृष्ण की लीलाओ को लौकिक-विहार न मानकर आध्यात्मिक साधना का ही दूसरा रूप कहा है। यही राधा-कृष्ण का 'नित्य विहार' कहा जाता है। हमारे आलोच्य कवि लक्षदास ने आचार्यो के इसी कथन का अनुमोदन करते हुए उन्हे 'पुरुष-प्रकृति' का रूप कहा है।[3]

---

[1] सिद्धातरत्नाजलि, हरिव्यासदेव कृत, पृ० ८९।

[2] भागवत सम्प्रदाय—बलदेव उपाध्याय, पृ० ३४८।

[3] (क) तू जेहि ब्रह्म कहत हरि जेई। साध किया इच्छा प्रगटेई।
क्रस्नहि जनि जानहु तन धारी। ये लीला वन नित्य बिहारी॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ३७।

(ख) पुरुष प्रकृति जेहि बेद बषानैं। अगम अगोचर को तेहि जानैं।
पीवत रसीक रस सुजस रास को। व्रत विवेक जन लक्षदाश को॥
—वही पृ० ४३।

राधा-कृष्ण के इस नित्य विहार के ४ अंग है—(१) परात्पर तत्व परब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण, (२) उनकी आह्लादिनी शक्ति श्री राधा, (३) जीवात्मा रूप सहचरी वर्ग और (४) नित्य वृन्दावन धाम।

लक्षदास की रचनाओ मे इस नित्य विहार का वर्णन मुख्य रूप से ३ बार हुआ है—(१) भागवत दशम स्कंध की कथा मे 'पंचाध्यायी गोपिका गीत' शीर्षक के अन्तर्गत, (२) जुगुलकिसोर लीला तथा (३) वृन्दावन विहार वर्णन के अन्तर्गत। इनके अतिरिक्त अन्य प्रसगों में भी यत्र तत्र इस ओर सकेत मिलता है।

वर्ण्य विषय की दृष्टि से इन तीनो में एक ही कथा या कथाश को कहा गया है जिसमे राधाकृष्ण का मिलन, कृष्ण का गारुड़ी रूप रखकर राधा को ठीक करना, गोपियो का सहयोग, राधा-कृष्ण की यमुना पुलिन तथा कुज विहार लीला आदि प्रसग इमके अन्तर्गत लिये गये हैं। इनमे से 'पंचाध्यायी गोपिका गीत' तथा 'जुगुल किसोर लीला' की कथाओ मे राधा-कृष्ण को साधारण नायक-नायिका की भांति अकित करके उनकी मानवीय लीलाओ को ग्रहण किया गया है किन्तु राधा-कृष्ण की रति केलि, गोपियो की सहचरी साधना, राधा-कृष्ण विवाह आदि के प्रसग निकुंज लीला की सेवा उपासना के भी अंग है। आचार्यो ने इसे अनुराग या माधुय भाव की परिपक्वावस्था माना है। इस सेवा का अधिकार पुरुषत्व के समस्त भावो के विलीन होने पर सखी भाव मे ही मिलता है। अनुराग समर्पण, सेवा के रूप मे अपने अह भाव या व्यक्तित्व को आराध्यमय कर देना स्त्रीभाव मे ही सम्भव है। सखी भाव को स्वीकार करने वाला भक्त युगलस्वरूप वृन्दावन विहारी की अष्टयाम सेवा करना ही अपना कर्त्तव्य मानता है। अष्टयाम सेवा मे प्रात उत्थान से लेकर रात्रि की रास क्रीड़ा तथा शयनकाल तक का समावेश है। अनुरागात्मिका सेवा मे भक्त इन्ही अष्टयाम लीलाओ का चिंतन, कीर्तन करता हुआ विविध उपचारो से प्रभु की उपासना मे तत्पर रहता है।[1]

श्री निम्बार्क स्वामी के—'अगेतुवामेवृषभानुजा मुदा विराजमाना मनुरूप सौभगाम्। सखी सहस्रै. परिसेविता सदा स्मरेम देवी सकलेष्ट कामदाम्'—श्लोक के आधार पर राधा-कृष्ण की 'निकुज लीला' का भव्य भवन खडा किया गया है। जिसके अनुसार राधा-कृष्ण के इस वृन्दावन विहार (नित्य विहार) की एक विशेषता है, इसमे राधा-कृष्ण की रति-केलि के दृश्यमान सुख की प्राप्ति सहचरी वर्ग (गोपियो) को होती है। श्री हरिव्यासदेव जी की महावाणी में इस साधना का विस्तार से वर्णन किया गया है। हमारे आलोच्य कवि लक्षदास की रचनाओं मे भी राधाकृष्ण की इसी 'रति केलि' को स्थान दिया गया है। राधा-कृष्ण के हास्य और रास-विलास को देखकर ललितादि सखिया अपने सुकृत मनाती हैं।[2]

निम्बार्क सम्प्रदाय मे राधा-कृष्ण के १६ शृगार को 'नवसत' कहते हैं। इसमे शृगार

---

[1] निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके कृष्णभक्त हिन्दी कवि (टकित प्रति) आगरा विश्वविद्यालय पुस्तकालय—डा० नारायणदत्त शर्मा, पृ० १२८।

[2] विविध विलास करत दोउ हसत लसत रस रासी।
बर सुकृती सुष देष ही ललितादिक सी दासी।

हस्तलिखित पृ० १००

के प्रत्येक कार्य के पूर्यर्त्थ (सखियों को) काम बँटे हुए है—(१) ललिता—दर्पण, (२) विशाखा—वस्त्र लिये, (३) चन्द्राकर—वस्त्र पहनाती है, (४) चम्पकलता—आभरण, (५) वासंती—सुगंध, (६) मधुरा—मधुमिश्री आदि। (७) मनुरजनी—अजन, (८) प्रभावती—पान, (९) प्रेमा—शीतल पानी, (१०) चन्द्रकला—चन्दन, (११) सुखदा—हास-विलास, (१२) चातुरी—चवर, (१३) रुचिरा—माला, (१४) नैनविसाला—चौसरा (चौलडी माला), (१५) गर्धविका—गीता गाना, (१६) वीना—मृदग। इसी परम्परा को लक्षदास ने वन में राधा-कृष्ण के मिलन और सखियों—ललिता, विशाखा, चपकलता, वासंती, मधुरा, मनरजनी, प्रभावती, प्रेमा, चन्द्रकला, सुखदा, चातुरी, रुचिरा, नैनविशाला, गर्धविका, वीना और मेघावती—द्वारा किये गये शृंगार तथा सेवा का वर्णन किया है। मेघावती ने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि आराध्य और आराध्या वृन्दावन मे 'नित्य रास' करे।[1]

इन 'नित्य विहार' में जिस प्रकार कृष्ण लौकिक लीलाएँ करते हुए भी परात्पर ब्रह्म हैं उसी प्रकार राधा भी उनकी आह्लादिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं। राधा-कृष्ण का ऐक्य भाव ही भक्त की आराधना का केन्द्र विन्दु है। जिनकी रसना को राधा-कृष्ण के चरणो से रति है और जो राधा-कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के लिये अपने तन-मन की गति खो बैठी है तथा जिनके हृदय मे विहारिणी निवास करती है वे ही सखिया 'नित्य रास' की अधिकारिणी है क्योंकि वृन्दावन राधा-मोहन की केलि का प्रमुख स्थल है। रसिक लोग ही इस सुख का आनन्द उठा पाते हैं।[2] राधा-कृष्ण के ऐक्य का उदाहरण कवि ने 'सुमन-सुगध, मेघ-तड़ित, प्रिय-प्रियतमा, पीयूष-स्वाद, इदु-मयूख, 'अंखियन मे स्याम का वुद', 'दिन मनि दीप प्रकाश' से दिया है। उन्हे दो पृथक् सत्ताएं नही कहा जा सकता।[3] राधा मे हरि और हरि मे राधा का स्वरूप विद्यमान है। दोनो के पारस्परिक मिलन मे कभी भी बाधा नही हो सकती।[4] कवि की रचनाओ मे राधा-कृष्ण का यह ऐक्य निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुसार है।

इतना ही नही, एक स्थल पर तो कवि ने राधा को कृष्ण से भी अधिक महत्व दिया

---

[1] बरनै को सोभा की सपति। घन दामिनी वारौ रति रतिपति।
मेघावती विनै करि प्रभु सन। कीजै नित्य रहस वृन्दावन॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०१।

[2] श्री राधा कृस्न चरन रसना रति। राधाकृस्न कृपा तन मन गति॥
ते सषी नित्य रहस अधिकारिनी। जिनके उर पर वसत विहारिनी॥
लछिदास वृन्दावन राधामोहन केलि।
कहत सुनत सुष सागर रसिक पिवत रस झेलि॥
—वही, पृ० १०१।

[3] सुमन सुगध मेघ तडी जैसे। मिले रहत पिव प्यारी अैसे।
स्वाद पयुप मयुष इदु जौ। अंषियन मे स्याम का वुद जौ।
दिन मनि दीप प्रकाश वसत अस। श्री राधामोहन मिलन सरसतस॥
—वही, पृ० १०१।

[4] राधा में हरि हरि मे राधा। जुग जुग जुगल मिलन नहि बाधा॥
—वही पृ० ८२।

है। कृष्ण राधा की कृपा से ही बिहारी कहलाते हैं केवल कृष्ण की ही न करके राधा के साथ उनका गुणगान करना चाहिये। मन, वचन, कर्म और अनन्य भाव से जो लोग राधा की सेवा करते हैं उनके भजन मे बाधा नही पड़ती।[१] कवि ने एक बार राधा के द्वारा मान किये जाने पर कृष्ण की विकलता और राधा-राधा टेर कर भोग, भूषण और वसन की सुधि न रहने का वर्णन किया है।[२] राधा को इतना अधिक महत्व देने का कारण संभवत हितहरिवंश जी के राधावल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव रहा हो।

कवि ने जागतिक प्रणय केलि की क्रीडाओं को सम्पन्न करने और आध्यात्मिक भावना को और भी गहरा रूप देने के हेतु राधा-कृष्ण का विवाह कराया है। निम्बार्क सम्प्रदाय मे राधा का स्वकीया रूप ही मान्य है। हमारे आलोच्य कवि ने भी राधा को स्वकीया ही बताया है ओर रासलीला के वर्णनों मे राधा-कृष्ण का वेद विधि से विवाह कराया है।[3]

लक्षदास जी ने रुक्मिणी-कृष्ण की रति केलि को भी कृष्ण के 'नित्य विहार' का अग माना है क्योंकि रुक्मिणी और राधा भगवान् कृष्ण की शक्ति की प्रतीक रूपा और स्वकीया नायिकाएँ हैं। जिस प्रकार राधा-कृष्ण की सेवा-उपासना की जाती है और उनकी अष्टयाम सेवा तथा निकुज लीला का वर्णन किया गया है कवि ने वैसा ही सकेत रुक्मिणी-कृष्ण के चरित वर्णन में भी किया है। द्वारका में रुक्मिणी और कृष्ण की लीलाओ को (कवि ने) 'गुप्त केलि' कहा है।[४]

स्वकीया भाव से राधा-कृष्ण की उपासना करने वाले सम्प्रदायो मे श्यामा-श्याम के शाश्वत सयोग का विधान है। इसीलिये निम्बार्क एवं राधावल्लभ सम्प्रदाय मे मान-विरह वर्णन को प्रत्यक्षत कोई स्थान नही दिया गया। फिर भी विरह और मान के बिना शृगार वर्णन को अपूर्ण देखकर भक्त कवियो ने उसके लिये निमित्त हेतुओ की कल्पना की है। श्री भट्ट जी ने 'युगल शतक' मे राधा के मान का वर्णन किया है क्योंकि एक दिन राधा ने श्रीकृष्ण के शरीर की ज्योति में अपना प्रतिबिम्ब देखा तो उन्हे किसी अन्य युवती के होने का सभ्रम हुआ—

---

१ मैं राधा की कृपा बिहारी। - - - - - - - - - - - - -
जो अनन्य सेवत श्रीराधा। मन कर्म वचन भजन नहि बाधा॥
केवल मेरो ना मन भावै। श्री राधा को कहि गुन गावै॥
—कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० १०१।

२ एक समै मानिनि भै राधा। मोहन मन मनसिज कृत बाधा।
व्याकुल भये मीन ज्यो विन जल। लुठत उठत धरती पर नहि कल।
हा राधा राधा टेरत सन। सुधि न भोग भूषन बसन॥
—वही, पृ० १०२।

3 कृष्णरससागर (हस्तलिखित), पृ० ४१-४२, ९८-९९, ११६-११७।

४ दिन सिंगार दिन भोग सब प्रगट गुप्त करि केलि।
लछ द्वारका कृस्न_ तरु फूली आनन्द बेलि॥
—वही पृ० ६० ६१

रसकिनि मान कियो रस रास।
एक समै पिय तन मे अपनो निज प्रतिबिम्ब प्रकाश।
यह सम्भ्रम उपजायो कर में पर तिरिया कोउ पास।
जै श्री भट्ट हठ हरि सों करि रहि नागर निपट उदास।[1]

श्री हरिव्यासदेव जी की किशोरी जी ने अपनी आरसी में स्वय के प्रतिबिम्ब को सपत्नी जानकर मान ठान देने का वर्णन किया है।[2] हमारे आलोच्य कवि ने मान-विग्रह की यह परम्परा ज्यो की त्यो स्वीकार कर ली है। एक बार प्रिया प्रियतम को केशर दे रही थी कि उसे अपना प्रतिबिम्ब कृष्ण के शरीर मे दिखाई दिया, उन्होने (प्रिया) मान ठान दिया और उनसे विनयपूर्वक प्रतिबिम्बवाली नारी को दिखाने के लिये कहा। उन्होने कृष्ण के शरीर को स्पर्श करने वाली रस लपट नारी का विवरण जानना चाहा। कृष्ण ने 'प्यारी' की वास्तविकता समझा दी जिसे समझकर वे (प्रियतमा) हर्षित हो गई।

पिय प्यारी मुष केशरि लाई। नागरि प्रतिबिंबन छवि छाई।
उत देषो परसत पिय पानी। कीन्हो मान पिया यह जानी।
विलै करै करि पाइ मनावै। प्रतिबिंबन तेइ छवि देषरावै।
रस लंपट तुम तन को जोहौ। परसत जाहो सषो सो को है।
प्रिय प्यारी प्रतिबिंब जनावो। प्रिया समुझि हरषि उर लावो।।[3]

इस प्रकार कवि ने निकुंज केलि ओर 'नित्य विहार' लीला मे अपने सम्प्रदाय की परम्परा का पालन करते हुए वृन्दावन के महत्व को प्रतिपादित किया है। कवि का कहना है कि वृन्दावन के महत्व को तो स्वय श्रीकृष्ण ने अपने मुख से कहा है—'श्री वृन्दावन महिमा बरनि न जाई। महिमा कान्ह कमल मुष गाई।'[4] वाराह पुराण मे अध्याय १५२ से १७६ तक श्री राधा-कृष्ण के धाम व्रज, वृन्दावन का महत्व ओर श्री राधा-कृष्ण की पूजा का विधान मिलता है। इसीलिये लक्षदास जी ने वृन्दावनवास, साधु सेवा तथा हरिचरणो मे रुचिपूर्वक प्रेम करने पर जोर दिया है।

श्री वृन्दावन सदा विहारै। साधु चरन उर ते नहि टारै।[5]
सुषद विहार सदा वृन्दावन। गावत सुनत प्रेम रुचि हरिजन।[6]

निष्कर्ष—कवि की भक्ति पद्धति के उपर्युक्त विवेचन से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि ससार की ममता ओर उसके आकर्षक उपादानों से जीव को विरत करके (ज्ञान लक्षणा) उन्हे हरिपद से प्रीति करने (रागानुगा) का सदेश देता है। कवि का कहना है कि ससार को स्वप्नवत् समझ कर तज्जनित भोगो को भी त्याग देना चाहिये क्योंकि इस भूतल पर केवल हरि नाम तथा हरिचरण के प्रति अनुराग और समर्पण भाव रखना ही श्रेयष्कर है।

---

[1] युगल शतक, पद २६।
[2] महावाणी, पृ० ७९।
[3] कृष्णरससागर (हस्त०), पृ० ९९।
[4] वही, पृ० २५।
[5] वही, पृ० २६।
[6] वही पृ० ४३

अध्याय ६

लक्षदास जी की साहित्य को देन तथा अवधी कृष्ण काव्य का संक्षेण

अवधी कृष्णकाव्य के विकास में लक्षदास का योगदान—लक्षदास के पूर्ववर्ती अवधी कृष्णकाव्य के प्रणेता कवियो में लालचदास रचित ग्रथ 'हरिचरित्र' ही ऐसा काव्य उपलब्ध हुआ है जिसमे कृष्ण-कथा को प्रबंध रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रथ का वर्ण्य-विषय 'भागवत दशम स्कध' के आधार पर अवश्य लिखा गया है किन्तु उसमे कथा के वर्णन विस्तार का अभाव है। इतना होने पर भी इस ग्रथ का अपना महत्व है क्योकि इसमे जनसाधारण की सरल बोली मे ही कृष्ण-चरित्र का वर्णन करके कवि लालचदास ने कृष्ण को आदि ब्रह्म का अवतार माना है और उन्हे देवत्व के गुणो से विभूषित करके जागतिक लीलाएँ करने के लिए पृथ्वी पर अवतरित होने की बात का ही समर्थन किया है। कवि ने राम, कृष्ण और शिव मे पारस्परिक साम्य दिखाकर उन्हे आदि ब्रह्म की शक्तियो के रूप मे ही प्रदर्शित किया है। सारे काव्य मे सुत-कलत्र-समर्पण भाव को प्रधानता दी गई है। किसी भी कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय की परम्परा से निबद्ध न होने के कारण कवि ने वर्ण्य वस्तु का विवेचन भागवत मे निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार ही किया है। इसी कारण कथा मे वात्सल्य और शृगाररस की प्रधानता है।

प्रबध कथा के रूप मे कृष्णकाव्य की जिस परम्परा का श्रीगणेश लालचदास के ग्रथ 'हरिचरित्र' से हुआ उसका विकसित और प्रौढ रूप हमे लक्षदास जी की रचनाओ मे ही मिलता है। अवधी कृष्णकाव्य के जिन अन्य कवियों—भीम, बलवीर तथा गोविन्ददास—की रचनाएँ मिलती है वे महाभारत की कथा के कुछ पर्वो का भाषानुवाद मात्र या कृष्ण विषयक कुछ कविताएँ ही हैं। काव्यकला की दृष्टि मे भी ये साधारण रचनाएँ है।

लक्षदास जी ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से अवधी कृष्णकाव्य को अधिक व्यापक और विस्तृत रूप दिया। उन्होंने लौकिक नर-नारी की भाति कृष्ण और राधा की लीलाओ का वर्णन किया। कथा-प्रसंगों के बीच-बीच मे कवि ने कृष्ण के ब्रह्म तथा राधा के आह्लादिनी शक्ति होने की ओर भी यत्र-तत्र संकेत किया है। लक्षदास जी ने समाज के सामने कर्मयोगी कृष्ण का आदर्श प्रस्तुत किया जो समाज के दुख-दर्द को दूर करने के लिये मर्यादा भाव से लीलाएँ करते है। इसीलिये कवि ने कृष्ण-कथा के गर्हित तथा ऐन्द्रियतापरक वर्णनो को बिलकुल

छोड़ दिया। उसने दानलीला का वर्णन बहुत ही संयत भाषा में किया है। इसमें ब्रजभाषा के कवियों की दानलीला तथा पनघट प्रस्ताव के प्रसंगों की सी छेड़छाड़ तथा शृंगारिक बातें नहीं हैं क्योंकि लक्षदास जी समाज की मर्यादा को बनाये रखने और लोकधर्म को सुधारने के पक्षपाती थे। सामान्य व्यवहार की बातों में भी वे मर्यादा और शिष्टतापूर्ण व्यवहार को प्रश्रय देते थे। उन्होंने पतिव्रता नारी, मीन, चातक, हारिल की लकड़ी आदि के उदाहरण देकर अपने इन विचारों को दृढ़ता से व्यक्त किया है। इसी बात को ध्यान में रखकर कवि ने राधा को स्वकीया रूप में चित्रित किया है। भगवान् कृष्ण के लीलारूप और मर्यादा रूप के समन्वय में लक्षदास जी ने कहीं भी शिथिलता नहीं आने दी है।

लक्षदास जी के पहले के उपलब्ध अवधी कृष्णकाव्य के अनुशीलन से पता चलता है कि उन कवियों ने कृष्ण-कथा का वर्णन केवल परम्परा का पालन करते हुए किया। लक्षदास जी ने अपने समय की विभिन्न काव्य शैलियों को भी अपनाया और षड्ऋतु वर्णन, बारहमासा, भ्रमरगीत, स्तोत्र तथा नामावली आदि की परम्पराओं में योगदान देकर अवधी कृष्णकाव्य को एक नई दिशा देने का प्रयत्न किया और उनमें श्रेष्ठ काव्य रचना की। लोककाव्य में प्रचलित 'बरवै' छंद को सबसे पहले साहित्य का अंग बनाकर लक्षदास जी ने बरवै छंदों में 'कृष्ण की लीला' लिखी। 'कृष्ण लीला' के पूरे बरवै यद्यपि आज उपलब्ध नहीं हुए हैं किन्तु हमारा विश्वास है कि यदि ये उपलब्ध हो सके तो वह हिन्दी साहित्य की अनूठी कृति सिद्ध होगी। बरवै छंद को अवधी काव्य में सबसे पहले स्थान देने का जो श्रेय रहीम को दिया जाता है, वह सत्य से परे है।[1]

लक्षदास जी के पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं में भक्ति भावना का विस्तार प्रायः दास्य और वात्सल्य भाव में ही किया गया, किन्तु लक्षदास जी ने दास्य, वात्सल्य, शृंगार तथा सखी भाव में अपनी रचनाएँ लिखीं। उन्होंने विनय के पद तो प्रायः दास्य भाव से प्रेरित होकर लिखे किन्तु अन्य रचनाओं में वात्सल्य और शृंगार के आधार पर कथावस्तु का निर्माण किया। निम्बार्क सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार लक्षदास ने राधा-कृष्ण की शृंगार लीला (संयोग वर्णन) तथा सहचरी साधना का वर्णन किया है और विप्रलम्भ के वर्णनों में 'भ्रमरगीत' का प्रसंग लिखा है। कवि ने राधा-कृष्ण की संयोग लीलाओं के अन्तर्गत 'निकुंज विहारलीला' को 'नित्य विहार' का ही अंग माना है और कृष्ण-रुक्मिणी के विहार को भी निकुंज केलि तथा अष्टयाम सेवा के अन्तर्गत उपासना का साध्य माना है।

हमारे आलोच्य कवि के पूर्ववर्ती अवधी कृष्ण काव्य में दोहा, चौपाई तथा चौपई छंदों को ही प्रयुक्त किया गया है किन्तु लक्षदास ने अपनी रचनाओं में दोहा, चौपाई, चौपई, हरि-गीतिका, बरवै, अतिबरवै, चौबोला, छप्पय, लावनी, सोरठा आदि छंदों का प्रयोग किया है। लालचदास के काव्य 'हरि चरित्र' में लोक-कहावतों का भी यत्र-तत्र प्रयोग मिलता है, किन्तु लक्षदास ने अपनी सभी रचनाओं में लोकोक्तियों का प्रयोग प्रचुरता से किया।[2]

---

[1] इसी प्रबंध के अध्याय ६ में इस सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया जा चुका है, देखिये पृष्ठ २१७-२१८।

[2] लक्षदास के द्वारा प्रयुक्त लोकोक्तियों के कुछ उदाहरण अध्याय ७ में दिये गये हैं, देखिये पृष्ठ २४७ २४८

लक्षदास के परवर्ती अवधी कृष्ण काव्य का सर्वेक्षण

पिछले पृष्ठों में हमने अवधी कृष्णकाव्य के विकास तथा उसमे 'लक्षदास का योगदान' पर विचार किया है, अब आगे की पक्तियो मे हम लक्षदास जी के परवर्ती कवियो के अवधी कृष्णकाव्यो का विवेचन सक्षेप मे करेगे। इनमे से लक्षदास जी के समसामयिक कवि नरहरि महापात्र की रचनाओं का विवरण हमने आलोच्य कवि के बाद मे रखा है क्योकि नरहरि का रचनाकाल लक्षदास के बाद का है और काव्य-परम्पराओ की दृष्टि से भी उन पर लक्षदास की रचनाओ का कुछ प्रभाव दिखाई देता है। रहीम कवि का आविर्भाव काल तो लक्षदास जी के पर्याप्त बाद का है अत हमने रहीम का विवरण नरहरि महापात्र के बाद दिया। शेष कवियो की रचनाओं पर कालक्रम से विचार किया गया है।

नरहरि महापात्र

शिवसिंह सरोज मे नरहरि का समय स० १८९८ दिया गया है[१] किन्तु यह गलत है। प० रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म स० १५६२ वि० और मृत्यु स० १६६७ वि० बताई है।[२] डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने पर्याप्त विवेचन के बाद नरहरि का जन्म स० १५६२ बताया है[3] किन्तु मृत्यु स० १६६७ की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया है।[४] पं० रामशरण त्रिपाठी ने बताया है कि नरहरि के पुत्र हरिनाथ ने 'नरहरि चरित' मे नरहरि की मृत्यु स० १६६६ मे हुई, ऐसा लिखा है।[५]

नरहरि ब्रह्म भट्ट थे। महापात्र की उपाधि उन्हे अकबर ने दी थी। शिवसिंह सेंगर ने नरहरि का निवास स्थान फतेहपुर जिले का असनी गाँव लिखा है,[६] किन्तु अन्य विद्वान् रायबरेली जिले की डलमऊ तहसील के पखरौली नामक ग्राम को उनका जन्म-स्थान बताते है।[७] हो सकता है कि अपने जन्म स्थान पखरौली से जाकर युवाकाल मे नरहरि ने असनी मे अपना निवास-स्थान बनाया हो।[८]

रचनाएँ—हिन्दी साहित्य के इतिहासकारो ने नरहरि रचित ३ ग्रथ बताये है—रुक्मिणी मगल, छप्पय नीति और कवित्त सग्रह। प० देवीदत्त शुक्ल (भू० पू० सम्पादक सरस्वती) ने मुझे बताया कि नरहरि ने एक 'हजारा' भी लिखा था किन्तु वह अब उपलब्ध नही है। उपर्युक्त ३ रचनाओ मे से 'रुक्मिणी मंगल'[९] के अतिरिक्त अन्य कोई रचना उपलब्ध नही होती, केवल फुटकर छद ही सग्रह ग्रथो मे यत्रतत्र मिलते है।

---

१ शिवसिंह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४३९।
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, २००९ वि०, पृ० १९९।
3 अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, २००७ वि०, पृ० ५८-५९।
४ वही, पृ० ७६।
५ सरस्वती, फरवरी १९०६ भाग ७ संख्या २, पृ० ४९-५०।
६ शिवसिंह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४३९।
७ महाकवि नरहरि का निवास, सरस्वती मार्च १९३१, पृ० ८।
८ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि—डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, २००७ वि०, प० ५८।
९ नागरी प्रचारिणी सभा काशी खोज रिपोर्ट १९०३ ई० पृ० १२

रुक्मिणी मंगल—इस ग्रंथ की दो हस्तलिखित प्रतियां मिली है—(१) काशिराज पुस्तकालय से,[१] (२) डा० शिवगोपाल मिश्र को एकडला ग्राम, जनपद फतेहपुर से[२]। उक्त दोनों प्रतियों में ग्रंथ के रचनाकाल तथा लिपिकाल का कोई उल्लेख नही मिलता।

वर्ण्य-विषय—नरहरि कृत 'रुक्मिणी मंगल' मे कुंडिनपुर के राजा भीष्म की कन्या रुक्मिणी तथा श्रीकृष्ण के विवाह की पूरी कथा दी गई है। इसमे राजा भीष्म का परिचय देकर रुक्मिणी के यौवनागम का वर्णन किया गया है। रुकुम (रुक्मिणी का भाई) अपनी बहिन रुक्मिणी का विवाह चेदिनरेश शिशुपाल से करना चाहता है। इसकी सूचना पाकर रुक्मिणी गुप्त रूप से एक पत्र कृष्ण के पास भेजती है जिसमें वह अपना प्रणय निवेदन करती हुई सहायता की याचना करती है। श्रीकृष्ण कुंडिनपुर आकर रुक्मिणी का हरण कर लेते हैं। शिशुपाल तथा उसके सहयोगी राजा युद्ध करते है, किन्तु पराजित होते है। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का गंधर्व विवाह होता है।[3]

नरहरि की फुटकर रचनाओ मे नीति, लोकमर्यादा, राधा-कृष्ण का रूप-सौन्दर्य, गोपी-विरह, सीय स्वयवर, राम और शिव की उपासना आदि का वर्णन मिलता है। नरहरि ने भी लक्षदास जी रचित हरिहरनामावली, मजु मुक्तावली तथा समस्तानदप्रद स्तोत्र की परम्परा मे भगवान् के नामो की नामावली प्रस्तुत की है। नरहरि ने 'बारहमासा' भी लिखा था जिसमे विरह की अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रकृति के सुन्दर चित्रों की सश्लिष्ट योजना प्रस्तुत करके उन्हे उद्दीपन रूप मे चित्रित किया गया है।[४]

भाषा एवं शैली—नरहरि की काव्य-भाषा पर्याप्त प्राचीन मालूम देती है। उसपर अवहट्ठ और अपभ्रंश की परम्पराओ का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। चारण शैली की रचनाओं पर प्राचीन परम्परा का प्रभाव है। छप्पय छदो में अवधी भाषा प्रयुक्त की गई है तथा शेष रचनाएँ व्रज, कनौजी और बुदेली से प्रभावित हैं। व्रज और कनोजी की अकारान्त सज्ञाओ के स्थान पर 'उकारान्त' सज्ञाओं को प्रयुक्त किया गया है, जैसे—मानु, धनु, पिताबु, चंदु, आजु आदि। नरहरि के काव्य मे फारसी-अरबी के शब्द भी व्यवहृत हुए हैं। यही नहीं, उनके एक-दो छदो की शब्द योजना तो बिलकुल फारसी की सी है।[५]

नरहरि ने अपनी काव्य रचना छप्पय, सवैया, कुंडलिया, घनाक्षरी, कवित्त, दोहा, छद और बरवै से की है। 'रुक्मिणी मंगल' मे बरवै छद भी प्रयुक्त हुआ है। कवि की रचनाओ मे अलकारो का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है जिसमे अनुप्रास, उपमा, यमक, उत्प्रेक्षा आदि अलकार मुख्य रूप से मिलते हैं।

अब्दुर्रहीम खानखाना

रहीम अकबर के सरक्षक बैरम खा के पुत्र थे। इनका जन्म १४ सफर ९६३ हिजरी

---

[१] अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, २००७ वि०, पृ० १४९।
[२] डा० शिवगोपाल मिश्र ने अपने 'कविवर नरहरि और रुक्मिणी मगल' शीर्षक लेख की एक पुनर्मुद्रित प्रति कृपापूर्वक मेरे पास भेजी है।
[3] अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, परिशिष्ट भाग, पृ० ३३४ से प्रारम्भ।
[४] अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, परिशिष्ट भाग, पृ० ३०९ से प्रारम्भ।
[५] वही छद सख्या १२८

(सं० १६१३) को लाहौर में हुआ था। जब रहीम ४ वर्ष के थे तब मुबारक खाँ नाम के एक पठान ने बैरमखाँ का (हज जाते समय मार्ग में) वध कर दिया। अकबर ने बालक रहीम तथा उसकी विधवा माँ को अपने पास बुला लिया और बालक की शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था कर दी। इतिहासकार अब्दुल बाकी के कथनानुसार रहीम ने ११ वें वर्ष में काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी। उन्होंने किसी को अपना काव्यगुरु नहीं बनाया था बल्कि अपनी प्रतिभा के बल पर ही कविताएँ लिखना प्रारम्भ कर दिया था।[२] अकबर के समय में ही उन्हें उच्चपद तथा जागीरें मिलीं, किन्तु जहाँगीर ने राजद्रोह का अपराध लगाकर इनकी सारी जागीर जब्त कर ली। तब ये चित्रकूट चले गये। इस समय इनकी दशा बहुत बुरी हो गई थी। जीवन के अंतिम दिनों में रहीम को पुन सम्मान मिला अवश्य किन्तु अस्वस्थता के कारण इनकी मृत्यु हो गई।

रचनाएँ—हिन्दी साहित्य जगत में अब्दुर्रहीम खानखाना के नाम से उपलब्ध रचनाओं में कवि का नाम रहीम या रहिमन मिलता है। मआसिरे रहीमी तथा मआसिरुल उमरा में अब्दुर्रहीम खानखाना का तखल्लुस 'रहीम' बताया गया है।

प० नकछेदी तिवारी ने रहीम कृत ६ ग्रंथों का उल्लेख किया है—(१) रहीम सतसई, (२) बरवै नायिका भेद, (३) रासपंचाध्यायी, (४) मदनाष्टक, (५) दीवान फारसी, (६) वाकयात बाबरी का फारसी अनुवाद। शिवसिंह सरोज में इनका 'शृंगार सोरठा' नाम का एक ग्रंथ और बताया गया है।[3]

रहीम सतसई—रहीम के नाम से जो दोहे संग्रहकारों ने संकलित किये हैं, उनकी संख्या ३०० से भी कम है। इनमें कुछ संदिग्ध दोहे भी कहे जाते हैं किन्तु आज उनको छाँट निकालना कठिन-सा है। पं० मयाशंकर याज्ञिक ने रहीम रचित ७०० दोहों की रचना होने की सम्भावना प्रकट की है[४] किन्तु डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल रहीम रचित किसी 'सतसई' के लिखने के प्रयत्न को स्वीकार नहीं करते क्योंकि रहीम का जीवन राजनीतिक तथा शासन सम्बन्धी कार्यों से इतना ओतप्रोत था कि किसी विशेष प्रकार की रचना का उन्हें अवकाश ही नहीं था।[५] रहीम कवि के व्यस्त जीवन की बात को मानते हुए भी ७०० दोहे लिख जाना कोई असम्भव बात नहीं है क्योंकि प्रतिभा-सम्पन्न कवि के लिये इस प्रकार की सीमाएँ बाधक नहीं हुआ करती है।

रहीम की रचनाओं में सर्वाधिक प्रचलित उनके दोहे मिलते हैं जिनमें भक्ति, ज्ञान, उपदेश, प्रकृति वर्णन, नीति आदि की बातें कही गई हैं। कवि के इन दोहों में उसके व्यक्तिगत जीवन की छाया भी मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके भक्तिभाव, दैन्य तथा व्यावहारिक जीवन के कडवे अनुभव इन दोहों में कवि के जीवन की साधना को समेटे हुए बैठे हैं।

---

[१] अकबरनामा, भाग २, पृ० ७६।
[२] मआसिरे रहीमी, भाग २, पृ० ५६२।
[३] शिवसिंह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४६१।
[४] रहीम रत्नावली, पृ० १७।
[५] अकबरी दरबार के हिन्दी कवि २००७ वि० पृ० १६६

नगर शोभा—इसकी एक हस्तलिखित प्रति प० मयाशकर याज्ञिक को मिली थी।[1] इसमे १४२ दोहे हैं जिनके प्रारम्भ में मगलाचरण दिया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि यह एक स्वतत्र ग्रंथ है। इसमे देव कवि के 'जाति विलास' की भाँति ही अनेक जाति की स्त्रियो का वर्णन बडी सुन्दरता से किया गया है। इस वर्णन को पढकर यह अनुमान होता है कि अकबर द्वारा आयोजित मीना बाजार मे एकत्र होने वाली सभी वर्ण एव पेशो वाली स्त्रियो को देखकर ही रहीम को इस रचना की प्रेरणा मिली होगी।

बरवै नायिका भेद—यह रचना सबसे पहले 'कवि वचन सुधा' मे प्रकाशित हुई। इसके अनन्तर भारत जीवन प्रेस ने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया।[2] इस ग्रंथ की कई हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध हुई है।[3] खोज रिपोर्ट (१९०९-११) मे इस ग्रथ की एक प्रति के प्राप्त होने की सूचना दी गई है।[4] अभी तक इस ग्रथ के ११७ बरवै प्राप्त हुए है[5] जिनमे नायक एव नायिकाओ के भेद तथा उपभेदो के उदाहरण दिये गये है।

बरवै—इस रचना की एक हस्तलिखित प्रति प० मयाशकर याज्ञिक को मेवात से प्राप्त हुई थी जहाँ रहीम के मातामह जमाल खा की जमींदारी थी। रहीम रत्नावली मे याज्ञिक जी ने १०१ बरवै दिये है।[6] और बाद के ४ बरवै अन्य फुटकर सग्रहो से एकत्र किये गये हैं।[7]

इन बरवै छदों मे शृगारिक भावनाओ का समावेश है। इनमे विशेष रूप से विप्रलम्भ शृगार का वर्णन किया गया है। कृष्ण के विरह वर्णन के विषय मे जो बरवै लिखे गये है, वे बारहमासा की परम्परा से प्रभावित है जिसमे विरहिणी की दयनीय दशा का चित्रण किया गया है।

शृंगार सोरठा—शिवसिह सरोज मे शृगार सोरठा के २ उदाहरण दिये गये है।[8] रहीम के दोहो के साथ मे सोरठे भी मिलते है जिनमे से केवल ६ सोरठे ही शृगार रस के प्राप्त हुए। भाषा एव भाव की दृष्टि से ये सोरठे अत्युत्तम है।

रासपंचाध्यायी—यह रहीम की रचना कही जाती है। अप्राप्य होने के कारण इसका विवरण नही दिया जा सकता है। भक्तमाल की टीका मे दो पद बताये गये है। ये रहीम कृत रासपचाध्यायी के ही कहे जाते है।[9]

रहीम काव्य—मुशी देवीप्रसाद ने खानखानानामा मे कुछ सस्कृत-श्लोक तथा कुछ सस्कृत मिश्रित हिन्दी श्लोक दिये है। सग्रह ग्रंथो ने ये 'रहीम काव्य' शीर्षक के अन्तर्गत दिये गये है। इन श्लोकों मे कोई क्रम नही है।

---

[1] रहीम रत्नावली, पृ० १८।
[2] रहिमन विलास, (सम्पा० बा० व्रजरत्नदास), पृ० ३५।
[3] रहीम रत्नावली (सम्पा० पं० मयाशकर याज्ञिक), पृ० २२-२३।
[4] खोज रिपोर्ट (१९०९-११), पृ० २५।
[5] रहिमन विलास, पृ० ४१।
[6] रहीम रत्नावली, पृ० ६१ से ७१।
[7] वही पृ० २४-२५।
[8] शिवसिंह सरोज प० ३९९।
[9] रहीम रत्नावली प० ३२

खेटकौतुक जातकम्—यह रहीम लिखित ज्योतिष विषयक ग्रथ है जो फारसी तथा सस्कृत मे दिया गया है। यह ग्रथ ज्ञान सागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित भी हो चुका है। इस ग्रथ के अत मे राजयोग पर एक अध्याय दिया गया है। इससे कवि के ज्योतिष विषयक ज्ञान का भी पता चलता है।

रहीम रत्नावली मे प० मैयाशकर याज्ञिक ने रहीम रचित शतरज के खेल की पुस्तक का भी उल्लेख किया है। यह पुस्तक अप्राप्य है अत. इसका विवरण नही दिया जा सकता।

मदनाष्टक—यह एक शृगारिक कृति है जो संस्कृत कवियो को शैली पर मालिनी छद मे लिखी गई है। यह छद सस्कृत मिश्रित खडी बोली मे लिखे गये है। 'शिवसिंह' सरोज' मे रहीम कृत मदनाष्टक के नाम से एक छंद दिया गया था।[1] इसके बाद खोज रिपोर्टो[2] तथा पत्रिकाओं[3] में मदनाष्टक के नाम से रहीम रचित रचना के प्राप्त होने की सूचना प्रकाशित हुई, तदनुसार वही पाठ सग्रह-ग्रथो मे सकलित किये गये। इनके अनतर काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में एक मदनाष्टक और प्रकाशित हुआ जो पठान मिश्र की रचना बताई गई है।[4]

सम्मेलन पत्रिका भाग ४६ संख्या २ मे 'मदनाष्टक के रचयिता' शीर्षक लेख मे यह स्पष्ट किया है कि मदनाष्टक रहीम की रचना नही है इसे पठानी मिश्र नामक किसी व्यक्ति ने लिखा है।[5] जहाँगीरनामा में बताया गया है कि पठानी मिश्र को जहाँगीर ने एक सहस्र रुपये से पुरस्कृत किया था (१६०९ ई०)[6]

वाकेयात बाबरी तथा फारसी दीवान—मुगल साम्राज्य के संस्थापक सम्राट् बाबर ने अपने जीवन के उत्थान-पतन तथा कठिनाइयो का सजीव वर्णन तुर्की भाषा मे किया। रहीम ने फारसी भाषा में उसका बहुत ही शुद्ध और उत्तम अनुवाद किया है। 'फारसी दीवान' मे रहीम की फारसी में लिखी गई कविताओ का संकलन है।

रहीम रचित कृष्णकाव्य—रहीम रचित काव्य मे भगवान् के राम और कृष्ण रूपो की वंदना की गई है। इसके अतिरिक्त इनके दोहों, बरवों तथा पदो मे यत्र-तत्र जो वर्णन या सकेत किया गया है उससे स्पष्ट है कि उनका झुकाव कृष्ण की ओर अधिक था। यह भी सम्भवत इसलिये कि वे कृष्ण की लीला भूमि के समीप आगरा मे ही अधिकाश समय तक रहे थे। उनमें हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा भाव था। अतः उन्होंने राम-कृष्ण विषयक साहित्य का अध्ययन भी किया था जिसका स्पष्ट सकेत उनकी रचनाओ के पढने पर मिल जाता है।

रहीम रचित बरवो मे कृष्ण के मथुरा गमन पर गोपिकाओ के उद्धव से अपना विरह

---

[1] शिवसिंह सरोज, १८८३ ई०, पृ० २६।
[2] खोज रिपोर्ट (१९२०-२२), पृ० ३८०।
[3] (क) सम्मेलन पत्रिका सं० १९७९ भाद्रपद तथा कार्तिक मास के अक।
(ख) माधुरी, आषाढ स० १९८५।
[4] खोज रिपोर्ट १९३५-३६, ३७, पृ० २२५।
[5] सम्मेलन पत्रिका भाग ४६ संख्या २ शक १८८२ मे 'मदनाष्टक के रचयिता' शीर्षक मेरा लेख।
[6] —ना० प्र० स० काशी पृ० २३०

निवेदन करने का प्रसग लिया गया है। यह प्रसग क्रमवद्ध रूप मे नही लिया गया। इससे अनुमान होता है कि ये बरवै अवकाश के क्षणों में सुविधानुसार लिखे गये है। इन बरवो मे ४ मास—आषाढ, सावन, भादों तथा फाल्गुन—मे विरहिणी के हृदय की भावना व्यक्त की गई है।[१] हो सकता है कि बारहमासा की परम्परा को रहीम ने अपने बरवो मे लिखा हो लेकिन समयाभाव के कारण या तो वे उसे पूरा न कर पाये हों या इसी प्रकार लिखे गये उनके अन्य बरवै आज उपलब्ध नही है।

रहीम रचित जो दो पद मिलते है उनमे कृष्ण की शोभा का वर्णन किया गया है।[२]

छंद, रस एवं भाषा—रहीम ने दोहा, सोरठा, बरवै, सवैया और पद लिखे है। संस्कृत मिश्रित हिन्दी तथा फारसी के प्रयोग इनकी रचनाओं मे मिलते है।

रहीम ने मुख्यत शान्त रस मे रचनाएं की है। किन्तु 'बरवै' मे शृगार के (विप्रलम्भ के) सुन्दर उदाहरण मिलते है।

रहीम रचित काव्य की भाषा मुख्यत ब्रजभाषा है किन्तु उनमे भी अवधी के सर्वनाम, कारक और विशेषणो का प्रयोग मिलता है। बरवै तथा बरवै नायिका भेद दोनो ही अवधी की सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ है। इससे यह स्पष्ट है कि उनका ब्रजभाषा और अवधी पर पूर्ण अधिकार था। इसके अतिरिक्त वे तुर्की, फारसी अरबी और संस्कृत के ज्ञाता थे। रहीम शब्द चयन तथा भावानुवर्तिनी भाषा के प्रयोग मे बडे ही पटु थे। उनकी इन रचनाओं मे कवि के अनुभव, व्यवहार कुशलता और स्वाभाविक वर्णन का पता चलता है।

गोपीनाथ द्विज

अकबर के राज्यकाल मे हुए, इनके गुरु चतुर्भुज मिश्र आगरे के निवासी थे। गोपीनाथ द्विज स्वय ग्राम दिहुली, तहसील करहल, जिला मैनपुरी के निवासी थे। श्रावण सुदी दशमी सवत् १६३६ मे कवि ने 'भागवत दशम स्कंध पूर्वार्द्ध' का भाषा पद्यानुवाद किया जिसके ४१ पत्र मिलने की सूचना खोज रिपोर्ट मे दी गई है। ग्रथ के अब उपलब्ध न होने से उसका अन्य विवरण देना संभव नही है।[3]

भीष्म

शिवसिह सरोज मे भीष्म कवि का समय स० १६८१ बताया है। हजारा मे इनके कवित्त मिलते है।[४] सरोज में ही एक अन्य भीष्म कवि का समय स० १७०८ बताया गया है।[५] नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट में भीष्म कवि रचित ग्रथ का नाम 'बालमुकुन्द-लीला' दिया है जिसमे पूर्वार्द्ध दशम स्कध भागवत की कृष्णलीला का वर्णन है। इस ग्रथ के १०७ पृष्ठ उपलब्ध बताये गये है जिनके प्रथम दो पत्रो मे मगलाचरण के १२ श्लोक है। इन्ही मे महाराज वीरबडसिंह का भी वर्णन है और उसके बाद भाषा कविता दी गई है।[६] शिवसिंह

---

१ रहीमरत्नावली, पृ० ६३ से ७२ तक।
२ वही पृ० ७८-७९।
3 नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट १९२९-३१, पृ० २८६।
४ शिवसिंह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४७०।
५ वही पृ० ४७१
६ खोज रिपोट १९०३ पृ० १२

सरोज में बताये गये दोनों भीष्म को मिश्रबंधुओं ने एक ही व्यक्ति माना है।[1] किन्तु डा० रामकुमार वर्मा ने भीष्म अन्तर्वेदी और भीष्म बुंदेलखण्डी दो पृथक् व्यक्ति बताये है। 'भीष्म अन्तर्वेदी ने श्रीमद्भागवत का अनुवाद दोहा-चौपाई मे किया। इनका आविर्भावकाल स० १६८१ माना जाना चाहिए।[2] यह ग्रथ अब उपलब्ध नही है, अत इसका विस्तृत विवरण देना सभव नही है।

सदानन्द

शिवसिंह सरोज में इनका समय सं० १६८० बताया गया है। साथ ही 'हजारा मे इनका एक कवित्त तथा दिग्विजय भूषण मे दोहे सकलित बताये गये है।[3] मिश्रबधुओं ने सदानंददास का जन्म स० १६८० तथा कविताकाल १७१० बताया है और इनके लिखे 'नद जी की दशावली' ग्रथ का उल्लेख किया है।[4] मिश्रबधुओ ने इसके अतिरिक्त एक और सदानद का उल्लेख किया है जिनका समय स० १६८५ के आसपास बताया है।[5] मई १६४६ की सरस्वती मे सदानन्द रचित दो काव्यो की ओर सकेत किया गया है (१) रामा भगवन्तसिह, (२) जैमुनि पुराण।[6]

जैमुनि पुराण को प्रबध काव्य के रूप में लिखा गया है। इसमे व्यास जी प्रणीत महाभारत के अश्वमेधिक पर्व की कथा को आधार न मानकर व्यास के शिष्य जैमिनि द्वारा प्रणीत 'जैमिनि पुराण' मे वर्णित कथा के अनुसार विषय वस्तु को छन्दोबद्ध किया है। ग्रथारम्भ मे कवि ने श्रीकृष्ण के महाभारत रूप की वदना दोहो मे की है। इसके बाद कथावस्तु के प्रसगो के आधार पर कथानक का (शृखलाबद्ध करने के लिए) अध्यायों में विभाजन किया गया है। कथा का विस्तार ५६ अध्यायों मे किया गया है। इस ग्रथ मे कथा के पूर्वापर सम्बन्ध में समायोजन करने के लिये कथा कहने और सुनने का कार्य जैमिनि-जनमेजय और सदानन्द——महाराज शिवप्रसाद सिह के मध्य किया गया है।

जैमुनि पुराण मे रामाश्वमेध की कथा का समावेश एक अन्तर्कथा के रूप मे किया है लेकिन मुख्य कथा का सम्बन्ध इतनी कुशलता से जोडा गया है कि उसमें नीरसता नही आने पाई और भाव ग्रहण मे भी कोई बाधा नही पहुँची। फिर भी उक्त कथा का विस्तार आवश्यकता से अधिक हो गया है। सारे ग्रंथ के दशमाश मे केवल उसी का वर्णन है।

युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ हेतु निमत्रण की सूचना पाकर श्रीकृष्ण की हस्तिनापुर जाने की तैयारी, मणिपुर की शोभा, बभ्रुवाहन द्वारा अर्जुन का स्वागत और उद्दालक मुनि तथा उनकी स्त्री चण्डी का वार्तालाप आदि प्रसगो मे युद्ध के लिये सन्नद्ध पुरवासी एवं सैनिको के वर्णन किये गये है। अर्जुन, सुरथ, सुधन्वा, चन्द्रहास, मोरध्वज आदि राजाओ के युद्ध का सजीव

---

[1] मिश्रबधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४८५।
[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १९४८ ई०, पृ० ८५३।
[3] शिवसिंह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ५०६।
[4] मिश्रबंधु विनोद, पृ० ५०५।
[5] वही पृ० ४५१।
[6] सरस्वती मई १९४६ पृ० ४१३

वर्णन है। इनके पारम्परिक कथोपकथन लम्बे हो गये है। श्रीकृष्ण और भीम के पारस्परिक व्यंग्ययुक्त वाक्य बहुत ही मनोरंजक है।[१]

युद्ध के वर्णनो की अधिकता के कारण ग्रथ मे वीररस प्रधान है फिर शृगार रस उसके सहायक रस के रूप मे अनेक स्थलो पर प्रयुक्त किया गया है। वर्णनो में सरसता और रोचकता है। कवि ने कही-कही उपदेशात्मक शैली का भी आश्रय लिया है।

'जैमुनि पुराण' की भाषा पूर्वी अवधी है किन्तु (फिर भी) वैसवाडी के प्रयोगो को भी स्थान दिया गया है। प्राय सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग किया गया है, किन्तु विदेशी भाषाओं के शब्द (जैसे—शुमार, हुजूर, फरमाये इत्यादि) भी व्यवहार मे लाये गये है। व्याकरण के नियमो की अवहेलना तथा पडिताऊपन के उदाहरण भी यत्र-तत्र मिलते है।

रघुनाथ रामसनेही (बाबा)

ये रामसनेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे जिसका केन्द्र अयोध्या मे था। इस सम्प्रदाय के अधिकाश अनुयायी अब भी राजस्थान मे मिलते है। शिवसिंह सरोज मे इन्हे 'रघुनाथदास महत अयोध्यावासी' बताया गया है और लिखा है कि 'ये महाराज ब्राह्मण है। पैनेपुर जिला सीतापुर मे घर था। रामचन्द्र के उपासक भगवद्भक्ति के कारण घर बार त्याग अयोध्या जी मे विराजमान रहा करते थे। राम नाम की महिमा मे सैकड़ो कवित्त बनाये है इनसे लाखो मनुष्यो ने उपदेश पाया है।'[२] इनके आविर्भाव काल आदि का कोई विवरण नही दिया गया। प० रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे इनके लिखे ग्रथ 'विश्राम सागर' का रचना काल स० १९११ बताया है[३] किन्तु यह गलत है क्योकि स्वय कवि ने विश्राम सागर मे इसका रचनाकाल स० १८८७ दिया है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्टो मे इनका समय स० १९१४ के लगभग अनुमाना गया है।[४] इन्ही मे इनके लिखे हुए अन्य ग्रथो के नाम भी दिये गये है—

(१) मानस दीपिका सकावली (लिपि० १९३० वि०)

(२) मानस दीपिका विश्राम ,,

(३) विश्राम सागर (लिपि १९०१ वि०)

(४) प्रश्नावली ,,

उपर्युक्त मे प्रथम दो ग्रथ एक ही ग्रथ के भाग है। विश्राम सागर' की मुद्रित प्रति मे 'प्रश्नावली' भी संकलित मिलती है। 'मानस दीपिका सकावली' मे तुलसीकृत रामायण मे उठने वाली शकाओ का समाधान किया गया है।

---

१ सरस्वती, मई १९४६, पृ० ४१८।
२ शिवसिह सरोज, पृ० ४८६।
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास २००९ वि०, पृ० ५७८।
४ खोज रिपोर्ट, १९२०-२२, सख्या १३९ ;
— — १९२६-२८ सख्या ३७० :
१९२९ १ सख्या २७१

विश्राम सागर—यह ग्रंथ १८८७ संवत में लिखा गया।[1] कवि ने अपने गुरू का नाम देवादास और उनका निवास स्थान मधुपुरी के निकट रामघाट बताया है।[2] रघुनाथदास रामसनेही ने इस ग्रंथ की रचना का कारण बताते हुए कहा है कि अनेक ग्रंथो मे विविध 'मत' मिलते है जिनके कारण जनसाधारण भ्रम मे पड जाता है अत सभी ग्रंथो का सार ग्रहण करके कवि ने यह विश्राम सागर लिखा है।[3] इसमे नवरसो में कथा का आस्वादन कराया गया है।[4] इस ग्रंथ मे षट्शास्त्र, वेद और पुराणो के मत का सार है इसीलिये इसका नाम 'विश्राम सागर' रखा है। यह ग्रंथ कल्पद्रुम के समान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, हरि भक्ति, वैराग्य आदि सभी फलो का देने वाला है।[5] बाबा रघुनाथ रामसनेही ने दार्शनिक मतो का विवेचन तथा जप-तप दान-धर्म, पाप-पुण्य आदि लौकिक विषयो पर अपना अभिमत प्रकट किया है।

विश्रामसागर की कथा को कवि ने ३ खण्डो मे विभाजित किया है—(१) इतिहासायन, (२) कृष्णायन, (३) रामायण।

इतिहासायन खण्ड को मगलाचरण से प्रारम्भ करके कथा प्रसगो का प्रारूप दिया गया है तदुपरान्त गुरू माहात्म्य एव नारद की कथा दी गई है। कवि ने नाम माहात्म्य, महाभारत तथा जैमिनि अश्वमेध आदि पर आधृत कथाएँ, गगा सरस्वती, एकादशी की उत्पत्ति तथा एकादशी, सत्सग और तुलसी माहात्म्य की कथाएँ, नवधा भक्ति तथा छहो शास्त्र के अनुसार वर्ण्य-विषय का सक्षेप मे वर्णन किया है।

कृष्णायन खण्ड मे कृष्ण जन्म की कथा कहने का कारण, कलियुग समावेश पर परीक्षित की बुद्धि भ्रष्ट होना, शृगी ऋषि का शाप तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये परीक्षित को कृष्ण की कथा सुनने की आवश्यकता बताई गई है। इसके बाद कृष्णायन खण्ड की वास्तविक कथा प्रारम्भ होती है। कसोत्पत्ति, कस के अत्याचार, कृष्ण जन्मोत्साह, पूतना, कागासुर, तृणावर्त्त आदि का वध, कृष्ण का दधिचोरी करना, वाक्य-विलास वर्णन से लेकर कृष्ण के मथुरा गमन तथा उद्धव को ब्रज भेजने तक की कथा; इसके अनतर कृष्ण जरासध युद्ध से लेकर रुक्मिणी हरण तथा प्रद्युम्न-रति विवाह आदि के प्रसगों के द्वारा कृष्ण चरित का विस्तार किया गया है। यह कथा वर्णनात्मक पद्धति मे शीघ्रतापूर्वक लिखी गई है।

रामायण खण्ड मे रावण के पूर्व जन्म की कथा की ओर संकेत करते हुए उसके जन्म धारण करने, युद्ध करके देवतादि पर विजय प्राप्त रकने, कुम्भकर्ण, लकेशिनी आदि के तप और वरदान प्राप्त करने आदि की कथाएँ दी गई है। तदुपरान्त राम जन्म से लेकर रावण

---

[1] संवत मुनि वसु निगम शत रुद्र अधिक मधुमास।
शुक्ल पक्ष कवि नौमि दिन कीन्हीं कथा प्रकास।।
(नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, बीसवॉं संस्करण), पृ० ७।

[2] (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, बीसवॉं संस्करण), पृ० ७।

[3] वही वही ।

[4] अद्भुत हास शृगार भव बीर विभत्स विषाद।
रुद्र सुरुचि सम शान्तये यामें नव रस स्वाद।।
—वही, पृ० ८।

[5] (नवलकिशोर प्रेस बीसवॉं) पृ० ६

वध तक की कथा को कवि ने सात काण्डों मे विभाजित किया है। रामायण खण्ड का अंत उत्तर-काण्ड में हुआ है जहा राम और भरत मिलाप के बाद राम का राज्याभिषेक होना है।

अंत में कवि ने स्वय को रामानुज सम्प्रदाय का बनाया है और अग्रदास जी के समय से अपने गुरु देवादास तक की गुरु परम्परा का उल्लेख किया है।[1] ग्रथ-समाप्ति पर कवि ने प्रमुख भक्तों के नाम दिये है तथा 'प्रश्नावली' मे शुभाशुभ प्रश्न विचार की तालिका दी है।[2]

प्रत्येक खण्ड की समाप्ति पर कवि ने उसमे प्रयुक्त छदो तथा उनकी सख्या का विवरण दिया है। इस ग्रथ में मुख्यत कथा दोहा-चौपाई मे ही है, किन्तु इसके अतिरिक्त सोरठा, रोला, अश्लोक, बरवै, सवैया, छप्पय, गीतिका, हरिगीतिका कुडलिया, कुकुम छद, चामर छंद, त्रिभगी छद, चौबोला, तोटक, दडक, नाराच छद, भुजग प्रयात, चतुष्पद, अरिल्ल, ओमान आदि मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छदो को प्रयुक्त किया गया है।

कवि की भाषा में सरलता, स्वाभाविकता और प्रसाद गुण है जिसमे तन्मय कर देने की शक्ति है। अवधी और व्रज भाषा का मिला-जुला रूप मिलता है जिसमें व्रज भाषा मुख्यत कृष्णायन खण्ड मे व्यवहृत की गई है। अलंकारो का प्रयोग बहुत ही स्वाभाविक ढग से हुआ है। यह ग्रथ परवर्ती 'विश्राम सागर' ग्रथों का मार्ग निर्देशक है। बाद के सारे विश्राम सागर इसी की परम्परा और शैली के आधार पर लिखे गये है।

चतुरदास—मिश्रबधु विनोद मे चतुरदास को संत सतदास का चेला कहा गया है और उनके रचित दो ग्रथो—(१) एकादश स्कध भाषा, (२) श्री हितजू को मगल का उल्लेख किया गया है जिनका रचनाकाल १६६२ बताया गया है।[3] डा० रामकुमार वर्मा का कहना है कि इन्होने भगवद्गीता के ११वे अध्याय का हिन्दी में पद्यानुवाद किया। उन्होंने इसे दोहा-चौपाई में लिखी गई साधारण रचना कहा है।[4] विन्ध्य प्रदेश से प्राचीन हस्तलिखित हिन्दी ग्रथो की खोज मे चतुरदास का ग्रथ 'एकादश स्कंध भागवत भाषा' मिला है।[5]

चतुरदास रचित उपर्युक्त ग्रथो मे 'श्री हितजू को मगल' का केवल सकेतमात्र मिलता है, किन्तु उसकी कोई प्रति देखने मे नहीं आई। डा० वर्मा ने 'भगवद्गीता के ११वें अध्याय का हिन्दी पद्यानुवाद' नामक जिस ग्रंथ का सकेत किया है, वह गलत प्रतीत होता है क्योंकि कवि चतुरदास रचित 'भागवत एकादश स्कध' के भाषानुवाद की प्रतियाँ तो देखने को मिलती है किन्तु डा० वर्मा द्वारा निर्दिष्ट ग्रथ की नही। इन पक्तियो के लेखक ने 'भागवत एकादश स्कध की कथा' की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ देखी है—(१) प्रो० रमानाथ त्रिपाठी सनातन धर्म कालेज कानपुर के पास, (२) सम्मेलन सग्रहालय प्रयाग मे,[6] और (३) कैप्टन शूरवीरसिंह के पास। इनमें से प्रो० त्रिपाठी के पास जो प्रति है उसमे पहला पृष्ट नहीं है, प्रति मे कुल २६२ पृष्ठ है। कैप्टन शूरवीरसिंह के पास जो प्रति है उसमे प्रारम्भ के १२ पष्ठ नहीं है, किन्तु कुल

---

[1] नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, बीसवा सस्करण, पृ० ६०६।
[2] वही वही , पृ० ६०९ से ६१३ तक।
[3] मिश्रबंधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ४७१।
[4] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १९४८ ई०, पृ० ८५४।
[5] नागरी प्रचारिणी पत्रिका अक १ सबत् २०१२- पृ० ८३।
[6] सम्मेलन वेष्टन सख्या २०१६ पोथी सख्या ४३२७

पृष्ठ संख्या १७८ तक उपलब्ध है। सम्मेलन संग्रहालय की प्रति पूरी है जिसकी पृष्ठ संख्या २६० है और कपड़े की मजबूत जिल्द है। इसकी प्रतिलिपि गोविंदपुरावासी आनन्दचन्द मिश्र ने कातिक कृष्णा १३ सं० १८८६ को पूरी की।

वर्ण्य विषय—पूरा ग्रंथ ३१ अध्यायों में विभक्त है। इसमें वर्णित ज्ञान विषयक वार्ता को ४ व्यक्तियों ने कहा है—(१) योगीश्वर जनक, (२) नारद ने वसुदेव के प्रति, (३) कृष्ण ने उद्धव के प्रति, (४) शुकदेव। इस ग्रंथ में बताया गया है कि ज्ञान के बिना उद्धार नहीं है इसलिये ब्रह्म ज्ञान को समझना आवश्यक है। हरि की प्राप्ति ज्ञान और वैराग्य से ही संभव है।[1] ग्रंथारम्भ में यदुकुल के नाश की कथा लिखी गई है। इसके बाद आत्मविद्या उपदेश, परम ज्ञान, विधि निषेध ज्ञान के अन्तर्गत ज्ञान, कर्म और भक्ति आदि का वर्णन, अवधूत-जदुसंवाद तथा भगवदुद्धव संवाद के द्वारा किया गया है। अंत में भगवान् कृष्ण के वधिक का बाण लगने की कथा दी गई है। वधिक विमान में बैठकर स्वर्ग को जाता है और कृष्ण भी बैकुण्ठ को जाते हैं। देवकी, रोहिणी, वसुदेव, उग्रसेन, अर्जुन आदि इस समाचार को पाकर दुखी होते हैं। अर्जुन दिल्ली जाकर पाण्डवों को सारी कथा सुनाते हैं। इस प्रकार चतुरदास ने व्यास प्रणीत श्रीमद्भागवत में वर्णित एकादश स्कंध की कथा के आधार पर तात्विक विवेचन किया है और अंत में कृष्ण के बैकुण्ठ गमन की कथा का वर्णन किया है।

सारा ग्रंथ केवल दोहा-चौपाई में ही लिखा गया है। काव्य में वर्ण्य-विषय के अनुसार केवल शान्त रस है किन्तु अंत में करुण रस का किंचित् समावेश हुआ है।

मानसिंह

ये खीरी जिले के बेलहरिगाँव के रहने वाले चौहान ठाकुर थे लेकिन ये सपरिवार बंगाल चले गये और चन्द्रगढ में बस गये। यहाँ के स्थानीय देवता का नाम मालेश्वर था जिनके ये उपासक हो गये। इन्होंने 'अश्वमेध पर्व' नाम का एक १४३ पृष्ठों का ग्रंथ सं० १६९२ में लिखा[2] जिसमें युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की कथा है। कविता में इनका उपनाम 'वीरभान' था। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट में इनकी कविता का नमूना तथा ग्रंथ का निर्माण काल दिया गया है।[3] ग्रंथ के अप्राप्य होने से इसका विस्तृत विवरण देना सम्भव नहीं है।

धर्मदास

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में धर्मदास रचित 'महाभारत' ग्रंथ के उपलब्ध होने की सूचना दी गई है। रचनाकाल सं० १७११ बताया गया है। ये शाहजहाँ के समकालीन थे। राजा प्रतापशाह सेंगर की आज्ञा से इन्होंने महाभारत का पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद किया और कथा का वर्णन सफलता से किया।[4] खोज रिपोर्ट (१९२०-२२) में कवि रचित भीष्म

---

[1] ज्ञान बिना नाहीं उधार।
तातें ब्रह्म ज्ञान समझाऊँ। प्रथम ही दृढ़ बैराग उपाऊँ।
पंषी उडै पष द्वै जैसे। ज्ञान बैराग मिलै हरि ऐसे॥
—प्रो० त्रिपाठी वाली प्रति, पृ० २।

[2] जैमुनि भाषा कहत हैं वीर भान चौहान।
सोरह से अरु बानवे संवत की परिमान॥

[3] खोज रिपोर्ट (१९०९-११) संख्या १८९।

[4] खोज रिपोर्ट (१९१७-१९ संख्या ४८

पर्व और कर्ण पर्व के प्राप्त होने की सूचना दी गई है जिसकी कविता का नमूना भी दिया गया है। इन उपलब्ध प्रतियो के सभापर्व मे सभा का, कर्णपर्व मे कर्ण का और गदा पर्व मे भीम की गदा का जीता जागता चित्र-सा खींच दिया गया है। इनमे कृष्ण को वासुदेव और ब्रह्म का अवतार कहा गया है।

सबलसिह चौहान

शिवसिंह सरोज मे सबलसिह चौहान के विषय मे लिखा है कि'––ये कवि चंदगढ के राजा थे, कोई कहता है ये सबलगढ के है। इनके वंश वाले आज तक जिला हरदोई मे हैं परन्तु हमारा समत नहीं,––ये कवि इटावा जिले के किसी गाव के जमींदार थे।'[1] सबलसिह ने अपने काव्य ग्रंथ 'महाभारत' मे औरंगजेब के दरबार मे रहने वाले किसी राजा मित्रसेन के साथ अपना सम्बन्ध बताया है। इस सूचना के अतिरिक्त कवि के जीवन के सम्बन्ध में और कोई विवरण नही मिलता।

सरोजकार ने सबलसिह के द्वारा महाभारत के १० पर्वों का उल्था करने का उल्लेख किया है[2] और किसी दूसरे सबलसिह रचित षट् ऋतु बरवै तथा भाषा ऋतुप-सहार दो ग्रंथो की रचना की सूचना दी है।[3] मिश्रबंधु विनोद मे सबलसिह रचित––महाभारत, रूपविलास पिंगल, षट्ऋतु बरवै तथा भाषा ऋतुप सहार––४ ग्रंथ बताये गये है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्टो मे महाभारत भाषा तथा उसके विभिन्न पर्वों के मिलने की सूचना दी गई है।[4] डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने सबलसिंह कृत 'भागवत' ग्रंथ के होने की सूचना दी है।[5] बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् से प्रकाशित 'प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण' मे 'चक्रव्यूह महाभारत'[6] तथा 'महाभारत भाषा'[7] के मिलने की सूचना, दी गई है। 'चक्रव्यूह महाभारत' का रचनाकाल स० १७२७ बताया गया है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (१९१२-१४) मे सबलसिह रचित 'भागवत दशम' ग्रंथ के प्राप्त होने की सूचना दी गई है। यह गलत है क्योंकि यह ग्रंथ सबल श्याम का है। इसी खोज रिपोर्ट मे दिये गये कविता के उदाहरण मे रचयिता का नाम सबलश्याम दिया गया है, जो सबलसिह से भिन्न कवि है।[8]

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट मे सबलसिह रचित 'महाभारत' के

---

१ और २ शिवसिह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ५०६।
३ वही वही , पृ० ५०५।
४ खोज रिपोर्ट, १९०४ ई०, सख्या ६६।
,, , १९०६-१९०८ ई०, सख्या २२४।
,, , १९२३-२५ ई०, सख्या ३६३।
,, , १९२६-२८ ई०, सख्या ४१२।
५ नागरी प्रचारिणी पत्रिका स० २०१२ वर्ष ६० अक १, पृ० ५६।
६ प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण (तीसरा खण्ड), बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना पृ० ५७ सं० १३४।
७ वही, (चौथा खण्ड), पृ० २६ स० ३८८।
८ (प्रारम्भ) सबलश्याम सेवक सदा प्रभु वृन्दावन चन्द।
(अन्त) सबलश्याम भव भय हरन पावन जन्म उदार।
रिपोर्ट १९१२ १४ ई० पृ० २०७ सख्या १६०

ानुवाद के विभिन्न पर्वों का रचनाकाल तथा प्रतियो का लिपिकाल दिया गया है।[1] सबल सिंह रचित 'महाभारत भाषा' के वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई मे मुद्रित सस्करण में दो पर्वों—कर्ण पर्व और स्वर्गारोहण पर्व—की रचना के समय मे भिन्नता मिलती है। इस मुद्रित प्रति के अनुसार कर्ण पर्व सं० १७२४ मे[2] और स्वर्गारोहण पर्व स० १७८१ मे[3] लिखे गये, १६७७ ई० (१७३४ वि०) तथा १६७४ ई० (१७३१ वि०) मे नही, जैसा कि खोज रिपोर्ट मे दिया गया है।

कवि की रचनाओ के सम्बन्ध मे प्राप्त हुए विवरण से यह विदित होता है कि सबलसिंह ने सबसे पहले भीष्म पर्व लिखा और बाद मे अन्य पर्व भी अपनी सुविधा एवं रुचि के अनुसार समय-समय पर लिखे। बाद मे इन सभी पर्वों का सकलन 'महाभारत' नाम से कर दिया गया। इस ग्रथ के अतिरिक्त सबलसिंह रचित कही जाने वाली अन्य रचनाएँ अब प्राप्य नही है अत. उनका विवरण नही दिया जा सकता है।

वर्ण्य-विषय—महाभारत ग्रथ मे महाभारत की कथा का सक्षेप मे भाषानुवाद प्रस्तुत किया गया है। कवि ने अधिकाश पर्वों के आरम्भ मे गणेश, राम, कृष्ण, शिव, हनुमान आदि देवताओं को स्मरण किया है। आदि पर्व के प्रारम्भ मे कृष्ण को आदि पुरुष-परम अखण्डित रूप, अक्षर, अभंग, परम पुरुष, सर्वज्ञ, निर्लेप, ससार को तारने वाले तथा निरकार आदि नामो से स्मरण किया गया है। इस ग्रथ मे कृष्ण चरित का विकास एक कुशल राजनीतिज्ञ व्यक्ति के रूप मे हुआ है। वे पाण्डवो के परम हितैषी है। पाण्डव जो कुछ भी कार्य करते है उन्ही की सलाह से करते हैं। इसके साथ ही कवि ने कृष्ण के ब्रह्म रूप का भी उद्घाटन किया है। सारे ग्रथ मे कथा के विकास के साथ-साथ कृष्ण के ब्रह्मरूप का ज्ञान धर्मात्मा वृत्ति के सभी प्रमुख पात्रो को है, ऐसा सकेत किया गया है।[4] कवि ने राम और कृष्ण मे अभेद भाव बताकर नाम स्मरण की महिमा पर जोर दिया है।[5] उसने वर्णो के धर्म, आश्रम के धर्म, राजनीति के धर्म और कतिपय व्रतो की महिमा आदि के विषय मे शाति पर्व मे, सक्षेप मे, विचार प्रकट किये है[6] तथा भगवान् के विविध अवतारो के दुष्टसहारक, भक्त-सहायक तथा मुनि-मन-रजन रूप की स्तुति की गई है।[7]

रस व छंद—इस ग्रथ मे विभिन्न रसों का परिपाक भली प्रकार हुआ है। इसमे वीर और शान्त रस का विशेष रूप से वर्णन है किन्तु युद्ध जनित प्रसगो मे वीभत्स, भयानक तथा

---

[1] खोज रिपोर्ट (१९२६-२८), संख्या ४१२, पृ० ८१।

[2] शुकल पक्ष आश्विन को मासा। तिथि पचमि यह कथा प्रकासा।
सवत सत्रह शत चौबीशा। नौरगशाह दिलीपति ईशा ॥
—महाभारत भाषा, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, पृ० ६८२।

[3] अगहन मास पुनीत सुहावा। वुध वासर हरि तिथि शुभ पावा।
सवत सत्रह सै इक्यासी। ताहि समय हरि कथा प्रकासी ॥
—वही, पृ० १०।

[4] महाभारत भाषा, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, पृ० १०३, ५३५-५३७।
[5] वही वही , पृ० ७८०-७८१।
[6] वही वही पृ० ७८१ से प्रारम्भ
[7] वही वही पृ० ११०० तथा ११०२

रौद्र,[1] और युद्ध जनित कारणों मे उत्पन्न करुणा पूर्ण प्रसगो मे करुण रस का भली प्रकार निर्वाह किया गया है।[2]

'महाभारत' ग्रथ दोहा-चौपाई मे ही लिखा गया है, किन्तु इसके अतिरिक्त स्तुतियो मे अनुष्टुप, हरिगीतिका, त्रिभगी तथा सोरठा छद भी प्रयुक्त किये गये है।

अलंकार—कवि ने अलकारो को भाषा की सजावट करने के उद्देश्य से नही बल्कि स्वाभाविक रूप मे अपने मतव्य को स्पष्ट करने के लिये प्रयुक्त किया है।

भाषा—कवि ने महाभारत की कथा को वर्णनात्मक ढग पर जन सामान्य की बोली मे लिखा है। उसमे तुलसी और सूर की भाँति लम्बे-लम्बे सामासिक पद नही दिये गये। सारे काव्य ग्रथ मे अवधी भाषा का प्रयोग किया गया है, किन्तु क्रिया रूपो में ब्रज के 'ओकारान्त' शब्द (जैसे—लीन्हयो, कीन्हयो, मार्यो, पर्यो, भाष्यो आदि) भी प्रयुक्त किये गये हैं।

सबलश्याम

मिश्रबंधु विनोद में सबलश्याम रचित 'बरवै षट ऋतु' के देखने का उल्लेख किया गया है जिसमे १२२ छद है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (१९१२-१४) मे 'भागवत दशम' ग्रथ को सबलसिह रचित[3] बताया गया है, यह गलत है। वस्तुत वह सबलश्याम रचित 'भागवत दशम स्कंध' ग्रथ है क्योकि रिपोर्ट मे कविता का जो नमूना दिया गया है वह वही है जो (१९२६-२८) की खोज रिपोर्ट मे दिया गया है।[4] इसके अतिरिक्त कवि रचित 'हरि चरित्र' नाम का एक और ग्रथ उपलब्ध बताया गया है जिसका रचनाकाल सवत् १७२६ है। वस्तुत ये दोनो ग्रथ एक ही है। इन ग्रथों की दो पृथक् प्रतिलिपियाँ—भागवत दशम स्कध तथा हरि-चरित्र—दो नामो से उपलब्ध होने के कारण इसमे भ्रम नही करना चाहिये। लालच-दास तथा गिरधारी की रचनाओ के नामों मे भी ऐसी ही बात थी। भागवत दशम स्कध का अनुवाद होने तथा हरिचरित्र या कृष्ण की लीला का वर्णन होने मे कवि ने इन्हे दोनो नामो से सम्बोधित किया है। यही बात सबलश्याम की भागवत दशम स्कध या हरि चरित्र रचना के सम्बन्ध मे भी लागू होती है।

वर्ण्य-विषय—खोज रिपोर्ट मे उपलब्ध प्रति के पृष्ठ १ से पृष्ठ ५ तक लुप्त बताये गये हैं और ग्रथ के विषय की संक्षिप्त रूपरेखा भी दी गई है[5] जिसमे यह स्पष्ट है कि ग्रंथ वृहत्परिमाण का है। इसमे 'पट बालक वध' वर्णन से कथारम्भ की गई है। बालक कृष्ण के जन्म, उनकी लीलाओं तथा असुर-सहार आदि का वर्णन करके महाभारत मे दिये गये कतिपय प्रसग लिये गये हैं। अत मे द्वारकावासी कृष्ण की कथा के प्रसंग दिये गये हैं।

गोविन्द कवि

शिवसिह सरोज मे इनका समय स० १७५० दिया गया है।[6] मिश्रबंधुओं ने इनका

---

[1] वही वही , पृ० ५९६।
[2] महाभारत भाषा, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, पृ० ७४२ तथा ७४८ से ७५० तक।
[3] खोज रिपोर्ट (१९१२-१४), पृ० २०७ सख्या १६०।
[4] खोज रिपोर्ट (१९२६-२८), पृ० ८२ तथा पृ० ६० सख्या ४१३ ए।
[5] खोज रिपोर्ट (१९२६ २८) प० ६०५ सख्या ४१३ बी
[6] शिवसिह सरोज १८८३ ई० पृ० ४०६

जन्म १८०७ तथा कविताकाल १८३५ माना है और इनकी रचना पूर्वी बोली में बताई है सरोजकार ने इनकी कविता का यह नमूना दिया है——

'रंग भरि भरि भिजवत मोरि अँगिया दुई कर लिहिसि कनक पिचकरवा।
हम सन ठनगन करत उरत नहिं मुख सन लगवत अतर अगरवा।
अस कस बसियत सुनि ननदी हो फगुन के दिन इहि गोकुल नगरवा।
मुहि तन तकत बकत पुनि मुसिकन रसिक गोबिंद अभिराम लँगरवा।[2]

इसके अतिरिक्त इनके सम्बन्ध मे और कोई विवरण उपलब्ध नही है।

गोपाल कवि

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट (१९०६-०८) मे गोपाल कवि के 'सुदामा चरित्र' के प्राप्त होने की सूचना दी गई है। ग्रथ का रचनाकाल १७९६ ई० और प्रतिलिपिकाल १८७४ ई० दिया गया है।[3] मिश्रबधु बिनोद मे रतनपुर, बिलासपुर के गोपाल कवि के ३ ग्रथ बताये गये है——(१) सुदामा शतक, (२) रामप्रताप, (३) खूब तमाशा और कविताकाल १७५३ के पूर्व बताया है।[4]

गोपाल कवि की उपर्युक्त रचनाओ मे से केवल 'सुदामाशतक' की मुद्रित प्रति मिलती है[5] जिसकी भूमिका मे यह बताया गया है कि 'रामप्रताप' ग्रथ रामायण के बराबर है, किन्तु गोपाल कवि उसे पूरा न कर पाये, इसे उनके पुत्र माखन कवि ने अपने पिता की भाँति उन्ही छदो मे पूरा किया। इसमे रामचन्द्र जी का जीवन चरित दिया गया है। 'खूबतमाशा' चौबोला छंद और कवित्तो मे लिखा गया है। जिसमे शिक्षाप्रद बाते दी गई है। इनके अतिरिक्त कवि की एक रचना 'भक्ति चिन्तामणि' बताई गई है जिसमे श्रीकृष्ण चन्द्र जी के गुणानुवाद मे नाना प्रकार के छद लिखे गये हैं। 'सुदामा शतक' मे ही गोपाल कवि रचित कुछ अन्य पुस्तकों के बारे मे भी सकेत किया गया है, किन्तु उनके नाम नही दिये गये।

'सुदामा शतक' भाद्रपद स० १७५३ मे लिखा गया।[6] 'सुदामा शतक' की मुद्रित प्रति के प्रकाशक मेहता वेणीशकर लक्ष्मीनाथ ने अपने वक्तव्य मे लिखा है कि 'इस पुस्तक का नाम कवि ने सुदामा शतक रखा है, परन्तु छद-सख्या (पुस्तक जो मुझे प्राप्त हुई है) उसमे केवल ८९ ही हैं। इस कारण कुछ और छद मिलाकर इसके नाम को सार्थक कर दिया है।' 'सुदामाशतक' के प्रारम्भ मे गणेश वन्दना की गई है और बाद मे सुदामा और कृष्ण की मित्रता की कथा ८९ छदों मे है। इसमे विविध प्रकार के छदो का प्रयोग किया गया है। रचना साधारण है जिसमे ब्रज और अवधी की मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया है।

---

[1] मिश्रबधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ८७९।
[2] शिवसिह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४०६।
[3] खोज रिपोर्ट (१९०६-०८), पृ० १८ तथा २३०।
[4] मिश्रबधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ६०८।
[5] सुदामाशतक, यूनियन प्रेस कपनी लिमिटेड, जबलपुर, १८९७।
[6] सवत सत्रह सै समै त्रेपन भाद्रपदाहि ——पृ० २६

वाँकावती महारानी

ये कछवाहा राजा आनन्दराम जी उदेरा मौत की पुत्री थी जो जयपुर राज्यान्तर्गत लिवाण के निवासी थे। स० १७७६ मे इनका विवाह कृष्णगढ के महाराजा राजसिह से हुआ था। महारानी बाकावती ने कविता मे अपना नाम 'व्रजदासी' रखा और श्रीमदभागवत का छन्दोबद्ध भाषानुवाद किया जो 'व्रजदासी भागवत' के नाम से प्रसिद्ध है।[1]

व्रजवासी भागवत ग्रंथ के आरम्भ में निराकार ब्रह्म की वदना की गई है। उसके आगे वृषभानु कुमारी, कृष्ण, नारद, व्यास, शुकदेव आदि का भी स्तवन किया गया है। तदनन्तर 'भागवत की कथा' आरम्भ होती है। 'व्रजदासी भागवत' की एक प्रति गीताप्रेस गोरखपुर के पुस्तकालय मे भी है।[2] यह प्रति अपूर्ण है। इसमे 'एकादश स्कधानुवाद' नही है वैसे अन्य रूप मे प्रथम स्कध से लेकर द्वादश-स्कध तक पूर्ण है। यह भागवत दोहा-चौपाई छदो मे लिखी गई है, किन्तु कही-कहीं अन्य छदो—कवित्त, सवैया तथा छप्पय—का भी सहारा लिया गया है। इसमे व्रज एव बैसवाडी की मिश्रित भाषा का प्रयोग हुआ है, किन्तु कही-कही राजस्थानी के शब्द भी मिल गये है।

निर्मल प्रकाश

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट (१९२०-२२) मे गाडा के महाराजा उद्योतसिह का उपनाम निर्मलप्रकाश बताया गया है। इनका आविर्भाव काल स० १७७७ के लगभग बताया जाता है। इन्होंने 'भागवत बानी' नाम का एक ग्रंथ लिखा जिसमे 'कृष्ण चरित' का वर्णन है। इस ग्रथ की खण्डित प्रति ही उपलब्ध हुई है। जिसकी कुल पृष्ठ-सख्या ३१२ है।[3]

वर्ण्य-विषय—ग्रथारम्भ मे त्रिगुण (सत्, रज, तम) से पचतत्व और उससे स्थावर-जगम सृष्टि-उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। भगवान् के विष्णु, ब्रह्मा, शिव, विराट, नारायण आदि नामो मे अभेद बताकर इन्हे एक ही ब्रह्म की शक्ति कहा गया है। भगवान् भक्तों की रक्षा करने तथा अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये ससार मे अवतरित होते हैं। ग्रथ का प्रतिपाद्य विषय कृष्ण की लीला है। कवि ने कृष्णावतार होने पर नद के गृह जाने तथा मगलोत्सव और जाति कर्म सम्पादन कराने आदि की कथा का वर्णन किया है। राधा-जन्म, राधा-कृष्ण विवाह, गोवर्द्धन लीला, रासलीला, चीर हरण, असुरो का सहार, अक्रूर का आगमन और मधुपुरी जाना, श्रीकृष्ण और कस का युद्ध और कस वध के उपरात उग्रसेन को राज्य देना, कौरव-पाडव आदि से मिलना, जरासध से युद्ध द्वारकापुरी बसाना, रुक्मिणी विवाह, चद श्राप की कथा, सत्राजित और मणि वर्णन आदि के प्रसगो मे कथा का विस्तार किया है। अन्त मे माघ बसत के डोल के पद, चैत मे फूल डोल, वैशाख मे चदन डोल, जेठ मे जल विहार, क्वार मे विजय दशमी के पद, कार्तिक मे दीपमालिका (गोवर्द्धन) के पद आदि लिखे गये है। इनके अतिरिक्त कुछ फुटकर दोहे भी उपलब्ध होते हैं। 'भागवत बानी' दोहा-चौपाई छद मे लिखी गई है। कविता साधारण कोटि की है।

---

[1] मिश्रबधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ७१६।

[2] सम्मेलन पत्रिका भाग ४६ सख्या १ स० १८८१ शक प० ७५

[3] खोज रिपोर्ट १९२०-२२ पृ० ९०

गिरधारी

गिरधारी रायबरेली जिले के मानतपुर गाँव के रहने वाले थे। माननपुर मे इनके विषय मे प्रसिद्ध है कि वे निरक्षर ब्राह्मण थे। उनके मकान के पास एक पक्के चबूतरे पर शिव-पार्वती की मूर्ति स्थापित थी। गिरधारी प्राय इसी चबूतरे पर सोते थे। स्वप्न मे पार्वती ने उनको (गिरधारी) कविता करने का आदेश दिया। उन्होने उठकर शिव-पार्वती की छन्दोबद्ध रूप मे वन्दना की जो 'रुद्राष्टक' के नाम से प्रसिद्ध हुई।[1]

शिवसिंह सरोज मे गिरधारी का समय स० १९०४ बताया गया है।[2] मिश्रबंधुओ ने गिरधारी का रचनाकाल सं० १७०५ माना है और उनका रचित ग्रथ 'भक्ति महात्म्य' बताया है।[3] नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट मे कवि गिरधारी का जन्म समय स० १८४७ (सन् १७९० ई०) दिया गया है।[4] गिरधारी रचित 'भागवत दशम स्कंध' की एक हस्तलिखित प्रति मैने गुनीर गाँव (जिला फतेहपुर) मे देखी जिसमे मंगलाचरण के पहले कवित्त के बाद 'इति मगलाचरण शुभ सवत् १०९४ श्रीगणेशायनम' लिखा है।

शिवसिंह सरोज मे दिया गया समय किसी पुस्तक की प्रतिलिपि को देखकर लिखा गया प्रतीत होता है क्योंकि कवि गिरधारी रचित काव्यों की प्राप्य हस्तलिखित प्रतिलिपियो मे सं० १९०० के बाद की कई प्रतिलिपियाँ मिलती है। भागवत दशम स्कंध की प्रतिलिपि मे जो स० १०९४ दिया गया है, वह स० १७९४ होना चाहिए, ऐसा हमारा अनुमान है। प्रतिलिपिकार की भूल से यह स० १०९४ लिख गया प्रतीत होता है। कवि के सम्बन्ध मे अन्य विद्वानों ने जो समय निर्धारित किया है वह १८वी शती का ही है।

रचनाएँ—नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट (१९१२-१४) मे गिरधारी कृत 'कृष्ण चरित्र' के प्राप्त होने की सूचना दी गई,[5] किन्तु (१९२३-२५) की खोज रिपोर्ट मे गिरधारी रचित कई ग्रथो के लिखे जाने का सकेत किया गया है, किन्तु भागवत दशम स्कध भाषा, सुदामा चरित्र और रहस्य मण्डल---३ ग्रथो के प्राप्त होने की सूचना दी गई है।[6] कैप्टन शूरवीरसिंह ने फतेहपुर से प्रकाशित होने वाले अर्द्ध-शासकीय पत्र पचदूत में कृष्ण चरित्र (भागवत दशम स्कंध की कथा), रस-मशाल और शृगार गीता के प्राप्त होने की सूचना छापी।[7] 'सुकवि' पत्र मे रसमशाल, गिरधारी सतसई और भागवत दशम स्कध का अनुवाद---ग्रथो के गिरधारी रचित होने की सूचना छापी गई है।[8]

उपर्युक्त ग्रंथो मे 'शृगार गीता' तो लालगिरधर की लिखी हुई है। ये गिरधारी से भिन्न व्यक्ति है। मिश्रबंधुओ ने लालगिरधर का कविता-काल १८३२ माना है। उनके

---

[1] सुकवि, अक्टूबर १९३०, वर्ष ३ अक ७, पृ० ५।
[2] शिवसिंह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४०३।
[3] मिश्रबंधु विनोद, द्वितीय भाग, १९७०, पृ० ४७६।
[4] खोज रिपोर्ट (१९१२-१४), पृ० ८१ सख्या ६१।
[5] वही वही ।
[6] खोज रिपोर्ट (१९२३-२५), पृ० ५५६।
[7] पचदूत वर्ष ६ अंक १७ मे 'महाकवि गिरधारी' शीर्षक लेख।
[8] सुकवि अक्टूबर १९३० वर्ष ३ अक ७ पृ० ५

कथनानुसार इन्होंने पदों में 'नायिका भेद' लिखा है।[1] खोज रिपोर्ट में 'रहस्य मण्डल', नाम की गिरधारी रचित एक पुस्तक उपलब्ध हुई बताई गई है और उसके वर्ण्य-विषय का प्रारूप दिया गया है जिसे देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'रहस्य मण्डल' में दिये गये कवित्त वस्तुत भागवत दशम स्कंध (कृष्ण चरित्र) ग्रंथ के 'राम वर्णन' के कवित्त हैं। अत. यह सुनिश्चित है कि 'रहस्य मण्डल' कोई पृथक् रचना नहीं है।

'भागवतदशमस्कंध भाषा' (कृष्ण चरित्र) की दो हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे देखने को मिली हैं—(१) गुनीर गाँव (फतेहपुर) के प्रधान ठा० रामशरण सिंह के पास, (२) मौरावाँ पुस्तकालय (उन्नाव)। 'रसमशाल' ग्रंथ की एक प्रति भी ठा० रामशरणसिंह के पास है। 'सुदामा चरित्र' की एक प्रति पं० सूरजप्रसाद शुक्ल, भगवन्तनगर हायर सेकेण्डरी स्कूल, भगवन्तनगर (उन्नाव) के पास है। इसका विवरण खोज रिपोर्ट (१९२३-२५) में दिये गये 'सुदामा चरित' के विवरण से मिलता-जुलता है तथा वही कवित्त दोनों में मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि ये ग्रंथ कवि गिरधारी रचित ही हैं।

वर्ण्य-विषय—रस मशाल—इस ग्रंथ में नायक-नायिका भेद का वर्णन किया गया है। फतेहपुर के अर्ध-शासकीय पत्र 'पचदूत' ने भी इस ग्रंथ के ३ कवित्त प्रकाशित किये गये।[2]

सुदामा चरित्र—यह ग्रंथ गणेश वंदना से प्रारम्भ किया गया है। तदनन्तर सुदामा की दरिद्रावस्था से लेकर कृष्ण के यहाँ जाने की कथा और श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये वैभव का वर्णन ठीक उसी प्रकार किया गया है जैसा नरोत्तमदास के 'सुदामा चरित्र' में मिलता है। दोनों कवियों के 'सुदामा चरित्र' का मिलान करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि गिरधारी का यह ग्रंथ नरोत्तम दास के 'सुदामाचरित्र' से प्रभावित है।

भागवत दशम स्कंध की कथा (कृष्ण चरित्र)—इस ग्रंथ के प्रारम्भ में एक कवित्त में गणेश वंदना की गई है। यह वही कवित्त है जो 'सुदामा चरित्र' की गणेश वंदना में दिया गया है। अंतर केवल इतना है कि अंतिम तुकान्त पंक्ति में 'चरित सुदामा को' के स्थान पर 'चरित स्यामा स्याम को' कर दिया गया है। इस रचना में निम्नलिखित शीर्षक दिये गये हैं जिनके अन्तर्गत कथानक का विस्तार किया गया है:-

कृष्ण-जन्म, बाललीला, दानलीला, नागलीला, गोबर्द्धन उद्धारन, ब्रह्ममोह, गोचारावन वर्णन, मुरली वर्णन, प्रेम दृढ़ाइबो, रहस्यलीला वर्णन, पनघट लीला, राधिका दृष्टि उपालम्भ सखी को, राधे मान, राक्षस वध वर्णन, मथुरा प्रवेश, उद्धव गमन (उद्धव-गोपी संवाद)।

गिरधारी रचित 'कृष्ण चरित्र' का आधार मुख्यत 'श्रीमद्भागवत' है। इसमें भागवत की कथा का रूपान्तर करते पर कवि की मौलिकता स्पष्ट झलकती है। कवि की वर्णन शैली, शब्द माधुर्य तथा संवादों में वाग्विदग्धता के द्वारा उत्कृष्ट काव्य शक्ति का परिचय दिया गया है। कवि ने रामलीला का आधार हरिवंश तथा विष्णुपुराण से लिया है। ग्रंथ के कथा-वर्णनों में सजीव दृश्य उपस्थित करने की पूर्ण क्षमता है।

---

[1] मिश्रबंधु विनोद द्वितीय भाग १९१० पृ० ८७७

[2] पचदूत वर्ष ६ अंक १७ १५ मई १९५६ ई० महाकवि गिरधारी' शीर्षक लेख

कवि की विशेषताएं गिरधारी कवि की तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं विषय (कथानक), पद योजना, अलकार, रस, छंद आदि का सम्यक् रीति से नि गया है। कवि की काव्य रचना मे पद्माकर की सी अनुप्रास योजना है जिसमे वर्णना का निर्वाह बडी सफलता से किया गया है। 'रस मशाल' मे नायिका भेद, 'सुद मे सुदामा के दारिद्र्य नाश की कथा तथा 'भागवत दशम स्कध' मे कृष्णलीला के प्रसग लिये गये है। इन प्रसगो के सवादो को पढते समय परस्पर बातें करने का आता है। 'सुदामा चरित' मे सुदामा और उनकी पत्नी, सुदामा और कृष्ण, सुदामा पाल आदि के सवाद, 'कृष्ण चरित्र' मे यशोदा और कृष्ण, यशोदा और गोपियाँ गोपिया, उद्धव और गोपियो के पारस्परिक हास-परिहास, व्यंग, छेड़छाड़ आदि के स प्रस्तुत करने मे कवि ने कमाल का काम किया है।

भूषन के नाते उर गुंज माल दामरी की,
स्यामरी शबीह बांधे कामरिया कारी है।
कहै गिरधारी करो अमल अमीर कैसो।
जाति के अहीर गौएँ पालन परारी है।
रोकत डगर डरबाबत झगर गहि,
दान देहु दान देहु रगर बगारी है ॥
कबहूँ न लीन्हो दान आजु लैके जायो घर,
दान लेन लायक की सकल तुम्हारी है ॥[1]
कहत कन्हाई हम जैसे हैं तैसे हैं जू-
तुम्हें कहा परी कहूं बानक बनक में।
कहै गिरधारी काम करो जिन बातन को,
करौ तौम बातें और करौ ना सनक में।
देती हौ न दान तुम येती हौ गुमान भरी,
थोर ते बहूत होना चाहत तनक में।
समुझि अहीर सूधो छिन कौम छीर अब,
छीर की कहा है चीर छीनि है छनक में ॥[2]

गिरधारी ने प्रकृति-वर्णन उद्दीपन रूप मे किया है जो कथानक के प्रवाह को बनाने और उसमे माधुर्य की सुन्दर योजना समाविष्ट करने में सहायक हुआ है। मुरली ध्वनि तथा कृष्ण और गोपियो के रास वर्णन के लिये कवि ने शरद् की र निस्तब्ध रात्रि का सहारा लिया है——

वृन्दावन साषिन की उपमा न भाषी जाति,
मनि अभिलाषी होत गोपद गरद की।
कहै गिरधारी तहाँ बैठे बनवारी बन,
कम्बर में छाजे छवि अम्बर जरद की।

---
[1] कृष्ण चरित्र (भागवत दशम स्कंध) हस्तलिखित कवित्त स० ७२
[2] वही सख्या ७३

होत भयो अमल मयंक को उदोत मंजु,
बीज उपजावै जी मनोज के दरद की ।
सेत सेत रेत सेत सेत चांदनी के फूल,
सेत सेत चाँदनी बिराजत सरद की ।'

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है कथानक में वर्णनात्मकता एव रोचकता है। कवि ने किसी भी दार्शनिक वाद या भक्ति पद्धति के किसी पहलू के सम्बन्ध मे प्रत्यक्षत कोई विचार प्रकट नही किया। उसका लक्ष्य तो 'कृष्ण की लीला' की कथा का विधिवत् निर्वाह करना ही रहा है। कथावस्तु के बीच-बीच मे कृष्ण के ब्रह्म का अवतार होने के विषय मे सकेत किये गये है।

रस, अलंकार एवं छंद—गिरधारी के काव्यो मे रस निर्वाह बडी सफलता से किया गया है। 'सुदामा चरित्र' और 'कृष्ण चरित्र' ग्रथो मे शृंगार, करुण और शान्त रस के प्रसगो का बडी विशदता से वर्णन किया गया है।

कवि की रचनाओ मे अनुप्रास का प्रयोग अधिकतासे किया गया है। इसके अतिरिक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, यमक और सन्देह अलकार भी प्रयोग मे लाये गये है।

कृष्ण चरित्र (भागवत दशम स्कध) तथा सुदामा-चरित्र मे मनहरण कवित्त और रसमशाल मे दोहा और मुक्तहरा सवैया छद प्रयुक्त किये गये है। प्रतिलिपिकारो की भूल से यत्र-तत्र यति भग दिखाई पडता है तथा बीच-बीच मे छन्द और पक्तियाँ छूट गई है।

भाषा और शैली—कवि गिरधारी की रचनाओ की भाषा ब्रज और बैसवाड़ी का मिला-जुला रूप है। क्रियारूपो तथा कारको मे कही-कही पूर्वी अवधी, बुंदेली तथा खड़ी बोली का प्रभाव दिखाई देता है। कवि की रचनाओ मे विदेशी भाषाओ के शब्दो का भी अधिकता से प्रयोग मिलता है। कवि की रचना का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें अपने भावो को प्रवाहपूर्ण ढग मे कहने की अद्भुत क्षमता है। मुहावरो के प्रयोग से भाषा की अभिव्यजना शक्ति बढ गई है।

माधुर्य और प्रसाद गुण तो जैसे कवि की रचना के अग-अग मे समा गया है। शब्द-माधुर्य और शब्द-चित्र हमारे कानो मे सगीत की सी ध्वनि मुखरित कर देते है और हम अनजाने ही उन शब्दों को दुहराने लगते है।

(क) मातु मुख हेरत हसत हुलसत मंजु
किलकत कूकत कलोलत कला करै।
मूं करत मां करत गूं करता गां करत
तूं करत तां करत हूं करत हां करै।[2]

(ख) छेकै जो दुवारे तौ कढ़त पिछुवारे ह्वै कै
छेकै पिछवारे ह्वै तौ दुवारे ह्वै कढ़ि जात।[3]

---

[1] कृष्ण चरित्र (भागवत दशम स्कध लीला) (हस्तलिखित), कवित्त स० १५८।
[2] कृष्णचरित्र (हस्तलिखित) कवित्त स० २३।
[3] वही वही कवित्त स० ५०

(ग) जगत को नेह छूटै गुरुजन गेह छूटै
देह छूटै तऊ का सनेह छूटै स्याम को।[1]

भूपति

शिवसिंह सरोज मे भूपति कवि को राजा गुरुदत्त सिंह बधल गोती अमेठी नरेश बताया गया है। ये स० १८०३ मे विद्यमान थे।[2] मिश्रबंधुओं ने भी सरोजकार का समर्थन करते हुए इन्हे अमेठी नरेश बताया है। उदयनाथ कवीन्द्र इनके यहाँ बहुत दिन रहे। कवीन्द्र ने इनकी क्षत्रियोचित वीरता की प्रशसा की है और अवध के नवाब सआदत खाँ के साथ इनके युद्ध का वर्णन किया है।[3]

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट (१९०६-०८) मे भूपति का आविर्भाव काल १२८७ ई० (स० १३४४) बताया गया है क्योकि १९०२ की खोज रिपोर्ट मे भूपति कृत 'भागवत दशम स्कध' की जो प्रति उपलब्ध हुई थी वह उर्दू मे थी। बाबू श्यामसुन्दरदास ने भूपति रचित भागवत दशम स्कध का रचनाकाल स० १७४४ माना है और ऐसा मानने के समर्थन मे तर्क दिये है।[4] डा० दीनदयालु गुप्त ने मयाशकर याज्ञिक सग्रहालय मे भूपति कृत उक्त ग्रथ की स० १९०९ की प्रति देखी है जिसमे स्पष्ट रूप से ग्रथ का रचनाकाल स० १७४४ वि० दिया गया है।[5]

(१९१७-१९) की खोज रिपोर्ट के सम्पादक रायबहादुर हीरालाल ने भूपति का समय स० १७४४ बताकर तुलसी के बाद का कवि माना है और लिखा है कि भूपति अमेठी के राजा नही थे, वे इटावा के निवासी और कायस्थ घराने के साधारण व्यक्ति थे। इनके पूर्वज यहाँ पर तेलगाना से आकर बस गये थे। भूपति मथुरा के गोस्वामी मेघश्याम के शिष्य थे। भूपति ने भागवत दशम स्कध की कथा मथुरा मे रहकर लिखी थी।[6]

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में भूपति रचित २ ग्रथ—भागवत दशम स्कन्ध तथा रामचरित्र रामायण[7]—बताये गये हैं। भागवत दशम स्कध बृहत्परिमाण का ४००० श्लोकों का ग्रथ है[8] और रामचरित्र रामायण दोहा-चौपाई में लिखा गया है जिसके १७५ श्लोक उपलब्ध हुए है।[9] मिश्रबधु विनोद मे भूपति रचित (१) सतसई, (२) कण्ठाभरण, (३) रसरत्नाकर, (४) भागवत भाषा, (५) रसदीप ग्रथ बताये गये है और सतसई का रचना-काल स० १७९१ दिया गया है।[10]

---

[1] वही वही , कवित्त स० १३५।
[2] शिवसिंह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४७१।
[3] मिश्रबधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ६९६।
[4] हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृ० १३।
[5] ब्रजभारती, वर्ष ५ अक २ सं० २००४ वि०, पृ० ८।
[6] खोज रिपोर्ट (१९१७-१९), पृ० ९।
[7] खोज रिपोर्ट (१९०६-०८), स० १३८।
[8] मिश्रबधु विनोद, प्रथम भाग, पृ० २३७।
[9] खोज रिपोर्ट (१९०६-०८) स० १३८।
[10] मिश्रबधु विनोद द्वितीय भाग पृ० ६९७

भूपति कवि का 'भागवत दशम स्कध' उच्चकोटि का काव्य नही है इसकी भाषा ब्रज-भाषा है। डा० श्यामसुन्दरदास का कहना है कि इस ग्रथ की प्रतिलिपि के 'उर्द से हिन्दी मे लिखने और लिपिकर्ता के काशी-निवासी होने के कारण बहुत से शब्दों को बिगाड कर अवधी रूप दे दिया गया है। अवीधी, जवइ, बहीनी और चारि इत्यादि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। उक्त भागवत मे आदि से अत तक ऐसे प्रयोग भरे पड़े है।'[1] इस ग्रथ की प्रति उपलब्ध न हो सकने से इसके सम्बन्ध मे अधिक विवेचन सभव नही है।

बालकृष्ण

सरोजकार ने बालकृष्ण त्रिपाठी को बलभद्र जू का पुत्र और काशिनाथ कवि का भाई बताया है। इनका आविर्भावकाल स० १७८८ और ग्रथ—रसचन्द्रिका बताया गया है जो एक पिंगल ग्रथ है।[2] मिश्रबधु विनोद मे बालकृष्ण नायक को चरणदास का शिष्य बताया गया है और उनके रचित ग्रथो के नाम दिये गये है। इनका कविता-काल १७२६ बताया गया है।[3] डा० रामकुमार वर्मा ने अपने आलोचनात्मक इतिहास में बालकृष्ण नायक का आविर्भाव काल स० १७६५ बताया है और उन्हे निर्गुण पथ की परम्परा का होते हुए भी सीताराम की युगल मूर्ति का उपासक कहा है।[4] इस विवरण से यह अनुमान होता है कि बालकृष्ण तथा बालकृष्ण नायक दो भिन्न कवि है।

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट (१९२९-३१) मे बालकृष्ण रचित 'भागवत एकादश स्कध' ग्रथ उपलब्ध बताया गया है[5] जिसकी प्रतिलिपि लालदास ने मथुरा मे यमुनातट पर की थी। वस्तुत इस ग्रथ के प्रणेता का नाम सदिग्ध है क्योंकि कभी वह अपना नाम बालकृष्ण बताता है और कभी इसे अपने गुरु का नाम कहता है और अपने लिये 'किंकर कृपा' नाम का सकेत करता है—

> सोई मम श्री गुरु मे प्रगट बालकृष्ण अस नाम।
> श्री गुरु बालकृष्ण मम स्वामी। किंकर कृपा तासु अनुगामी।[6]

कवि ने दोहा, सोरठा और चौपाई छद मे इस ग्रथ की रचना स० १८०४ मे की। एकादश स्कंध के पूर्व कवि ने कृष्ण की कथा लिखने का सकेत किया है। एकादश स्कध अध्यायो मे समाप्त हुआ है जिसमे कृष्ण भगवान् के स्वधाम गमन तक की कथा दी गई है। रचना साधारण कोटि की है।

चददास

चंददास एक प्रतिभा-सम्पन्न सत एव भक्त कवि थे जो फतेहपुर (हसवा) जनपद मे रहते थे। इनके सम्बन्ध में सबसे पुरानी सूचना नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज

---

[1] हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण भाग १, पृ० १३ प्रस्तावना 'ओ'।
[2] शिवसिह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४६२।
[3] मिश्रबधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ५५० तथा ८२८।
[4] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १९४८ ई०, पृ० ४०६।
[5] खोज रिपोर्ट (१९२९ ३१) पृ० १२३ सख्या २६'
[6] खोज रिपोर्ट वही

रिपोर्ट (१६२०-२२) मे मिलती है जिसमे यह कहा गया है कि वे जाति के खत्री थे और सराफे (लेन-देन) का काम करते थे। अपनी दुकान से किसी साधु को दान देने के अपराध मे वे दण्डित किये गये। इस पर चददास जी स्वय साधु हो गये। वे १७५० ई० (१८०२- वि०) के लगभग विद्यमान थे और यावज्जीवन अपनी कुटिया मे ही रहे। अत मे उन्होने वही समाधि लेली।[१] 'तवारीख हसवा' मे चददास के समाधि लेने आदि का यह विवरण दिया गया है--- 'इस नामवर मौसूफ ने इसी कुटी मे वाकअ आठ जीउलहिज ११८४ हिजरी मुताबिक यक्कुम अप्रैल १७७१ ई० मुताबिक वैशाख वदी २ सिक्त १८२८ दिन दो सम्बा को समाध यानी वफात पाई। चबूतरा समाध का अन्दर कुटी मौजूद है, उस पर चढाव सीरीनी और पूजा हुआ करता है।'[२]

चददास के जन्म स्थान के बारे मे विद्वानो में मतभेद है। कुछ लोग उन्हे देहली के पास पंजाब की ओर का निवासी कहते है, कुछ लोग उन्हे फतेहपुर-हसवा का ही निवासी मानते हैं और अपने कथन की पुष्टि में तर्क भी देते हैं।[३] वस्तुत ये पुष्ट तर्क नही है क्योकि 'राम विनोद' ग्रथ मे कवि चददास ने स्पष्ट रूप से हंसपुरी (हसवा) को अपना धाम चुनने की बात कही है---

गंगा यमुना मध्य में हंसध्वज को ग्राम।
हंसपुरी शुभ नाम तेहि तहाँ कियेउ निज धाम।।

कवि की एक अन्य रचना 'कृष्ण विनोद' मे भी इसी ओर संकेत किया गया है।[४]

'राम विनोद' मे कवि ने अपना वश-परिचय दिया है। चददास की रचनाओ तथा अन्य सूत्रो से पता चलता है कि उन्होने (चददास) क्षीर पान करके कायाकल्प किया था।

रचनाएँ---नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट मे चददास जी के भक्त विहार, कृष्ण विनोद और राम रहस्य के बारे मे सूचना दी गई है। कृष्ण विनोद का ही दूसरा नाम 'भाषा भागवत' बताया गया है।[५] कैप्टन शूरवीरसिह के उद्योग से चददास जी के निवास ग्राम हसवा मे खोज कराने पर और भी ग्रथ उपलब्ध हुए जिनकी सूचना विभिन्न पत्रिकाओ मे निकाली गई।[६] इनमे उपलब्ध ग्रथो की सख्या १४ बताई गई किन्तु [illegible] नाम गिनाने में वह पूरी नही बैठती। डा० शि[illegible] नाल मिश्र ने ब्रजभारती मे 'सत क[illegible]रसदी[illegible]स' शीर्षक लेख मे कवि रचित १० ग्रथ बताए।[७]

(१) राम विनोद, (२) कृष्ण विनोद, (३) यदुवीर सुयश (भागवत दशम स्कध),

---

१ खोज रिपोर्ट (१६२०-२२), पृ० ५१-५२ तथा १८२-८७।
२ तवारीख हसवा---लीथो में मुद्रित।
३ ब्रजभारती वर्ष १५ अक २ स० २०१४ वि०, पृ० २८।
४ सरस्वती, सितम्बर १६५५ मे 'सत कवि चददास' शीर्षक लेख मे हस्तलिखित प्रतियो से उद्धृत, पृ० १८२।
५ खोज रिपोर्ट (१६२०-२२), पृ० ५१ स० २६।
६ पंचदूत वर्ष ५ तथा ६ के अक, सरस्वती सितम्बर १६५५, इलाहाबाद यूनीवर्सिटी मैगजीन दिसम्बर १६५६- भारतीय साहित्य १६५६।
७ [illegible] भाद्रपद स० २०१४ वि० पृ० २६

(४) भगवत् गीता ज्ञान, (५) शिवसारगाध्यावली, (६) विष्णु सहस्रनाम, (७) भाषा प्रबध पचाग, (८) काव्य कौमुदी, (९) साखी, (१०) रागमाला।

इस सूची मे 'भगत विहार' का नाम नही गिनाया गया है। इन पक्तियो के लेखक ने इन ग्रथो को हसवा जाकर स्वय देखा तो ज्ञात हुआ कि 'काव्य कौमुदी' नाम की कोई रचना उपलब्ध नही हुई है। कैप्टन शूरवीरसिंह ने चददास जी रचित पदो के सग्रह को ही 'काव्य कोमुदी' नाम दे दिया है। इसीलिये इस नाम का एक ग्रथ उपलब्ध होने की भ्रांति हुई। मैंने कैप्टन साहब से भी इस सम्बन्ध मे बातचीत की तो उन्होंने भी इसी तथ्य को स्वीकार किया।

सत कवि चददास की एक नवीन रचना 'शृगार सागर' शीर्षक लेख मे डा० शिवगोपाल मिश्र ने चददास रचित ग्रथो की सख्या तो १० ही बताई किन्तु ब्रजभारती मे बताये गये नामो मे उन्होने सशोधन (भूल सुधार) किया।[1] चददास रचित ग्रथो के वर्ण्य-विषय का हम सक्षेप मे विवरण प्रस्तुत करेगे।

रामविनोद—तुलसी के रामचरितमानस की पद्धति पर यह १७८ पृष्ठो का ग्रथ है जिसे कवि ने सं० १८०४ मे लिखा। ग्रथारम्भ मे चददास जी के शिष्य तथा हनुमान जी के उपासक वेनी कवि ने गणेश जी तथा गुरु-चरणो की वदना की है और राम के भक्तवत्सल और भक्त उद्धार करने वाले रूप का स्मरण किया गया है। उसके बाद चददास के 'आश्रम वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत चददास के निवास स्थान तथा विषय-भोग को त्याग कर योग का मार्ग ग्रहण करने की बात कही गई है। फिर 'रामविनोद माहात्म्य' कहकर 'राम विनोद' की मुख्य कथा लिखी गई है। ग्रंथ के अत मे चददास ने 'राम विनोद' के पाठ का माहात्म्य, आत्म परिचय तथा ग्रथ का रचना काल सं० १८०४ वि० दिया है। यह प्रतिलिपि सं० १८९४ की है। इसके बाद प्रतिलिपिकार बेनी कवि ने आत्म परिचय तथा प्रतिलिपि करने का कारण आदि का सक्षेप मे विवरण दिया है। 'राम विनोद' ग्रथ की एक हस्तलिखित प्रति कैथी लिपि मे तथा एक प्रति नागरी लिपि मे मैने प० महावीर प्रसाद शर्मा, लिपिक, नगरपालिका, फतेहपुर—हसवा के पास देखी है।

कृष्ण विनोद—यह ग्रथ ९० अध्यायों में पूर्ण हुआ है। कैथी लिपि मे लिखित कृष्ण विनोद की एक खण्डित प्रति मिलती है जिसमे १८० पृष्ठ है। ग्रथ के अत मे दी गई पुष्पिका मे 'श्रीमद्भागवत दशम स्कध चंददास कृत भाषा प्रबध समाप्त शुभमस्तु।''' मिती अषाढ वदी सप्तमी सं० १८०७ साके सालिवाहने स्थान हसवा दस्तखत चददास के' दिया गया है। इससे दो बाते स्पष्ट होती है—(१) कवि ने इस ग्रथ के दोनो नाम रखे है, (२) यह प्रतिलिपि स० १८०७ मे स्वय चंददास ने लिखी थी।

ग्रथारम्भ मे ग्रंथ की रीति बताकर स्तुति की गई है। देवकी विवाह से लेकर कंस-वध तक की सारी कथा का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके बाद गुरु-पुत्र प्रदान, नंद-उद्धव सवाद, उद्धव ज्ञान वर्णन, अक्रूर पांडव गृह गमन, गिरिवर प्रवेश, जरासध युद्ध, कालयवन वध बलभद्र-रेवती विवाह, रुक्मिणी संदेश, रुक्मिणी हरण और विवाह, जाम्बवन्ती और सत्यभामा से विवाह, शम्बर वध, प्रद्युम्न विवाह, नरकासुर, वज्रनाभ, रुकुम आदि का वध, अनिरुद्ध बधन,

[1] सम्मेलन पत्रिका भाग ४६ सख्या ३ पृ० ७०

हर-हरि सग्राम, उषा विवाह आदि के प्रसंग, जरासध और शिशुपाल वध, दुर्योधन मान भग, बलदेव की तीर्थयात्रा, सुदामा दारिद्र्य-भजन, रुक्मिणी-द्रौपदी सवाद, कुरुक्षेत्र यात्रा, देवकी के ६ पुत्रों को पुन प्राप्त करना, वेद स्तुति, दिग्विजय वर्णन एव स्तुति।

श्रीभागवत महापुराण—'कृष्ण विनोद' की उपर्युक्त प्रति के अतिरिक्त 'श्री भागवत महापुराण' नाम की कैथी लिपि मे लिखी हुई एक खण्डित प्रति और मिलती है जिसके प्रारम्भ मे पृष्ठ सख्या १६ और अत मे पृष्ठ सख्या २८६ दी गई है। इसमे भी श्रीमद्भागवतानुसार कृष्ण-कथा का वर्णन है। उपलब्ध प्रति मे एकादश स्कध तक की कथा मिलती है।

श्रीभागवत-गीता—यह श्रीमद्भागवत गीता का भाषानुवाद है, प्रारम्भ मे हनुमान जी तथा कृष्ण के ब्रह्म रूप की स्तुति की गई है। इसके बाद गीता के १८ अध्यायो का भाषानुवाद प्रस्तुत किया गया है। अंत मे चददास के निवास स्थान की स्थिति, उनके सयम, नियम, त्याग एव दुग्ध कल्प आदि का सकेत किया गया है। यह ग्रथ स० १८०६ मे लिखा गया। यह पूरी प्रति है जिसमे १२६ पृष्ठ है। यह नागरी लिपि मे है।

शिव सारंगी—'श्रीभागवत गीता' और 'शिवसारंगी' की प्रतियाँ एक ही गुटके मे सिली हुई है। ग्रथारम्भ में प्रतिलिपिकार वेनी कवि ने हनुमान, राम और श्याम को स्मरण करके 'शिवसारगीध्यावली' लिखने का सकेत किया है और तन-मन का शोध करने के हेतु विविध उपाय बताये गये है। योगसाधना तथा मुक्ति के चारो रूपो का वर्णन करके शरीर की निर्मलता तथा माया से निवृत्ति के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। कवि ने यह ग्रथ स० १८११ मे लिखा। नागरी लिपि मे लिखित इस प्रति मे ६६ पृष्ठ है।

भगत बिहार—इस ग्रथ की ४ प्रतिलिपियो के बारे मे सूचना मिलती है—(१) नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट मे,[1] (२) हिन्दी साहित्य सम्मेलन सग्रहालय प्रयाग मे,[2] (३) बेनी कवि द्वारा प्रतिलिपित प्रति जो अब डा० रामकुमार वर्मा के पास है,[3] (४) एक खण्डित प्रति जिसमे १०० पृष्ठ है।[4] 'भगत बिहार' मे चददास ने लगभग २०० भक्तो के विषय मे लिखा है। 'भगत बिहार' में भक्तों के चरित पृथक्-पृथक् अनुराग (अध्याय) मे दिये गये हैं। अत मे कवि ने आत्म परिचय दिया है तथा ग्रथ का रचनाकाल स० १८०७ लिखा है। सम्मेलन सग्रहालय वाली प्रति मे किसी ने बैगनी रंग की स्याही मे संशोधन किये है जिसमे सारदा, सकर, कैलास सरीर आदि के दन्त्य 'स' के स्थान पर तालव्य 'श' कर दिया है। इसी प्रकार 'ककन' को 'ककण' तथा 'बिसुनु' को 'विष्णु' आदि लिखकर शब्दों को शुद्ध रूप देने का भी यत्न किया है।

विष्णु सहस्रनाम और भाषा प्रबंध पंचाग—छोटे-छोटे १७ पृष्ठो मे इनकी एक ही प्रतिलिपि प्राप्त हुई है। 'विष्णु सहस्र नाम' मे लक्षदास की 'मजुमुक्तावली' की भाँति विष्णु को विविध नामों से याद किया गया है। 'भाषा प्रबध पचाग' मे शंकर जी के अगो का वर्णन है।

---

[1] खोज रिपोर्ट (१६२०-२२), पृ० ५१ तथा १८२।
[2] सम्मेलन सग्रहालय वेष्टन स० १३१२ पोथी सं० १६६०।
[3] व [4] वर्ष १५ अक ४ पृ० ४

पदावली—जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है चंददास जी के पदों के संग्रह को 'काव्य कौमुदी' नाम दे दिया गया किन्तु वस्तुत 'काव्य कौमुदी' नाम की कवि रचित कोई रचना प्राप्त नहीं हुई है। 'पदावली' नाम से चंददास की रचनाओं का संकलन अभी हाल में डा० विद्याधर अग्निहोत्री ने किया है, यह सूचना डा० शिवगोपाल मिश्र ने दी है।[१] यह प्रकाशित संकलन अभी तक हमारे देखने में नहीं आया है। हमने तो पदावली के पद या तो पचदूत में प्रकाशित हुए देखे हैं या हस्तलिखित प्रतियों में, जिनसे यह स्पष्ट होता है कवि ने विभिन्न राग-रागिनियों में ये पद लिखे हैं जिनमें सीताराम तथा राधा-कृष्ण की शोभा के मनोरम चित्र हैं। इनके अतिरिक्त जीवन की असारता, राम नाम की महिमा, जीवनोद्धार के उपाय, आत्म-निवेदन, दैन्य आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। भक्ति-भावना में शुद्ध सात्विक भक्ति की मंदाकिनी प्रवाहित की गई है।[२] दास्य और सखी भाव में लिखे गये पदों में कवि की विनय-शीलता उच्चकोटि की है। चंददास जी रचित इस प्रकार के पदों की संख्या ९८० है जो कवि की प्रतिभा का परिचय देते हैं।

साखी—कबीर की साखियों की भाँति ही चंददास जी के ७०० दोहे मिलते हैं जिनमें राम नाम की महत्ता, निर्गुण-सगुण का अंतर, काबा-कैलाश का भेद, राम-रहीम में अभेद भाव, जप-माला-छापा-तिलक आदि बाह्य प्रदर्शनों की निरर्थकता, घट-घट में राम का दर्शन, समाज के पाखंडियों को डाँट-फटकार आदि से सम्बन्धित बातें कही गई हैं।[3]

रागमाला—चंददास जी की समस्त रचनाएँ भक्ति भावना में ओतप्रोत हैं। संभवत इसीलिये संगीत विषयक इस ग्रंथ में, कवि ने, तत्त्व निरूपण की चर्चा को प्रधानता दी है, रागों के स्वरूप को नहीं। 'रागमाला' में १२० पद मिलते हैं।[४]

शृंगार सागर[५]—'शृंगार सागर' का रचनाकाल श्रावण मास की द्वितीया संवत् १८०६ है। ग्रंथारम्भ में कवि ने लिखा है कि भक्त विहार, राम विनोद और कृष्ण विनोद लिख लेने पर मित्रों की इच्छानुसार उन्होंने काव्यरस में 'राधारमण विलास' की रचना 'शृंगार सागर' नाम से की है। इस ग्रंथ में १२ उल्लास या अध्याय है। यह ग्रंथ जयदेव के 'गीतगोविन्द' की परम्परा का अनुसरण करता हुआ राधा-कृष्ण के परकीया-स्वकीया स्वरूपों की बानगी प्रस्तुत करता है। अंत में गंधर्व विवाह हो जाने पर कृष्ण के साथ स्वकीया राधा की रति-केलि तथा हास-विलास का विविध ऋतुओं में वर्णन किया गया है। अन्य ग्रंथों की भाँति इस रचना में भी चंददास जी ने सगुणोपासना में समाधि लगाने और योग साधने को ही सिद्धि प्राप्ति का प्रमुख मार्ग बताया है।

चंददास की प्रतिभा तथा अन्य कवियों का प्रभाव—मध्ययुग में भक्ति की जिस परम्परा का मार्ग दर्शन सूर, तुलसी और मीरा ने किया था चंददास जी ने उसे अपनी कविताओं में ग्रहण करके एक नये भावलोक की सृष्टि की। एक ओर तो वे भक्त कवियों की भाँति सगुणोपासना से प्रभावित दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर निर्गुण संत कबीर की प्रतिभा के प्रभाव से भी वे अछूते

---

[१] सम्मेलन पत्रिका, भाग ४६ संख्या ३, पृ० ६६।

[२_३_४] इनसे सम्बधित कविताओं के उद्धरण पचदूत फतेहपुर के वर्ष ५ तथा ६ के विभिन्न अंकों मे दिये गये है।

[५] सम्मेलन पत्रिका—भाग ४६ संख्या ३, पृ० ७० से ७५ तक।

नही हैं। चददास की रचनाओ मे राम और कृष्ण दोनो मे अभेद मानकर उनकी लीलाओं का भावुकतापूर्ण चित्र उपस्थित किया गया है। सूरदास ने 'कृष्ण चरित्र' और तुलसीदास ने 'राम चरित्र' को आधार मानकर मुख्यत रचनाएँ की। इन कवियो ने राम और कृष्ण के चरित्र का भी वैविध्य से वर्णन किया, किन्तु फिर भी उनके इष्टदेव का एक 'स्वरूप' निश्चित था। सूर कृष्ण-भक्त कवि थे और तुलसी राम-भक्त। चददास ने एक कदम आगे बढकर राम और कृष्ण तथा सीता और राधा मे अभेद भाव मानकर उनकी लीलाओ को ऐसे भावप्रवण शब्दो मे चित्रित किया है कि हमारा मन-मयूर नाचने लगता है। चंददास के पदों मे सूर, तुलसी, लक्षदास और मीरा की भाँति गेयता, माधुर्य तथा प्रसाद गुण मिलता है।[1] उन्होंने छोटे-छोटे पदो मे समय-समय पर मन मे उठे हुए 'भक्ति-भावो' को लिपिबद्ध किया है।

छद, रस, अलंकार—चददास जी की रचनाओं मे दोहा, चौपाई, चौपई, गीतिका, छद, सवैया, कवित्त, छप्पय और पद आदि विविध प्रकार के छदों का प्रयोग किया गया है। पदो के लिखने मे कवि की एक विशिष्ट पद्धति रही है। जिन पदों में सीता और राधा की शोभा का वर्णन किया गया है वे तो पर्याप्त बडे है, शेष सभी पद प्राय ४ या ६ पक्तियों के हैं। इन पदो की टेक की तुक अन्य पक्तियो से नही मिलती। पहली पक्ति के अंतिम शब्द या शब्दो को प्रत्येक पक्ति के साथ जोडकर गाने से पद मे एक नई आभा आ जाती है और माधुर्य बढ जाता है।

'नींद मोहनी तज के प्रात हरि।
शिशु जन संघ चले कानन को अंग अनंगहि सज के (प्रात हरि)
गुंज माल उर लाल रत्नमणि पीत पटा धन भजके (प्रात हरि)
मोर पक्ष धृत शीश मंजुली मनोभान छवि छज के (प्रात हरि)
—आदि।

इस पद मे कोष्ठक मे लिखे हुए शब्द को पंक्ति के साथ जोड देने से पद लालित्य तथा गेयता मे अपूर्व सुन्दरता की वृद्धि हो जाती है।

चंददास की कविताओं मे प्राय श्रृंगार और शान्तरस का प्रयोग हुआ है। राधा-कृष्ण और राम-सीता की शोभा तथा लीलाओ का वर्णन श्रृगार रस (सयोग और विप्रलम्भ) मे किया गया है। शान्त रस मे विनय के पद आदि लिखे गये है। इनके अतिरिक्त उनकी रचनाओं मे अन्य रसों का प्रयोग भी परम्परा पालन के रूप में किया गया है।

कवि चददास की कविता मे इतना प्रवाह और स्वाभाविकता है कि उसे अलकारो की आवश्यकता नही है फिर भी ढूँढने पर उसमें विविध अलकारों का प्रयोग मिलता है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रम और अपह्नुति अलंकारो का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है।

भाषा—चददास जी की समस्त रचनाओ मे ब्रज और अवधी का मिश्रित रूप मिलता है किन्तु पद ब्रजभाषा में लिखे गये हैं। कवि ने एक ओर संस्कृत के तत्सम शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया है तो दूसरी ओर अरबी-फारसी के शब्दो को भी स्थान दिया गया है। चंददास

---

[1] देखिये—(क) इलाहाबाद यूनीवर्सिटी हिन्दी मैगजीन दिसम्बर १९५६ पृ० ७३
ख पचदूत वर्ष ६ के अक

जी की भाषा मे सरलता, ओज, प्रसाद, गुण प्रचुर मात्रा मे दिखाई देते है। उनकी कविता मे उपमा और उत्प्रेक्षाओ की झडी लग जाने पर भी पद का निर्वाह बडी कुशलता से किया गया है। उन्होने कबीर की भाँति उलटबासियाँ भी लिखी है। चंददास जी को अपने शब्द चयन तथा उसके समुचित प्रयोग पर पूरा विश्वास था। इसके विषय मे स्वय कवि का कहना है —

अक्षर भ्रष्ट न भ्रष्ट पद मात्रा भ्रष्ट न होय ।
चन्द गिरा अनभय जहाँ तहाँ नही भय होय ॥

चददास जी के रचित ग्रथो की हस्तलिखित प्रतियाँ प्राय कैथी लिपि मे मिलती है। इस कारण शुद्ध पाठ मे कठिनाई होती है।

सरयूराम पंडित

इन्होने सवत् १८०५ मे 'जैमिनिपुराण' ग्रथ लिखा। कवि ने इसमे अपने विषय मे कोई विवरण नहीं दिया है। यह ग्रथ ३६ अध्यायो मे समाप्त हुआ है जिसके प्रथम ४ अध्यायो मे युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की तैयारी और घोडा लाने तथा सेना के एकत्र होने का विवरण दिया गया है। पाँचवे अध्याय से घोडा छूटने और उसकी रक्षा मे युद्ध के वर्णन है। अनुशाल, नीलध्वज, हसध्वज (सुरथ एव सुधन्वा का युद्ध), अर्जुन पुत्र बभ्रुवाहन (इसी प्रसग मे सक्षिप्त रामायण भी दी गई है), मयूरध्वज (के पुत्र ताम्रध्वज का घोर युद्ध), परिशर्मा, चन्द्रहास और समुद्रस्थ मुनि की कथाओं को विस्तार से कहा गया है। अतिम अध्याय मे दो ब्राह्मणो का झगड़ा, कृष्ण-द्वारकागमन, सब राजाओ का अपने-अपने नगर जाना और कथा माहात्म्य वर्णन है। इस ग्रथ मे कृष्ण के विषय मे प्रसगवश ही उल्लेख हुआ है। इनकी भाषा बैसवाड़ी है। रचना दोहा-चौपाई मे की गई है। अलकारो का प्रयोग भी सफलता से किया गया है।[१]

मंचित द्विज

शिवसिह सरोज मे इनका समय स० १७८५ बताया गया है।[२] मिश्रबधुओं ने इन्हे बुदेलखंड मऊ महेबा का निवासी और उनका आविर्भाव काल स० १८३६ बताया है।[३] इनके रचे हुए दो ग्रंथ (१) सुरभीदान लीला और (२) कृष्णायन है। दोनो ही ग्रथ अपूर्ण है। मिश्रबधुओं को सुरभी दान लीला की जो प्रति मिली उनमे १६२ पृष्ठ थे जिसमे २१ अध्यायपूर्ण और २२ वे अध्याय मे ४ छद लिखे हुए थे। इसमे बाललीला की तथा यमलार्जुन पतन की कथा कहकर दानलीला का वर्णन किया गया है। कवि ने श्रीकृष्ण के शिख-नख का सुन्दर वर्णन किया है। कृष्णायन मे कृष्ण के जीवन चरित को रामचरितमानस की तरह लिखा गया है।

प्रो० के ने भी मचित द्विज का आविर्भाव काल १७७९ माना है[४] किन्तु प० रामचन्द्र

---

[१] मिश्रबधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ७४० ।
[२] शिवसिह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४७४ ।
[३] मिश्रबधु विनोद, पृ० १५० तथा ८४९।
[४] ए हिस्ट्री आव हिन्दी लिटरेचर १९२० प० ७९

शुक्ल ने स० १८१६ लिखा है उनका कहना है कि इनकी भाषा ब्रज है अवधी नही की चौपाइयो की अपेक्षा इनकी चौपाइया गोस्वामी जी की चौपाइया से अधिक मेल खाती है।"[1] अब ये ग्रथ उपलब्ध नही है अत इनका विस्तृत विवरण देना सभव नही है।

नवलदास

इनके समय तथा निवास स्थान के बारे मे विद्वानो मे एकमत नही है। शिवसिंह सरोज मे इनका समय स० १३१६ लिखा है तथा इन्हे गूढगॉव जिला बाराबकी का क्षत्रिय कहा गया है।[2] नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट (१९०९-११) मे इन्हे बाराबकी जिले के मोजा कटवा के (मदिर के) महत बताया गया है और शिवसिंह सरोज की सूचना का प्रतिवाद किया है। इसी खोज रिपोर्ट के सम्पादक ने शिवसिंह सरोज मे बताये गये समय स० १३१६ तथा डा० ग्रियर्सन के द्वारा निर्दिष्ट स० १३१६ को गलत बताया है और अनुमानत इनका समय १७ या १८वी शती लिखा है।[3] मिश्रबंधु विनोद मे नवलदास का कविताकाल १८८३ के पूर्व बताया है और यह संभावना प्रकट की है—'सभव है कि १८०७ वाले नवलदास भी यही हो'[4], खोज रिपोर्ट (१९०९-११) के सम्पादक ने स० २१६ पर नवलदास को धनेरा गॉव (जिला लखनऊ) का निवासी बताया है।[5] इनका समय स० १८२३ है किन्तु (१९२६-२८) की खोज रिपोर्ट मे इन्हे सतनामी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक जगजीवनदास का शिष्य बताया गया है।[6]

भाषा काव्य संग्रह मे नवलदास रचित ग्रंथ का नाम 'ज्ञान सरोवर' बताया गया है।[7] मिश्रबधुओ ने इनके रचित ३ ग्रथों के नाम दिये है—(१) ज्ञान सरोवर, (२) भागवत दशम स्कध भाषा, (३) भागवत पुराण भाषा जन्मकाड।[8] नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्टो मे भागवतपुराण भाषा जन्मकाड (रचनाकाल स० १८२३), सुखसागर या भागवत-दशम स्कंध भाषा (रचनाकाल स० १८१७), ज्ञान सरोवर (रचनाकाल स० १८१७), भागवत दशम स्कध भाषा मध्य काण्ड (रचनाकाल स० १८२३) के उपलब्ध होने की सूचना दी गई है।[9] इनके अतिरिक्त विन्ध्य प्रदेश में प्राचीन हस्तलिखित ग्रथो की खोज मे नवलदास रचित 'भागवत' ग्रथ की एक हस्तलिखित प्रति के उपलब्ध होने की सूचना है।[10]

'ज्ञान सरोवर' मे पुराणो के आधार पर ज्ञानोपदेश व कथाये तथा 'भागवत पुराण

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास, २००८ वि०, पृ० ३७३।
[2] शिवसिंह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४४६।
[3] खोज रिपोर्ट (१९०९-११), सख्या २१३।
[4] मिश्रबधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ८३६।
[5] खोज रिपोर्ट, (१९०९-११), स० २१६।
[6] खोज रिपोर्ट, (१९२६-२८), स० ३२७।
[7] भाषा काव्य संग्रह, पं० महेशदत्त, (१९०८ ई०), पृ० ५४।
[8] मिश्रबधु विनोद, पृ० ८३६।
[9] खोज रिपोर्ट (१९०९-११) स० २१६।
खोज रिपोर्ट (१९२०-२२) स० ११८।
खोज रिपोर्ट (१९२६-२८) स० ३२७, ३२७ ए, ३२७ बी।
[10] नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० २०१२ अक १।

भाषा जन्मकाड' मे कृष्ण चरित्र की कथा २२ अध्यायो मे, 'सुखसागर' मे' भागवत आदि पुराणो की कुछ कथाएँ एव ज्ञानोपदेश २१ अध्यायो मे तथा भागवत दशम स्कध भाषा मध्यकाण्ड ६ अध्यायो मे दी गई है जिसमे कृष्ण चरित का ही वर्णन किया गया है। रचना साधारण कोटि की है।

ब्रजबासीदास

ब्रजवासीदास वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके गुरु का नाम मोहन गोसाई था। शिवसिंह सरोज मे इन्हे वृन्दावन निवासी बताया गया है।[1] इनके लिखे २ ग्रंथ प्रबोध चन्द्रोदय नाटक तथा ब्रजविलास मिलते है। ये दोनो ग्रथ मुद्रित भी हो चुके है। 'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक' सस्कृत का भाषानुवाद है। 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' मे डा० माताप्रसाद गुप्त ने इनके रचित २ ग्रथ बताये हैं—(१) गोवर्धन विलास, (२) ब्रजविलास। इनमे से ब्रजविलास के ५ स्थानो से प्रकाशित होने की सूचना दी गई है।[2] नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्टो मे 'प्रबोध चन्द्रोदय नाटक' तथा 'ब्रज विलास' ग्रथो की हस्तलिखित प्रतियो के मिलने की सूचना दी गई है।[3] हिन्दुई साहित्य का इतिहास मे भी 'ब्रजविलास' की मुद्रित प्रतियो के बारे मे सूचना दी गई है। इनमे एक प्रति फारसी अक्षरो मे भी प्रकाशित हुई।[4]

उपर्युक्त सूचनाओं से स्पष्ट है कि कवि रचित 'ब्रजविलास' का सर्वाधिक प्रचार हुआ है और वही कवि का कीर्ति स्तम्भ है। इस ग्रथ की रचना कवि ने स० १८२७ मे की थी। प० रामचन्द्र शुक्ल ने इस ग्रथ का समय स० १८१७ दिया है। किन्तु यह गलत है क्योकि स्वय कवि ने कहा है—

संवत शुभ पुरान सत जानौ। तापर और नक्षत्र न आनौ।

वर्ण्य विषय—ग्रथारम्भ मे कृष्ण, बलदेव, गुरु, सत, ब्रज, वसुदेव-देवकी, नंद-यशोदा आदि की वदना की गई है। इसके बाद ग्रथ रचना का सवत देकर महाप्रभु वल्लभाचार्य को स्मरण किया गया है। पुन राधा-कृष्ण की वंदना करके वसुदेव-देवकी विवाह का प्रसग और तदुपरान्त कृष्ण की बाल-लीला, किशोर लीला तथा राक्षस वध आदि के वर्णन है। राधा-कृष्ण की रस केलि, दान लीला, घाट लीला, मान लीला आदि विविध प्रसगो के सजीव चित्र से खीच दिये गये है। कथा का क्रम सूरदास की पद्धति पर रखा है जिसमे उद्धव के ब्रज आगमन तथा उनकी ब्रज से विदा तक की कथा दी गई है। अत मे ब्रजविलास ग्रथ का माहात्म्य बताया गया है। आद्यन्त कथा मे बड़ी सरसता, सरलता और स्वाभाविकता है। यह ग्रथ जनसाधारण की सुविधा के लिये तथा कथा को प्रबधात्मक रूप देने के लिये लिखा गया है। इसीलिये इसका पर्याप्त प्रचार भी हुआ है।

---

[1] शिवसिंह सरोज, १८८३ ई०, पृ० ४६०।
[2] हिन्दी पुस्तक साहित्य, डा० माताप्रसाद गुप्त (१९४५ ई०), पृ० २०७।
[3] खोज रिपोर्ट (१९०६-०८), स० १४१।
खोज रिपोर्ट (१९०९-११), स० ३६।
खोज रिपोर्ट (१९२०-२२, सं० २२।
[4] हिन्दुई साहित्य का इतिहास—तासी हिन्दी अनुवाद प० १९२।

अलकार, नायक-नायिका, दूत-दूती, नव रस तथा षट् ऋतु आदि का विस्तार से वर्णन है। इस ग्रथ मे ३०० छद है। इसी ग्रथ की एक प्रतिलिपि मौरावाँ पुस्तकालय उन्नाव मे भी है। यह प्रतिलिपि स० १९१४ की है जो ठाकुर प्रसाद तिवारी ने नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर नरसिह-पुर में की थी।

विवाह मण्डन—अगस्त १९२३ की सरस्वती मे प० शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन' ने 'भावन' के 'विवाह मण्डन' ग्रथ के विषय मे कुछ सूचना छपवाई[१] जिसमे उक्त ग्रथ के उद्धरणो के आधार पर वैवाहिक कुरीतियो का दिग्दर्शन कराया गया है। कवि के द्वारा कुलीन स्त्रियो की दुर्दशा और ताड़ना तथा बाल-विवाह के विरोध मे लिखे गये छदो के भी उद्धरण दिये गये है।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (१९२३-२५) मे रस रत्नाकर और शक्ति चिंतामणि के प्राप्त होने की सूचना दी गई है।[२]

रस रत्नाकर—यह १०० पृष्ठो का ग्रथ है जिसकी रचना चैत्रवदी १२ शुक्रवार स० १८९१ को हुई। ग्रथारम्भ में गणेश तथा शम्भु की वदना की गई है उसके बाद नायक-नायिकाओ के भेद विस्तार से कहे गये है। इसके अतिरिक्त भाव-विभाव, आलम्बन-उद्दीपन तथा रसो का विस्तार से विवेचन किया गया है।[३] इस ग्रथ मे ४३० छन्द है।[४]

शक्ति चिंतामणि—इस ग्रथ की रचना स० १८५१ मे हुई जिसमे ५ अध्यायो मे सयोग-वियोग शृगार, नायक, जाति तथा कर्म विभेद का वर्णन किया गया है। प्रतिलिपि की कुल पृष्ठसंख्या ३४ है। ग्रंथ को दोहा और कवित्त मे ही लिखा गया है।[५]

गंगापंचाष्टक और बरवै रामायण—बा० जयनारायण कपूर, वकील, उन्नाव ने सूचित किया है कि भावन कवि रचित दो ग्रथ—गगापंचाष्टक तथा बरवै रामायण—उन्हे मिले है जिनमे से गगा पचाष्टक सुकवि मे प्रकाशित हो चुका है।[६] बरवै रामायण एक विशाल ग्रथ है जिसका अंतिम पृष्ठ नही मिला है। इस ग्रथ मे कथाक्रम 'मानस' के 'काण्डो' की पद्धत्यनुसार ही दिया गया है।

कूबरी विनोद—यह ग्रथ 'सुकवि' के वर्ष १ तथा २ के विविध अंकों मे प्रकाशित हो चुका है,[७] इस ग्रथ की एक प्रतिलिपि हमने ठा० रामशरणसिंह, प्रधान, गुनीर (फतेहपुर) के पास देखी है। इस प्रति मे चारों अध्यायो की समाप्ति पर (पुष्पिका मे) 'पचरात्र वेदान्त शृगार रस रहस्य' लिखा है किन्तु पाँचवे अध्याय के अत मे कुछ भी नही दिया गया। इससे यह अनुमान होता है कि यह प्रति अपूर्ण है। 'सुकवि' मे जिस प्रतिलिपि से 'कूबरी विनोद' को प्रकाशित किया गया है उसके साथ भी यही कठिनाई रही है। वह प्रति भी सभवत अपूर्ण

---

१ सरस्वती, भाग २४ खण्ड २, पृ० १८१ से १८३ तक।
२ खोज रिपोर्ट (१९२३-२५) सख्या ५२ ए, बी० सी।
३ वही, सख्या ५२ ए तथा ५२ बी।
४ मिश्रबंधु विनोद, द्वि० भा०, पृ० ८७४।
५ खोज रिपोर्ट (१९२३-२५), स० ५२ सी।
६ सुकवि वर्ष ४ अक १ व ३।
७ सुकवि वर्ष २ अंक १ १० १२ आदि

ही है।[1] जब तक इस ग्रथ की सम्पूर्ण प्रतिलिपि प्राप्त नही होती तब तक इसके विषय मे कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती है। पुष्पिका मे दिये गये नाम के अतिरिक्त इसका 'कूवरी विनोद' नाम भी है और यह ग्रथ इस छोटे नाम (कूवरी विनोद) से ही प्रसिद्ध है।

हिन्दी साहित्य मे अभी तक गोपियो की कुब्जा के प्रति मार्मिक व्यंग्योक्तियों और कटूक्तियो का ही कवियो ने वर्णन किया है, किन्तु 'भावन' कवि ने अपनी रचना 'कूबरी विनोद' मे सर्वथा उपेक्षित कुब्जा द्वारा राधा तथा गोपियों की कटूक्तियो के मार्मिक एवं उपालम्भपूर्ण उत्तर दिलाये है। अत मे उद्धव और गोपियो के सवाद तथा उद्धव के मथुरा वापस जाने तक की कथा के सजीव चित्र उपस्थित किये गये है।

कूबरी विनोद मे कवि ने कृष्ण को ब्रह्म और राधा को गोलोकस्वामिनी कहा है। कृष्ण (ब्रह्म) के निर्गुण-सगुण दो भेद बताये गये है। काल, कर्म, स्वभाव और माया इनके वश मे है। समस्त जीव ब्रह्म के अश हैं। श्रुतियो का कथन है कि कृष्ण ही ब्रह्म के अवतार हैं। वे निर्गुण होने पर भी भक्तो के हित शरीर धारण कर 'भव-भय' को दूर करते हुए अपनी लीला प्रकट करते है। कवि ने माता-पिता को 'परम पूज्य परमेश्वर का प्रकट अवतार' कहा है और आज्ञापालक आदर्श पुत्रों में कृष्ण, राम श्रवणकुमार के नाम एवं कार्यों की ओर सकेत किया है।

रस, छंद और अलंकार—'कूबरी विनोद' मे मुख्यत शान्त एव करुण रस की मदाकिनी प्रवाहित की गई है। कृष्ण के मथुरा चले जाने से राधा तथा गोपियो और नद-यशोदा की करुणा विगलित दशा के जीते-जागते चित्र प्रस्तुत किये गये है।[2] इसके अतिरिक्त भगवान् के विभिन्न अवतारो के 'रस-रूप' का वर्णन भी कवि ने किया है।[3]

कूबरी विनोद 'विष्णु पद' छंद मे लिखा गया है। अन्य रचनाएँ बरवै, सवैया, दोहा तथा कवित्त छदो मे लिखी गई है। इस रचना मे अलंकारो के प्रयोग की ओर कवि ने कोई ध्यान नही दिया है। उसने अपनी कविता को प्रवाहपूर्ण ढग से लिखकर यह दिखा दिया है कि अलकारो की सहायता न लेकर भी कवि उत्तम कविता कर सकता है।

भाषा—कवि ने अपने समस्त काव्य प्रायः बैसवाडी मे लिखे है, किन्तु उस पर पूर्वी अवधी तथा व्रजभाषा का भी प्रभाव दिखाई देता है। विदेशी भाषाओं—अरबी, फारसी—के चलते हुए शब्दो का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा मे मिलता है। कवि ने लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग खूब किया है। प्रसाद गुण और सरलता 'कूबरी विनोद' की विशेषता है।

भागवतदास

भागवतदास के जीवन परिचय का कुछ भी पता नही चलता। उनकी रचना 'भागवत चरित्र' ही प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है जिससे केवल यही पता चलता है कि उन्होंने भागवत का माहात्म्य अपने गुरू से प्रयाग मे सुना और उसे मथुरा मे रहकर पद्यबद्ध किया। नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्ट (१९२६-२८) में इनके दो ग्रथ बताये गये है[4]—(१)

---

[1] सुकवि वर्ष २ अक १, पृ० ३०।

[2] सुकवि वर्ष २ अक १०, पृ० ५२ पद संख्या १३।

[3] कूबरी विनोद हस्तलिखित पद सख्या २३

[4] खोज रिपोट १९२६ २८ सख्या ५१ ए तथा ५१ बी

भागवत चरित्र (रचनाकाल स० १८६३), (२) भक्तमाला (रचनाकाल---अज्ञात् किन्तु लिपिकाल स० १८६६)।

'भागवत चरित्र' में कथाक्रम का आधार पद्मपुराण के अनुसार है। इसकी एक प्रति सम्मेलन सग्रहालय मे भी है।[1] जो ३४१ पृष्ठो मे पूरी हुई है। कथा का विभाजन ४ व्यूहो मे किया गया है---(१) राम बाल चरित्र, (२) हरिभक्तो के चरित्र, (३) कृष्ण चरित्र, (४) हरिजनो के चरित्र। कथा के वर्णनो मे प्रवाह है। दूसरी रचना 'भक्तमाला' मे कतिपय भक्तो के चरित (सक्षेप में) दिये गये है। भागवतदास ने तुलसीदास की शैली अपनाकर काव्य रचना की है, किन्तु उसमे वे आशातीत सफलता नही पा सके।

खोज रिपोर्ट (१६२६-२८) मे २३ पृष्ठो के 'राम-सावित्री' ग्रथ के प्राप्त होने की सूचना और दी गई है। इसके रचयिता कोई अन्य भागवतदास बताये गये है।[2] इस ग्रथ मे रामचरितमानस के आधार पर पात्रो की कार्यसूची दी गई है।

राजेन्द्र प्रसाद

नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज रिपोर्टो मे इनकी लिखी हुई एक पुस्तक 'दान-लीला' के उपलब्ध होने की सूचनाएँ समय-समय पर प्रकाशित होती रही है।[3] बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् की खोज विवरणिका मे भी इसकी प्रतियाँ प्राप्त होने की सूचना छपी है।[4] इसके रचनाकाल का पता नही है, किन्तु प्रतिलिपियाँ १८वी शती की मिलती है। उपलब्ध प्रतियो मे रचयिता के नाम मे भिन्नता मिलती है, किन्तु कविता वही है। उपलब्ध प्रतियो मे कवि का नाम कृष्णदास, राज्येप्रसाद, गिरिजेन्द्रप्रसाद, गिरधरचन्द्र, किसनदास, श्री जदुनाथ प्रसाद और राजेन्द्रप्रसाद मिलता है। 'दानलीला' की प्रतिलिपियाँ प्राय कैथी लिपि मे मिलती है जिसके कारण नामो के पढने मे अंतर हो गया है। इसकी एक प्रतिलिपि श्री ओउम् प्रकाश सिंह रावत, ग्राम एकडला (फतेहपुर जनपद) के पास हमने देखी है। यह भी कैथी लिपि मे है। 'दानलीला' की एक प्रति श्री उदयशकर शास्त्री के पास भी मैंने देखी है जो नागरी लिपि मे है। ग्रथ के अत मे 'जहाँ राजेन्द्रप्रसाद पावे जन्म जन्म के दुष टरे' लिखा है। इससे इस ग्रंथ के रचयिता का नाम 'राजेन्द्रप्रसाद' स्पष्ट हो जाता है।

'दानलीला' में कृष्ण के गोपियों से दान माँगने की कथा सक्षेप मे दी गई है। कथा मे क्रम नही है। रचना साधारण कोटि की है। भाषा अवधी है। कविता मे चौपाई तथा सवैया छद प्रयुक्त हुए है।

---

[1] सम्मेलन सग्रहालय, बस्ता सख्या १३१६, पोथी सख्या २००७।

[2] खोज रिपोर्ट (१६२६-२८) सख्या ५२।

[3] खोज रिपोर्ट (१६२०-२२) पृ० ६७ तथा ३८२।
खोज रिपोर्ट (१६२३-२५) पृ० ५६६।
खोज रिपोर्ट (१६२६-२८) पृ० २६३ तथा ३८५।

[4] (क) बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, प्राचीन हस्तलिखित कवियो का विवरण (तीसरा खण्ड) पृ० २३ २४।
ख) वही चौथा खण्ड पृ० २० स० ३४६ ३४७ ३४८

ज्वालाप्रसाद मिश्र

पं० ज्वालाप्रसाद ने माँ भारती के भण्डार को भरने के लिये पर्याप्त लम्बी संख्या में मौलिक और अनूदित ग्रंथ लिखे। १९१६ की सरस्वती में श्री ज्वालादत्त शर्मा ने पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र रचित ग्रंथों की सूची दी है।[1] जिसमें अष्टादश पुराण दर्पण को उन्होंने दो बार गिनाया है---(१) दयानंद तिमिर भास्कर, (२) यजुर्वेद पर मिश्र भाष्य, (३) अष्टादश-पुराण दर्पण---तिलक के 'गीतारहस्य' में उल्लेख, (४) गो० तुलसीदास जी की रामायण पर तिलक, (५) वाल्मीकि रामायण (अनुवाद), (६) शिव महापुराण (अनुवाद), (७) वैद्यक और ज्योतिष के कुछ ग्रंथों का अनुवाद, (८) नव ग्रंथों पर टीकाएं (९) सिद्धान्त कौमुदी अनुवाद, (१०) पंचतंत्र का अनुवाद (११) जाति निर्णय विषयक ग्रंथ, (१२) स्व० पं० बलदेवप्रसाद मिश्र के टाड राजस्थान का हिन्दी अनुवाद पूरा किया।

डा० रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में मिश्र जी लिखित 'भक्तमाल---हरिभक्ति प्रकाशिका' (सं० १९२१) ग्रंथ का उल्लेख किया है।[2]

श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई के सूचीपत्र में मिश्रजी के लिखे हुए ६० ग्रंथ बताये गये हैं जिनमें मौलिक और अनूदित ग्रंथ तथा भाष्य सम्मिलित हैं। इस तालिका के देखने मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका अध्ययन विशाल था और वे वैद्यक, ज्योतिष तथा धर्मग्रंथों के अच्छे ज्ञाता थे। कवि ज्वालाप्रसाद मिश्र रचित 'विश्राम सागर' ग्रंथ हमें देखने को मिला है (रचनाकाल सं० १९४१)।[3] इसको भी अन्य विश्राम सागरों की भांति ३ खण्डों में बांटा गया है---(१) इतिहासायन, (२) कृष्णायन, (३) रामायण।

निगम तथा पुराणों के अतिगूढ़ शब्दों की कथा को जनता के हितार्थ इसे सरल और सुबोध भाषा में लिखा गया है।[4] कृष्णायन खण्ड में कथा कृष्ण जन्म से प्रारम्भ करके प्रद्युम्न-रति विवाह तक के प्रसंगों में १२ अध्यायों में विकसित की गई है। कथा में प्रवाह है; भाषा सरल, स्वाभाविक एवं बोधगम्य है। कविता बैसवाड़ी में लिखी गई है किन्तु बीच-बीच में ब्रजभाषा का भी प्रभाव दिखाई देता है। इनकी कविता में सूर और तुलसी की भाँति उच्च-कोटि के काव्यत्व का चमत्कार तो नहीं है फिर भी सारी कथा रसरिक्त भी नहीं कही जा सकती है। इस ग्रंथ ने सारे रसों का समावेश हुआ है।[5] यह काव्य मुख्यतः दोहा-चौपाई में लिखा गया है किन्तु सोरठा, छंद, कवित्त, रोला, पुराणों से उद्धृत श्लोक, तारक छंद और सवैया आदि छंद भी व्यवहार में लाये गये हैं। अलंकारों का प्रयोग भी बहुत ही स्वाभाविक रूप में हुआ है। कवि की रचना से उसकी शैली की प्रौढ़ता का पता चलता है।

---

[1] सरस्वती १९१६ संख्या ६, भाग १७ खण्ड, २, पृ० ४००।
[2] हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, १९४८ ई०, पृ० ३१२।
[3] विश्राम सागर, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, पृ० ७।
[4] वही, पृ० ८।
[5] करुणा वीर विभत्स अरु शांत विषाद शृंगार।
रौद्र हास्य वात्सल्य अरु अद्भुत लेहु विचार॥
---विश्राम सागर पृ० ८।

बिसाहूराम

ये वर्नाकिलर मिडिल स्कूल सिमगा जिला रायपुर मध्य प्रदेश) के हैडमास्टर थे इन्होने स्वयं को श्री रसिक शिरोमणिदास भी लिखा है। इनके गुरू का नाम शंकरदास था जो बडे जितेन्द्रिय और भजनी महात्मा थे। बिसाहू राम ने एक 'विनय पत्र' लिखा जो नागरी प्रचारिणी सभा काशी के 'द्विवेदी सग्रहालय' विभाग मे है।[1] मिश्रबधुओ ने बिसाहूराम रचित ग्रथ का नाम 'नाभमाला' दिया है।[2] इन्होने 'कृष्णायन' नाम का एक काव्य ग्रथ लिखा जिसमे कृष्ण चरित की कथा को रामायण की भाति ७ काँडो मे प्रबन्ध रूप मे लिखा गया है। यह ग्रथ सरस्वती विलास प्रेस, नरसिंहपुर (मध्य प्रदेश) से प्रकाशित हुआ है।

कवि बिसाहूराम ने 'कृष्णायन' की रचना कृष्ण जन्माष्टमी स० १६५० को प्रारम्भ की।[3] कवि ने ग्रंथारम्भ मे सस्कृत के ७२ श्लोको और ५ सोरठो मे गणेश, शिव, शारदा, कृष्ण, पवन-तनय, शकर-पार्वती तथा अपने गुरु की वदना की है। उसके बाद तुलसीदास की रामायण के अनुसार 'कृष्णायन' लिखने की ओर संकेत किया गया है।[4] तुलसीदास की भाँति कवि बिसाहूराम ने भी प्रारम्भ मे खलो तथा उन बुद्धिमानो की वदना की है जो कृष्ण और राम को मनुष्य मानते है और तर्क-वितर्क के आधार पर सृष्टि की रचना का विषय 'अपर विधि' से प्रतिपादित करते है।[5] कवि ने 'कृष्णायन' की कथा का विस्तार तुलसीदास, रघुनाथ, केशव, सूर, माखन आदि अन्य कवियो की शैली के अनुसार किया है।[6] कवि ने कृष्ण कथा का विकास ७ काण्डो मे किया है—बालकाण्ड, रहस्यकाण्ड, मथुराकाण्ड, मगलकाण्ड, पाण्डव-काण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड।

'कृष्णायन' मे कवि ने कस की अनीतियो से कथा प्रारम्भ करके कृष्ण-जन्म के कारणो पर प्रकाश डाला है। तदनन्तर कथानक का विकास कृष्ण के द्वारकावास, महाभारत युद्ध और पाण्डवों के राज्याभिषेक तथा हरि के अन्तर्धान होने तक मे विस्तृत किया गया है। कृष्ण कथा के कहने का क्रम जनमेजय—वैशम्पायन, शुकदेव-परीक्षित और सूत-शौनक सवाद के आधार पर चला है। कथा मे प्रवाह, सरलता और तुलसीदास की भाँति विनय सम्पन्नता है। काव्यत्व तो उच्च कोटि का नही है, किन्तु कथा के प्रसगो का वर्णनात्मक पद्धति से भली प्रकार वर्णन किया गया है। कविता मे आवश्यकतानुसार सभी रसो का समावेश है, अलकारों का प्रयोग भी सुन्दर है। रामचरितमानस की भाँति ८ चौपाई के बाद दोहा रखा गया है। काण्ड के प्रारम्भ मे श्लोक तथा दोहे या सोरठों मे स्तुतियाँ की गई है। कविता प्राय दोहा-चौपाई मे लिखी गई है, किन्तु इसके अतिरिक्त भी विविध छद व्यवहार मे लाये गये है। भाषा बैसवाडी अवधी है।

---

[1] नागरी प्रचारिणी सभा काशी, द्विवेदी संग्रहालय, पुस्तक स० ४४७।
[2] मिश्रबधु विनोद, पृ० १०४६।
[3] सम्वत ओनिस सौ पच्चासा। रुचिर कथा यह कीन्ह प्रकासा।
शुभ संयोग बनेउ अरु आई। कृष्ण जन्म तिथि शुभग सुहाई।
—वही, पृ० १०।
[4] कृष्णायन, पृ० ३।
[5] वही पृ० ४।
[6] वही पृ० ३०५

नारायण प्रसाद मिश्र

ये शाहजहाँपुर के निवासी प० शोभाराम के पुत्र हैं। इनके धर्मपुत्र का नाम सीताराम है जो लखीमपुर मे रहता है।[1] नारायण प्रसाद मिश्र ने 'विश्रामसागर' नाम का एक ग्रथ लिखा है इसके अतिरिक्त उन्होने अनेक पुस्तको के अनुवाद किये है।[2] डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' मे इनके लिखे हुए दो ग्रंथो के नाम दिये है---(१) चमत्कार ज्योतिष, (२) कोकसार वैद्यक।

विश्राम सागर ग्रथ की रचना चैत्र शुक्ल नवमी संवत् १९६४ वि० को हुई। कृष्णगढ़ के निकट सलेमाबाद गाँव (जयपुर) के निवासी व्रजवल्लभ की आज्ञा से कवि ने इस ग्रथ का प्रणयन किया।[3]

विश्रामसागर की कथा को कवि ने ३ खण्डो मे विभाजित किया है---(१) ऐतिहासायन, (२) कृष्णायन और, (३) रामायण। इनमे कवि ने रामायण वाला खण्ड सात काण्डो मे विशेषत विस्तार से लिखा है।

कवि के वर्णन बडे ही सजीव है और हृदय को स्पर्श करते हुए चलते हैं। वर्ण्य-विषय के विवेचन मे तुलसीदास की शैली का अनुगमन किया गया है। कथा का सम्यक् निर्वाह करने के लिये दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित्त, छप्पय, रोला छद, बरवै, भुजगप्रयात छद, सवैया आदि विविध छंदों का प्रयोग किया गया है। कथा के अनुसार सभी रसो का सुन्दर समायोजन किया गया है। भाषा चलती हुई, सरल, स्वाभाविक और बोधगम्य है। सारी रचना अवधी भाषा मे है, किन्तु कृष्णायन खण्ड मे व्रजभाषा के शब्द भी व्यवहार मे लाये गये हैं।

श्रीलाल उपाध्याय

स्मार्त धर्मावलम्बी फैजाबाद निवासी तथा काशीप्रवासी प० श्रीलाल उपाध्याय ने २० जुलाई सन् १९१३ ई० को 'विश्रामसागर' ग्रथ की रचना की। यह सन् १९१४ ई० मे बनारस से प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ को कवि ने काशी नरेश श्री प्रभुनारायण को समर्पित किया है। सन् १९३२ ई० मे इस ग्रथ का गुटका साइज भी छपा है।

इस ग्रथ के ३ खण्ड है—(१) ऐतिहासायन, (२) कृष्णायन और (३) रामायण। ग्रथारम्भ मे कवि ने विविध देवी-देवताओ, ऋषि-मुनियो, प्रकृति के स्वरूप देवताओ, असुरो तथा भारत की नदियो आदि की वदना की है। गुरु वदना के बाद कवि ने अपना सम्प्रदाय 'रामसनेही पंथ' बताया है।[4] पिंगल के आठ शुभाशुभ गुणो पर विचार करने के बाद 'वर्णफल' बताया गया है। 'विश्राम सागर' मे दिये गये विविध कथा प्रसगो की ओर संकेत करते हुए कवि ने निर्गुण-सगुण ब्रह्म के सम्बन्ध मे अपने स्पष्ट विचार प्रस्तुत किये है। भगवान् के साकार रूप वर्णन के बाद राम नाम तथा गुरु माहात्म्य का प्रारूप दिया गया है। इसके अतिरिक्त

---

१ विश्राम सागर---प्राप्ति स्थान---हरिप्रसाद भगीरथ जी कालवा देवी रोड, रामबाड़ी, मुबई, पृ० ७३२।

२ वही,।

3 वही, पृ० ८।

४ श्री १९४७ ई० प० ३

भगवदभक्तो के जीवन चरित्र तथा भारत के प्राचीन इतिहास वा कथाओ आदि का वर्णन किया गया है

कृष्णायन खण्ड के प्रारम्भ में राधा, कृष्ण, यशोदा, नंद, वासुदेव आदि की वंदना की गई है। इसके अनतर शुकदेव जी के भागवत वर्णन के कारणो पर प्रकाश डाला गया है। कथा-क्रम मे कस जन्म, से लेकर कृष्ण के गोकुल, मथुरा और द्वारका गमन तक की कथा को सम्मिलित किया है। कवि ने कृष्णायन खण्ड चैत्र शुक्ल ४ सवत् १९७१ को पूरा किया।[1] रामायण खण्ड मे कवि ने आत्मपरिचय के कुछ सकेत दिये है।[2] काव्य की भाषा अवधी है, किन्तु कृष्णायन खण्ड मे ब्रजभाषा के शब्दो का भी प्रयोग हुआ है।

द्वारकाप्रसाद मिश्र

प० द्वारकाप्रसाद मिश्र मध्य प्रदेश के राजनीतिक नेता के रूप मे सुपरिचित है। साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी संसार उन्हे श्री शारदा, लोकमत तथा सारथी के सम्पादक के रूप मे जानता है। कृष्णायन उनका एकमात्र प्रकाशित महाकाव्य है। इसकी रचना उन्होंने परतन्त्रता के दिनो मे जेल मे रहकर की थी।

कृष्णायन का कथानक ७ काण्डो मे विभाजित है जिनमे कृष्ण की कथा का विस्तार महाभारत, भागवत तथा पूर्ववर्ती कवियो के आधार पर किया गया है। कथारम्भ अवतरण काण्ड से होता है जिसमे श्रीकृष्ण जन्म से पूर्व मथुरा की दशा, असुरों का अत्याचार तथा कृष्ण जन्म और उसकी बाललीलाओ की कथा दी गई है। तदनन्तर कृष्ण-कथा का विकास मथुरा-काण्ड, द्वारका-काण्ड, पूजा-काण्ड, गीता-काण्ड, जय-काण्ड और आरोहण-काण्ड मे दिया गया है जिनमे कथानक का विकास इस प्रकार किया गया है कि विभिन्न परिस्थितियो मे भी कृष्ण का महत्व ही सर्वोपरि दिखाई देता है।

'कृष्णायन' की विशेषताएँ—प० द्वारकाप्रसाद मिश्र की रचना 'कृष्णायन' अवधी मे कृष्ण चरित पर लिखित एक महाकाव्य है जिसमे महाकाव्य के परम्परागत स्थूल नियमो का पालन तो हुआ ही है उसमे भारतीय जीवन की एकता, कथानक की धारावाहिकता तथा नये युग की राष्ट्रीय चेतना का पूर्णतया मुखरित रूप मिलता है।

कवि ने कृष्ण-चरित्र को ऊँचा उठाने के लिये कथानक का विकास किया है और कृष्ण को गोपीजन वल्लभ, गोपालक तथा धर्म-सस्थापक एव युग-प्रवर्त्तक महामानव के रूप मे अंकित किया है। कवि ने राधा-कृष्ण के प्रेम का विकास समाज की मर्यादा के अनुकूल ही किया है। उन्होंने कृष्ण-चरित्र से सम्बद्ध गर्हित कथाओ को या तो छोड़ दिया है या उनका रूपान्तर करके उन्हें सामान्य जनोपयोगी बना दिया है। कृष्णायन के पात्र परम्परागत होते हुए भी अपना पृथक् व्यक्तित्व रखते हैं। महाभारत और भागवत मे कृष्ण के चरित्र मे जो वैषम्य दिखाई देता है 'कृष्णायन' मे उसको दूर करने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया है। कृष्ण के प्रति-गोपियो के प्रेम मे सात्विकता और लोकमगल की भावना रखी गई है। विलासिता और उछृखलता को कोई प्रश्रय नही दिया गया। चीर-हरण' प्रसग में कृष्ण एक समाज सुधारक के रूप मे हमारे सामने आते है।

---

[1] श्री विश्राम सागर (गुटका साइज), पृ० ४७१।
[2] वही पृ० ७४६

कवि ने राधा को कृष्ण की कान्ता कामिनी माना है और भक्ति का अवतार। उन्होंने राधा का किसी से भी परिणय सम्बन्ध न होने पर उसके सनातन रूप (विष्णु-पत्नी) को स्मरण कराके उसे परकीया होने से बचाया है।

कृष्णायन मे आर्य और अनार्य संस्कृति के पारस्परिक भेद को स्पष्ट करके अवांछनीय विदेशी प्रभाव को स्वीकार करने मे कवि ने अपनी असहमति प्रकट करने के संकेत दिये है। कृष्ण ने १६१०० गलित सतीत्व कुमारियो को असुर के चंगुल से मुक्त करके अपनी पत्नियो के रूप मे स्वीकार किया और सत्यभामा आदि रानियो के समकक्ष पदवी दी। इस प्रकार कवि ने आततायियो द्वारा भगाई हुई स्त्रियो के कल्याण का ऊँचा मार्ग भी प्रदर्शित किया है।

कवि ने गोपीजनवल्लभ कृष्ण को धर्म संस्थापक तथा राष्ट्रीय नेता के रूप मे भारत को एक केन्द्रीय सूत्र में बाँधने के प्रयत्न मे तत्पर दिखाया है। कृष्ण ने सब भाँति समर्थ होते हुए भी स्वयं सम्राट् बनने की कामना नही की। कृष्ण ने कंस वध पर उग्रसेन को राजा बनाया और कौरव नाश पर युधिष्ठिर को राज्य सिंहासन देने का संकल्प किया। इस प्रकार कवि ने कर्मयोगी कृष्ण को आदर्श महान व्यक्ति के रूप मे प्रस्तुत किया है जिनमे मानवोचित दुर्बलताओ का अभाव है।

रस, अलंकार और छंद—इस काव्यमे प्राय सभी रसो का समावेश है, किन्तु अधिकांश मे अद्भुत, करुण, रौद्र, वीर और भयानक का चित्रण है। शृंगार और हास्य का प्रयोग कम है किन्तु वह भी सुन्दर है। कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोधाभास, परिसंख्या आदि श्रेष्ठ अलंकारों को स्थान दिया है। प्रकृति वर्णन बहुत सजीव है। कवि ने सारे ग्रंथ मे केवल ३ छंदो, (दोहा, सोरठा, चौपाई) का ही प्रयोग किया है।

भाषा—कृष्णायन की भाषा ठेठ अवधी नही है, संस्कृत-गर्भित अवधी है। संस्कृत के तत्सम शब्दो तथा संस्कृतमय क्रियापदों का प्रयोग अधिक किया गया है। कहीं-कहीं काव्य भाषा आधुनिक खडी बोली के निकट ही प्रतीत होती है। भाषा सुसंस्कृत, प्रौढ और साहित्यिक है। उसमे बोधगम्यता और सरलता है, किन्तु प्रसंगानुसार माधुर्य, ओज और कोमलता के गुण भी दर्शनीय है। कहीं-कहीं व्याकरण-विरुद्ध—दिन प्रति (प्रतिदिन), शब्द प्रति (प्रति शब्द), पर्ण अशोक (अशोक पर्ण), सर्वस्व हृत (हृत सर्वस्व) जैसे समस्त पदो का भी प्रयोग हुआ है। कविता में ह्रस्वान्त शब्दो का दीर्घान्त प्रयोग अवधी सम्मत है पर संस्कृत शब्दो के साथ ह्रस्वान्त प्रयोग खटकते है।

अवधी कृष्णकाव्य पर लक्षदास का प्रभाव—अवधी कृष्णकाव्य मे कृष्ण चरित को प्रबंध रूप मे प्रस्तुत करने का जो काम लालचदास ने प्रारम्भ किया था वह लक्षदास जी की लेखनी, काव्य-कुशलता और कलात्मक योजना से पर्याप्त विकसित हुआ जिसने परवर्ती कवियो को दिशा निर्देश किया। लक्षदास जी के बाद मे जो अवधी कृष्णकाव्य की परम्परा चली वह ३ रूपो मे प्राप्त होती है—(१) महाभारत तथा जैमिनि पुराण के भाषानुवाद के रूप मे, (२) स्वतंत्र रूप से कृष्ण के व्यक्तित्व विकास के प्रस्फुटन मे (३) सुदामा चरित्र, रुक्मिणी मंगल तथा कूबरी विनोद आदि प्रासंगिक कथाओ के निर्वाह रूप मे।

महाभारत तथा जैमिनिपुराण के भाषानुवाद के समय कवियो ने कृष्ण को श्रेष्ठ नायक, राजनीतिज्ञ नेता तथा कुशल के रूप मे चित्रित किया है युधिष्ठिर भीम आदि के

मुख से न वियो ने यत्र-तत्र कृष्ण के पारलौकिक ब्रह्म के अवतार होने रूप की ओर भी संकेत कराया है और देवताओ की भांति कहीं-कहीं तो उनकी ब्रह्म रूप कृष्ण स्तुति भी कराई है न रचनाओं मे कृष्ण का व्यक्तित्व महिमामण्डित रूप मे चित्रित किया गया है।

जिन रचनाओ मे स्वतत्र रूप से कृष्ण के व्यक्तित्व का विकास किया गया है वे कथानक की दृष्टि से भागवत, विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण आदि से प्रभावित है। भागवत के दशम स्कध का अनुवाद करते समय भी कवियो की मौलिक प्रतिभा उस वर्णन को और भी सजीव बना देती है। कवि लक्षदास ने कृष्ण के जिस विविध रूप व्यक्तित्व का निर्देशन किया, वही रूप परवर्ती कवियो की रचनाओ मे और भी अधिक विकसित होता गया है। नरहरि, चददास, ब्रजवासीदास, विसहूराम तथा द्वारकाप्रसाद मिश्र की रचनाओ मे कर्मयोगी कृष्ण समाज और देश के प्रति अपने धर्म के पालन मे तत्पर दिखाये गये है। कृष्ण की बाललीलाएँ केवल लोकरजक रूप से ही चित्रित नही की गई है, उनका लोकरक्षक रूप भी समाज के आदर्श की प्रतिष्ठा की रक्षा करने मे तत्पर दिखाया गया है। अवधी कृष्णकाव्य के प्रणेता कवियो की रचनाओ मे मर्यादा के निर्वाह की भरपूर चेष्टा की गई है जिसका सर्वोत्तम विकसित रूप प० द्वारकाप्रसाद मिश्र के कृष्णायन ग्रंथ मे चरम परिणति तक पहुँचता दिखाई देता है जहाँ सामाजिक शिष्टता और मर्यादा का उज्ज्वलतम रूप दिखाई देता है। लक्षदास जी ने राधाकृष्ण की शृगार लीलाओ को सामाजिक शिष्टता की परिधि मे बाँधकर आध्यात्मिक पुट दिया जिसके फलस्वरूप अवधी कृष्णकाव्य के प्रणेता परवर्ती कवियो ने भी राधाकृष्ण के चरित्र को श्रेष्ठ रूप मे अकित किया और गर्हित प्रसंगो को या तो छोड़ दिया या उनका रूपान्तर ऐसी तरह से किया कि वह समाज के सामने एक परिष्कृत और सुनियोजित रूप मे रखा जा सके।

लक्षदास जी ने भगवन्नाम स्तोत्र तथा नामावली आदि की परम्परा मे राम, कृष्ण और शिव मे अभेद भाव पैदा करने का जो प्रयत्न किया था, उसी का विधिवत् निर्वाह परवर्ती कवियो की प्राय. सभी रचनाओ मे किया गया।

हमारे आलोच्य कवि ने कविता मे छदो की विविधता का जो प्रयोग प्रारम्भ किया था उसका समुचित निर्वाह नरहरि, नबलसिह, चंददास, गिरधारी, रामसनेही आदि की रचनाओं मे किया गया। बरवै छद का प्रयोग तो अवधी काव्य के प्रणेता प्राय. सभी कवियो ने अपनी रचनाओ मे किया। लोकोक्तियों तथा मुहावरो के चलते हुए प्रयोग से कवियो ने अपनी भाषा को सज्जित किया और अपने सरस भावो को सुन्दर ढग से जनता के सामने रखा। लक्षदास जी ने जनता की सरल भाषा मे कृष्णकाव्य प्रस्तुत किया था जिससे वह (जनता) कृष्ण के जीवन से प्रेरणा और शाति का सदेश ले सके। परवर्ती कवियों मे चंददास तथा प० द्वारकाप्रसाद मिश्र की भाषा मे तत्सम शब्दों के प्रयोग से दुरूहता अवश्य आगई है, किन्तु अन्य कवियो ने इस (सरल भाषा में कथा कहने की) परम्परा का समुचित निर्वाह किया है।

सहायक ग्रन्थ

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश

१. ईशावास्योपनिषद्।
२ ऐतरेय ब्राह्मण।
३. ऋग्वेद।
४. कठोपनिषद्।
५. काव्यादर्श—दण्डी।
६. काव्यालंकार—भामह।
७. काव्यालंकार—रुद्रट।
८ काव्यानुशासन—हेमचन्द्र
९. केनोपनिषद्।
१०. गीत गोविंद—जयदेव।
११ छांदोग्य उपनिषद्।
१२ जैमिनीयाश्वमेध पर्व।
१३ त्रिपष्ठि शलाका पुरुष चरित—हेमचन्द्र।
१४. दशरूपक—धनंजय।
१५ दशश्लोकी—निम्बार्काचार्य।
१६ देवी भागवत (संक्षिप्त)—गीताप्रेस गोरखपुर।
१७ ध्वन्यालोक—आनंदवर्धन।
१८. पउम चरिउ—स्वयंभू देव, सम्पा०—हरिवल्लभ भायाणी, सिंधी जैन ग्रंथमाला, बम्बई।
१९ पद्मपुराण।
२०. प्रबंध चिंतामणि—सम्पा० मुनि जिन विजय, सिंधी जैन ग्रंथमाला।
२१. प्रमेय रत्नावली।
२२ प्राकृत पैंगलम्—सम्पा० मनमोहन घोष, बिब्लेथिका इण्डिका, १९०२।
२३ ब्रह्मवैवर्त पुराण
२४ ब्रह्मसूत्र पर अणुभाष्य

२५. ब्रह्मसूत्र पर निम्बार्क भाष्य।
२६. मनुस्मृति।
२७ महाभारत (गीता प्रेस)।
२८. मन्त्र रहस्य षोडशी—निम्बार्काचार्य।
२९. यमुनाष्टक—हितहरिवंश।
३०. राधासुधानिधि—हितहरिवंश।
३१. विष्णु पुराण।
३२. बृहदारण्यक उपनिषद् पर शंकरभाष्य।
३३. वेदान्त कामधेनु।
३४. वेदांत पारिजात सौरभ—निम्बार्काचार्य।
३५. शतपथ ब्राह्मण।
३६ शुद्धाद्वैत मार्तण्ड—चौखम्भा काशी।
३७. श्वेताश्वतर उपनिषद्।
३८. श्रीमद्भगवद्गीता।
३९ श्रीमद्भागवत।
४०. साहित्य दर्पण—विश्वनाथ।
४१. सिद्धांत रत्नांजलि—हरिव्यासदेव।
४२. सिद्धांतसार स्मृति—गो० युगलवल्लभ, वृन्दावन।
४३ हरिवंश पुराण।

हिन्दी तथा अन्य

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि (२००७ वि०)—डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल।
२ अलंकार मंजूषा—लाला भगवानदीन।
३. अवधी और उसका साहित्य—डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित।
४. अवधी शब्द कोष—श्री रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'।
५ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (२००४ वि०) —डा० दीनदयाल गुप्त।
६. आदिवाणी—श्री रामराय।
७ आधुनिक साहित्य (२००७ वि०)—प्रो० नंददुलारे वाजपेयी।
८ कृष्ण गीतावली—तुलसीदास।
९ कृष्ण चरित्र (हिन्दी संस्करण)—बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय।
१० कृष्णायन—द्वारकाप्रसाद मिश्र।
११ कृष्णायन—बिसाहूराम।
१२ काव्य कला (दो भाग)—श्री कन्हैयालाल पोद्दार।
१३ काव्य निर्णय—भिखारीदास।
१४ केलिमाल और उनके सिद्धांत के पद—स्वामी हरिदास।
१५. खानखानानामा भाग २ (सं० १९६६)—मुंशी देवीप्रसाद।
१६. गौड़ीय वैष्णव साहित्य 'बँगला'—हरिदास श्रीधाम नवद्वीप हरिबोल कुटीर।

छद प्रभाकर—श्री जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'।
जायसी ग्रंथावली (२००३ वि०)—पं० रामचन्द्र शुक्ल, काशी।
जैन साहित्य का इतिहास (१९४२ ई०)—श्री नाथूराम प्रेमी, बम्बई।
तवारीख हमवा (लीथो मे मुद्रित)।
तुलसीदास—डा० माताप्रसाद गुप्त।
नन्ददास (दो भाग)—सम्पा० उमाशकर शुक्ल।
निम्बार्क माधुरी (सं० १९९७)—ब्रह्मचारी बिहारी शरण, वृन्दावन।
निम्बार्क सप्रदाय और उसके कृष्ण भक्त हिन्दी कवि (टंकित प्रति)—डा० नारायण दत्त शर्मा।
नेमिनाथ चतुष्पदिका (१९५५ ई०)—सम्पा० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी, बम्बई।
पद्मावत—जायसी (२०११ वि०)—सम्पा० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल।
प्रकृति और काव्य (संस्कृत खण्ड, १९५१ ई०)—डा० रघुवंश।
बीसलदेव रास—सम्पा० डा० माताप्रसाद गुप्त।
बुद्धचरित (१९०९ ई०)—पं० रामचन्द्र शुक्ल।
ब्रजभाषा की आदिवाणी युगलशतक—श्री भट्टदेव, सम्पा० ब्रह्मचारी बिहारी शरण
ब्रजभाषा (१९५४ ई०)—डा० धीरेन्द्र वर्मा।
ब्रजविलास—ब्रजवासीदास।
भक्त नामावली—ध्रुवदास कृत (१९२८)—सम्पा० श्री राधाकृष्णदास।
भक्तमाल—नाभादास, भक्तचरिताक, गीताप्रेस, २००८ वि०।
भक्तिरस बोधिनी टीका (भक्तमाल)—प्रियादास।
भक्तिसुधा बिन्दु स्वाद टीका (भक्तमाल)—रूपकला जी की वार्तिक, १९६६ वि
भागवत सम्प्रदाय (२०१० वि०)—श्री बलदेव उपाध्याय।
भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी (१९५४ ई०)—डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या
भारतीय दर्शन—श्री बलदेव उपाध्याय।
भारतीय प्रेमाख्यान काव्य (१९५५ ई०)—डा० हरिकांत श्रीवास्तव।
भारतेन्दु ग्रंथावली (तृतीय भाग) २०१० वि०—सम्पा० बाबू ब्रजरत्नदास।
भाषा काव्य सग्रह (१९०८ ई०)—पं० महेशदत्त।
भोजपुरी भाषा और साहित्य—डा० उदयनारायण तिवारी।
मआसिरुल उमरा (भाग २) १९१५ ई०—अनु० बा० ब्रजरत्नदास।
मध्यदेशीय भाषा, २०१२ वि०—श्री हरिहर निवास द्विवेदी।
महाकवि विद्यापति—श्री शिवनंदन ठाकुर।
महावाणी—श्री हरिव्यासदेव जी, सम्पा० ब्रह्मचारी बिहारी शरण।
महाभारत भाषा—सबलसिंह।
मिश्रबंधु विनोद (दोनो भाग)—मिश्रबंधु।
मूलगोसाईं चरित (गीताप्रेस)—बाबा वेनीमाधवदास।
मेघनाथ वध हिन्दी अनुवाद २०० वि०

५२. मैनासत—सम्पा० हरिहर निवास द्विवेदी, ग्वालियर।
५३ रहिमन चन्द्रिका—श्री रामनाथलाल 'सुमन'।
५४. रहिमन विनोद—श्री अयोध्याप्रसाद शर्मा।
५५ रहिमन शतक—लाला भगवानदीन।
५६. रहीम—प० रामनरेश त्रिपाठी।
५७. रहीम कवितावली—प० सुरेन्द्रनाथ तिवारी।
५८. रहिमन विलास—बाबू ब्रजरत्नदास।
५९ रहीम रत्नावली—प० मयाशकर याज्ञिक।
६० राधावल्लभ संप्रदाय (सिद्धांत और साहित्य)—डा० विजयेन्द्र स्नातक, दिल्ली।
६१ राधा का क्रम विकास (१९५६ ई०)—डा० शशिभूषण दास गुप्त, काशी।
६२. रामचरित मानस—गो० तुलसीदास।
६३ व्यास-वाणी—श्री हरिराम व्यास।
६४. ब्रजभाषा व्याकरण (१९३७)—डा० धीरेन्द्र वर्मा।
६५. विद्यापति ठाकुर—डा० उमेश मिश्र।
६६. विद्यापति पदावली—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, पटना।
६७. विश्राम सागर—प० ज्वालाप्रसाद मिश्र।
६८. विश्राम सागर—प० नारायण प्रसाद मिश्र।
६९ विश्राम सागर—श्री रघुनाथ रामसनेही।
७० विश्राम सागर—श्रीलाल उपाध्याय।
७१. वैष्णव धर्म—प० परशुराम चतुर्वेदी।
७२. वैष्णव धर्मनो संक्षिप्त इतिहास (गुजराती)—प० केवलराम दुर्गाशकर शास्त्री।
७३ शिवसिंह सरोज (१८८३ ई०)—श्री शिवसिंह सेंगर।
७४. सुदामा चरित्र—नरोत्तमदास।
७५. सुदामा शतक (१८८७ वि०)—गोपाल कवि, जबलपुर।
७६ सूर और उनका साहित्य (२०१५ वि०)—डा० हरवशलाल शर्मा, अलीगढ।
७७ सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (१९५८ ई०)—डा० शिवप्रसाद सिंह।
७८ सूरसागर—बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', काशी।
७९ सूरदास (१९४६ ई०)—डा० ब्रजेश्वर वर्मा।
८० सूर साहित्य (द्वितीय संस्करण)—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
८१. सोलहवीं शती के हिन्दी और बगाली वैष्णव कवि (प्रथम संस्करण)—डा० रत्नकुमारी।
८२. संगीत राग कल्पद्रुम (१९१४ ई०)—श्री कृष्णानन्द व्यास, कलकत्ता।
८३. श्री निम्बार्काचार्य पीठ का संक्षिप्त परिचय (२०१२ वि०)—श्री निम्बार्काचार्य पीठ परशुराम पुरी, सलेमाबाद, किशनगढ, राजस्थान।
८४. श्री वृन्दावन दर्शन विधि (२०११ वि०)—श्री दानबिहारीलाल शर्मा 'शरण', वृन्दावन।
८५ श्री हितसुधासार प्रका० सोने वाली छोटी सेठानी शुभकौर बाई

हित चौरासी—गो० हितहरिवंश—प्रका० गो० रूपलाल जी।
हिन्दुई साहित्य का इतिहास—तासी, (१६५५ ई०).—अनु० डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय।
हिन्दी काव्य मे प्रकृति चित्रण (२००६ वि०)—डा० किरणकुमारी गुप्त।
हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डा० नामवरसिंह।
हिन्दी को मराठी संतो की देन (२०१४ वि०)—डा० विनयमोहन शर्मा।
हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास (१६५६ ई०)—डा० शम्भूनाथ सिंह।
हिन्दी मे कृष्णकाव्य का विकास (टंकित प्रति)—डा० बालमुकुंद गुप्त।
हिन्दी पुस्तक साहित्य—डा० माताप्रसाद गुप्त।
हिन्दी शब्द सागर (१६१२ ई०)—सम्पा० प० रामचन्द्र शुक्ल आदि।
हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड)—डा० धीरेन्द्र वर्मा, प्रयाग।
हिन्दी साहित्य का आदिकाल (१६५२ ई०)—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (१६४६ ई०)—डा० रामकुमार वर्मा, प्रयाग।
हिन्दी साहित्य का इतिहास (२००६ वि०)—प० रामचन्द्र शुक्ल।
हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—ग्रियर्सन—अनु० डा० किशोरीलाल गुप्त।
हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्रथम भाग)—सम्पा० डा० राजबली पाण्डेय।
हिन्दी साहित्य की भूमिका (१६४०)—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

ENGLISH BOOKS AND JOURNALS

Archaeological Survey of India, Vol I—Cunnigham
A History of the Medieval Vaishnavism in Orrisa (1940)—Prabha Mukherjee.
A History of Sanskrit Literature—A V Keith
A History of Hindi Literature (1920)—F E Keay
A Grammar of the Braj Bhakha (1839)—J R Ballentine, London
Akbar Nama, Part II (1912)—Abul Fazl—Translated by Bevridge
An outline of the Religious Literature of India—Dr J. N. Farquhar
A Supplement to the Fatehpur Gazeteer (1887)
Bhakti Cult in Ancient India—Dr B. K Goswami
Castes in India—Hutton.
Caste System of Northern India with special Reference to M P and Oudh—E A. W. Blunt
District Memoir, Mathura (1880)—F H Growse.
Encyclopaedia of Religion and Ethics—James Hastings.
Early History of Vaishnavism in South India—Krishna Swami Ayanger.
Early History of Vaishnav Sect—Dr. Rai Chowdhary
Evolution of Awadhi (1937) Dr Babu Ram Saksena

17 Fatehpur Cazeteer
18. Gujerat and its Literature—K. M. Munshi
19. Hindu Tribes and Castes (1879)—M. A. Sherring
20. History of Braj Buli Literature—Dr S. K. Sen.
21. History of Indian People and Culture—K. M. Munshi.
22. History of Muslim Rule in India—Dr Ishwari Prasad
23. Hindi and Braj Bhakha Grammar (1839)—J. R. Balentyne, London.
24. Indian Antiquity—Lasson
25. Influence of Islam on Indian Culture—Dr. Tara Chand.
26. Journal of the Royal Asiatic Society, 1915.
27 Linguistic Survey of India, Vol. VI & IX—Grierson.
28. Origin and Development of Bengali Language—Dr. S. K. Chaturjya.
29. Racial Synthesia of Hindu Culture—Vishwa Nath.
30. Religious Quest of India
31 Sanskrit Dictionary—Apte
32. Statistical Description and Historical Account of the North Western Provinces of India Vol VIII (1884)—Fatehpur.
33. Vaishnavism, Saivism and Minor Religious Systems—Dr. R G. Bhandarkar
34 Vedic Index of Names and Subjects Part I (1958)—MacDonell and Keith.

रिपोर्ट तथा पत्र-पत्रिकाएँ

१. अतरबेद—२६ जनवरी १९५८ तथा २६ जनवरी १९५९ के अक, फतेहपुर।
२. अमृत पत्रिका—२३-१२-१९५५ ई०, इलाहाबाद।
३ इलाहाबाद यूनीवर्सिटी मैगजीन—दिसम्बर १९५६ ई०।
४ उत्तर भारती—उत्तर प्रदेश यूनीवर्सिटीज रिसर्च जर्नल, दिसम्बर १९६०।
५ कल्याण—श्रीकृष्णाक सवत् १९८८ तथा भक्त चरिताक स० २००८।
६. खोज रिपोर्ट—नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
७. त्रिपथगा—जुलाई १९५९ ई०, सूचना विभाग, लखनऊ।
८. नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका, काशी।
९. पंचदूत—प्रका०—जिला नियोजन अधिकारी, फतेहपुर (उत्तर प्रदेश)।
१० प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।
११ व्रजभारती—व्रज साहित्य मण्डल, मथुरा।
१२. भारत—२६ अक्टूबर १९५५ ई०, इलाहाबाद।
१३ भारतीय साहित्य—अक्टूबर १९५६ ई०—के० एम० मुशी हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय।
१४. माधुरी—लखनऊ।
१५. विशाल भारत—कलकत्ता।
१६ सम्मेलन पत्रिका—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

१७. सरस्वती——लखनऊ।
१८. साहित्य, वर्ष ६ अंक ३——बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना।
१६ साहित्य संदेश, दिसम्बर १६५८ तथा दिसम्बर १६६०——साहित्यरत्न भण्डार आगरा।
२०. सुकवि——कानपुर।
२१. श्री सर्वेश्वर——श्री निकुंज, प्रताप बाजार, वृन्दावन।
२२. हस्तलिखित पुस्तकों की खोज रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण——डा० श्यामसुंदर दास काशी।
२३. हिन्दी अनुशीलन——भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग।
२४ हिन्दी अनुशीलन——धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक १६६० ई०।
२५ हिन्दुस्तान (साप्ताहिक)——१७-२-१६५७ ई०, दिल्ली।
२६. हिन्दुस्तानी——इलाहाबाद।

हस्तलिखित ग्रंथ कवि नामानुक्रम से

१ गिरधारी——कृष्ण चरित्र (भागवत दशम स्कंध), रस मशाल, सुदामा चरित्र।
२ चतुरदास——एकादश स्कंध भाषा।
३. चंददास——रामविनोद, कृष्णविनोद, गित्रमारगाध्यात्म्ली, भागवतगीताज्ञान, विष्णु-सहस्रनाम, भाषा प्रबंध पचांग, श्री भागवत महापुराण, भगत बिहार, साखी, रागमाला, पदावली, शृंगार सागर।
४. बालबाल——भक्तमाल।
५. बालकराम——भक्तदाम गुण चित्रनी टीका।
६. भवानीप्रसाद पाठक 'भावन'——कूबरी विनोद आदि।
७. भागवत दास——भागवत चरित्र।
८. राजेन्द्रप्रसाद——दानलीला।
६. लक्षदास——कृष्णरससागर, भागवतपुराणसार, दोहावली, कृष्ण के बरवै तथा फुटकर पद।
१०. लालचंदास——हरिचरित्र, विष्णु पुराण।
११. क्षेमकरण मिश्र——चरितसुधा (कृष्ण चरित्र)।
१२ हस्तलिखित ग्रंथ सग्रह——प्रयाग संग्रहालय।
१३. हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह——सम्मेलन संग्रहालय।
१४ हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह——नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
१५. हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह——श्री निकुंज प्रताप बाजार, वृन्दावन।

उपर्युक्त ग्रंथों के प्राप्ति-स्थानों का संकेत इस प्रबन्ध मे यथास्थान किया जा चुका है।